PATRON
COMMEMORATION COMMITTEE.
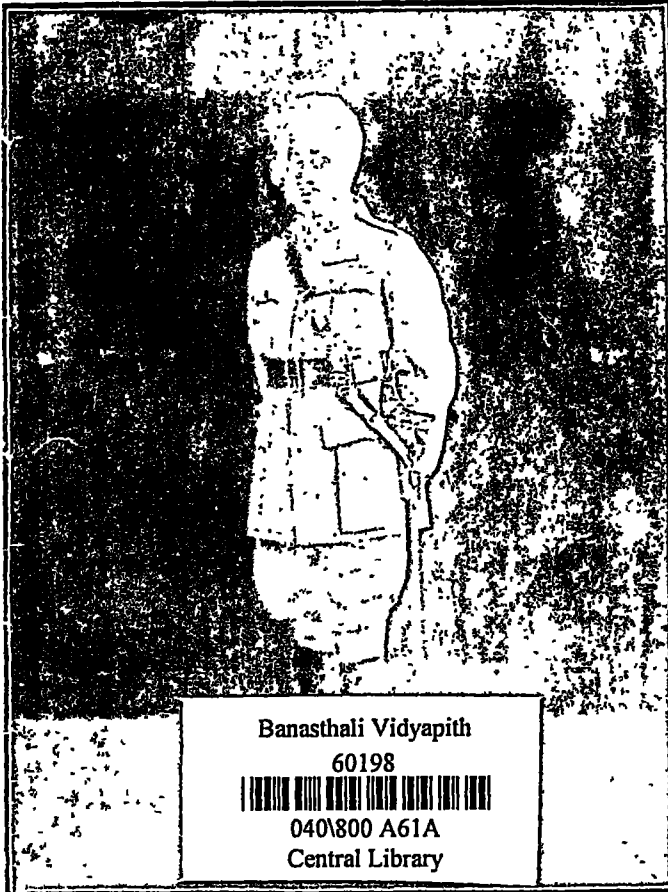
Air Commodore
His Highness Raj Rajeshwar Saramad Raja-i-Hind
Maharaja Dhiraj Sri Sir UMAID SINGHJI Sahib
Bahadur, G. C. S. I., G. C. I. E., K. C. V. O.,
A. D. C., LL. D. of Jodhpur.

|| श्रीदधिमती जयति ||

पण्डित रामकर्णजी आसोपा

अभिनन्दन ग्रन्थ ।

सम्पादक—

दधिमती-दीवान, विद्याभूषण, विद्यानिधि, साहित्यभूषण

पण्डित गोविन्दनारायण शर्मा आसोपा

बी. ए., एम. आर. ए. एस.,

[चार सुवर्ण पदकधारी और पञ्चभाषाभिज्ञ, सम्पादक, "सन्त-ग्रन्थ-माला" और भूतपूर्व सम्पादक "दधिमती", रिटायर्ड एसिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेट आफ कस्टम्स और वर्तमान आनरेरी मेजिस्ट्रेट, गवर्नमेन्ट आफ जोधपुर, मेनेजर राम-श्याम प्रिंटिङ्ग प्रेस, सदस्य व परीक्षक हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग, सभासद संस्कृत साहित्य परिषद्, विद्वत्समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ब्राह्मण महासम्मेलन, ब्राह्मण महासभा, मन्त्री अखिल भारतवर्षीय श्रीदाहिमा ब्राह्मण महासभा, सभापति मारवाड़ ब्राह्मण महासभा, दाहिमा ब्राह्मण प्रान्तीय सभा, दधीचि जयन्ती महोत्सव, भूतपूर्व मन्त्री सनातन धर्म-सभा, सरदार औषधालय, राजकीय प्रतिनिधि छन्याति ब्राह्मण, मेनेजर श्रीउम्मेद छन्याती स्कूल, और त्रैभाषिक श्रीमद्भगवद्गीता, दधीचि-नाटक, ईश्वरसिद्धि, आदि ४७ पुस्तकों का रचयिता और "कल्याण" आदि पत्र पत्रिकाओं का लेखक आदि आदि]
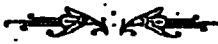
विक्रम सम्वत् १९९७.

Pandit Ram Karna Asopa
Commemoration Volume

Edited by—

Dadhimati–Diwan,
Vidyabhushan–Vidyanidhi–Sahityabhushan

Pt. Govind Narayan Sharma Asopa
B. A., M. R. A. S.,

[(Four) Gold Medalist, (five) Linguist, Editor, "Santa-grantha-mala" and Ex-Editor, " Dadhimati ", Retired Assistant Superintendent of Customs and presently Honorary Magistrate, Government of Jodhpur, Manager Ram-Shyam printing Press, Fellow and Examiner, Hindi University, Allahabad, Member Sanskrit Sahitya-Parishad, Vidvat-Samiti, Hindi Sahitya Sammelan, Editors' Association, Brahman Mahasammelan, Brahman Maha–Sabha, Secretary All India Dahima Brahman Mahasabha, President Marwar Brahman Mahasabha, Dahima Brahman Provincial Sabha, Dadhichi Jayanti Mahotsava, sometime Secretary Sanatana-dharma Sabha, Sardar Aushadhalaya, State Representative Chhanyati Community, Manager Sri Umed Chhanyati School, etc. and Author of Trilingual Srimad-Bhagavad–Gita, Dadhichi Nataka, Isvara-Sidhi, etc. 47 books and tracts and Contributor of articles in the "Kalyan" etc. etc.]

1940 A. D.

PRESIDENT
COMMEMORATION COMMITTEE.

Maharaj Sri Guman Singhji Sahib,
A. D. C. to H. H. the Maharaja Sahib Bahadur of Jodhpur

॥ श्रीदधिमती जयति ॥

प्रस्तावना।

बड़े हर्ष तथा अधिक आनन्द का विषय है कि मारवाड़ की जनता प्रथम ही प्रथम जोधपुर-निवासी, लब्धप्रतिष्ठ, प्रसिद्ध विद्वान्, प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता और नामी इतिहासकार महामहाध्यापक, विद्वद्रत्न, प्रोफेसर पण्डित रामकर्णजी आसोपा को मातृ-भूमि की दीर्घ साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में अभिनन्दन-ग्रन्थ उपहार रूप से भेट कर रही है। यह बात सब से पहले श्रीमान् राव बहादुर डाक्टर ओङ्कारसिंहजी साहब को सूझी कि उक्त पण्डितजी को अस्सी वर्ष से अधिक आयु में पदार्पण करने के उपलक्ष्य में सम्मान-स्वरूप एक पुस्तक उपहार में भेट की जावे। जब इस विचार को पण्डितजी के गण्य मान्य गुण-ग्राहक मित्रों और सज्जनों के आगे प्रकट किया तो बहुतसों ने उस का समर्थन किया। तदनुसार ता० २६-८-१९३८ को एक सूचना निकाली गई जिस में इस विचार को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये एक समिति निर्वाचित करने की आवश्यकता बताई गई। ता० २८-८-१९३८ को महाराज श्रीगुमानसिंहजी साहब के बंगले पर प्रातः काल के ८॥ बजे महाराज साहब की अध्यक्षता में चुने हुए सज्जनों की समिति की बैठक हुई जिस में निम्न सज्जन उपस्थित थेः—

१. राव बहादुर ठाकुर जयसिंहजी साहब, उमेदनगर
२. राव बहादुर डाक्टर ओङ्कारसिंहजी साहब
३. मिस्टर किसनपुरीजी साहब, बी. ए., एल. एल. बी., होम सेक्रेटरी,
४. हकीम असदअलिजी साहब, आनरेरी मजिस्ट्रेट
५. पण्डित गोविन्दनारायण शर्मा आसोपा

सर्व प्रथम डाक्टर साहब ने एक छोटीसी किन्तु सारगर्भित वक्तृता दी जिस में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि पण्डित रामकर्णजी की भारतवर्ष की सामान्यतया और मारवाड़ की विशेषतया की हुई साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में उपहार रूप से एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किया जावे जिसमें भारत भर के पण्डितजी से परिचित लेखक महाशयों की लेखनियों से अपनी २ रुचि के किसी विषय पर लिखे लेखों का संग्रह किया जावे।

इसका श्रीमान् पुरीजी ने समर्थन किया और प्रस्ताव सर्व संमति से सहर्ष स्वीकृत हुआ जिसको कार्यरूप में परिणत करने के लिये निम्न सज्जनों की समिति का निर्वाचन हुआ; जिसके महाराज श्रीगुमान-सिंहजी साहब सभापति, दोनों राव बहादुर साहिब उपसभापति, पं० गोविन्द नारायण मंत्री और मिष्टर किसनपुरीजी सहकारी मंत्री नियत हुए।

अतः ता० २५-६-१६३८ को एक मुद्रित निवेदन पण्डितजी से परिचित भारत के प्रसिद्ध २ पुरुषों की सेवा में भेजा गया जिस में अपनी रुचि के किसी भी विषय पर निम्न सात भाषाओं में से किसी भाषा में लिखे लोकोपकारक लेख अखीर दिसम्बर सन १६३८ तक भेजने की प्रार्थना की गईः—

१. संस्कृत
२. हिन्दी
३. मारवाड़ी
४. उर्दू (नागरी लिपि में)
५. गुजराती
६. मरहठी
७. अंगरेजी

मुझे इस बात का हर्ष है कि गुजराती और मरहठी के अतिरिक्त पांच भाषाओं में विविध विषयों पर लेख प्राप्त हुए जिन का इस अभिनन्दन-ग्रन्थ में समावेश किया गया है और जिसके वास्ते मैं प्रत्येक लेखक महाशय का आभार मानता हूं।

गोविन्द-भवन,
जोधपुर,
१-८-१६४०.

गोविन्द
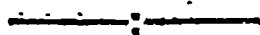
Preface.
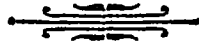
It is a matter of great joy and much happiness that the people of Marwar are going for the first time to present a Commemoration Volume to their much reputed and renowned person, profound scholar, eminent epigraphist and veteren historian, Mahamahadhyapaka, Vidvadratna, Professor Pandit Rama Karnaji Asopa of Jodhpur, in appreciation of his long, illustrious, public, literary services to the motherland. The idea to do so was conceived by Rao Bahadur Dr. Onkar Singhji as the said Panditji had attained the emulated age of eighty-four. This was received with great approbation by many friends and admirers of the learned Panditji. Accordingly a notice was issued on August 26th, 1938, to form a Committee with a view to put the idea into practical operation. In response to the above notice a meeting of selected persons was held on the 28th idem at the mansion of Maharaj Sri Guman Singhji Sahib, under his presidentship at 8–30 A. M. wherein the following persons were present:—

1. Rao Bahadur Thakur Jai Singhji Sahib of Umednagar.
2. Rao Bahadur Dr. Onkar Singhji Sahib.
3. Kishen Puriji Sahib, B.A.,L.L.B.
4. Hakeem Asad Aliji Sahib.
5. Pandit Govind Narayan Sharma Asopa.

A short but lucid and placid speech was made by Doctor Sahib proposing to appreciate the literary services rendered by Panditji to the people of India in general and those of Marwar in particular

during his long life of over four score and four, by presenting him a Commemoration Volume containing articles on useful literary subjects by the pens of various writers of India.

This was seconded by Mr. Kishen Puri and the proposal was heartily and unanimously passed and a working Committee was nominated with Maharaj Sri Guman Singhji Sahib as its President, both the Rao Bahadurs as Vice-Presidents, myself as Secretary and Mr. Puri as Joint Secretary.

On September 25, 1938, a printed request was made to most of the leading literary personalities of India having acquaintance-ship with the Panditji, to send articles on subjects of their own choice, but of public utility, in any of the following seven languages before the end of December 1938:-

1. Sanskrit.
2. Hindi.
3. Marwari.
4. Urdu (in Nagari characters).
5. Gujarati.
6. Marathi.
7. English.

I am glad to note that articles in five languages have been received, excepting Gujarati and Marathi only, for publication from diverse writers, which have been incorporated into this Complimentary Volume. For this I am thankful to their respective writers.

Govind Bhavan,
JODHPUR.
1-8-1940.

GOVIND.

VICE-PRESIDENT
COMMEMORATION COMMITTEE.

श्रीमान् राव बहादुर
ठाकुर जयसिंहजी साहब,
उमेदनगर.

॥ श्रीदधिमती जयति ॥

लेखों की सूची

---

(४) हिन्दी--गद्य

* बड़े खेद का विषय है कि लेखक महाशय का असमय में देहावसान होने से आप इस अभिनन्दन-ग्रन्थका अवलोकन न कर सके। सम्पादक

(५) मारवाड़ी–पद्य

(६) मारवाड़ी–गद्य

(७) उर्दू–गद्य

(8) English-prose

॥ श्रीदधिमती जयति ॥

लेखकों की सूची

पृष्ठाङ्क

* बड़े खेद का विषय है कि लेखक महाशय का असमय में देहावसान होने से आप इस अभिनन्दन ग्रन्थ का अवलोकन न कर सके। सम्पादक।

प्रख्यात पुरातत्त्वज्ञ प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता महामहाध्यापक,

विद्वद्रत्न

पण्डित रामकर्णजी आसोपा,

भूतपूर्व लेक्चरार, कलकत्ता युनीवर्सिटी,

जोधपुर.

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमान् प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता महामहाध्यापक विद्वद्रत्न

पण्डित रामकर्णजी आसोपा

जोधपुर,

भूतपूर्व लेक्चरार कलकत्ता यूनिवर्सिटी

का

जीवन-चरित ।
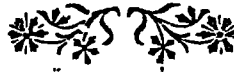
देवीं दधिमतीं नत्वा सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
चरितं रामकर्णस्य गोविन्देन विरच्यते ॥ १ ॥

इस देव-वन्दित भारत भूमि में कई ऋषि, मुनि, आचार्य, विद्वान्, धर्म-प्रचारक, वेद-प्रचारक, ज्ञान-प्रचारक, आदि हो चुके हैं जिनके नाम अभीतक अमर हैं। वैसे कई प्रकाण्ड पण्डित होगये हैं जिनके बनाये ग्रन्थ अद्यावधि विद्यमान हैं। कितने ही भूदेव ऐसे भी हुए हैं जो सर्वशास्त्रों के पारगामी थे और जो अमूल्य विद्यादान देते थे। राजपूताने में भी सर्वशास्त्रनिष्णात कई दिग्गज-विद्वान् होचुके हैं जिनकी प्रख्यात कीर्ति चारों ओर फैली हुई है। आधुनिक समय में भी अनेक प्रगाढ पण्डित इस राजस्थान की वीरभूमि में पाये जाते हैं जिनके शास्त्रज्ञान के कारण ब्राह्मणों का शिर ऊंचा और मुख उज्ज्वल है। इस कोटि के विद्वानों में जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता महामहाध्यापक विद्वद्रत्न पं० रामकर्णजी आसोपा की गणना है। कहने में अत्युक्ति न होगी

कि इस समय आपके समान मारवाड़ में अन्य कोई विद्वान् नहीं है। आपके सरल स्वभाव, शान्तप्रकृति, निरभिमान, परोपकार आदि सद्गुणों के कारण आपको सर्वजनसमुदाय जानता है।

आपका जन्म पञ्चगौड़ान्तर्गत दाहिमा ब्राह्मण जाति में हुआ जिसके मूल-पुरुष ईशावास्य उपनिषद् के द्रष्टा (वक्ता), अश्विनी-कुमारों को ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा, दानशिरोमणि, दधीचि ऋषि महामुनि हुए। उनकी सन्तान दाधीचों के १४४ नख (शाखा) हैं जिन में आपका गोत्र भारद्वाज और प्रवर ३ बार्हस्पत्य, आङ्गिरस, भारद्वाज हैं। शाखा शुक्ल-यजुर्वेद की माध्यन्दिनी है।

आपके पूर्व-पुरुष (पुरखा) मेड़ता[1] नगर में, जो पूर्वकाल में बहुत ही बड़े नगरों की गणना में था, निवास करते थे। राव जोधाजी ने अपने पुत्र बरसिंह और दूदा को मेड़ते का राज्य दिया था। बरसिंह के अनन्तर राव दूदाजी मेड़ता के मालिक हुए। उन्होंने मेड़ता नगर को आबाद कर पृथक् राज्य स्थापित किया। तब वर्णनीय पण्डितजी के पुरखा उन्हीं के राज्य-ज्योतिषी नियत हुए। तब से आजतक राज्य-ज्योतिषी का कार्य इन्हीं के घराने में है। जोधपुर महाराजा विजयसिंहजी के राज्य में मेड़ता के हाकिम अहीर वेणीदास को उक्त पण्डितजी के पर-

---

१ मंडोर के प्रतिहार राजा बाउक के वि० सं० ८९४ के शिला-लेख में मेडता नगर के विषय में लिखा है कि प्रतिहार नागभट की राजधानी मेडता नगर था। और उसके साथ यह भी लिखा है कि मेडता नगर महान् था—

"तस्मान्नरभटाज्जातः श्रीमान्नागभटः सुतः।
राजधानी स्थिरा यस्य महन्मेडन्तकं पुरम्॥"

नागभट का समय विक्रमी आठवीं शताब्दी का आरंभ होना चाहिए।

दादा गङ्गादासजी ने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार फलादेश कहा और वह यथार्थ मिला। ये समाचार वेणीदास ने महाराजा को अर्ज किया तो महाराजा ने इन के गुण की परीक्षा करके जोशी गङ्गादासजी को मेड़ता के कस्बे में २५ वीघा खेत देने का हुक्म फरमाया उसकी सनद सं० १८५० के चेत बद ३ की उक्त पंण्डितजी के पास मौजूद है।[१]

---

१ पट्टे की नकल—

॥ श्रीपरमेश्वरजी सत्य छै ॥

ठाकुरजी श्रीचत्रभुजजी श्रीमहाराजजी
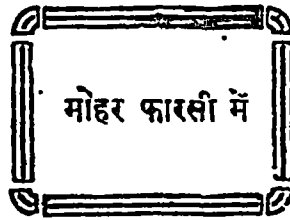
स्वस्त्य श्री मेडता कोटायतं अहीर वेणीदासजी व्यास उदेनारायण जी जोग्य जोधपुर था भंडारी श्रीभवानीदासजी लिखावतं जुहार पगेलागणो वांचजो अठारा समाचार श्री जीरे तेज प्रताप सुं भला छै थांहरा सदा भला चाहिजे तथा मेडता रा जोशी गंगादास लोढो उठे आयो तरे आछी हमगीरी रा समाचार थांनु कया जीणिक माफक मिलिया तिणरा थे हकीकत लिखी थी सुं श्री हजुर मालम हुई सु इणनुं मेडता रा कसबा रा खेत वीघा २५ अखरे पचीस दिरावण रो हुकम हुवों है सु २५ वीघा खेत आछा मपाय दीजो सु उठैरै मंदर टीपणो वांचिया करसी नै श्री दरबार नैं आसीरवाद देसी श्रीहजुर रो हुकम छै संवत् १८५० रा चैत्र वद ३

सनद री नकल उतरायने इणनुं संप दीजो दुवायत दोढीदार खींवकरण।*

गङ्गादासजी के चार पुत्र हुए-१ सदारामजी, २ जगन्नाथजी, ३ रघुनाथजी और ४ जानकीदासजी। ज्येष्ठ पुत्र सदारामजी ज्योतिष-शास्त्र के पारगामी थे, मन्त्र-शास्त्र के पूर्ण अभिज्ञ थे और पूर्ण इष्टबली थे। इनका कहा हुवा वचन कभी खाली नहीं जाता था। उनके समय में शाह शिवराजजी मेड़ता में प्रतिष्ठित सेठ थे। दरबार की तर्फ से हाकिम का काम यही करते थे, उनका पुत्र बीमार हुआ तब किसी ने सदारामजी से पूछा कि सेठजी का पुत्र बीमार है वह रोगमुक्त कब होगा। जोशीजी ने देख भाल कर उसे कहा कि यह तो अमुक तिथि को मर जायगा। वह वार्ता किसी तरह सेठजी के कानों तक पहुँच गई। ईश्वर की गति विचित्र है। सेठजी का पुत्र धीरे २ आराम होने लगा यहां तक कि ठीक तन्दुरुस्त होने पर स्नान का दिन नियत हुआ। उस पुरुष ने जोशीजी से कहा कि "जोशीजी!, उसके रोगमुक्ति के स्नान का अमुक दिन नियत हुआ है, आपकी बात तो गई।" तब जोशीजी ने कहा कि "ओ तो उण दिन मर जासी।" त्यों ही हुआ। जो स्नान का दिन नियत था उस दिन हजामत बनवाई गई और अच्छी तरह गर्म पानी से स्नान कराया गया, स्नान करने से सर्दी असर करगई और सन्निपात होगया। रातको वह लड़का चल बसा। दूसरे दिन सारा मेड़ता शव के

---

* ४। नकल लिखी श्री हजुररे दफतर १

४	४	४
४		४
		४

सिरनामा

अहीर वेणीदासजी व्यास उदेनारायणजी जोग्य

मेडता।

साथ गया । जोशीजी भी गये । सेठजी की आंख बचाकर दूर एक कैर के वृक्ष के नीचे बैठ गये । सेठजी को वह बात याद आगई । सेठजी ने कहा कि सदाराम नहीं आया ? तो किसी ने कहा कि आया है, वह कैर की छाया में बैठा है । सेठजी ने जोशीजी को बुलाया और कहा कि यदि यह आज न मरता तो मैं तुझे लीले कांटों में जलवा देता । जोशीजी ने चुप लगाई ।

एक समय किसी महाजन ने आकर सदारामजी से अपनी जन्मपत्री देखने को कहा । जोशीजी ने जन्मपत्री देख कर कहा कि " तू क्या जन्मपत्री दिखाता है । इस महीने में तो तेरा नाक कट जायगा । " यह सुन कर महाजन घबराया क्योंकि जोशीजी की धाक शहर में जमी हुई थी कि उनका वचन खाली नहीं जाता था । उसने अपनी दुकान का सब कारोबार बन्द कर दिया और घर में आकर बैठ गया । उस महीने के पूरे तीस दिन बीत गये किन्तु रात ही बाक़ी रही, तब सन्ध्या के समय वह महाजन जोशीजी के पास गया और उनसे कहा कि " जोशीजी महाराज, महीना पूरा होगया और अभी तक तो कुछ नहीं हुआ । " तब जोशीजी ने कहा कि 'अभी रात बाक़ी है ।' यह सुन कर वह महाजन चुप चाप अपने घर चला गया । भोजन करके वह बैठा तो उसके लड़के ने कहा कि मेरे बरतने का अंट निकाल दो । महाजन ने अपनी स्त्री से चाकू मांगा । उसने कहा कि आप बैठे हैं उसके ऊपर के आले में ही रक्खा है । महाजन ने चाकू लेने के लिये हाथ ऊपर किया, चाकू हाथ में तो नहीं आया और उसके नाक पर गिर गया जिससे नाक कट गया । तब वह चिल्लाया । जोशीजी का वचन सत्य निकला ।

ये बड़े लेखक थे और ७०० श्लोक नित्य लिखते थे । और मोती के समान सुन्दर अक्षर लिखते थे । इनके हाथ की

लिखी हुई ज्योतिष और मन्त्र-शास्त्र की सैकड़ों पुस्तकें पण्डितजी के घर में विद्यमान हैं ।

उनके तीसरे भाई रघुनाथजी के वि. सं. १८७८ की चैत्र वदि द्वितीया के दिन वंश-रक्षक एक पुत्र हुआ उसका नाम वलदेवजी रक्खा गया। इनके वचपन में ही इनके माता पिता शान्त होगये, तव इनके नाना खटोड़ व्यास मुरलीधरजी, जो नागौर के निवासी थे, इनको नागौर लेगये और महाजनी विद्या पढ़ाई। उस समय में कोई ऐसी घटना होगई थी कि ब्राह्मण मात्र को महाजन (सेठ साहूकार लोग) किसी कारण-वश नौकर नहीं रखते थे। जिस समय में इनकी सोलह वर्ष की अवस्था थी। जव महाजनी नौकरी से निराश हुए तो इन्होंने सारस्वत और चन्द्रिका पढ़ कर श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया। बीस वर्ष की अवस्था में अच्छे भागवती पण्डित बन गये। भागवत इनको कण्ठस्थसा था। इनका विवाह जोधपुर में कासलिया शाखा में हुआ था। उस सम्बन्ध से ये जोधपुर में आये। दाऊजी के मन्दिर में दर्शन को गये। वहां गोस्वामी कृष्णजीवनजी महाराज श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध का पाठ कर रहे थे। इन्होंने उसकी ओर ध्यान लगाया तो गोस्वामीजी महाराज ने पूछा कि 'क्या तुम भागवत जानते हो ?' तो इन्होंने कहाकि 'हां महाराज ! ।' तब उन्होंने इनकी परीक्षा के लिये भागवत के दशमस्कन्ध का निम्न लिखित श्लोक का अर्थ पूछा और पत्र हाथ में देदिया ।

श्लोक—

"गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ,
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥

अर्थ—उद्धवजी श्रीकृष्ण भगवान् से कहते हैं कि जैसे शङ्खचूड़ नामक यक्ष को मार उस से छुड़ाने के कारण देवी गोपियां अपने २ घरों में आप के निर्मल चरित्र का गान किया करती हैं, जैसे शरणागत लोग ग्राह को मार गजराज को छुड़ाने से आप का निर्मल यश गाते हैं, जैसे मुनि लोग रावण को मार सीता को छुड़ाने से आप का गान करते हैं, जैसे हम लोग कंस को मार उस से आप के माता पिता देवकी और वसुदेवजी को छुड़ाने से आप का गान करते हैं, वैसे जरासन्ध से कैद किये हुए राजाओं की रानियां भी जरासन्ध को मार राजाओं को छुड़ाने से अपने २ घरों में आप का पवित्र चरित्र का गान किया करेंगी।

इन्होंने उक्त श्लोक का अर्थ सुचारु रूप से मय श्रीधरी व्याख्या के कह सुनाया। सुन कर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा कि 'क्या भागवत आपको ऐसी ही याद है?, तो इन्होंने कहा कि 'हां महाराज!' तब महाराज ने कहा 'क्या आप हमारे माजी महाराज को भागवत सुनावेंगे?' तो इन्होंने स्वीकार कर लिया और महाराज की आज्ञानुसार चौपासनी गये। माजी महाराज को छः मास में श्रीमद्भागवत सुनाया। महाराज भी पास में बैठे सुना करते थे। समाप्त होने पर कुछ भेंट पूजा करके माजी महाराज ने फरमाया कि "हमारे देबे लेबे को तो कछु नहीं है पर हम आपको आशीर्वाद देती हैं कि आप फलोगे फूलोगे।"

पण्डितजी के पिताजी ने दो विवाह किये। पहिला विवाह कासल्या जाति की वीरां नामक स्त्री के साथ हुआ। वि० सं० १९११ में इसका स्वर्गवास होने से दूसरा विवाह वड़लू ग्राम के निवासी गोठेचा अन्नालालजी की पुत्री सिणगारी (शृङ्गार-

देवो) के साथ हुआ। उसके उदर से ५ पांच पुत्र हुए। १ रामकर्णजी, २ श्यामकर्णजी, ३ लक्ष्मीनारायणजी, ४ गोविन्दनारायणजी ५ कृष्णनारायणजी। इन में से श्यामकर्णजी और लक्ष्मीनारायणजी का स्वर्गवास हो चुका है और शेष तीन भ्राता विद्यमान हैं जिन की वंश-परम्परा निम्न वंश-वृक्ष में दी गई है।

वंश—वृक्ष

पं० गङ्गादासजी

- पं. सदारामजी
  - पं. शिवजीरामजी
- पं. जगन्नाथजी
- पं. रघुनाथजी
  - पं. बलदेवजी [सं १८७८-१९५७]
    - पं. रामकर्णजी [सं. १९१४]
      - जयनारायण [१९८२]
    - पं. श्यामकर्णजी [१९१७-५९]
    - पं. लक्ष्मीनारायणजी [१९२७-७४]
    - पं. गोविन्दनारायणजी [१९३३]
      - माधवनारायण [१९५२]
        - देवनारायण [१९९४]
      - विष्णुनारायण [१९७६]
      - नरनारायण [१०८२]
    - पं. कृष्णनारायणजी [१९३४]
      - केशवनारायण [१९६१]
- पं. जानकीदासजी
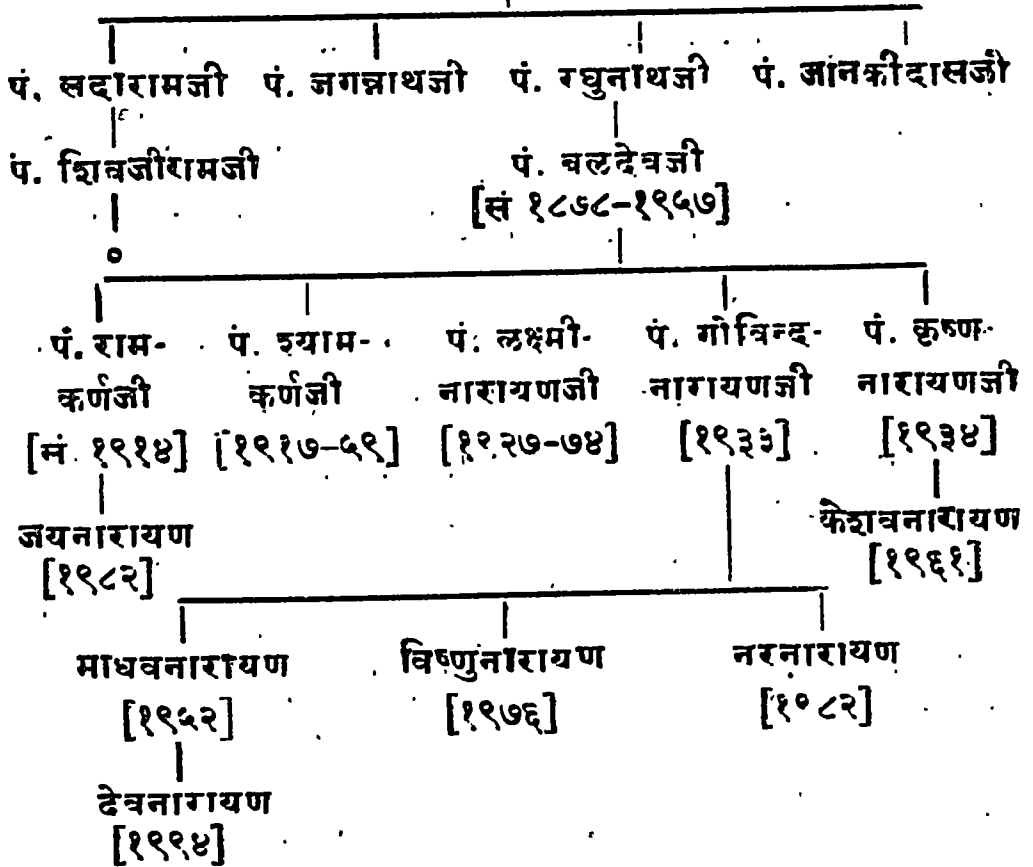
नोटः—ब्रेकट में दिये हुए संवतों में प्रथम जन्म का और दूसरा स्वर्गवास का है और जो विद्यमान हैं उन का केवल एक जन्म संवत् ही ऊपर दिया गया है।

पण्डितजी का जन्म आपके ननिहाल नडलू ग्राम में वि० सं० १९१४ के भाद्रपद वदि २ द्वितीया शुक्रवार को अर्धरात्रि के समय हुआ। उस समय ग्रहों की स्थिति इस भांति थी—
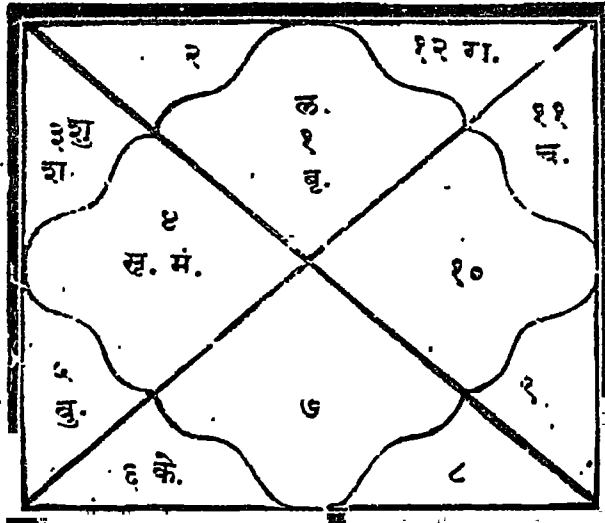
आप बाल्यकाल ही से तीव्र बुद्धि थे जिस से आप के पिताजी ने आप को पांचवें वर्ष अक्षरारम्भ करा दिया। तदनन्तर अङ्कविद्या सीख लेने पर ८ वें वर्ष में आप को सारस्वत पढ़ाना आरम्भ कर दिया। जिस के साथ श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध का मूल पढ़ना भी शुरु करा दिया। पिताजी को अवकाश कम मिलने से आप ने दादूपंथी साधु रामदासजी के पास सारस्वत का पूर्वार्द्ध समाप्त किया। तदनन्तर चन्द्रिका के उत्तरार्द्ध की पढ़ाई की गई। उस के साथ भागवत का अर्थ पिताजी के पास पढ़ने लगे। जिस से आप को साधारण व्युत्पत्ति होगई। तदनन्तर रघुवंश और माघकाव्य पण्डितजी ने दाक्षिणात्य पांडुरङ्गजी के पास जोधपुर में पढ़े। तत्पश्चात् ज्योतिषशास्त्र यतिवर जवाहरमलजी के पास पढ़ा और वर्ष, जन्मपत्री भी बनाना उन्हीं के पास सीखा। जब इन की १२ वर्ष की अवस्था थी, तब आयुर्वे-

दीय ग्रन्थ वैद्यराज दाहिमा जाति के इनाणिया जोशी मगनीराम-जी के पास वैद्यविनोद, माधवनिधान, शार्ङ्गधर आदि पढ़े। इस से पहिले लिपि लिखना पुष्करणा ब्राह्मण पुरोहित कृष्ण-कर्णजी से सीखा। वैद्यक के ग्रन्थ शार्ङ्गधर, माधवनिधान आपने हाथ से लिख कर पढ़े थे। उस समय आप की अवस्था १५ वर्ष की थी। इस अवस्था में आप अच्छे व्युत्पन्न हो गये थे उसी अर्से में पण्डितजी ने शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा की संहिता का अध्ययन किया। और उस का अर्थ जानने के लिये श्रीमाली ब्राह्मण बोहरा कनीरामजी के पास उवट भाष्य था, उस की प्रतिलिपि अपने हाथ से की और उवट भाष्य को देखा भी। उसी अर्से में इन के पिताजी का बम्बई जाना हो गया।

वि० सं० १९२९ में आप के पिताजी बम्बई गये तब आप को भी अपने साथ ले गये। वहां आप भारतमार्तण्ड, प्रज्ञाचक्षु, जगत्प्रसिद्ध, पण्डित गट्टूलालजी महाराज के पास तीन वर्ष रहे। वहां सिद्धान्तकौमुदी, कुछ महाभाष्य का अंश, वेदान्त, साहित्य, न्याय आदि का अध्ययन किया।

वि० सं० १९३० में दयानन्द सरस्वती बम्बई में आये, वालकेश्वर में उनका डेरा था उनके पास पण्डितजी और पण्डितजी के सहाध्यायी मूलशङ्करजी दोनों गये। विद्यार्थी दशा में पण्डितजी ने व्याकरण के विषय में प्रश्न किया। प्रश्न यह था कि "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" इस सूत्र के स्थान में यदि "अनशि विसर्जनीयः" ऐसा छोटा सूत्र बना दिया जाता तो काम चल सकता था फिर पाणिनिजी ने इतना बड़ा सूत्र क्यों बनाया? और वैयाकरण लोग एक-मात्रा-लाघव से पुत्रोत्सव के समान आनन्द मानते हैं तो पाणिनि मुनि ने ऐसा क्यों किया? स्वामीजी ने उस का उत्तर कुछ भी नहीं दिया। उसी अर्से में

स्वामीजी के पास जो गृहस्थ आये थे उन से वे वार्तालाप करने लग गये। प्रश्न का उत्तर कुछ भी नहीं दिया गया जिस से पण्डितजी अपने सहाध्यायी के साथ वापिस लौट आये।

उसी अर्से में पण्डितजी के गुरु गट्टूलालजी महाराज पूना नगर गये तब पण्डितजी भी उन के साथ थे। पूना में गोस्वामी यदुनाथजी महाराज ने एक संस्कृत पाठशाला खोल रक्खी थी उस में छहों शास्त्रों के अध्यापक छः शास्त्री नियुक्त थे। उस पाठशाला में व्याकरण पढ़ने वाले विद्यार्थियों में पण्डितजी का भी नाम था और उसी पाठशाला के विद्यार्थी समझे जाते थे, और वहां से स्कालर्शिप (छात्रवृत्ति) पांच ५) रुपये मासिक मिलती थी। परीक्षा के समय में छात्रों की परीक्षा हुई तब पण्डितजी की भी परीक्षा हुई उस में उच्चकोटी में उत्तीर्ण होने से उन्हे महाराज की तर्फ से २५) रुपये इनाम में मिले।

बम्बई में रह कर पण्डितजी ने व्याकरण, वेदान्त और साहित्य का अच्छा परिज्ञान प्राप्त कर लिया था। बम्बई में भी गट्टूलालजी महाराज को अवकाश कम मिलने से पण्डितजी को पढ़ाई के लिये अन्य शास्त्रियों के पास भी पढ़ना पड़ता था। व्याकरण महामहोपाध्याय राजाराम शास्त्री बोडस के पास, काव्य और नाटक की पढ़ाई के लिये वैजनाथ शास्त्री और साहित्य के लिये भाऊ शास्त्री के पास जाते थे। वेदान्त गुरु गट्टूलालजी से पढ़ा था।

वि० सं० १९३१ में गट्टूलालजी महाराज जूनागढ गये तब पण्डितजी उनके साथ थे। गिरनार की यात्रा करके सोमनाथ का दर्शन किया। वहीं पण्डितजी के पिताजी, जो कलकत्ता में १॥ वर्ष रहकर वापिस बम्बई आये थे, के साथ गुरुजी से

आज्ञा लेकर पण्डितजी वि० सं० १९३१ के अन्त में जोधपुर आगये ।

वि० सं० १९३९ में स्वामी दयानन्द सरस्वती जोधपुर आए, फैजुल्लाखांजी के बाग में ठहरे, एक दिन सन्ध्या समय में स्वामीजी ने सभा के अन्दर व्याख्यान दिया; उस समय सभा में जोधपुर दरबार के सहोदर भ्राता महाराज किशोरसिंहजी, कुचामण ठाकुर शेरसिंहजी, कश्मीरी पण्डित शिवनारायणजी आदि उपस्थित थे, व्याख्यान होने के पश्चात् एक मैथिल शास्त्री ने, जो ज्योतिष का पण्डित था, स्वामीजी से प्रश्न किया कि आप ने सृष्टि-विषय में अभी कहा था, इसलिए हम आपसे पूछते हैं कि सृष्टि को उत्पन्न हुए कितने वर्ष हुए ? तब स्वामीजी ने दिल्लगी करके कहा कि क्या आप यह भी नहीं जानते ? शोक का स्थल है कि ज्योतिषी कहलाकर इतना भी नहीं जानते ? तुम ब्राह्मण हो ? क्या तुम हमेशा सङ्कल्प करते हो ? यदि करते हो तो देखो सङ्कल्प के भीतर ही सृष्टि के आरम्भ का समय लिखा है, सङ्कल्प में यह लिखा है कि "अष्टाविंशतितमे कलियुगे" जब अठाईसवां कलियुग वर्तमान है तो सृष्टि को आरम्भ हुए ग्यारह करोड़ सतानवे लाख बत्तीस हजार नौ सौ चौरासी ११९७३२९८४ वर्ष हुए, ज्योतिषीजी सुनकर चुप हो गये ।

उस समय पण्डितजी ने उठकर ज्योतिषीजी से कहा कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसी प्रश्न के विषय में स्वामीजी से कुछ पूछूं; ज्योतिषीजी ने आज्ञा दी और स्वामीजी ने भी कहा, 'कहो क्या कहते हो ?' तब पण्डितजी ने कहा कि "आपने यह जो सृष्टि के आरम्भ काल का समय बतलाया है उस में हमारे सङ्कल्प का प्रमाण दिया है वह प्रमाण आप नहीं दे सकते, क्योंकि आप तो इस को प्रमाण मानते ही नहीं; फिर यह प्रमाण देना आपकी

सरासर भूल है, इस बात से कुपित होकर शिष्य से कहा कि जाओ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका लाओ, उस में से स्वामीजी ने ये श्लोक पढ़े—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ ६९ ॥
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥
यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

(मनुस्मृति प्रथम अध्याय)

इन का अर्थ सुनाकर कहा कि मनुस्मृति में युगों का प्रमाण लिखा है, उस के अनुसार सृष्टि को हुए उक्त संख्या होती है। उन के कथन पर पण्डितजी ने कहा कि आप तो केवल वेद की चार संहिता ही प्रमाण मानते हैं, आप मनुस्मृति का प्रमाण नहीं दे सकते, मनुस्मृति का प्रमाण देना आप की भूल है। तब उन्होंने शुक्लयजुर्वेदसंहिता के पन्द्रहवें अध्याय का यह मंत्र पढ़ा।

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्रायत्वा ॥ ६५ ॥

और कहा कि संहिता मंत्र में सहस्र शब्द लिखा है; और वह चार बार कहा है जिससे युगों की संख्या समझनी चाहिये। मनुस्मृति के श्लोक का आधार यह है। तब पण्डितजी ने कहा कि आप इस का अर्थ करके सुनावें कि इस का अर्थ क्या है? क्यों कि आप हरेक मंत्र का अर्थ कुछ का कुछ कह देते हैं, ये सभासद बैठे हैं साक्षी होजावें। यह सुनकर अत्यन्त कुपित होकर बोले कि अग्नि प्रोक्षण का यह मंत्र है, हे अग्नि! तू सहस्र की प्रमा अर्थात् प्रमाण है सहस्र की प्रतिमा अर्थात् प्रतिनिधि है,

सहस्र की उन्मा अर्थात् तुला है, सहस्र के योग्य है, सहस्र तू है। तब पण्डितजी ने कहा कि आप युगों के वर्षों की संख्या का तो प्रमाण देते हैं और कहते हैं कि यह अग्नि प्रोक्षण का मंत्र है, भला अग्नि प्रोक्षण कार्य का और युगों का क्या संबंध ? इस मंत्र में न तो कृत, त्रेता, द्वापर और कलि युग का नाम है और न एक सहस्र दो सहस्र तीन सहस्र चार सहस्र ऐसे पृथक् २ संख्या ही कही गई है और न कहीं युग का नाम है फिर इस मंत्र का अर्थ ऐसा कैसे मान लिया जाय ? कि कृत युग सत्रह लाख और अठाईस हजार १७२८००० वर्ष का, त्रेता युग बारह लाख छानवें हजार १२९६००० वर्ष का, द्वापर युग आठ लाख चौसठ हजार ८६४००० वर्ष का और कलि युग चार लाख बत्तीस हजार ४३२००० वर्ष का होता है। केवल एक सहस्र शब्द से ऐसा असंभावित कपोल कल्पित अर्थ कोई नहीं मानेगा। सभासद् सब स्वामीजी के मुख के सामने देखने लगे, क्या उत्तर देते हैं ? परन्तु स्वामीजी इस का उत्तर क्या देवें ? क्रोधान्ध होकर कहा कि बैठ जाओ, बस शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। सभासद् उठ कर अपने २ घर को चले गये।

वि० सं० १९४१ में दरबार हाई स्कूल में एक हिन्दी टीचर की जगह खाली हुई उस के सुप्रिन्टेन्डेन्ट मिश्र गङ्गाप्रसादजी थे। उन्होंने पण्डितजी से कहा कि हमारे यहां एक हिन्दी टीचर की जगह खाली है तुम आजाओ। उनकी इच्छा थोड़े वेतन में नाम लिखाने की नहीं थी परन्तु सुप्रिन्टेन्डेन्ट साहब के अनुरोध से आपने स्वीकार किया। उस स्कूल में आपने १६ वर्ष अपना कार्य तन मन से किया। यद्यपि आप सेकण्ड पण्डित थे परन्तु आपकी पाठन-प्रणाली उत्तम होने के कारण ऊँचे दर्जे की एंट्रेंस और मिडिल क्लास आप के पास रहा करती थी।

और उसी वर्ष अर्थात् सं० १९४१ में आप ने श्रीमद्भागवत

की भाषा टीका बनाई; जो पं. हरिप्रसाद भागीरथ के यहां बम्बई में छपी है, उस टीका में विशेषता यह है कि मूल श्लोक के अनुसार भाषानुवाद किया गया है। और कहीं श्रीधर टीकाकार ने विशेष बात लिखी है तो वह भी उस में लिख दी गई है। तात्पर्य यह है कि श्रीधरी टीका के अनुसार यह भाषान्तर किया गया है। टीका का नाम तत्त्व-बोधिनी है, और इतिश्री व मुखपृष्ठ पर "राम-श्याम विरचित" ऐसा लिखा गया है। यह भाषा टीका भारत भर में सर्व प्रथम प्रकाशित हुई थी। तदनन्तर पं० रूपनारायण पाण्डेय, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि की सब टीकाएँ बनी हैं।

इस के पश्चात् एक पुस्तक बालकों के उपयोगी बनाई गई, जिसका नाम "सचित्र-बाल बोध" है, यह भी पं. हरिप्रसाद भागीरथ ने बम्बई में छपा कर प्रसिद्ध की है। रावराजा रघुनाथसिंहजी ने उस पुस्तक के विषय में कहा कि मैं ने बालकोपयोगी अनेक पुस्तकें देखी हैं परन्तु इस पुस्तक की तुलना करने वाली कोई नहीं है। फिर हरिप्रसाद भागीरथजी की प्रेरणा से तुलसीकृत रामायण की टीका बनाई गई। यह ग्रंथ भी पं० हरिप्रसाद भागीरथजी ने छाप कर प्रकाशित किया है।

वि० सं० १९४२ में गुरुजी गट्टूलालजी ने श्रीनाथद्वारा से पत्र लिखा कि मैं इस समय नाथद्वारा में हूँ, तुम मेरे पास आओ मुझे ऐसा ही आवश्यक कार्य है। आप ने पिताजी से गुरुजी के पास जाने की आज्ञा मांगी तो उन्होंने कहा कि तेरे जाने से यहां के कार्य में हानि होती है, उन्होंने आज्ञा नहीं दी, तब आप ने गुरुजी को एक विनय-पत्र लिखा कि माता पिता आज्ञा नहीं देते हैं इसलिये सेवा में उपस्थित नहीं हो सकता। गुरुजी ने उत्तर में लिखा कि गुरु भी माता पिता हैं, इसलिये हमारी आज्ञा है

तुम शीघ्र आओ; ऐसा ही आवश्यक कार्य है। आप गुरुचरणों में उपस्थित हुए, वहां गुरुजी गोस्वामी महाराज गोपेश्वरजी के संगृहीत पुस्तकालय की पुस्तकों की सूचि करने में लगे हुए थे उसी कार्य के लिये आप को बुलाया था अतः आप उस कार्य में नियुक्त हुए। दो मनुष्य अन्य उस में नियुक्त थे। प्रातःकाल ७ बजे कार्य का आरम्भ करते, एक बजे भोजन करके दो बजे पुनः आरम्भ करते, संध्या को डेरे पर आ सायं संध्या कर पुनः कार्य आरम्भ करते; रात्रि के एक बजे कार्य बन्द करके शयन करते। गुरुजी भी उस कार्य में ७-८ घंटा निमग्न रहते। इस प्रकार दो मास कार्य किया। गुरुजी का शिष्य श्यामजी बालजी ने, जो उस समय श्रीनाथद्वारा में अधिकारी था, पण्डितजी का परिश्रम देख कर दङ्ग रह गया और यह कहा कि "आ मारवाड़ो शुं काठनो बनेलो छै?"।

वि० सं० १९४५ में पण्डितजी अपनी माता को तीर्थ यात्रा कराने के लिये माता के साथ जगदीश गये। मार्ग में आते जाते मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, काशी, वैतरणी, पुष्कर आदि तीर्थों में स्नान किया।

वि० सं० १९४९ में पण्डितजी बम्बई गये और वहां से डाक्टर रामचन्द्र गोपाल भांडारकर, प्रोफेसर दक्षिण कालेज पूना के पास मिलने को गये। उन से प्राचीनलिपि पढ़ने के विषय में वार्तालाप हुआ तब उन्हों ने परीक्षा करने के लिये एक वि० सं० ९०० समय के अनुमान का ताम्रपत्र पढ़ने के लिये दिया और कहा कि क्या तुम इसे पढ़ सकते हो? पण्डितजी ने उसकी लिपि को ध्यान में लेकर उस ताम्रपत्र को पढ़ सुनाया। भाण्डारकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हारे देश में प्राचीन शिलालेख हैं उन को पढ़ने की कोशिश करो। मैं तुम्हारी योग्यता

देता हूँ और उन्हों ने एक सरटिफिकट (प्रशंसा-पत्र) लिख दे दिया।

पण्डितजी ने उस से पहिले प्राचीन-लिपि पढ़ने का अभ्यास प्रतिहार बाउक के नवीं शताब्दी के शिलालेख को पढ़ कर किया था। वहां से बम्बई जाकर मिष्टर पी. पिटर्सन, एलफिनस्टन कालेज के संस्कृत प्रोफेसर, से मिले। उन से इसी विषय में वार्तालाप हुआ और उन्हों ने भाण्डारकर का सर्टिफिकेट देखा तो उन्हों ने भी एक सरटिफिकट लिखकर दे दिया। तदनन्तर पण्डितजी की रुचि इस कार्य में दोनों प्रोफेसरों के प्रोत्साहन से और अधिक बढ़ी और उस कार्य में प्रवृत्त हुए।

वि० सं० १९५० में कविराज मुरारिदानजी ने पण्डितजी को बुलाकर कहा कि मैं साहित्य विषय का एक बृहद् ग्रन्थ बना रहा हूँ जिस में प्रधानतया अलङ्कारों का वर्णन है। इस में सहायतार्थ उदयपुर के महाराणा फतहसिंहजी से प्रार्थना करके सुब्रह्मण्य शास्त्री को मांग कर लाया हूँ। सुब्रह्मण्य शास्त्री आप के वास्ते सिफारिश करते हैं कि यदि पण्डित रामकर्णजी इस कार्य में सहायता देवें तो ठीक होगा। इस लिये मैं इस कार्य में आप की सहायता चाहता हूँ। पण्डितजी ने कहा कि बहुत अच्छा, मैं तैयार हूँ। कविराजजी ने शास्त्रीजी के द्वारा आप को कहलाया कि रामकर्णजी को कहदो कि आप को ३०) रुपये मासिक दिये जायँगे। शास्त्रीजी ने वही वार्ता कही तब पण्डितजी ने कविराजजी से कहा कि यदि आप मुझ से बिना वेतन कार्य लेना चाहते हों तब तो मैं तैयार हूँ और वेतन से रखना चाहें तो आप किसी अन्य को बुलालें। तब कविराजजी ने कहा यदि आप वेतन लेना नहीं चाहते हैं तो कुछ चिंता नहीं आपका

श्रम निष्फल नहीं जायगा और मारवाड़ी भाषा का एक वाक्य कहा ' अलूणी सिला मत जांणजो। ' तब पण्डितजी ने कहा कि " आप जैसे दो तीन मनुष्यों को अपने अन्तरङ्ग समझते हैं उन में मेरी भी गणना करें। " फिर पण्डितजी उस कार्य में प्रवृत्त हुए। रात्रि के १ बजे उन की हवेली से लालटेन लेकर मनुष्य घर पर आता और पण्डितजी उसी क्षण उस के साथ हवेली जाते, उस समय कविराजजी भी तैयार मिलते और शास्त्रीजी व लेखक पूनमचंदजी भी आजाते। उसी काल कार्य आरम्भ कर दिया जाता; प्रातःकाल ७ बजे कार्य बन्द किया जाता फिर घर पर आकर आप स्नान सन्ध्या करके अपना अन्य कार्य करते।

इस प्रकार कविराजजी के ग्रन्थ रचना के कार्य में कई वर्षों तक सहायता दी गई। और ग्रन्थ समाप्त होने से पूर्व सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी को वापिस बुलाने के लिए उदयपुर महाराणा ने कविराजाजी को लिखा कि सुब्रह्मण्य शास्त्री को भेज दें। वे उदयपुर जाने लगे उस समय कविराजाजी ने उन से कहा कि आप जाते हैं मेरा कार्य अपूर्ण है; तब शास्त्रीजी ने कविराजाजी से कहा कि "मैं जो कार्य करता था वह सब रामकर्णजी करते रहे हैं और आगे ये सब कर लेंगे। अब मेरी कोई आवश्यकता नहीं है। बल्कि मैं हिन्दी नहीं जानता हूँ और आप का ग्रन्थ हिन्दी भाषा में बना है इसलिये रामकर्णजी की सहायता से आप का सर्व कार्य सिद्ध हो जायगा; कोई त्रुटि नहीं रहेगी। " वास्तव में वैसा ही हुआ।

सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी के चले जाने पर " जसवन्तजसोभूषण " ग्रन्थ जो अपूर्ण रह गया था उस की पूर्ति पण्डितजी ने करवाई। इस के पश्चात् उसी जसवन्तजसोभूषण ग्रन्थ का संक्षिप्त रूप 'जसवन्त-भूषण' नामक ग्रन्थ का निर्माण हुआ उस में केवल पण्डित जी की ही सहायता रही। जसवन्तजसोभूषण का संस्कृत अनु-

वाद सुब्रह्मण्य शास्त्री ने शुरु कर दिया था परन्तु वह भी अपूर्ण था उस अनुवाद को पण्डितजी ने पूर्ण किया । उस के पश्चात् जसवन्तभूषण भाषा ग्रन्थ का समग्र संस्कृत अनुवाद केवल पण्डितजी ने ही किया ।

वि० सं० १९५२ में जसवन्तजसोभूषण ग्रन्थ की रचना पूर्ण हुई उस समय जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंहजी ने उस ग्रन्थ की समाप्ति के उपलक्ष्य में कविराज मुरारिदानजी को लाख पसाव और सुब्रह्मण्य शास्त्री को ५०००) रुपये और लेखक पूनमचन्दजी को १०००) रुपये पारितोषिक के दिये । पण्डितजी के वास्ते कविराजाजी ने यह सोचा कि यह ग्रन्थ छप कर तैयार हो जायगा तब पण्डितजी को पारितोषिक दिला दिया जायगा । उस समय जसवन्तजसोभूषण ग्रन्थ भी पूर्णरूप से तैयार नहीं हुआ था ।

तदनन्तर भाषा में जसवन्तभूषण की रचना हुई । भाषा के दो ग्रन्थ और संस्कृत अनुवाद के दो ग्रन्थ, इस प्रकार कुल चार ग्रन्थ, महाराजा सरदारसिंहजी के समय में तैयार हुए और वे चारों ग्रन्थ जोधपुर स्टेट प्रेस में छपवाये गये। उक्त चारों ग्रन्थों को पण्डितजी ने शुद्ध करके महाराजा सरदारसिंहजी की आज्ञा से छपवाया। उसी प्रकार चारों ग्रन्थों के मुख-पृष्ठ (title-page) पर छपा हुआ है कि "मरुमण्डलमुकुटमणि-महाराजाधिराज-राज-राजेश्वर-श्रीसरदारसिंह-स्याज्ञया दाधीच-आसोपा-पण्डित-बलदेवा-त्मज-पण्डित-रामकर्णेन गीर्वाण-भाषायामनूदितम् तेनैव च-परिशो-धितम् ।" वि० सं० १९५४ में उक्त ग्रन्थों को छापनेका कार्य शुरु किया और सं० १९६४ में उक्त चारों ग्रन्थ छपकर तैयार हुए । तदनन्तर कविराजाजी ने पण्डितजी को पारितोषिक मिलने के लिये महाराजा सरदारसिंहजी की हुजूर में प्रार्थना-पत्र दिया परन्तु थोड़े ही समय में महाराजा सरदारसिंहजी का स्वर्गवास

होगया और पण्डितजी पारितोपिक से वञ्चित रह गये।

वि० सं० १९६६ में मण्डोर के किले में पुरातत्त्व शोध के लिये खुदाई का काम गवर्नमेंट की प्रेरणा से जोधपुर की ओर से हुआ। खुदाई का काम होने से कई प्राचीन मन्दिरों का पता लगा और एक शिलालेख से, जो स्तम्भ में खुदा हुआ है, सातवीं शताब्दी का पता लगा और उस स्तम्भ में श्रीकृष्ण भगवान् की बाललीला सम्बन्धी शकटासुरवध आदि कई चित्र खुदे हुए हैं जिस से यह प्रतीत होता है कि यह मन्दिर विष्णु भगवान् का था। इसी मन्दिर की खुदाई हुई तब तीन शिलालेखों के पत्थर के टुकड़े निकले उन में से दो पड़िहारों के शिलालेखों के हैं। तीसरे शिलालेख के, जो चौहान पृथ्वीपाल का विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अन्तिम समय का है, पृथक् पृथक् तेंतीस टुकड़े मिले। ये शिलालेख के टुकड़े डा० डी. आर. भाण्डारकर, जो आर्कियालोजिकल डिपार्टमेंट के इण्डिया के पश्चिमी विभाग के सुपरिटेंडेंट थे, के सामने पेश हुए। उस समय इण्डिया के आर्कियालोजिकल डिपार्टमेंट के डाइरेक्टर जनरल सर मार्शल साहब के असिस्टेंट दयाराम सहानी भी वहां विद्यमान थे उन्हों ने उन शिलालेखों के टुकड़ों को देखा। अब उन पत्थरों को जोड़नें के लिये भाण्डारकर वो सहानी ये दो व्यक्ति और तीसरे पण्डितजी एकत्र हुए। दिन भर परिश्रम किया पर कुछ पता नहीं लगा, तब भाण्डारकर ने पण्डितजी से कहा कि इन को तो तुम्हीं जोड़ो। पण्डितजी ने सात आठ दिन में परस्पर सम्बन्ध मिला कर टुकड़ों को जोड़ दिया। इस शिलालेख से यह एक नई बात मालूम हुई कि नाडोल के चौहानों के वंशवृक्ष में जेन्द्रराज के पुत्र पृथ्वीपाल का पता नहीं था वह नाम इस शिलालेख में मिला जिस से मारवाड़ के चौहानों की

वंशावलि पूर्ण होगई।

उक्त डाइरेक्टर जनरल सर मार्शल साहब खुदाई का काम देखने को जोधपुर आये तब भाण्डारकर और दयाराम सहानी ने पण्डितजी के लिये सिफारिश की कि प्राचीन शिलालेख पढ़ने वाले ऐसे पण्डित कम हैं जैसे कि पण्डितजी हैं और साहब ने भी उस कार्य को और उस के सिवाय अन्य कार्यों को भी देखा तो बहुत प्रसन्न हुए और रेजिडेण्ट आर्स्किन साहब को जो चिट्ठी लिखी उस में निम्न लिखित वाक्य लिखे थे—

"There is one more point which Mr. Marshall has asked me to bring to the Darbar's notice, viz., the remuneration of Pt. Ram Karan. He seems to Mr. Marshall to be a man of very exceptional attainments, and his knowledge of epigraphy ranks him among the first half dozen Indian experts. His present monthly pay is believed to be Rs. 15/- which is not a high remuneration for such a scholar and I hope that the Darbar will see fit to increase it."

अर्थात् एक बात और है जो मिष्टर मार्शल साहब ने मुझ से दरबार को नोटिस में लाने (सूचना करने) के लिये कहा है जो पण्डित रामकर्ण के वेतन (तनख्वाह) के बाबत में है। यह पण्डित मिष्टर मार्शल साहब को असाधारण गुणी मालूम हुआ है और प्राचीन लिपि के पढ़ने के परिज्ञान के कारण भारत भर के प्रथम स्थानीय आधे दर्जन विद्वानों की गणना में आता है। उस को अभी केवल रु० १५) मासिक ही मिलता है जो ऐसे विद्वान् के वास्ते पर्याप्त वेतन नहीं है और मुझे आशा है कि दरबार इस में अवश्य वृद्धि करेंगे।

वि० सं० १९६७ (ई. सन् १९१०) में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल की तर्फ से जोधपुर आए; उन के साथ माधव शास्त्री थे। हरप्रसाद शास्त्री सुखदेवप्रसादजी से मिले और उन्हों ने पण्डितजी से कहा कि राजस्थान के इतिहास में डिंगल भाषा की कविता अत्यन्त उपयोगी है। इस लिये एशियाटिक सोसायटी बङ्गाल उस का संग्रह करना चाहती है, जोधपुर दरबार हमें इस कार्य में कितनी सहायता दे सकते हैं? तब पण्डितजी ने कहा कि आप जो सहायता चाहें श्री दरबार देने को तैयार हैं। जोधपुर दरबार की तर्फ से एक वार्डिक कमेटी नियत कर दी जायगी; वह डिंगल साहित्य का संग्रह करके एसियाटिक सोसाइटी बङ्गाल में भेज दिया करेगी और इस में जो व्यय होगा श्रीजोधपुर दरबार देवेंगे, इस से अधिक आप क्या चाहते हैं? हरप्रसाद शास्त्री ने कहा कि हमारा मनोरथ फलीभूत हुआ। इतना ही नहीं, किन्तु हमको आशातीत फल मिला है। हम जैपुर भी गये थे परन्तु जो विद्या का उत्साह और गुण-ग्राहकता श्रीजोधपुर में है, दूसरी ठौर नहीं पाई गई।

तुरंत ही वार्डिक कमेटी कायम की गई और उस के निम्न पदाधिकारी भी नियत कर दिये गयेः—

१ प्रेसिडेण्ट-रावबहादुर पण्डित सर सुखदेव प्रसादजी, बी.ए. के. टी., सी. आई. ई.

१ वाइस-प्रेसिडेन्ट-महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी

१ सेक्रेटरी-पं० रामकर्णजी आसोपा विद्वद्रत्न

सभासद—

मुन्शी देवीप्रसादजी

पुरोहित केशरीसिंहजी

कलेक्टर—

बारठ जैतदानजी

,, किशोरदानजी

देथाचारण जुगतीदानजी

ब्रह्मभट्ट नानुरामजी

लेखक पं० विश्वेश्वरनाथजी रेऊ

जोशी बालकृष्णजी श्रीमाली

इस कमेटी ने कलेक्टरों (संग्रह-कर्ताओं) द्वारा डिंगल भाषा के अनेक ग्रन्थों का संग्रह किया। उन की दो दो कापी कराई गई; एक एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल में भेजी गई और एक कापी राज्य में रक्खी गई। उस संग्रह से जोधपुर राज्य का इतिहास बनाने में बड़ी सहायता मिली है।

इस के पश्चात् वि० सं० १९७१ में एसियाटिक सोसाइटी बङ्गाल की ओर से मिस्टर ऐल्. पी. टेसीटोरी आए। उन्हों ने जोधपुर में अपनी स्थिति करदी, वे इटली के थे, राजस्थानी भाषा से परिचित नहीं थे, इस लिये उन्होंने महकमा खास को लिखा कि मेरे पास एक पण्डित और एक कवि आना चाहिये। महकमा खास से सुप्रिन्टेन्डेन्ट के नाम हुक्म हुआ कि टेसीटोरी साहब के पास एक पण्डित और एक कवि को भेज दो। सुप्रिं-टेन्डेन्ट खीची गुमानसिंहजी ने पण्डितों में आपको और कवियों में किशोरदानजी को भेजा। पण्डितजी ने ६ महिनों में उन को राजस्थानी भाषा सिखला कर मारवाड़ी भाषा से परिचित कराया। उन्हों ने आपको अलाउंस के माहवार ५०) रुपये दिये।

तलाब गुलाब-सागर (जोधपुर) के तट पर माताजी श्रीसर्व-मङ्गलाजी का एक आलीशान मन्दिर दाहिमा ब्राह्मण त्रिवाड़ी

शिवनारायणजी की धर्म-पत्नी कुन्नाबाई ने वि० सं० १९३७ में करवाया। उस मन्दिर के प्रबन्ध के लिये महाराजा सरदारसिंह जी के राज्य के समय में रीजेंसी कौन्सिल के रेवेन्यू मेम्बर मिश्र श्यामविहारीजी ने वि० १९७० में एक कमेटी कायम की उसके सेक्रेटरी पण्डितजी बनाये गये। उस मन्दिर का प्रबन्ध कमेटी के कथनानुसार करते रहे और इस समय भी पण्डितजी के द्वारा ही प्रबन्ध हो रहा है। पहिले कि अपेक्षा मन्दिर में चित्र आदि का कार्य होकर बहुत उन्नति हुई है।

उसी अर्से में एडवर्ड रिलीफ फण्ड खुला। उसका प्रयोजन यह है कि बादशाह एडवर्ड के नाम से गरीबों को कुछ मासिक वेतन मिलता रहे जिस से लावारिस, अपङ्ग, स्त्री, पुरुष और पर्दानशीन स्त्रियों का निर्वाह हो सके। जोधपुर शहर में इस धर्मादा को बांटने के लिये सात सरकल बनाकर सात सरकल-आफिसर नियत किये गये। जिन में से मोतीचौक सरकल आफिसर आप को नियत किया, यह कार्य श्रीदरबार साहिबोंकी आज्ञानुसार बिना वेतन प्रेम से २२ वर्ष तक अखण्ड किया।

महकमा तवारीख के सुपरिन्टेन्डेन्ट खीची गुमानसिंहजी ने डाक्टर डी. आर. भाण्डारकर को लिखा कि हम राठोड़ों का इतिहास बनाते हैं, इस में दक्षिण के राठोड़ों का इतिहास भी आना चाहिये। आप के पास इस विषय की पूरी सामग्री है, कृपा करके भेज दें तो अत्यन्त अनुग्रह होगा। खर्चा लगेगा वह यहां से दे दिया जायगा। डा. डी. आर. भाण्डारकर ने उत्तर में लिखा कि "मुझे इतना अवकाश नहीं है कि मैं संग्रह करके दक्षिण के राठोड़ों के शिलालेखों या ताम्रपत्रों की कापी करवा कर भेज सकूँ। आप के यहां पण्डित रामकर्णजी इस काम को

जानने वाले हैं, वे इस कार्य को पूर्णतया कर सकते हैं, आप उन्हें यहां भेज दीजिये; मैं उनको सब प्रकार की सहायता दूंगा"।

सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब ने कहा कि "भाण्डारकर दक्षिण के राष्ट्रकूटों के लेखों का संग्रह करने के लिये आप को बुलाते हैं और कहते हैं कि मैं मदद दूंगा। इस लिये आप भाण्डारकर के पास जाओ और राष्ट्रकूटों के विषय में जो सामग्री मिले ले आओ।" तदनुसार आप भाण्डारकर के पास पूना गये और उन से कहा कि "मुझे सुप्रिन्टेन्डेन्ट साहब ने आप के पास दक्षिण राष्ट्रकूटों के इतिहास सम्बन्धी सामग्री लाने के लिये भेजा है, मैं आप के सामने उपस्थित हूँ।" तब भाण्डारकर ने कहा कि "यह मेरी लाइब्रेरी (पुस्तकालय) आप के सामने पड़ी है, आप हरएक अलमारी की पुस्तक देख सकते हो; इनमें से अपने उपयोगी सामान को ले सकते हो।" पुस्तकालय में अलमारियां बहुत थीं, उनमें से आपको बतला दिया कि अमुक २ अलमारी में यह सामग्री है। आप ने तीन मास पर्यन्त पूना में रह कर वहां की समग्र सामग्री संग्रह की। जिन में बहुत से लेख छपे हुए थे उन की कापी उन से की गई; और जो छपे हुए नहीं थे उन को पढ़कर की गई। जिन में बहुत से संस्कृत भाषा में और कितने एक तामिल भाषा में हैं। इस संग्रह में से आप ने उपयोगी शिलालेख और ताम्रपत्रों की प्रतिलिपि की; जिन की संख्या ७६ है।

वि० सं० १९७३ में आर. के. शास्त्री बड़ोदा से प्राचीन अलभ्य पुस्तकों का संग्रह करने के लिये जोधपुर आये। वे द्राविड़ देश के थे। अंग्रेजी और संस्कृत दो भाषा जानते थे। हिन्दी भाषा बिल्कुल नहीं जानते थे। महकमा खास से पर्चा

आया कि पण्डित रामकर्णजी को आर. के. शास्त्री के पास भेज दो। पण्डितजी उन के पास गये। उन को उचित सहायता दी गई। श्रीमाली ब्राह्मणों के यहां से कुछ पुरातन लिखित पुस्तकें खरीदी गईं। वे यहां जोधपुर में पन्द्रह दिन ठहरे। एक दिन वार्तालाप होते यशवन्त-यशोभूषण का प्रसङ्ग चल पड़ा। तब उन शास्त्रीजी ने कहा इस पुस्तक को शुद्ध करके छपाने वाले पण्डित रामकर्णजी कौन हैं? हम उन से मिलना चाहते हैं। हमने यह ग्रन्थ अपने देश में सुब्रह्मण्य शास्त्री के पास देखा था। वे हमारे निकट ही एक ग्राम में रहते हैं। तब पण्डितजी ने कहा कि "जिस के विषय में आप पूछ रहे हैं वह रामकर्ण मैं ही हूं।" तब भी उन को सन्देह रहा। वे जसवन्त कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर के. राम भट्टजी के घर पर जाया करते थे, उन्हों ने भट्टजी से पूछा कि "क्या यशवन्त-यशोभूषण को शुद्ध करके छपाने वाले पण्डित रामकर्णजी यही हैं जो हमारे पास सहायता के लिये नियुक्त किये गये हैं।" भटजी ने कहा "हां, यह वही रामकर्णजी हैं।" तब उन का सन्देह निवृत्त हुआ और पण्डित-जी से कहा कि "आप साहित्य के ऐसे विद्वान् हैं? रचना करने वाले की अपेक्षा शुद्ध करने वाले को परिज्ञान अधिक होता है। मैं इस ग्रन्थ को पूरा समझ न सका और आपने इस को शुद्ध करके छपवाया है, इसलिये मैं आप से पूछता हूं कि आप को राज्य अथवा गवर्नमेंट की तरफ से कोई पदवी है?" पण्डितजी ने कहा, नहीं। तब उन्हों ने कहा कि "आप जैसे विद्वान् को पदवी नहीं, बड़े खेद की बात है। मैं रेजीडेन्ट से और दीवान साहब से कहूंगा कि ऐसे विद्वानों को पदवी अवश्य देनी चाहिये।" तदनुसार उन्हों ने दीवान साहब से पण्डितजी के लिये पदवी मिलने के बाबत सिफारिश की। उस समय दीवान पारसी मेहर-

वानजी पिस्तमजी थे, उन्हों ने श्रीदरबार साहिब श्रीसुमेरसिंह जी साहिब बहादुरों से अर्ज करके आप को " महामहोपाध्याय " की पदवी मिलने के लिये राज्य की ओर से गवर्नमेंट को सिफारिश की; परन्तु दीवान साहिब तुरंत अपने देश को चले गये और श्रीदरबार साहिबों का भी तुरंत स्वर्गवास हो गया फिर न तो पुनःस्मरण (Reminder) कराया गया और न महामहोपाध्याय का पद प्राप्त हुआ।

वि० सं० १९७४ में कन्नोज के राठोड़ों का इतिहास जानने और उस विषय की सामग्री एकत्र करने के लिये आप से इतिहास कार्यालय के सुप्रिंटेन्डेन्ट ने कहा कि " आप कन्नौज की तर्फ जाओ और कन्नौज के राठोड़ों के विषय में वहां जो सामग्री मिले ले आओ।" आप ने उन से कहा कि कन्नोज के राठोड़ों के जो शिलालेख व दानपत्र मिले हैं वे तो सब जनरलों में छप गये हैं और उन की सूची करके उन को दिखाई गई कि ७० के अनुमान कन्नौज के राठोड़ों के शिलालेख और दानपत्र छपे हैं। इन से अधिक यदि और मिला तो कापी करली जायगी और वहां के लोगों से पूछताछ करने और स्थानों के देखने और पुस्तक आदि मिलने से जो कुछ पता लगेगा ले लिया जायगा। आप तारीख ४ अप्रेल सन् १९१७ को फर्रुखाबाद जिले के निवासी एक राठोड़ राजपूत को साथ में लेकर, खेमसीपुर गये। वहां का राव राठौड़ है और कन्नौज के राजा जयचन्द्रजी का वंशज है। वह बालक होने से उस के कार्यकर्ता प्रेमसिंह से मिले और उन की वंशावलि व वृत्तान्त वहां से लिख लिया; वहीं एक मिट्ठू नामक जागा को बुला कर, जो राठोड़ों की वंशावलि रखता है, उस से वृत्तान्त लिखा। फिर वहां से राजा का रामपुर नामक गांव को गये जो राठौड़ों का ठिकाना है, वहां के भी सब

वंशावलि सहित वृत्तान्त लिखा। फिर खोर, जिसे इस समय शमसाबाद कहते हैं, जाकर जयचन्द्रजी के वंशजों के विषय में शोध करने से वहां जो वृत्तान्त उपलब्ध हुआ, लिखा; फिर विजैपुर गहरवार राजा के यहां जाकर जिज्ञासा करने से ज्ञात हुआ कि ये लोग जयचन्द्रजी के छोटे भाई माणिकचन्द् के वंशज हैं। इत्यादि स्थानों में भ्रमण करने से निश्चय हुआ कि गहरवार और राठौड़ एक हैं और मारवाड़ के सीहा के वंशज राठौड़ के कन्नौज़ के राजा जयचन्द्रजी के वंशज हैं। सुपरिन्टेन्डेन्ट खीची गुमानजी इस तहकीकात से परम प्रसन्न हुए और बोले कि अब हमें इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि गहरवार और राठौड़ एक हैं और वे कन्नौज के राजा जयचन्द्र के वंशज हैं। आप को उन के इस कथन से सन्तोष हुआ। इसी प्रयोजन से आप का यह दौरा उस देश में हुआ था।

प्रथम लिख आये हैं कि मेड़ता नगर आप की जन्मभूमि है, वहां पण्डितजी के खेत आदि हैं। कार्यवश आप मेड़ता गये थे। वहां हकूमत की परताल करने के लिये दीवानी अदालत के जज हाजी साहब आये थे। रात्रि के ८ बजे होंगे, ज़ज साहब, हाकिम साहब (सोहनलालजी मिणियार) से मिलने आए; उस समय जोशी शिवराजजी और पण्डितजी उन के पास बैठे थे। जज साहब ने पूछा ये कौन हैं? हाकिम साहब ने शिवराजजी की तरफ इशारा करके कहा ये ज्योतिषी हैं और आप की तरफ इशारा करके कहा ये महकमा तवारीख के पण्डित हैं। हाजीजी ने आप से पूछा कि तवारीख कितनी तैयार हुई है? आप ने कहा कि अभी ऊपर के इतिहास में सन्देह है, इस लिये शोध हो रहा है, इतिहास बनाने का आरम्भ नहीं हुआ। उन्हों ने कहा कहां तक का इतिहास निःसन्देह है? आप ने कहा जोधाजी से

निस्संदिग्ध है। उन्हों ने पूछा जोधाजी कब हुए थे? आप ने कहा उन को हुए पांच सौ वर्ष के करीब हुए। उन्हों ने कहा जब पांच सौ वर्ष पहले का इतिहास सन्देह-रहित है तो वहीं से इतिहास लिखने का आरम्भ क्यों न कर दिया जाय? आप ने जोधपुर आकर वही वार्ता प्रसङ्गप्राप्त सुपरिन्टेन्डेन्ट खीची गुमानसिंहजी से कही तो उन के भी मन पर उस का असर हुआ और आप से कहा कि जोधाजी से इतिहास लिखने का आरम्भ कर दिया जाय। फिर उन की अध्यक्षता में राव जोधाजी का इतिहास लिखने का आरम्भ वि० सं० १९७४ में कर दिया गया। दो वर्ष में जोधाजी का इतिहास लिखा गया। वह लिख कर तैयार हो गया तब गुमानजी ने, जब वे श्रीदरबार साहिबों के साथ अजमेर में थे, कहा कि अब रीजन्ट श्री सर प्रतापसिंहजी साहब को सुनाया जाकर छपवाने का प्रबन्ध कर दिया जायगा और आप के वास्ते महामहोपाध्याय पदवी और तरक्की के लिये अर्ज करूँगा। ईश्वर की लीला अपरंपार है, अकस्मात् वहीं (अजमेर में ही) उन का शरीरपात हो गया और विचार मन के मन में ही रह गये।

माइसोर के आर्कियालोजिकल सर्वे के ऑफिसर इन्चार्ज मिष्टर आर. श्रीनरसिंहाचार्य ने बंगलोर से शिलालेख पढ़ने के लिये आप के पास भेजे थे वे पढ़कर उन की प्रतिलिपि भेजी गई; उस के उत्तर में उन्हों ने लिखा था कि "मैं अपने गतवर्ष की रिपोर्ट भेजता हूँ और आप ने कृपा करके जो मुझे सहायता दी है उस के लिये मैं आप को बहुत बहुत धन्यवाद देता हूँ।"

तदनन्तर वि० सं० १९७६ में कलकत्ता से डाक्टर डी. आर. भाण्डारकर का पत्र आया, उन्हों ने लिखा कि कलकत्ता युनिवर्सिटी में राजस्थानी भाषा और डिंगल कविता पढ़ाने के लिये

सौ रुपये मासिक पर आप को बुलाने का निश्चय हुआ है। इस कार्य के अतिरिक्त एंटिक्वेरी (पुरातत्त्व-शोध) का कार्य भी करना होगा। यहां अनेक लेखों के मुद्रण करने से आप की कीर्ति बहुत होगी। अपने देश में नौकरी करने की अपेक्षा कलकत्ता युनिवर्सिटी में भरती होना सब से उत्तम होगा।

तदनुसार आप दो वर्ष की छुट्टी लेकर जोधपुर से कलकत्ता जाकर युनिवर्सिटी में लेक्चरार का कार्य करने लगे। उसके सिवा डा. डी. आर. भाण्डारकर के मार्फत एंटिक्वेरी का कार्य भी करते रहे। डाक्टर भाण्डारकर पण्डितजी के कार्य से अत्यन्त प्रसन्न रहते थे और युनिवर्सिटी के वायस-चान्सलर स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जी भी प्रसन्न हुए। दो मास कार्य करने पर प्रोफेसर भाण्डारकर की सिफारिश से १५) रुपये की तरक्की होकर ११५) मासिक वेतन हुआ और दूसरी साल में मासिक वेतन १२५)रु० कर दिया गया।

इस के सिवाय प्रोफेसर भाण्डारकर की सिफारिश से मराठी भाषा की शुद्ध कापी करने में सहायता करने के कारण रु० ३०) मासिक वेतन और अधिक कर दिया गया। कुल मिलाकर युनिवर्सिटी से १५५) रु० मासिक मिलता रहा। इस विषय में कलकत्ता युनिवर्सिटी की सन् १९२० की रिपोर्ट का पृष्ठ १६७ वां देखो।

कलकत्ता में आप का निवास बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के यहां था। उन के यहां पुस्तकालय और प्राचीन शिलालेख आदि का संग्रह अति उत्तम है। आप ने उन के यहां निवास करते कुशनवंशी राजाओं के शिलालेखों का संग्रह देखकर पूर्व पठित पाठ में जहां कहीं अशुद्धि पाई उस को शुद्ध करके एक सौ १०० से अधिक शिलालेख पढ़कर तैयार किये थे, आपका आना जोधपुर

होगया और वह संग्रह बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के पास रहा, उन का छपवाने का विचार था। यदि छप जाय तो यह कार्य इतिहासवेत्ताओं के लिये उपयोगी अवश्य है।

दूसरा " हिस्टरी ऑफ़ राठोर्स " इस नाम का जोधपुर के राठौड़ों का संक्षिप्त इतिहास हिन्दी भाषा में लिखा था; जिस में प्राचीनकाल के राठौड़ों से आरम्भ करके वर्त्तमान महाराज श्री-उम्मेदसिंहजी के पूर्वाधिकारी श्रीसुमेरसिंहजी तक का इतिहास है। उस का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में एक बङ्गाली और एक पारसी ने मिल कर किया; जो आप के पास युनिवर्सिटी में अध्ययन करते थे। जो अंग्रेजी पुस्तक कलकत्ता हाईकोर्ट के जज, कलकत्ता युनिवर्सिटी के लेट वायस-चान्सलर और एसियाटिक सोसाइटी बङ्गाल के प्रेसिडेन्ट श्री आशुतोष मुखर्जी (मुखोपाध्याय) के २५ वर्ष गवर्नमेन्ट की निरन्तर सेवा करने से सिलवर-ज्युबिली सम्बन्धी छपी है उस में यह संक्षिप्त इतिहास छपा है और उस से पृथक् भी यह पुस्तक मुद्रित है। इस पुस्तक की एक कापी ए. जी. जी. को और एक कापी रेजीडेन्ट को भेजी गई। उन के प्रशंसापत्र ता० ७-१-२४ और ता० ११-१-२४ के लिखे आयें।

इस के सिवा कलकत्ता युनिवर्सिटी की तरफ़ से अशोक के शिलालेख छपे हैं उन के बहुत से प्रूफ़ असल छापों से देखकर शुद्ध किये गये हैं।

वि० सं० १९८० में मकर के मेले पर प्रयागराज में " धर्म परिषद् " का अधिवेशन नियत हुआ था उस में जोधपुर राज्य की तरफ़ से सदस्य भेजने के लिये माननीय पं० मदनमोहन मालवीय का पत्र आया। उस सभा में संयुक्त होने के लिये श्रीदरबार से पण्डितजी को आज्ञा दी गई कि तुम उस सभा

में जाकर योग दो। आपने वहां जाकर श्रीदरबार साहिबों की आज्ञा का पालन किया।

वि० सं० १९८१ में अखिल भारतवर्षीय दाहिमा ब्राह्मण महासभा का अधिवेशन कलकत्ता नगर में होना निश्चित हुआ। उस समय कलकत्ता की दाहिमा ब्राह्मण सभा ने सभापति के लिये परामर्श करके पण्डितजी को सभापति नियत करने का निश्चय करके कलकत्ता से ता० १४ जनवरी सन् १९२४ को तार भेजा कि "हमारी प्रार्थना है कि आप प्रेसिडेन्ट का पद स्वीकार करें।" पण्डितजी को उनकी आज्ञानुसार पद स्वीकार करना पड़ा। कलकत्ता महासभा का अधिवेशन हुआ जिस में हजार बारह सौ मनुष्यों कि भीड़ थी। डाक्टर डी. आर. भाण्डारकर आदि ने पधार कर सभा को सुशोभित किया था। सभापति का व्याख्यान सुन कर समस्त सभा परम प्रसन्न हुई। उस सभा में मुनिजी महाराज जगन्नाथजी भी मेवाड़ से पधारे थे।

वि० सं० १९८२ में डाक्टर डी. आर. भाण्डारकर की चिट्ठी ता० ९ अक्टोबर सन् १९२५ की लिखी हुई आई कि "कलकत्ता युनिवर्सिटो आप को माहवार २००) रुपये वेतन नियत करके बुलाती है, क्या आप आसकते हैं?" इस के उत्तर में पण्डितजी ने लिखा कि "इस समय मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है इसलिये मैं आने से लाचार हूँ।" इस के पश्चात् तुरंत ही सर आशुतोष मुखर्जी का स्वर्गवास हो गया। जिस से पण्डितजी का सम्बन्ध कलकत्ता युनिवर्सिटी से टूट गया।

लिख आये हैं कि पण्डितजी ने १६ वर्ष तक जोधपुर हाई स्कूल में तत्पश्चात् इतिहास कार्यालय में नियत होकर ४६ वर्ष श्री दरबार की सेवा की। इतिहास कार्यालय में ३० वर्ष कार्य किया। इस कार्यालय में प्रथम कविराजा मुरारिदानजी प्रेसिडेन्ट रहे,

तत्पश्चात् पाल ठाकुर रणजितसिंहजी इस कार्यालय के अध्यक्ष नियत हुए। तदनन्तर खीची गुमानसिंहजी और उन के बाद रीयां ठाकुर साहेब विजयसिंहजी मेड़तिया सरदार निगरानी आफिसर नियत हुए। उन के इस्तिफा देने पर ड्रेक ब्रोकमेन साहेब की निगरानी में यह कार्यालय रहा। इस कार्यालय के जितने ऑफिसरस् हुए वे सब पण्डितजी के काम से परम प्रसन्न रहे। कविराजाजी की प्रसन्नता का उदाहरण तो यशवन्तयशोभूषण के प्रकरण में लिखा गया है। रणजीतसिंहजी पण्डितजी के काम के विषय में ता० २९।५।२७ को लिखते हैं कि "इन्होंने प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र व सनदों को पढ़कर उन का हिन्दीमें तर्जुमा किया। इस काम का जानने वाला आज मारवाड़ में इन की शानी का दूसरा कोई नहीं है। शिलालेखों को तलाश करने, पढ़ने और तुर्जमा करने के सिवाय पिछले बहुत से राजाओं की ख्याति हिन्दी में लिखी है जिन्हें पास करने के लिये श्रीदरबार साहिबों की आज्ञा से एक कमेटी नियत हुई उस में मैं भी एक मेम्बर था। मैंने तवारीखें सुनीं, मुझे बहुत पसंद आईं। उन्हों ने ये ख्यातें बड़े परिश्रम और तन्दिही के साथ उम्दा तरीके से लिखी हैं जिस की तस्दीक कमेटी कर चुकी है।"

निगरानी ऑफिसर रीयां ठाकुर विजयसिंहजी साहेब ने अपने ता० २७-१०-२६ के पत्र में लिखा है कि–

Riyan,
72-10-26

This is to certify that the bearer, Vidvad-ratna Pandit Ram Karanji Asopa, has served the state for about 41 years. When I assumed the charge of the Historical Department, he was on leave and working as a professor in the Calcutta University. On his

return to Jodhpur he prepared a draft history of the Marwar State in Hindi from Chundaji down to Udaisinghji. In appreciation of his good work he was presented personally before H. H. the Maharaja Sahib Bahadur. This draft history has been approved by a committee appointed for the purpose. The Committee has also strongly recommended Ramkaranji to the Darbar for his careful and labourious work. He is a man of letters, possesses wide knowledge of history and epigraphy and is one of the most valuable and experienced officials of the state.

I always found his work to my entire satisfaction and gave him promotions so as to make him a senior of the staff for his good work. I shall be glad to hear of his future advancement which he amply deserves for his exceptional attainments.

BIJAI SINGH,
Nigrani Office,
Historical Department,
Raj-Marwar.

अर्थात् रीयां, ता० २७-१०-२६

मैं इस बात की तस्दीक करता हूँ कि विद्वद्रत्न पण्डित रामकर्णजी आसोपा ने इस रियासत की करीब ४१ वर्ष तक नौकरी की। जब मैंने महकमे तवारीख का चार्ज लिया तब ये छुट्टी में थे और कलकत्ता युनिवर्सिटी में प्रोफेसर का काम करते थे। वहां से जोधपुर वापिस आने पर इन्हों ने चूण्डाजी से लेकर उदयसिंहजी तक का हिन्दी में मारवाड़ राज्य का इतिहास लिखा। इस अच्छे काम के लिये इन को खास तौर पर हिज हाइनेस महाराजा साहब (श्रीसुमेरसिंहजी साहब) बहादुर की खिदमत में पेश किया गया। यह इतिहास एक कमेटी के जरिये मंजूर

किया जा चुका है जो इसी काम के लिये मुकर्रिर की गई थी। इस कमेटी ने पण्डित रामकर्णजी की श्रीदरबार साहब से इस होशियारी और महनत के काम के लिये सिफ़ारिश की है। यह आला इल्म-याफ़ता और लियाकत वाला शख्स है, इतिहास और प्राचीन-लिपि का पूरा जानकार है और रियासत का सब से जियादा कीमती और तजुर्बेकार आफ़िशियल है।

मैं हमेशा इन के काम से पूरी तौर से खुश रहा और इन के अच्छे काम के लिये मैं ने अपने अमले में इन को औहदे में सब से बड़े बनाने के लिये तरक्कियां दीं। मैं इन की आयन्दा तरक्की सुन कर खुश होऊँगा, जो ये अपने शाज़ औनादिर जौहरों (असाधारण गुणों) के सबब से बखूबी मुश्तहक (योग्य) हैं। फ़कत।

विजैसिंह

निगरानी अफ़सर, महकमा तवारीख,

राज मारवाड़।

वि० सं० १९८४ (सन् १९२७) में ठाकुरजी श्रीकुञ्ज-विहारीजी महाराज के मन्दिर का प्रबन्ध करने के लिये श्रीदरबार साहिबों की आज्ञा से एक कमेटी नियत हुई जिसमें निम्नलिखित चार मेम्बर मुकर्रर किये गये। मेहता रणजीतमलजी, मेहता किसनमलजी, राव बदनमलजी, पण्डित रामकर्णजी। इस कमेटी के प्रबन्ध से मन्दिर का सुधार बहुत कुछ होगया है और होरहा है। कमेटी का प्रबन्ध होने के अनन्तर करीब २५ हजार लागत की इमारत बनी और मन्दिर में चित्रकारी का काम हुआ। जिस में करीब ५ हजार रुपये व्यय हुए। ठाकुरजी के निज मन्दिर के दरवाजे (कँवाड़) चांदी के करवाये गये, जिस में दो हजार रुपये खर्च हुए और नित्य खर्च और उत्सवों के व्यय में भी

बहुत कुछ उन्नति हुई है। स्टाफ़ का खर्च भी पहिले से बढ़ाना पड़ा है। पहिले की आमदनी से किराया बढ़ जाने के कारण आमदनी द्विगुण होगई है।

महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय) के दाह-स्थान पर जो संगमरमर का थड़ा (चैत्य) बना था, उस की प्रतिष्ठा हुई। जोधपुर महाराजाओं की दाहक्रिया परम्परा से मण्डोर में होती आई थी परन्तु महाराजा प्रतापसिंहजी ने महाराजा जसवन्तसिंह जी (द्वितीय) का दाह किले के समीप कुछ पूर्व की ओर देव-कुण्ड तालाब के तट पर करवाने का प्रबन्ध किया। उस स्थान पर महाराजा प्रतापसिंहजी के प्रबन्ध से महाराजा सरदारसिंहजी के समय में संगमरमर का देवालय बनाया गया। रायबहादुर सरदार ज्वालासहायजी जुडिशियल मेम्बर के प्रबन्ध में इस थड़े की प्रतिष्ठा वि० सं० १९८५ (सन् १९२८) में हुई। राजव्यास, राजवेदिया, राजजोशी आदि ऋत्विज नियत हुए। उन में मुख्य ऋत्विज का कार्य बोहरा दामोदरजी ने किया और ज्वाला-सहायजी की आज्ञा से ब्रह्मा का आसन पण्डितजी को दिया गया। जिस (ब्रह्मा) का काम निरीक्षण करना है।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी शिलालेख ज्वालासहायजी की प्रेरणा से पण्डितजी ने लिखा था और उस का मशविदा पण्डितजी के पास है।

इसी वर्ष में रायबहादुर सरदार ज्वालासहायजी के उपदेश से जोधपुर महाराजा साहिब बहादुर ने सप्तशती (दुर्गा) की शतावृत्ति के प्रयोग का आरम्भ किले के श्रीचामुण्डा माताजी के मन्दिर में करवाने का निश्चय किया। उस प्रयोग का संकल्प श्रीदरबार साहिबों के हाथ से करवाने और शतावृत्ति के निरीक्षण करने के लिये पण्डितजी को नियत किया। तब से आज तक

पण्डितजी उस कार्य को वर्ष में दोवार प्रति नव-रात्र (चैत्र व आश्विन मास में) कर रहे हैं।

वि० सं० १९८५ में आल इण्डिया ब्राह्मण महासभा की ओर से ब्राह्मणों के आचार विचार और भोजन सम्बन्धी कई प्रश्न आये थे, उन का उत्तर देने के लिये श्रीदरवार साहबों की तर्फ से जुडिशियल मेम्बर ज्वालासहायजी को आज्ञा हुई कि इसका उत्तर दे दिया जाय। उन्हों ने जोधपुर के प्रतिष्ठित ८ पण्डितों की एक कमेटी कायम की। जिस में पण्डितजी को प्रेसिडेन्ट रखा और कमेटी ने विचार करके उस का उत्तर ज्वालासहायजी के पास भेज दिया।

वि० सं० १९८६ (ई. सन् १९२९) में भारत-धर्म-महामण्डल की ओर से पण्डितजी की योग्यता देख कर "महामहाध्यापक" का पद प्रदान किया गया। पण्डितजी ने भारत-धर्म-महामण्डल का कार्य "योगसाधनचतुष्टय" नामक पुस्तक को सुचारु रूप से छपवाने का किया था।

इसी वर्ष में वर्षा का अवरोध होने पर ज्वालासहायजी के उपदेश से महाराजा श्री सर उम्मेदसिंहजी बहादुर ने महादेवजी श्रीरामेश्वरजी के मन्दिर में वृष्टि के आवाहन के लिये सहस्रघट का प्रयोग करवाया। उस का सङ्कल्प भी पण्डितजी ने ही महाराजा साहब को करवाया। फिर भी जव कभी ऐसे बड़े कार्य का आरम्भ होता है तव पण्डितजी ही दरबार साहिबों को सङ्कल्प करवाते हैं। और उस कार्य का निरीक्षण राजव्यास देवराजजी और पण्डितजी के अधिकार में रहता है।

इसी वर्ष में महकमा तवारीख तोड़ दिया गया। और जब महकमात वारीख का बजट कौंसिल में पेश हुआ तो उस समय ज्वालासहायजी ने महाराजा साहब से अर्ज किया कि पण्डित राम-

कर्णजी पुस्तक-प्रकाश में भेज दिये जांय; क्योंकि वहां की पुस्तकों की सूची बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है और उस कार्य को यह पण्डित सुचारु रूप से कर सकता है। तदनुसार पण्डितजीने ३ वर्ष पुस्तक-प्रकाश में काम किया। उसी अर्से में ज्वालासहाय जी ने पण्डितजी से कहा कि पुस्तक-प्रकाश में यदि जोधपुर महाराजा के बनाये हुए संस्कृत ग्रन्थ हों तो ध्यान रखना चाहिये और कोई उत्तम पुस्तक मिले तो हमारे पास रिपोर्ट कर देना। पण्डितजी ने उस बात को ध्यान में रक्खा और तलाश करने से निम्न तीन ३ पुस्तकें संस्कृत भाषा की जोधपुर महाराजा की बनाई हुई उपलब्ध हुईं:—

१ आनन्द-विलास—महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम) का बनाया हुआ। यह वेदान्त का ग्रन्थ है। इस की रचना-परिपाटी वेदान्तके सिद्धान्त जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

२. नाथ-चरित—(अपूर्ण) महाराजा मानसिंहजी विरचित। यह ग्रन्थ काव्य के रूप में है।

३. माण्डूकोपनिषद् की संस्कृत टीका का एक अध्याय— महाराजा मानसिंहजी कृत।

इन का सम्पादन करने के लिये ज्वालासहायजी ने पण्डितजी से कहा तो पण्डितजी ने ३ तीनों ग्रन्थों का सम्पादन किया। आनन्द-विलास वेदान्त का ग्रन्थ है इस से इस की संस्कृत टीका लिखी। नाथ-चरित और माण्डूकोपनिषद् पर टिप्पणी की गई। ये तीनों ग्रन्थ ज्वालासहायजी की आज्ञा से आर्कियालोजिकल डिपार्टमेन्ट के वर्तमान सुपरिन्टेन्डेन्ट रेऊजी को दिये गये। वे अब तक उन्ही के पास पड़े हुए हैं। यदि ये छप जाते तो जोधपुर के पूर्व महाराजा साहिबों की तो जगत् में कीर्ति होती और लोकोपकार के साथ पण्डितजी का परिश्रम भी सफल होता।

वि० सं० १९८७ (सन् १९३०) में शहर के मकानों पर छतरी, कवानियां छाजा आदि लगाने का निश्चय करने के विषय में एक कमेटी नियुक्त हुई उस में निम्न लिखित मेम्बर थे— १ महाराज गुमानसिंहजी, २ पाल ठाकुर रणजीतसिंहजी, ३ मूता जसवन्तराजजी, ४ पण्डितजी रामकर्णजी। इस कमेटी का यह कार्य था कि कौन शख्स अपने मकान पर छतरी बनवा सकता है, कौन कवानियां और कनास लगा सकता है। कमेटी से यह निश्चय हुआ कि छतरी मन्दिर पर या राजा महाराजा के मकान पर बन सकती है। कवानियां छाजा दीवान, बख्शी या मिनिष्टर लगा सकते हैं। कनास के लिये कोई रोक नहीं।

इसी वर्ष में देवस्थान मन्दिरों और मस्जिदों की प्रबन्ध विषयक जांच करने के लिये श्रीदरबार साहिबों की ओर से एक कमेटी नियत हुई जिस में निम्न लिखित मेम्बर बनाये गये। १ राजव्यास देवराजजी, २ पण्डितजी रामकर्णजी, ३ सेठ गिरधारीलालजी जेसलमेरिया, ४ मेहता किसनमलजी, ५ पं० किस्तूरचन्दजी जोशी, ६ मुंशी जफरहुसेनजी, ७ कल्ला लक्ष्मीनारायणजी। इस कमेटी के प्रेसिडेन्ट राजव्यास देवराजजी थे। कुछ अर्से तक यह काम कमेटी करती रही और मन्दिरों में जाकर जांच भी की गई। फिर इस काम के लिये एक इन्सपेक्टर नियत होगया तो कमेटी का यह भार उतर गया।

इसी वर्ष में एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल की तर्फ से आप को छापने के लिये दो ग्रन्थ दिये गये थे। जिन में एक तो संस्कृत भाषा का और दूसरा डिङ्गल भाषा का था।

१ संस्कृत ग्रन्थ " कविकल्पलता " जिस का तृतीयांश तो एक बङ्गाली शास्त्री ने तैयार किया था और शेष समग्र ग्रन्थ आपने तैयार किया।

२ डिंगल ग्रन्थ "सूरज़प्रकाश" इस के ९६ पृष्ठ अब तक छपे हैं और उस के आगे का ग्रन्थ समाप्ति तक टिप्पण सहित तैयार किया हुआ पण्डितजी के पास मौजूद है।

नागरी प्रचारणी सभा, काशी, की तर्फ़ से डिङ्गल कविता के ग्रन्थ छापने के लिये पण्डितजी को निदेश हुआ। जिस से निम्न लिखित पुस्तक तैयार की गई—

१ बांकीदास ग्रंथावलि, प्रथम भाग। बांकीदासजी के निर्माण किये हुए डिङ्गल भाषा के २४ ग्रन्थ हैं। उनमें से ७ ग्रन्थ प्रथम आप ने "भारत-मार्तण्ड" नामक मासिक पत्र में टिप्पणी के साथ मुद्रित किये थे। उन्हीं का पुनःसंस्कार नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ने किया है।

२ "राजरूपक" यह ग्रन्थ जोधपुर के महाराजा अजीत-सिंहजी के पुत्र महाराजा अभयसिंहजी के इतिहास विषय का है। इस को आप ने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के निदेश से संपादित किया है। अभी यह ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुआ है। यह पण्डितजी के पास ही है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, ने यह विचार किया कि भारत-वर्ष का एक बृहत् और प्रामाणिक इतिहास तैयार किया जाय। इस कार्य में नई खोज की बहुत आवश्यकता है। इसकी योजना तैयार करने के लिये सम्मेलन ने निम्न लिखित सज्जनों की एक समिति बनाई। १ श्रीयुत बाबू शिवप्रसादजी गुप्त, काशी (संयोजक), २ पण्डित नरेन्द्रदेवजी, काशी विद्यापीठ, ३ पं० गौरीशङ्कर हीराचन्दजी, अजमेर, ४ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन, प्रयाग और ५ पण्डित रामकर्णजी आसोपा, जोधपुर।

वि० सं० १९८८ (ई. सन् १९३१) में पुस्तक-प्रकाश का बजट कौंसिल में पेश हुआ, तब उस समय के रेवेन्यु मेम्बर

हिम्मतसिंहजी ने श्रीदरबार साहिबों से अर्ज किया कि यह पण्डित रामकर्ण वृद्ध होगया है और इस ने ईमानदारी और तन्दिही से बहुत लम्बी सर्विस की है इस लिये इस की पेन्शन करदी जाय । तब वाइस-प्रेसिडेन्ट महाराजासिंहजी ने कहा कि " यहां पेन्शन का रूल नहीं है । " तब हिम्मतसिंहजी ने कहा कि " इस पण्डित ने कलकत्ता युनिवर्सिटी की २००) रुपये माहवार वेतन की जगह छोड़ कर श्रीदरबार की नोकरी १००) रुपये माहवार पर की है। इसे जो यह नुक्सान हुआ है उस का बदला इस को क्यों नहीं मिले ? " तो दूसरे मेम्बरों ने इस बात का समर्थन किया और श्रीदरबार साहब ने स्वयं फरमाया कि पेन्शन कर दी जाय । तदनुसार ५०) रुपये माहवार की पेन्शन की गई ।

वि० सं० १९९० (ई. सन् १९३३) में ' मारवाड़ का मूल इतिहास ' नामक पुस्तक पोकरण ठाकुर चैनसिंहजी, जुडिशियल मेम्बर, जिन के अधिकार में उस समय आर्कियालोजिक डिपार्टमेन्ट था, की सेवा में डोनेशन (पुरस्कार) के लिये पेश किया गया तब उन्हों ने उसे डोनेशन कमेटी में भेज दिया । कमेटी ने श्रीदरबार साहिबों से १५००) रुपया इनाम मिलने के लिये सिफारिश की और श्रीदरबार साहिबों ने कदर करके उसे मंजूर की ।

वि० सं० १९९४ (ई. सन् १९३७) में म्युनिसिपल कमेटी के मेम्बरों का नया चुनाव जाति-वार हुआ । उस में छन्याति की तर्फ से पण्डितजी चुने गये। आप उस कार्य को अभी तक कर रहे हैं और आप इम्प्रूवमेंन्ट कमेटी के भी मेम्बर हैं । आप की जोधपुर के गणमान्य प्रतिष्ठित पुरुषों में गणना है ।

आप के ३ पुत्रियां और एक पुत्र है जिस का नाम जयनारायण है।

आप के छोटे दो भाई स्वर्गवासी हो गये, उन में से एक का नाम पं० श्यामकर्णजी था। जिन का जन्म संवत् १९१७ में हुआ था। वे व्याकरण और वेदान्त के अच्छे विद्वान् थे। उन्हों ने गुरु गट्टूलालजी महाराज की सेवा पूर्ण प्रेम के साथ तन मन से की थी। वे ईश्वर के अनन्य भक्त थे। इसी से संवत् १९५९ में मोक्षपुरी मथुरा में वैशाख सुदि १३ के दिन इस क्षणभङ्गुर शरीर को त्याग कर वे शाश्वत आनन्दमय वैण्कुठधाम को सिधारे। उन के एक शङ्करलाल नाम का दौहित्र है।

उन के छोटे भाई पं० लक्ष्मीनारायणजी थे। उन का जन्म सम्वत् १९२७ में हुआ था। वे सम्वत् १९७४ में प्लेग रोग से आक्रान्त होकर इस लोक से परलोक को सिधारे।

उन से छोटा तीसरा भाई गोविन्दनारायण मैं हूँ। मेरा जन्म संवत् १९३३ में हुआ था। मैं ने अङ्गरेज़ी भाषा में जसवन्त कालेज, जोधपुर, से मारवाड़ियों में से सर्व प्रथम बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। संस्कृत भाषा का भी पं० रामकर्णजी से अभ्यास किया, जिस के प्रताप से 'विद्याभूषण', 'साहित्य भूषण' और 'विद्यानिधि' ये तीन पदवियां मुझे मिलीं। कुलदेवी श्रीदधिमती माताजी के मन्दिर के जीर्णोद्धार के निमित्त दाहिमा महासभा की सम्वत् १९६७ में स्थापना हुई तब मैं अवैतनिक मन्त्री पद पर नियुक्त हुआ था और मैं ने उक्त महासभा का कार्य २४ वर्ष तक प्रीतिपुरःसर भक्तिभाव से किया, जिस से महासभा ने मुझे सम्वत् १९७६ में 'दधिमती-दीवान' का अनन्य पद प्रदान किया। मैं ने भगवती के नाम से "दधिमती" मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया। स्वार्थ का त्याग कर भगवती की सेवा

करने से मैं सायर महकमा में एसिस्टंट सुप्रिन्टेन्डेन्ट के पद पर रहा था और अब आनरेरी मजिस्ट्रेट हूँ। भगवती की कृपा से मेरे तीन पुत्रियां और तीन पुत्र हैं जिन के नाम माधवनारायण, विष्णुनारायण और नरनारायण हैं और देवनारायण नामक एक पौत्र है।

मेरा छोटा भाई पं० कृष्णनारायण है, उस का जन्म सम्वत् १९३४ में हुआ था। वह पुलिस थानेदारी के काम पर नियुक्त था और अब रिटायर होचुका है। वह सनातन धर्म का पूर्ण भक्त है। सदा वैश्वदेव करता है। इस ने गायत्री का एक पुरश्चरण भी किया है और पुलिस की नौकरी होने पर भी वह सदा वर्णाश्रमोक्त नित्य कार्य में तत्पर रहता है। इस के एक पुत्र और एक पुत्री है। पुत्र का नाम केशवनारायण है।

अब आप के परोपकार के कार्यों का उल्लेख किया जाता है जिन में मुख्य साहित्य-सेवा के निम्न कार्य हैं:-

१ सर्व प्रथम आप ने वि० सं० १९४१ में श्रीमद्भागवत की "तत्त्व-बोधिनी" नामक हिन्दी में भाषा टीका लिखी जो भारतवर्ष में सब में प्रथम लिखी गई थी और जिसे पं० हरिप्रसाद भागीरथ ने बम्बई में प्रकाशित की थी। यह भाषान्तर श्रीधरी टीका के अनुसार प्रामाणिक माना जाता है। बाकी की सब टीकाएँ इस के बाद लिखी और प्रकाशित की गई हैं।

२ बालकों के उपयोगी "सचित्र-बालबोध" बनाई जो Kindergarten system के अनुसार लिखी गई है। यह भी पं० हरिप्रसाद भागीरथ के यहां छपी है।

३ तुलसीकृत रामायण के आठों काण्डों की भाषा टीका बनाई जो उसी पं० हरिप्रसाद भागीरथ ने प्रकाशित की है।

४ नाथद्वारा के श्रीगोपेश्वरजी महाराज के संगृहीत पुस्तकों

की सूचि वि० सं० १९४२ में आप के गुरुजी गट्टूलालजी महाराज की आज्ञा से तैयार की।

५ कविराजा मुरारिदानजी के चार साहित्य के ग्रन्थों का शोधन व संस्कृत में अनुवाद किया जिन में से दो हिन्दी भाषा में और दो संस्कृत में थे, जिन का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। यह कार्य वि० सं० १९५० में आरम्भ किया गया और १९६३ में समाप्त हुआ।

(१) जसवन्त-जसो-भूषण हिन्दी में
(२) जसवन्त-भूषण ,,
(३) यशवन्त-यशो-भूषणम् संस्कृत में
(४) यशवन्त-भूषणम् ,,

६ बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, की ओर से

(१) कविकल्पलता—संस्कृत का ग्रन्थ ९६ पृष्ठ का सम्पादन।

(२) सूरज प्रकाश—डिङ्गल ग्रन्थ के ९६ पृष्ठ का संपादन

७ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, की ओर से

(१) बांकीदास ग्रन्थावली, प्रथम भाग

(२) राजरूपक—अप्रकाशित।

८ पं० श्यामबिहारीजी मिश्र की प्रेरणा से

श्रीसूक्त का हिन्दी अनुवाद, जिसे उन्हों ने वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई, में मुद्रित करा कर अमूल्य बांटा।

९ सुभाषितावलि—संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित, वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई, में छपा।

१० दधिमत्यष्टक स्तोत्र—हिन्दी अनुवाद सहित

११ ईशावास्योपनिषत्—संस्कृत विवृति। जिस का हिन्दी में अनुवाद मैं ने किया है।

१२ History of Rathors अंगरेजी में।

१३ दक्षिण के राष्ट्रकूटों का इतिहास-अपूर्ण व अप्रकाशित।

१४ मूकपञ्चशतक-संस्कृत टीका, शुद्ध कर छपाया,
टीकाकार रावराजा सोहनसिंहजी।

१५ अमृत-रस-संग्रह-जैनमत की पुस्तक मू० ३)

१६ सत्यनारायण कथा-भाषा-भूतेश्वर प्रेस में मुद्रित।

इन के अतिरिक्त निम्न ग्रन्थों की रचना की गई:—

१. जोधपुर के राठौड़ राजाओं का संक्षिप्त इतिहास लिख कर श्रीसरदारसिंहजी महाराज के पास पचमढ़ी भेजा (अप्रकाशित)

२. अष्टाध्यायी सूत्रवृत्ति-सोदाहरण, संस्कृत में, चार अध्याय तक (अप्रकाशित)

३. हिन्दी का पूर्ण विस्तृत व्याकरण-यह हस्त लिखित पुस्तक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, को भेजी गई थी। वहां से रुपये ५०) पचास पुरस्कार में दिये गये (अमुद्रित)

४. छीतर-पैलेश-शतक-संस्कृत-हिन्दी अनुवाद सहित। (अप्रकाशित) इस में राठौड़ों का संक्षिप्त इतिहास है।

५. महाराजा मानसिंहजी का संवत् १८८० से लेकर १९०० तक बीस वर्षों का इतिहास-यह इतिहास वेङ्कटेश्वर प्रेस के लिये लिखा गया था (अप्रकाशित)

६. टाड राजस्थान की भूलों के नोट्स-टाड साहब के अंग्रेजी इतिहास का हिन्दी अनुवाद वेङ्कटेश्वर प्रेस ने छापा था उस में मारवाड़ के इतिहास में जो भूलें थीं उन का नोट किया गया (अमुद्रित)

७. महाराजा श्रीसरदारसिंहजी का इतिहास-हिन्दी में (अप्रकाशित)

८. जोधपुर राज्य के जागीरदारों का कुर्सीनामा-(अप्रकाशित)

९. जोधाजी का संस्कृत में इतिहास-(अप्रकाशित)

१०. गुहिलचरित-संस्कृत में ६०० श्लोक-(अप्रकाशित)
११. डिङ्गल शब्द कोश-जिस में ६० हजार शब्दों का संग्रह है (अप्रकाशित)
१२. राठौड़ वंश का वृहत् इतिहास-संस्कृत में २० हजार श्लोक (अप्रकाशित)
१३. पुष्करणा ब्राह्मणोत्पत्ति का अनुवाद-प्रताप प्रेस में मुद्रित, प्रकाशक कल्ला नारायणदासजी
१४. दाहिमा सर्वस्व-अपूर्ण (युनियन प्रेस में मुद्रित)
१५. मारवाड़ का मूल इतिहास-प्रभाकर प्रेस में मुद्रित, मूल्य रु. १॥)
१६. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास-अपूर्ण (युनियन प्रेस में मुद्रित)
१७. नींबाज ठिकाणे का इतिहास-भूतेश्वर प्रेस में मुद्रित
१८. संखवास „ „ जोधपुर गवर्नमेंट प्रेस में मुद्रित
१९. आसोप „ „ भूतेश्वर प्रेस में मुद्रित।
२०. पोहकरण „ „ (अप्रकाशित)
२१. नींबेड़ा „ „ „

अन्य परोपकार के कार्यों में निम्न कार्यों का निर्देश मात्र किया जाता है:—

१. आप दरबार हाई स्कूल, जोधपुर, में संस्कृत और हिन्दी पढ़ाया करते थे और जैन-पाठशाला में जैनमत के ग्रन्थ पढ़ाते थे। यह कार्य तो आप दिन में किया करते और रात्रि के समय १० बजे तक व्याकरण, साहित्य, वैद्यक, ज्योतिष, काव्य आदि पढ़ने वाले १५-२० private विद्यार्थियों को निःशुल्क पढ़ाते थे।
२. आप ने 'प्रताप-प्रेस' नाम का एक प्राइवेट छापाखाना निजी खोला और उस में निम्न ग्रन्थ अपनी ओर से प्रकाशित किये— (१) वंशभास्कर-यह ग्रन्थ बून्दी राज्य के आश्रित मिश्रण

शाखा के चारण सूर्यमल्ल की रचना है। इस में मुख्य-तया चाहमान वंश का इतिहास है। प्रसङ्ग-वश अन्य राजा, महाराजा, बादशाहों के भी इतिहास लिखे हैं। यह ग्रन्थ भाषा पद्यमय ग्रन्थों में सब से बड़ा है। इस ग्रन्थ को दूसरा हिन्दी का महा-भारत कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस के ५००० पृष्ठ हैं और रुपये ४०) मूल्य है।

(२) राठौड़ राजाओं की वंशावली का नक्शा तैयार करके छपवाया। इस कुर्सीनामा के बनाने में भण्डारी किशन-मलजी के बनाये हुए नक्शों की सहायता ली गई। उक्त भण्डारीजी ने मारवाड़ के जागीरदारों की खांपोंके नक्शे बनाये जिस में भी आप ने पूर्ण सहायता दी थी। इस राठौड़ों के नक्शे में जोधपुर के सिवा अन्य राठौड़ राजाओं की वंशावली, शाखा, प्रभेद (खांपों का फटना) और संक्षिप्त चरित आदि बहुत सा उपयोगी विषय लिखा गया है।

(३) मारवाड़ी भाषा की उन्नति के लिये आप ने सर्व प्रथम मारवाड़ी व्याकरण बनाई और पहली, दूसरी, तीसरी आदि पाठ्य पुस्तकें बनाईं। इन में से मारवाड़ी व्याकरण तो श्रीसर प्रतापसिंहजी ने दरबार प्रेस में छपवादी और पाठ्य पुस्तकें आपने अपने प्रताप प्रेस से प्रकाशित कीं।

(४) मारवाड़ी में मारवाड़ का भूगोल बनाकर छपवाया।

(५) मारवाड़ी भाषा में श्रीमद्भागवद्गीता की टीका लिख कर प्रकाशित की।

(६) संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण बनाकर छपाई। मूल्य ॥)

(७) धातुरूप

(८) संस्कृत-शिक्षा-व्याख्या।
(९) भारत-मार्तण्ड-मासिक पत्र (११ अङ्क)
(१०) नैणसी की ख्यात, पहला भाग।
(११) राजिये के दोहे—
(१२) त्रिकाल सन्ध्याप्रयोग।
(१३) तर्पण।
(१४) विष्णु सहस्र नाम।
(१५) गोपाल सहस्र नाम।

३. आप ने कई जैनमत के साधुओं को जैन ग्रन्थों का अध्यापन कराया।

निम्न अन्य रचित ग्रन्थों को शुद्ध कर निज प्रताप-प्रेस में छापाः—

(१) कर्ण-पर्व-बावा गणेशपुरी कृत, वीर रस का ग्रन्थ, सटिप्पण
(२) कायस्थ-सर्वस्व-कायस्थों की उत्पत्ति और वर्ण-निर्णय। रचयिता पं० देवीचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक पंचोली शुभलालजी
(३) पद्य-व्याकरण-हिन्दी टीका सहित-रचयिता पं० लालचन्द्रजी पुष्करणा ब्राह्मण।
(४) प्राकृत-पद्य-व्याकरण—
(५) प्रताप-गुण-चन्द्रोदय-हिन्दी कविता, रचयिता पं० लालचन्द्रजी पुष्करणा।
(६) जानकी-स्वयम्बर-नाटक-रचयिता पं० कृष्णचन्द्रजी पंचोली
(७) लघुस्तव-सप्रयोग-संस्कृत-प्रकाशक पं० रमानाथजी शास्त्री
(८) पार्वती-पाणिग्रहण-चम्पू-संस्कृत, शुद्ध कर छपाया-रचयिता व प्रकाशक-बीदासर कँवरजी।
(९) वीर-बत्तीसी-रचयिता चारण जुगतीदान।

निम्न शिलालेखों को पढ़ा और प्रकाशित कराया—

(१) जोधपुर के प्रतिहार बाउक का शिलालेख–वि० सं० १९५५ में पढ़ा और लाला देवीप्रसादजी ने छपाया ।

(२) चाटसू का शिलालेख–वि० सं० १९५९ में पढ़ा और लाला देवीप्रसादजी ने अपने नाम से छापा ।

(३) बीजापुर के पास हतूंडी के शिलालेख को पढ़ा और Apigraphia Indica में छपाया ।

(४) भीनमाल के शिलालेख–पढ़े और पुरोहित लक्ष्मीनारायणजी को दिये ।

(५) घटियाला का शिलालेख पढ़ कर लाला देवीप्रसादजी को दिया

(६) किणसरिया का शिलालेख–पढ़ कर एपिग्राफिया इण्डिका Apigraphia Indica में छपाया ।

(७) मेड़ता के १५ शिलालेख–पढ़ कर बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर, कलकत्ता, के पास भेजे ।

(८) जैसलमेर के १० शिलालेख–भी पढ़ कर उक्त बाबूजी को दिये गये ।

(९) पाल के पास के ३ शिलालेख–पढ़ कर मिस्टर टेसीटोरी को दिये गये ।

(१०) बीकानेर के दरवाजे पर का राठौड़ों की वंशावली का बृहत् शिलालेख पढ़ कर मि० टेसीटोरी को दिया ।

(११) फलोधी के शिलालेख–पढ़ कर डा० भाण्डारकर को दिये गये ।

(१२) नाडोल, नारलाई, बरकाणा, सांडेराव आदि के शिलालेख पढ़ कर डा० डी. आर. भाण्डारकर को दिये गये ।

(१३) सांभर के सोलंकी मूलराज के शिलालेख को शुद्ध पढ़ कर रेऊजी को दिया ।

(१४) पाटण के भीमदेव का शिलालेख-पढ़ कर छपाया।
(१५) दधिमती माताजी का शिलालेख-पढ़ कर Epigraphia Indica में छपवाया।
(१६) सेवाड़ी का ताम्रपत्र-पढ़ कर Epigraphia Indica में छपाया।
(१७) लाडणू का शिलालेख-पढ़ा और Epigraphia Indica में छपाया।
(१८) किणसरिया के शिलालेख की टिप्पणी-Indian Antiquary में छपाई।
(१९) मङ्गलाणा का शिलालेख-Indian Antiquary में छपाया।
(२०) भाडूंद का शिलालेख-Bombay Asiatic Sociaty Journal में छपाया।
(२१) माईसोर के २० शिलालेख पढ़ कर मि० आर. श्रीनृसिंहाचार्य के पास बङ्गलोर भेजे।

इन के सिवाय निम्न लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराये-

(१) आबू और मारवाड़ के परमार-' सरस्वतो ' मासिक पत्रिका में प्रकाशित कराया।
(२) गुहिल अपराजित के सं० ७१८ के शिलालेख में विशेष वक्तव्य-' सरस्वती ' में प्रकाशित।
(३) श्रीशङ्कराचार्यजी का जन्म-समय-'सरस्वती' में छपाया।
(४) गुहिल शिलादित्य का सामोली का सं. ७०३ का-शिलालेख ' नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, ' काशी, में छपाया।
(५) प्रभास पाटण के सं० १४४२ के यादव भीम के शिलालेखों की समीक्षा-'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका,' काशी, में छपाई।

(६) मारवाड़ का महत्व–' मारवाड़ी, ' कलकत्ता, में छपाया।

निम्न लिखित शिलालेख संस्कृत तथा हिन्दी में बनाये—

१. दधिमती माताजी के ताम्रपत्र में जोधपुर के राठौड़ राजाओं की प्रशस्ति–नवीन निर्मित की।

२. राजरणछोड़जी के मन्दिर का शिलालेख।

३. पांचवां देवड़ीजी के मन्दिर का शिलालेख।

४. सुमेरपुर का शिलालेख।

प्रकीर्णक कार्य---

१ संवत् १९५५ में नोबल स्कूल्स, जोधपुर, में एक साल तक एन्ट्रेन्स के विद्यार्थियों को संस्कृत पढ़ाया।

२ जोधपुर के नरसिंह-द्वारा मन्दिर के महंत श्यामदासजी महाराज को महाभारत की कथा सुनाई जिस में अनुमान २॥ वर्ष लगे। यह कथा सं० १९६५ में निर्विघ्न समाप्त हुई।

३ गाँव गोठ–माङ्गलोद के पास दाहिमा ब्राह्मणों की जाति-मात्र की कुलदेवी श्रीदधिमती माताजी का अति प्राचीन मन्दिर है जिस के जीर्णोद्धार का कार्य अखिल भारत-वर्षीय दाहिमा ब्राह्मण महासभा की ओर से आप ने करवाया। इस से महासभा की ओर से आप को 'विद्वद्रत्न' का पद प्रदान किया गया।

४ जोधपुर की सनातन धर्म-सभा के आप कितने ही वर्षों तक सभापति रहे और इस समय श्रीकुञ्जविहारीजी के मन्दिर में प्रति मास कृष्णपक्ष की एकादशी को भगवद्भ-

जन, व्याख्यान, आदि कराते हैं जिन में नगर के गण्य मान्य औहदेदार वो सज्जन आते हैं।

५ जोधपुर के दाहिमा-ब्राह्मण-जाति-भवन में रु० ७००) लगा कर ४२ फुट लम्बी एक शाला बनवाई जिस में वर्षाकाल में सजातीय सुविधा से भोजन कर सकते हैं।

❊ जीवन-चरित समाप्त। ❊

SECRETARY
COMMEMORATION COMMITTEE.

विद्याभूषण-साहित्यभूषण-विद्यानिधि
दधिमती दीवान
पण्डित गोविन्दनारायण शर्मा आसोपा,
बी. ए., एम. आर. ए. एस.,
भूतपूर्व सम्पादक "दधिमती"
रिटायर्ड एसिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट कस्टम्स
वर्तमान ऑनरेरी मेजिस्ट्रेट
गवर्नमेन्ट ओफ जोधपुर,
जोधपुर.

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

पण्डित-रामकर्ण-आसोपा

अभिनन्दन-ग्रन्थ ।

मङ्गलाचरणम् ।

सिद्धिदं विघ्नहर्तारं मङ्गलानां च कारकम् ।
विनायकं विभुं वन्दे सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

श्रीकृष्णं परमानन्दं लीलाविग्रहधारिणम् ।
नन्दानन्दप्रदं वन्दे देवकीनन्दनं परम् ॥ २ ॥

आविर्भूतमशेषविष्टपमिदं यस्माच्चलं निश्चलं
यस्मिन्नेव च केलनं प्रकुरुते यस्मिन् पुनर्लेष्यते ।
भात्यादित्यमरीचिभिर्मृगपिपासेवानृतं सत्यवद्-
भासा यस्य जगन्नमोऽस्तु सततं तस्मै परब्रह्मणे ॥ ३ ॥

देवीं दधिमतीं वन्दे सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
दधीचिं मूलपुरुषं प्रणमामि पुनः पुनः ॥ ४ ॥

गोविन्दः ।

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

* श्रीशिवषडक्षरस्तोत्रम् *

ओंकारवर्णाय गुणत्रयाय वैकुण्ठलोकेशहरात्मकाय ।
देवाधिदेवाय परात्पराय ओंकाररूपाय नमः शिवाय ॥ १ ॥

नटाय नित्याय नगाश्रयाय नन्दीशनाथाय निरञ्जनाय ।
नरेशसेव्याय नियामकाय नकाररूपाय नमः शिवाय ॥ २ ॥

मनीषिवेद्याय महेश्वराय मृडाय मायामयरूपकाय ।
महातमोमोहविनाशकाय मकाररूपाय नमः शिवाय ॥ ३ ॥

शिवाय शर्वाय शमप्रदाय शान्ताय शुभ्राय शताननाय ।
शुभाय शुद्धाय शिवाप्रियाय शकाररूपाय नमः शिवाय ॥४॥

वामाय विज्ञाय वृषध्वजाय वराय वीराय विशोधनाय ।
वेदज्ञवन्द्याय वरप्रदाय वकाररूपाय नमः शिवाय ॥ ५ ॥

यज्ञाय यज्ञान्तकराय यज्व-यज्ञेशपूज्याय यतेन्द्रियाय ।
योगीशगम्याय युगान्तकाय यकाररूपाय नमः शिवाय ॥६॥

षडक्षरशिवस्तोत्रं गोविन्देन सुनिर्मितम् ।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा स गच्छेच्छिवसन्निधौ ॥ ७ ॥

ओं नमः शिवाय ।
ओं नमः पार्वतीपते ! हर ! ।

अर्थ—ओंकार-रूप शिवजी को नमस्कार है जो स्वयं 'ओंकार' अक्षर रूप हैं, सत्-रज-तम नाम तीन गुण-स्वरूप हैं, और उन्हीं गुणों के अनुरूप विष्णु-ब्रह्मा-महादेव रूप हैं, सब देवों (इन्द्र सूर्यादि) के भी ईश्वर-रूप हैं, और पर (ब्रह्म) से भी पर हैं ॥१॥

नकार-रूप शिवजी को नमस्कार है जो ताण्डव-नृत्य के समय नट का अभिनय करते हैं, नित्य अर्थात् उत्पत्ति-विनाश-रहित अथवा सनातन हैं, नग नाम कैलास पर्वत का आश्रय लेकर निवास करते हैं, नन्दीश (नन्दिकेश्वर) के स्वामी हैं, निरञ्जन अर्थात् अञ्जन नाम तमोगुण से रहित हैं, नरपतियों से सेवा करने योग्य हैं और जगत् के नियन्ता हैं ॥ २ ॥

मकार-रूप शिवजी को नमस्कार है जो मनीषि अर्थात् बुद्धिमान् अथवा विद्वानों से वन्दनीय (नमस्कार करने के योग्य) हैं, महान् ईश्वर हैं, मृड अर्थात् सबको तुष्ट अथवा प्रसन्न करने वाले हैं, माया अर्थात् निज अघटन-घटन-साधिका शक्ति को अङ्गीकार कर साकार स्वरूप धारण करने वाले हैं और महान् तम रूप अज्ञान-जन्य-मोह के विनाशक हैं ॥ ३ ॥

शकार-रूप शिवजी को नमस्कार है जो शिव-रूप होने से सब का कल्याण करते हैं, शर्व अर्थात् संहार करने वाले हैं, शम अर्थात् अन्तरिन्द्रियदमन-रूप शान्ति के देने वाले हैं, शान्त-स्वरूप हैं, शुभ्र अथवा श्वेत वर्ण वाले हैं, शत अर्थात् अनेक मुख वाले हैं, शुभ अर्थात् मङ्गल की खानि रूप हैं, शुद्ध अर्थात् निर्मल, निष्पाप और निर्दोष हैं, और शिवा (पार्वती) के प्रिय हैं ॥ ४ ॥

वकार-रूप शिवजी को नमस्कार है जो वाम अर्थात् मनोहर (किंवा प्रतिकूल) देव हैं, विज्ञ अर्थात् अन्तर्यामी होने से सर्वज्ञ हैं, वृष-रूप ध्वजा वाले हैं, सब से श्रेष्ठ हैं, वीरता अर्थात् शौर्यतायुक्त हैं, सब को पवित्र करने वाले हैं, वेद के जानने वाले पुरुषों से वन्दनीय हैं, और अभीष्ट वरदान के देने वाले हैं ॥ ५ ॥

यकार-रूप शिवजी को नमस्कार है जो यज्ञ-स्वरूप हैं, दक्ष प्रजापति के यज्ञ का नाश करने वाले हैं, विधि-पूर्वक यज्ञ करनेवाले और यज्ञ के ईश्वर वा प्रवर्त्तक विष्णु से पूजा करने के योग्य हैं, इन्द्रियों को वश में रखने वाले हैं, योगियों में ईश्वर वा श्रेष्ठ पुरुषों के ध्यान में आने वाले हैं और युग अर्थात् सत्-त्रेता-द्वापर-कलि-युग रूप काल के अन्त करने वाले हैं ॥ ६ ॥

शिवजी के 'ओं नमः शिवाय' इन छः अक्षर रूप स्तोत्र को गोविन्द ने बनाया जिस का भक्ति-पूर्वक जो पाठ करता है, वह शिवजी के सामीप्य को प्राप्त होता है। ओं नमः शिवाय ! ओं नमः पार्वतीपते ! हर !।

॥ श्रीदधिमती जयति ॥

पण्डितानां वंशपरिचयः ।

देवीं दधिमतीं नत्वा सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
पण्डितानां परिचयो गोविन्देन विलिख्यते ॥ १ ॥

श्रीमन्नारायणाद् ब्रह्मा ब्रह्मणोऽथर्वविन्मुनिः ।
अथर्वणोऽभवद्ध्यङ् दधीचः पिप्पलायनः ॥ २ ॥

परोपकारैकपरायणोऽभूदिन्द्रास्थिदाता भगवान् दधीचिः ।
तद्वंशजाता भुवि सन्ति विप्रा दाधीचनाम्ना प्रथिता गुणौघैः ॥३॥

दाधीचा एव कथ्यन्ते दाहिमा नामतो* द्विजाः ।
मुख्याः षड्ज्ञातिवर्गेषु विद्यार्जनप्रभावतः ॥ ४ ॥

आसोपान्वयसम्भूतो गङ्गादासो महायशाः ।
अभवद् मेड़तापुर्यां ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥

चत्वारस्तनया जाता गङ्गादासस्य धीमतः ।
सदारामो जगन्नाथो रघुनाथस्तृतीयकः ॥ ६ ॥

चतुर्थो जानकीदासो मृतोऽसावकरग्रहः ।
रघुनाथात्मजः श्रीमान् बलदेवो महामतिः ॥ ७ ॥

तस्याभवन् सुताः पञ्च पितुरादेशकारिणः ।
प्रथमो रामकर्णाख्यो द्वितीयः श्यामकर्णकः ॥ ८ ॥

लक्ष्मीनारायणश्चैव गोविन्दोऽथ तुरीयकः ।
कृष्णनारायण इति पञ्चमोऽस्ति कनिष्ठकः ॥ ९ ॥

गोविन्दः ।

---

* स्पष्टीकृतोऽय विषयो "दाधीचा एव दाहिमाः" शीर्षक लेखे ।

पण्डितानां संस्कृतानुरागः।
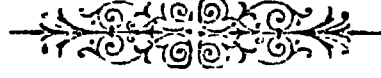
१—यद् ग्रन्थस्य[1] मुरारिदानकविना भाषामयस्य त्वया
स्वर्वाण्यां यशवन्तभूषणनिबन्धस्यानुवादः कृतः।
तन्नूनं नरलोकवर्तियशसस्तस्यैव भाषाकवेः
कीर्तिः कीर्तिमतां वरेण भवता स्वर्लोकमारोपिता॥

२— जानन् ख्यातिं त्वमधिगतवानत्र देशेतिहासं
सारज्ञानामिह भुवि पुरो भाग्यशाली, न मत्तः।
श्रावं श्रावं श्रवणसुखदं राम-नाम स्वकर्णे
कृष्णं धत्से हृदि, तदुचितं संज्ञया रामकर्णः॥

३—श्रीमद्-भारतभानु-शीघ्रकविराजेत्यादिभिः सत्पदैः
ख्यातानां खलु गट्टूलालविदुषां शिष्यत्वमाख्यापयन्।
श्रीमद्-भागवतामृतं निजमनोवाक्कर्मणाऽऽस्वाद्य-
ञ्जीव्यादेष परिश्रमी चिरतरं श्रीरामकर्णः सुधीः॥

पण्डित नित्यानन्द शास्त्री,

आशुकवि-कविराज, जोधपुर.

---

१ रचितस्य।

॥ श्रीः ॥

श्रीमान् परमश्रद्धास्पद महामहाध्यापक विद्वद्रत्न आसोपाकुलकमल-
दिवाकर पण्डितवर्य्य श्रीरामकर्णजी महानुभावस्य

पवित्र-सेवायां

अभिनन्दन-पत्रम्

स्वस्तिश्रीयुत धर्ममूर्तिगुणवान् शास्त्रेषु सुप्रौढधी-
विंद्वच्छ्रीबलदेवविप्रतनयः पुण्यप्रभावप्रभः ।
नीतिज्ञः कुशली सतामभिमतो दाधीचवंशाग्रणी-
र्मान्यो मान्यगुणः सदा विजयते श्रीरामकर्णाभिधः ॥ १ ॥

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि, दृढे श्रीशब्दशास्त्रे तथा
वेदान्ते परमे च गूढविषये, न्याये ग्रहग्रन्थिले ।
बुद्धिर्यस्य वगाहते खलु महारण्ये यथा केसरी,
सोऽयं राजति विष्टपे द्विजवरः श्रीरामकर्णाभिधः ॥ २ ॥

श्रीमन्महामान्यतमो गरीयान्
विद्वज्जनानन्दनलब्धकीर्तिः ।
नानेतिहासादिकलेखकोऽयं
महामहाध्यापकरामकर्णः ॥ ३ ॥

गुणिगणगणनानामग्रभागे च यस्य,
शशधर इव कीर्तिर्भाति संसारमध्ये ।
विहितसकलतोषः सुष्ठुविद्याप्रसारात्
सरलमृदुलभावो रामकर्णाभिधानः ॥ ४ ॥

लाधुरामादिगौड़ोऽहं भक्तियुक्तेन चेतसा ।
अस्मै महात्मने नम्रो धन्यवादं ददाम्यहो ! ॥ ५ ॥

पं० लाधुराम गौड़,
काव्यतीर्थ-जोधपुर ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ओं परमात्मने नमः ॥

दशोपनिषत्सारः ।

(सानुवादः)

देवीं दधिमतीं नत्वा सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
दशोपनिषदां सारो गोविन्देन विरच्यते ॥ १ ॥

'उपनिषीदति प्राप्नोति ब्रह्मात्मभावोऽनया' इति व्युत्पत्त्या ब्रह्मविद्याप्रतिपादके वेदशिरोभागेऽयमुपनिषच्छब्दः प्रयुज्यते। एष वेदशीर्षस्थानीयभागो वेदान्तनाम्ना प्रसिद्धः। अयं वेदान्त एव ब्रह्मविद्या। ब्रह्मणो विद्या ब्रह्मविद्या। सा च शुद्धचैतन्यात्मकस्य ब्रह्मणोऽभेदेन ज्ञानरूपा। अत एवेयं ब्रह्मज्ञानमिति भण्यते। ब्रह्मज्ञानमात्मज्ञानतत्वज्ञानमिति त्रीणि नामानि पर्यायवाचीनि। सैवात्मविद्या इति कथ्यते। ब्रह्मविद्यैव सर्वत्र समतां दर्शयति। ब्रह्मविद्ययैवाऽज्ञानग्रन्थयश्छिद्यन्ते। ब्रह्मविद्याप्राप्तिप्रभावेण कर्मचाञ्चल्यं सुसंयतं, चित्तं चान्तर्मुखी भवति। ब्रह्मविद्ययैव मिथ्यानुभूतिविनाशः परमसत्योपलब्धिश्च भवतः। ब्रह्मविद्ययैव चैकात्मरसप्रत्ययसारा-ऽवाङ्मनसगोचर-स्वयं प्रकाश-विज्ञान-स्वरूप-चेतनानन्दघन-रसैकघन-ब्रह्मणः प्राप्तिः सम्पद्यते। अस्या ब्रह्मविद्यायाः प्रतिपादनं यस्मिन् वेदात्युच्चशिरोभागे वर्तते, स एवोपनिषन्नाम्ना कथ्यते। एतासामुपनिषदां मन्त्राणां समन्वयस्तथा मीमांसा भगवता वेदव्यासेन ब्रह्मसूत्रे विहिता। या वेदान्तदर्शननाम्ना व्यपदिश्यते। एताभ्य उपनिषद्भ्य एव गोपालनन्दनानन्दकन्दो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रः श्रीमद्भगवद्गीतायाममृतरूपदुग्धं

सुधीभोक्तृणामुपभोगार्थमधुक्षत् । अत एवोपनिषद्-ब्रह्मसूत्र-भगवद्गीतानामक-ग्रन्थरत्नत्रयं 'प्रस्थानत्रयी' नाम्ना प्रथितमस्ति । भारतवर्षीयाः सर्वे धर्माचार्याः प्रस्थानत्रयीबलेनैव सत्यान्वेषणमकुर्वन् ।

वेदा अपौरुषेया अत एवस्त अनादयो मन्यन्ते । तेषु त्रयो विषयाः प्रायेण प्रतिपादिताः । तेन वेदस्य त्रयो भागाः क्रियन्ते, ये काण्डनामधेयेन प्रसिद्धाः । कर्मकाण्डः १, उपासनाकाण्डः २, ज्ञानकाण्ड ३ श्चेति । कर्मकाण्डे कर्मणां समूहो विवेचितः । उपासनाकाण्डे देवादीनामीश्वरस्य चाराधना वर्णिता अस्ति । ज्ञानकाण्डे मूलतत्त्वविचारः कृतोऽस्ति । कर्मोपासने तत्त्वोपलब्धये योग्यतां दत्तः । अतस्त उभे साधनस्वरूपे स्तः । ज्ञानं च सिद्धान्तरूपम् । वेदस्य ज्ञानकाण्ड एवोपनिषदिति नाम्नोच्यते । सा वेदान्तनाम्ना चाम्नाय–मस्तकनामधेयेन कथ्यते । अत उपनिषदो ब्रह्मज्ञानस्रोतांसि सन्ति ।

उपनिषदां महत्त्वं मुक्तकण्ठं सर्वैरेवाचार्यैः स्वदेशीयैर्विदेशीयैश्चाङ्गीकृतमस्ति । वस्तुतो ब्रह्मविद्यामहिमेदृश एव । येन ब्रह्मविद्यामृतपानं कृतं स कृतार्थः सञ्जातः । तस्य न किमपि कर्तव्यं, न च किमपि प्राप्तव्यमवशिष्यते । ब्रह्माकारवृत्तिवर्णनप्रसङ्गे वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीग्रन्थकारः स्पष्टं स्तौति ब्रह्मचेतसम्—

> कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।
> अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मिंल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥

ब्रह्मज्ञानयुतपुरुषस्य दृष्ट्यां सकलसंसारः सच्चिदानन्दस्वरूपः सञ्जायते । असज्जडरूपमिदं जगत् दुःखं च तेन नानुभूयते न प्रतीयते च । तद्दृष्ट्यां तु द्रष्टृ-दृश्य-दृष्टीनामेकीभावस्तेषामभेदप्रतीतिश्च । स द्रष्टा तु स्वयमेको निश्चल-निर्बाध-निष्कल-सच्चिदानन्दस्वरूप-सत्तामात्र एव ।

उपनिषदो बह्व्यः सन्ति । नारायणोपनिषदि त्वष्टोत्तरशतोपनिषदां नामान्युल्लिखितानि वर्तन्ते । तासु केवलं दशैव प्रधाना यासां नामानि निम्नोक्तानि प्रसिद्धानि सन्ति ।

ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्ड–माण्डूक्य–तित्तिरः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ॥

आसु दशसंख्यापरिमितासूपनिषत्सु ब्रह्ममीमांसा समीचीनतया विविधप्रकारैश्च वर्णिता प्रतिपादिता चास्ति । तासां क्रमेण सारांशोऽधस्ताद्वर्ण्यते ।

१. ईशावास्योपनिषत्सारः ।

इदं स्थावरजङ्गमात्मकं सर्वं जगत् अभिन्न–निमित्तोपादानकारणरूपेणेश्वरेण व्याप्तमस्ति । अर्थादिदं जगत् ईश्वरादेव प्रादुर्भूतमीश्वरेणैव च रचितमस्ति । तेनेश्वरेणैवेदं जगत् व्याप्तं पूर्णं च । यथोपादनकारणभूतया मृत्तिकया घट-शरावादिकं कार्यं व्याप्तमस्ति तथैवेश्वरेणैवेदं सर्वं जगत् व्याप्तं वर्तते । अथवा यथा नृपदृष्ट्यादिद्वारा नगरादिकं व्याप्तं, तथैवेश्वरेण जगद्व्याप्तम् । अथवा यथा मनुष्यशरीराणि वसनैराच्छादितानि, तथैवेश्वरेणेदं सर्वं विश्वं व्याप्तम् । अथवा यथा सुवासितकुसुमानि स्वसौरभेण जलं घ्राणतर्पणं कुर्वन्ति, तथैवेश्वरेण स्वस्फूर्त्या व्याप्येदं जगद्रमणीयतरं विहितम् । अथवा यथा प्रवृत्तिकारणभूतवासनाभिर्मनुष्यमनांसि व्याप्तानि, तथैवान्तर्यामिस्वरूपेणेश्वरेणैतद्विश्वं व्याप्तं वर्तते । एष ईश्वरो वायुरूपेण चलति, किन्तु स्वरूपेण न चलति, यतोऽयमक्रियः । अयमीश्वरोऽविदुषां दूरतमः, यदयमनन्तकोटिहायनैरपि तैः प्राप्तुमशक्यः । किन्तु विदुषामतिनिकटतरः, यदयं सर्वेषां भूतानां प्रत्यगात्मभूतः (सर्वान्तर्यामी)। अयमीश्वरोऽस्मिश्चराचरात्मकदृश्यविश्वमध्ये वर्तते, तद्बहिश्च । यो ज्ञानी सर्वभूतेष्विममीश्वरं, ईश्वरे च सर्वभूतानि पश्यति, स अभेददर्शी पुरुषो न कमपि निन्दति

न चापि स्तौति । स न कीदृशमपि शोकं, न मोहञ्चाधिगच्छति। ये परमेश्वरं न जानन्ति ते मरणानन्तरमन्धकारमयतमोरूपलोकं (नरकं) प्राप्नुवन्ति । अयमात्मा सर्वगत-शुद्ध-शरीररहित-क्षत-रहित-स्नायुरहित-निर्मल--निष्पाप--सर्वद्रष्ट्ट-सर्वज्ञ-सर्वोत्कृष्ट--स्वयम्भूस्वरूपो वर्तते ।

२. केनोपनिषत्सारः ।

ईश्वरः श्रोत्रस्यापि श्रोत्रम् । अर्थादीश्वरसामर्थ्यादेव श्रोत्रेन्द्रियं स्वविषयं शब्दं ग्रहीतुं समर्थं भवति । एष सर्वेश्वरो मनसोऽपि मनः । अर्थादेतन्मनः सर्वविषयोपलब्धेः साधारणकारणभूतमस्ति, तन्मन ईश्वरस्य शक्त्यैव स्वविषयमुपलब्धुं शक्तिमद्भवति । अयमीश्वरो वाचोऽपि वाक् । अर्थात् वागिन्द्रियमीश्वरानुग्रहेणैव शब्दोच्चारणरूपव्यापारं करोति । एष ईश्वरश्चक्षुपश्चक्षुः । अर्थादेतन्नेत्रेन्द्रियमीश्वरसाहाय्येनैव स्वविषयं रूपं गृह्णाति । अस्यायं भावः, श्रोत्रादीनां सर्वेन्द्रियाणां प्रवृत्तिः स्वस्वविषयेषु भवति, तत्प्रवृत्तेः कारणभूत ईश्वरस्तद्विलक्षण-चेतनस्वरूपः । यथा गृहनिर्माणकर्ता शिल्पी गृहाद्भिन्न एव । धीरपुरुषो देहश्रोत्रादीन्द्रियेष्वात्मबुद्धिं परित्यज्य तस्येश्वरस्यात्मरूपेण साक्षात्कृत्यामृतत्वमेति, जन्ममृत्युरहितो भवति । इन्द्राग्निवाय्वादयः समर्थदेवा अप्यस्य सर्वसमर्थदेवेश्वरस्याधीनाः। तत्साहाय्यमन्तरेण न कश्चित् किञ्चिदपि कर्तुं समर्थो भवति ।

३. कठोपनिषत्सारः ।

ओमित्येतत्पदं ब्रह्म । ओमितीश्वरनाम श्रेष्ठमालम्बनं, परमालम्बनम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा पुरुषो ब्रह्मलोके महत्वमापद्यते । अयं नित्यश्चेतनरूपात्मा न जायते, न म्रियते, न कदापि पूर्वं जातः। अयमजो नित्यः शाश्वतः पुराणः शरीरावसाने न म्रियते । यः

कश्चिदेनं हन्तारमर्थात् हननक्रियाकर्तारं मन्यते, यश्चैनं हतमर्थात् हननक्रियायाः कर्म मन्यते, तावुभावेनं न जानीतः। आत्मा न कदाचिदपि म्रियते, न चापि मारयति, न च हन्यते। अयमात्मरूपेश्वरः परमाण्वादिसूक्ष्मवस्तुभ्योऽपि सूक्ष्मतमः। अयमात्माकाशादिमहद्वस्तुभ्योऽप्यत्यन्तमहत्तमः। अयं समस्तप्राणिनां बुद्धिरूपगुहायामन्तरवस्थितः। अर्थादयं बुद्धिद्वारा ज्ञायते। अस्यात्मनो महिमानं निष्कामपुरुषो निर्मलान्तःकरणप्रसादादेव पश्यति, तं दृष्ट्वा च शोकरहितो भवति। शोकलक्षितजन्ममरणादिरहितो भवतीत्यर्थः। अयमात्मा जाग्रत्स्वप्नावस्थास्ववस्थितोऽपि दूरं गच्छति। साक्षिरूपेण स्थितो भवति। सुषुप्तिदशायां सुप्तोऽपि सर्वत्र याति। विशेषज्ञानाभावेन सामान्यज्ञानरूपेण सर्वत्र गच्छन्निव कथ्यते। अयमात्मा अनित्यशरीरेष्वशरीररूपेण तिष्ठति। धीर एनं महान्तं विभुमात्मानमीश्वरं ज्ञात्वा कर्तृत्वादिबन्धनरहितो भवति। अतः शोककारणभूताऽज्ञाननिवृत्त्या शोकरहितो भवति।

४. प्रश्नोपनिषत्सारः।

यथा पक्षी वृक्षनीडे सम्प्रतिष्ठितो भवति सम्यक् निवसति, तथैवास्मिन् स्वयम्प्रकाशेश्वरे स्थूल–सूक्ष्म–पृथिवी–जल–तेजो–वायु-वियदादयः सम्प्रतिष्ठिताः सन्ति। पृथिवी पृथिवीमात्रा गन्धः, जलं तन्मात्रा रसः, तेजस्तन्मात्रा रूपं, वायुस्तन्मात्रा स्पर्शः, आकाशस्तन्मात्रा शब्दः, चक्षुर्द्रष्टव्यं, श्रोत्रं श्रोतव्यं, घ्राणं घ्रातव्यं, रसः रसयितव्यं, त्वक् स्पर्शयितव्यं, वाक् वक्तव्यं, हस्तावादातव्यं, उपस्थमानन्दयितव्यं, पायुर्विसर्जयितव्यं, पादौ गन्तव्यं, मनो मन्तव्यं, बुद्धिर्बोद्धव्यं, अहङ्कारोऽहङ्कर्तव्यं, चित्तं चेतयितव्यं, तेजो विद्योतयितव्यं, प्राणो विधारयितव्यं, तत्सर्व स्वयम्प्रकाशे आनन्दस्वरूपे परमेश्वरे सम्प्रतिष्ठितम्। न केवलं पृथिव्यादिजडप्रपञ्चः। किन्तु द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता,

विज्ञानात्मा पुरुषः, एते सर्वेऽस्मिन्नेव परमात्मनि प्रतिष्ठिताः। य इमं छायारहितं, शरीररहितं, वर्णरहितं, शुभ्रं, शुद्धमक्षरमात्मानं विजानाति, स तमेव परमाक्षररूपं परमात्मानं प्राप्नोति स्वयं सर्वः सर्वज्ञश्च भवति।

५. मुण्डकोपनिषत्सारः।

अयं परमात्मा दिव्योऽमूर्तः पुरुषो बहिरन्तरोऽजोऽप्राणो ऽमनस्कः शुभ्रोऽक्षरात्परः। स्वकार्यात्परोऽव्याकृतस्तस्मादपि परः। अस्मात्परमात्मनः प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि खं वायुर्ज्योतिर्जलं पृथिवी जायन्ते। या पृथिवी सर्वाधारभूता। अयं सर्वभूतानामन्तरात्मा। अग्निरस्य शीर्षस्थानीयः, चन्द्रसूर्यौ नेत्ररूपे, दिशा श्रोत्रम्, वेदोऽस्य वाक्, वायुरस्य प्राणः, विश्वं च हृदयं, पृथिवी पादरूपा। अस्माद् द्युलोकरूपोऽग्निर्जायते। यस्याग्नेः समिधः सूर्य–चन्द्र–पर्जन्यौषधयः पृथिवी। स्वर्गलोकं गतो जीवः सोमात्पर्जन्यं गच्छति, पर्जन्याद् वृष्टिद्वारा पृथिव्यामागच्छति, पृथिव्या ओषधिरूपेणान्ने सम्प्रजायते, अन्नं पुरुषो भक्षयति, अन्नसम्भूतं वीर्यं पुरुषो योषिति सिञ्चति, तेन ब्रह्व्यः प्रजाः प्रजायन्ते। अस्मात्परमात्मन एव ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदाः दीक्षा–यज्ञ–क्रतु–दक्षिणा–संवत्सर–यजमान-नानालोका जायन्ते, येषु लोकेषु चन्द्रमा पवित्र यति सूर्यश्च तपति। एतानि सर्वाण्यक्षररूपपरमात्मनः सम्भूयन्ते। देवता-साध्य–मनुष्य–पशु-पक्षि–प्राणापान–व्रीहि–यव-तपः–श्रद्धा–सत्य-ब्रह्मचर्य-विधि-समुद्र-पर्वत-नद्यादयःसर्वाणि परमात्मन सम्प्रजायन्ते।

६. माण्डूक्योपनिषत्सारः।

'ओम्'–इत्यक्षरमिदं सर्वम्। भूतं भवत् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। अन्यत्त्रिकालातीतं तत्सर्वमोङ्कार एव। अयमात्मा ब्रह्म। इदं सर्वं ब्रह्म। अयमात्मा ओङ्कारः अ, उ, म्, नादरूपेण

चतुष्पात् । तत्राकारः प्रथमपादो जाग्रत्स्थानः । अत्रायं बहिष्प्रज्ञ अर्थाद्बहिर्गन्ता गमनशीलो वा भवति । अस्य सप्ताङ्गानि, एकोनविंशतिर्मुखानि, अयं स्थूलस्य भोक्ता, अस्य नाम वैश्वानरः । द्यु-सूर्य-वायु-आकाश-जल-पृथिवी-आहवनीयाग्निरिति सप्त अङ्गानि । तेषां क्रमशो मस्तक-चक्षुः-प्राण-मध्यस्थान (उदरं)-वस्ति (मूत्रस्थानं) पाद-मुखानि निवासस्थानानि । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि-पञ्च कर्मेन्द्रियाणि-पञ्च प्राणाः-चत्वारोऽन्तःकरणवृत्तयो मनोबुद्धिश्चित्तोऽहङ्काररूपाः एकोनविंशतिः मुखानि सन्ति । अस्य द्वितीयपाद उकारः स्वप्नस्थानः । अत्रायमन्तःप्रज्ञ अर्थात् हृद्देशे द्रष्टा भवति । जाग्रद्वद्स्यापि सप्ताङ्गानि, एकोनविंशतिः मुखानि । अत्रायं वासनामयभोगान् भुनक्ति । अस्य तैजस इति नाम । अस्य तृतीयपादो मकारः सुषुप्तिस्थानो यत्रायं सुप्तो न कामपि कामनामिच्छति, न चापि स्वप्नं पश्यति । सुषुप्तिस्थानेऽयमेकीभूतः प्रज्ञानघन आनन्दमयो वर्तते । केवलमानन्दमेव भुनक्ति । अत्रायं चेतोमुखः । प्राज्ञोऽस्य नामधेयम् । अयं सर्वेश्वरः, एष सर्वज्ञः, एषोऽन्तर्यामी, एष कारणरूपः, अस्मादेव सर्वेषां भूतानामुत्पत्तिप्रलयौ स्तः । चतुर्थपादो नादरूपो न अन्तःप्रज्ञो, न बहिष्प्रज्ञ, न उभयतः प्रज्ञः, न प्रज्ञानघनः, न प्रज्ञः, नाप्रज्ञः, नादृष्टः, नाव्यवहार्यः, अग्राह्यः, अलक्षणः, अचिन्त्यः, अव्यपदेश्यः (शब्दशक्तेरविषयः), एक आत्मा, एतदाकारस्य प्रत्ययोऽर्थादव्यभिचारीज्ञानमेवास्मिन् सारः--प्रमाणरूपः । अयं प्रपञ्चरहितः शान्तोऽद्वैतश्च । अयं चतुर्थः पादो मन्यते । स आत्मा, स विज्ञेयः (ज्ञातुं योग्यः) । य एनं जानाति स आत्मद्वारा आत्मानमाप्नोति ।

७. तैत्तिरियोपनिषत्सारः ।

ओमिति ब्रह्म । ओमिति इदं सर्वम् । ब्रह्मवित् परमात्मानमाप्नोति । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यतः परमात्मनो वाचो मनसा

सह गत्वा तमप्राप्य निवर्तन्ते । तमानन्दरूपं ब्रह्म ज्ञात्वा पुरुषः कुतश्चन न बिभेति । आनन्द इति परं ब्रह्म । इदमेव ज्ञेयम् । अग्रे इदं जगत् असत् (अव्याकृत-ब्रह्मरूपं) एवासीत् । तस्मादसतो ब्रह्मणः सत् (नामरूपात्मकव्यक्तरूपं जगत्) अजायत । तदसद्ब्रह्म एव स्वयमात्मानं नामरूपात्मकजगद्रूपेणारचयत् । अत एव तत्सुकृत (स्वयंकृत) इत्युच्यते । तत्सुकृतमेव रसरूपः । रसो वै सः । रस आनन्दरूपः । यत इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यस्मिंश्च प्रलयकाले पुनराविशन्ति । तद् ब्रह्म । अन्नं, प्राणो, मनो, विज्ञानं, आनन्द एतानि सर्वाणि ब्रह्मरूपाणि । आनन्द एव ब्रह्म । एषा भार्गवी वारुणीविद्या परमाकाशे हृदि प्रतिष्ठिता । एषा विद्या हृदयाकाशरूपगुहायां परमानन्दाद्वैतस्वरूपे ब्रह्मणि समाप्यते । यो विद्वानेतां जानाति स ब्रह्मणि स्थितो भवति । स ब्रह्मैव भवति ।

८. ऐतरेयोपनिषत्सारः ।

आत्मा द्विविधः । जीवात्मा परमात्मा चेति । तयोर्जीवात्मा तूपासकः, परमात्मा चोपास्यः । अयं जीवात्मा येन प्रेरितो रूपं पश्यति, शब्दं शृणोति, गन्धं जिघ्रति, वाचं वक्ति, रसं जानाति, मनसा सङ्कल्पयति, बुद्ध्या निश्चिनोति, चित्तेन ध्यायति सुख-दुःखान्यनुभवति च, अहङ्कारेणाहम्भावं करोति, तदेव विज्ञानरूपं ब्रह्म । प्रज्ञानं सर्वरूपेण सर्वत्र वर्तते । एष प्रज्ञानरूपात्मा एव ब्रह्म, एष इन्द्रः, एष प्रजापतिः, एते सर्वे देवाः, इमानि पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषि सर्वाणि प्रज्ञाने प्रतिष्ठितानि । जरायुजा-ऽण्डज-स्वेदजो-द्भिज्जरूपेण चतुष्प्रकारकस्थावरजङ्गमात्मक-प्राणिसमूहो बीजानि पशवः पक्षिणश्च सर्वे प्रज्ञाने प्रतिष्ठिताः । प्रज्ञानं ब्रह्म । प्रज्ञानमिति चैतन्यात्मा परमात्मा । य इदं प्रज्ञान-रूपं ब्रह्म जानाति, स अस्माल्लोकादुत्क्रम्य स्वर्गलोके स्वयंप्रकाशा-

त्मकब्रह्मणि सर्वकामनां प्राप्यामृतो भवति।

९. छान्दोग्योपनिषत्सारः।

इदमग्रे सृष्टिरचनापूर्वसमयेऽसदेव आसीत्। तत्सदासीत्। तदद्वितीयमासीत्। इदं सर्वं जगदस्यैव स्वरूपम्। तत्सत्यम्। स आत्मा। तत्त्वमसि। तदेकस्य ज्ञानेन सर्वं ज्ञातं भवति। यथा मृत्तिकैव सत्यं। मृत्तिकाकार्यभूतानि घट-शरावादीनि वाणीमात्रत्वात्सर्वाणि मिथ्यारूपाणि। यथा लोहं सत्यम्। तन्निर्मितखड्गछुरिकादीनि कार्यरूपाणि कथनमात्रत्वात् मिथ्यारूपाणि। यथा सुवर्णं सत्यम्। हेमनिर्मितानि कटककुण्डलादीनि कथनमात्रत्वात् मिथ्यारूपाणि। एवमेवायं सद्रूप आत्मा (ब्रह्म) सत्यम्। अस्य कार्यभूतसमस्तनामरूपात्मकं जगत् कथनमात्रत्वान्मिथ्या।

सर्वे प्राणिनः सुखमभिलषन्ति। न कोऽपि दुःखमिच्छति। विद्वांसः सुखप्राप्त्यर्थमिन्द्रियसंयमादीन्याचरन्ति। सुखं विजानीयात्। किं सुखम्?। यो भूमा (महान्) तत् सुखम्। अल्पे सुखं नास्ति। भूमा एव सुखम्। भूमा एव विजिज्ञासितव्यं। को भूमा?। यत्रान्यन्न पश्यति, अन्यन्न शृणोति, अन्यन्न विजानाति, स भूमा। यत्रान्यत्पश्यति, अन्यच्छृणोति, अन्यद्विजानाति, तदल्पम्। यो भूमा तदमृतम्। यदल्पं तन्मर्त्य(मृत्यु-ग्रस्त)म्। स भूमा स्वमहिम्नि प्रतिष्ठितो न प्रतिष्ठितश्च। यो भूमा स आत्मा परमात्मा। य आत्मानं जानाति स स्वराट् (स्वयम्प्रकाशो) भवति। स कामचारो भवति।

१०. बृहदारण्यकोपनिषत्सारः।

अक्षरं ब्रह्म। एतस्याक्षरस्याज्ञायां सूर्याचन्द्रमसौ वर्तेते। एतस्याक्षरपरब्रह्मण आज्ञायां स्वर्गपृथिव्यौ वर्तेते विधृते च। एतस्याक्षरपरमात्मन आज्ञायां निमेष-मुहूर्त्त-दिवस-रात्रि-पक्ष-मास-

ऋतु–संवत्सरादीनि सर्वाणि विधृतानि तिष्ठन्ति । एतस्याक्षरपुरुषस्याज्ञायां गङ्गायमुनादिनद्यो हिमालयात् स्यन्दमाना पूर्वदिशायां वहन्ति । एतस्याक्षरस्याज्ञया मनुष्या दातारं प्रशंसन्ति । यद्यपि देवा अन्यप्रकारेण जीवितुं समर्थास्तथापि ते यजमानदत्तपुरोडाशादिकं प्रसन्नतया स्वीकुर्वन्ति । अर्यमादयः पितरश्च श्राद्धदत्तपदार्थं गृह्णन्ति । यः पुरुष एतदक्षरं ब्रह्म ज्ञात्वा जुहोति, यजते, तपस्तप्यते, स अनन्तफलभाग्भवति । य एतदक्षरब्रह्म अज्ञात्वा अस्माल्लोकान्मृत्युं प्राप्य गच्छति स कृपणः । यश्चैतदक्षरं ज्ञात्वा अस्माल्लोकात्परलोकं गच्छति स ब्राह्मणः (ब्रह्मज्ञानी) । एतदक्षरमदृष्टमपि द्रष्टृ, अश्रुतमपि श्रोतृ, अमतमपि मन्तृ, अविज्ञातमपि विज्ञातृ । अतोऽन्यन्न किमपि दृष्टृ, श्रोतृ, मन्तृ, विज्ञातृ । अस्मिन्नक्षरे सर्वमोतप्रोतम् । अस्मिन् समस्तं ब्रह्माण्डमोतप्रोतम् । रज्जौ भुजङ्गवदारोपितम् । अयं सच्चिदानन्दस्वरूपः परमात्मा विज्ञातव्यो द्रष्टव्यश्च । श्रवण-मनन-निदिध्यासनरूपाराधनया परमात्मा ज्ञायते दृश्यते च । ओम् शम् ।

गोविन्द–भवन, जोधपुर. ता० २२-११-३८	नारायणोत्तरपद-गोविन्देन सुधीमता । दशोपनिषदां सारो रचितः स्यात्सतां मुदे ॥१॥ शराङ्कनिधिभूवर्षे (१९९५) मार्गमासे सिते दले । योधपूर्यां प्रतिपदि समाप्तो भौमवासरे ॥ २ ॥

भाषानुवाद।

यस्मादुत्पद्यते विश्वं यस्मिन्नेव च लीयते।
पुनश्च धार्यते येन तं नमामि सदात्मकम् ॥ १ ॥
यो हि चेतयते विश्वं विश्वेन चेत्यते न यः।
सर्वचेतनरूपश्च तं नमामि चिदात्मकम् ॥ २ ॥
सदा सुखयते विश्वं स्वयम्भूश्च स्वयम्प्रभः।
आनन्दघनरूपो यस्तं नमामि सुखात्मकम् ॥ ३ ॥

"उपनिषीदति प्राप्नोति ब्रह्मात्मभावोऽनया" अर्थ-जिस से ब्रह्म के समीप बैठा जाय वा ब्रह्मात्मभाव प्राप्त किया जाय, वह उपनिषत् है-इस व्युत्पत्ति से ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक वेद के शिरोभाग के वास्ते 'उपनिषत्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह वेद का शीर्षस्थानीय भाग 'वेदान्त' नाम से प्रसिद्ध है। यह वेदान्त ही ब्रह्मविद्या है। ब्रह्म की विद्या 'ब्रह्मविद्या' कहाती है। वही शुद्ध चैतन्य स्वरूप ब्रह्म के साथ अभेदरूप होने से ज्ञान-रूप है। इसीलिये यह ब्रह्मविद्या ब्रह्मज्ञान नाम से पुकारी जाती है। ब्रह्मज्ञान-आत्मज्ञान-तत्वज्ञान ये तीनों नाम पर्यायवाची हैं। इसी को आत्मविद्या भी कहते हैं। ब्रह्मविद्या ही सर्वत्र समता का दर्शन कराती है। ब्रह्मविद्या से ही अज्ञान की ग्रन्थियों का नाश होता है। ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के प्रभाव से कर्म की चञ्चलता नियमित और चित्त अन्तर्मुखी होता है। ब्रह्मविद्या से ही मिथ्या अनुभव का विनाश और परम सत्य की प्राप्ति होती है। ब्रह्म-विद्या से ही एकात्मरस-प्रत्ययसार, अवाङ्मनसगोचर, स्वयम्प्रकाश, विज्ञानस्वरूप, चेतनानन्दघन, रसैकघन, ब्रह्म की प्राप्ति होती है। वेदों के जिस अत्युच्च शिरोभाग में इस ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन

है, वही उपनिषत् नाम से कहा जाता है। इन्हीं उपनिषदों के मन्त्रों का समन्वय और मीमांसा भगवान् वेदव्यासजी ने 'ब्रह्म-सूत्र' में की है। जो 'वेदान्तदर्शन' के नाम से पुकारा जाता है। इन्हीं उपनिषत् रूपी गौओं से गोपालनन्दन भगवान् श्री-कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने विद्वानों के उपभोग के लिये श्रीमद्भ-गवद्गीता में अमृतरूप दूध को दुहा है। इसीलिये उपनिषत्-ब्रह्म सूत्र-श्रीमद्भगवद्गीता ये तीनों ग्रन्थरत्न 'प्रस्थानत्रयी' के नाम से प्रख्यात हैं। भारतवासी समस्त धर्माचार्यों ने इसी प्रस्थानत्रयी के प्रकाश से ही सत्य की खोज की थी।

वेद अपौरुषेय हैं, इसी से अनादि माने जाते हैं। इन वेदों में प्रायः तीन विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इस से वेद के तीन भाग किये जाते हैं, जो 'काण्ड' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कर्मकाण्ड १, उपासनाकाण्ड २ और ज्ञानकाण्ड ३ ये तीन काण्ड हैं। कर्मकाण्ड में कर्मों के समूह का विवेचन है, उपासनाकाण्ड में देवादि की और ईश्वर की आराधना का वर्णन है और ज्ञानकाण्ड में मूलतत्त्व का विचार किया गया है। कर्म और उपासना ये दोनों उस तत्त्व की उपलब्धि में योग्यता प्रदान करते हैं। इसलिये वे साधनस्वरूप हैं। और ज्ञान सिद्धान्तरूप है। वेद का ज्ञानकाण्ड ही उपनिषत् इस नाम से कहा जाता है। वह उपनिषत् 'वेदान्त' अथवा 'आम्नायमस्तक' नाम से पुकारी जाती है। इस से उप-निषत् ब्रह्मज्ञान के स्रोतस्वरूप हैं।

उपनिषदों का महत्व क्या तो इस देश के और क्या विदेश के सब आचार्यों ने मुक्तकण्ठ स्वीकार किया है। वास्तव में उपनि-षदों की महिमा ऐसी ही है। जिस किसी ने ब्रह्म-विद्या के अमृत का पान किया, वह कृतार्थ होगया। उसके न तो कुछ कर्तव्य शेष रहता है और न कुछ प्राप्त करने योग्य पदार्थ ही। ब्रह्माकार-वृत्ति

का वर्णन करने के प्रसङ्ग में वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थ के कर्त्ता ब्रह्म में चित्त लगाने वाले पुरुष की इस प्रकार स्पष्ट रूप से स्तुति करते हैं:—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।
अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मिंल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥

अर्थ–जिस पुरुष का चित्त उस अपार सत्–चित्- आनन्द के समुद्र रूप परब्रह्म में निमग्न हो गया है उस का कुल पवित्र, माता कृतकृत्य और पृथिवी पुण्यवाली हो जाती है ।

ब्रह्मज्ञानी पुरुष की दृष्टि में समस्त संसार सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है । असत् रूप इस संसार और दुःख का उसे न तो अनुभव होता है और न प्रतीति ही होती है । उस की दृष्टि में तो द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि इन तीनों का भेद ही नहीं रहता और सब एक-भाव से रहते हैं । और वह स्वयं एक, निश्चल, निर्बाध, निष्कल, सच्चिदानन्दस्वरूप सत्तामात्र हो जाता है ।

उपनिषत् बहुतसी हैं । नारायणोपनिषत् में एक सौ आठ उपनिषदों के नाम दिये हुए हैं । उन में से केवल दस ही प्रधान हैं जिन के नाम निम्न पद्य में दिये हुए हैं:-

ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्ड–माण्डूक्य–तित्तिरः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ॥

अर्थ–ईश १, केन २, कठ ३ प्रश्न ४, मुण्डक ५, माण्डूक्य ६, तैत्तिरीय ७, ऐतरेय ८, छादोग्य ९ और बृहदारण्यक १०– ये दश हैं ।

इन दश उपनिषदों में ब्रह्म की मीमांसा भली भाँति और नाना प्रकार से की हुई है । उन का क्रमानुसार नीचे सारांश दिया जाता है ।

१. ईशावास्य उपनिषत् का सार ।

यह स्थावर-जङ्गम रूप सर्व जगत् अभिन्न-निमित्त-उपादान कारण रूप ईश्वर से व्याप्त है अर्थात् ईश्वर में से यह जगत् बना है और ईश्वर ने ही जगत् को बनाया है । उस ईश्वर नें इस जगत् को व्याप्त यानी पूर्ण कर रखा है, जैसे कि उपादान कारण रूप मृत्तिका ने घट-शरावादि कार्य को व्याप्त कर रखा है, वैसे ही ईश्वर ने इस जगत् को व्याप्त कर रखा है । अथवा जैसे राजा की दृष्टि द्वारा नगरादि व्याप्त हुए रहते हैं, वैसे ईश्वर से जगत् व्याप्त किया हुआ है । अथवा जैसे मनुष्यों के शरीर वस्त्रादि से व्याप्त वा आच्छादित (ढके हुए) होते हैं, वैसे ईश्वर ने इस जगत् को व्याप्त वा आच्छादित कर रखा है । अथवा जैसे सुवासित पुष्प अपनी सुगन्ध से जल को रमणीय बनाते हैं, वैसे ईश्वर ने अपनी स्फूर्ति से इस जगत् को व्याप्त करके रमणीय बना दिया है । अथवा जैसे प्रवृत्ति की कारण-रूप वासनाएं जीवों के मन को व्याप्त किये हुए हैं, वैसे अन्तर्यामी ईश्वर ने इस जगत् को व्याप्त कर रखा है । यह ईश्वर वायु आदि रूप से चलता है, स्वरूप से नहीं चलता, क्योंकि अक्रिय है । यह ईश्वर अविद्वानों को दूर से भी दूर है, वे करोड़ों वर्षों में भी उसे नहीं पा सकते और विद्वानों के लिये पास से भी पास है, क्योंकि यह सब का प्रत्यगात्मा (अन्तर्यामी) है । यह ईश्वर इस चराचर दृश्य के भीतर है और बाहर भी है । जो इस ईश्वर को सब भूतों में और सब भूतों को ईश्वर में देखता है, वह अभेददर्शी पुरुष किसी की निन्दा वा स्तुति नहीं करता । उस अभेददर्शी को न शोक होता है, न मोह होता है । जो इस ईश्वर को नहीं जानते, वे मरने के पश्चात् अन्धकार रूप तम से घिरे हुए लोकों (नरकों) को प्राप्त होते हैं ।

यह परमात्मा सर्वान्तर्यामी वा सर्वव्यापक, शुद्ध, शरीररहित, क्षत-रहित, स्नायु (नाड़ियों से) रहित, निर्मल, धर्म-अधर्मरूप पाप से रहित, सर्व द्रष्टा वा साक्षी, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयम्भू है।

२. केनोपनिषत् का सार।

यह ईश्वर श्रोत्र का भी श्रोत्र है अर्थात् ईश्वर के सामर्थ्य से श्रोत्र इन्द्रिय अपना विषय 'शब्द' ग्रहण करने में समर्थ होती है। यह ईश्वर मनःका भी मन है, अर्थात् मन जो सर्व विषयों को उपलब्ध करने का कारण है, वह मन ईश्वर की शक्ति से अपने विषयों को उपलब्ध करने में शक्तिमान् होता है। यह ईश्वर वाणी की वाणी है, अर्थात् वागिन्द्रिय ईश्वर के अनुग्रह से शब्द उच्चारण करने का व्यापार करती है। यह ईश्वर चक्षु का चक्षु है, अर्थात् नेत्र-इन्द्रिय ईश्वर की सहायता से अपने विषय 'रूप' को ग्रहण करती है। भाव यह है कि, श्रोत्रादि सब इन्द्रियों की प्रवृत्ति जो अपने अपने विषयों में होती है, उस प्रवृत्ति का कारण-भूत ईश्वर उन सब से विलक्षण चेतन-स्वरूप है, जैसे कि मकान आदि का बनाने वाला राज (कारीगर) मकान आदि से भिन्न होता है। धीर पुरुष देह और श्रोत्रादि इन्द्रियों में से आत्म-बुद्धि त्याग कर इस ईश्वर का आत्म-रूप से साक्षात्कार करके अमृत अर्थात् मरण-रहित (अमर) हो जाते हैं। इन्द्र, वायु और अग्नि आदि समर्थ देवता भी इस सर्व-समर्थ देव ईश्वर के आधीन हैं, उस की सहायता विना कोई किञ्चित् भी करने में समर्थ नहीं है।

३. कठोपनिषत् का सार।

'ओं' यह अक्षर ब्रह्म है। 'ओं' यह ईश्वर का नाम श्रेष्ठ आलम्बन है, परम आलम्बन है, इस आलम्बन को जानकर पुरुष ब्रह्म-

लोक में महत्व को प्राप्त होता है। यह नित्य चैतन्य–रूप आत्मा न तो जन्मता है, न मरता है, यह कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, अज है, नित्य है, शाश्वत है, पुराण है, शरीर के मरने से यह नहीं मरता। जो इस को हन्ता यानी हनन–क्रिया का कर्त्ता मानता है और जो इस को हत यानी हनन–क्रिया का कर्म मानता है, वे दोनों इस को नहीं जानते। न यह कभी मरता है, न मारता है और न मारा जाता है। यह आत्मा–ईश्वर परमाणु आदि सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और आकाश आदि महान् से भी अत्यन्त महान् है, समस्त जन्तुओं की बुद्धि–रूप गुहा में स्थित है अर्थात् बुद्धि से जानने में आता है। इस आत्मा की महिमा को निष्काम पुरुष निर्मल अन्तःकरण के प्रसाद (कृपा) से देखता है और देखकर वीत–शोक हो जाता है, यानी शोक से लक्षित जन्म–मरणादि से रहित हो जाता है। यह आत्मा जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में बैठा हुआ ही दूर चला जाता है यानी साक्षी रूप से स्थित रहता है और सुषुप्ति अवस्था में सोता हुआ सर्वत्र चला जाता है, यानी विशेष ज्ञान के अभाव से सामान्य ज्ञानरूप से सर्वत्र जाता हुआ–सा कहलाता है। यह अनित्य शरीरों में अशरीर रूप से स्थित है। इस महान्, विभु, आत्मा, ईश्वर को जान कर धीर पुरुष कर्तृत्वादि रूप बन्धन से रहित हो जाता है। इस लिये शोक के कारण अज्ञान के निवृत्त हो जाने से पुरुष शोकरहित हो जाता है।

४. प्रश्नोपनिषत् का सार।

जैसे पक्षी वृक्ष के घोंसले में सम्प्रतिष्ठित होते हैं-भली प्रकार से रहते हैं, इसी प्रकार इस स्वयम्प्रकाश ईश्वर में स्थूल, सूक्ष्म, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश सम्प्रतिष्ठित हैं। चक्षु द्रष्टव्य, श्रोत्र श्रोतव्य, घ्राण घ्रातव्य, रस रसयितव्य, त्वक् स्पर्श-

यितव्य, वाक् वक्तव्य, हस्त आदातव्य, उपस्थ आनन्दयितव्य, पायु विसर्जयितव्य, पाद गन्तव्य, मत मन्तव्य, बुद्धि बोद्धव्य, अहङ्कार अहङ्कर्तव्य, चित्त चेतयितव्य, तेज विद्योतयितव्य और प्राण विधारयितव्य—ये सब स्वयम्प्रकाश आनन्दस्वरूप ईश्वर में सम्प्रतिष्ठित हैं। पृथिवी आदि जड़ प्रपञ्च ही नहीं, किन्तु द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता और विज्ञानात्मा पुरुष, ये सभी इस परमात्मा में सम्प्रतिष्ठित हैं। जो इस छायारहित, शरीररहित, वर्णरहित, शुभ्र, शुद्ध अक्षर को जानता है, वह परम अक्षर को ही प्राप्त होता है और सर्व एवं सर्वज्ञ हो जाता है।

५. मुण्डकोपनिषत् का सार।

यह परमात्मा दिव्य है, अमूर्त है, पुरुष है, बाहिर है, भीतर है, अज है, अप्राण है, अमन है, शुभ्र है और अपने कार्य से पर जो अक्षर अव्याकृत है, उस से भी पर है। इस ईश्वर में से प्राण, मन, सर्व इन्द्रियां, आकाश, वायु, ज्योतिः, जल और विश्व को धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न होती है। यह सब भूतों का अन्तरात्मा है। अग्नि इस का सिर है, चन्द्र—सूर्य इस के नेत्र हैं, दिशा श्रोत्र हैं, वेद इस की वाणी है, वायु इस का प्राण है, विश्व हृदय है और पृथिवी इस के पैर हैं। इस से द्युलोक रूप अग्नि उत्पन्न होता है, जिस अग्नि का समिध सूर्य, चन्द्रमा, पर्जन्य, औषधि और पृथिवी हैं। स्वर्ग लोक को गया हुआ जीव सोम से पर्जन्य को आता है, पर्जन्य से वृष्टि द्वारा पृथिवी पर आता है, पृथिवी से औषधि रूप अन्न में आता है, अन्न को पुरुष भक्षण करता है, अन्न से बने हुए वीर्य को योषित् (स्त्री) में सींचता है, उस से बहुतसी प्रजा उत्पन्न होती है। ऋगादि चारों वेद, दीक्षा, यज्ञ, क्रतु, दक्षिणा, संवत्सर, यजमान और लोक, जिन में चन्द्र

पवित्र करता है और सूर्य तपता है, वे सब अक्षर ईश्वर से उत्पन्न होते हैं। देवता, साध्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण, अपान, व्रीहि, यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य, विधि, निषेध, समुद्र, पर्वत और नदियां, सब ईश्वर से उत्पन्न होते हैं।

६. माण्डूक्योपनिषत् का सार।

'ओम्' यह अक्षर ही सब कुछ है। यह जो कुछ भूत, वर्तमान और भविष्यत् है सब कुछ ओङ्कार ही है। दूसरा भी तीनों कालों के सिवा जो कुछ है वह भी ओंकार ही है। यह आत्मा ब्रह्म है। यह सब ब्रह्म है। यह आत्मारूप ओंकार अ-उ-म-नाद रूप से चार पाद (अंशों) वाला है। उन में 'अकार' प्रथम पाद जाग्रत् अवस्था रूप स्थान वाला है। यहां यह बहिःप्रज्ञ यानी बाहिर का जाने वाला होता है। इस के सात अङ्ग और उन्नीस मुख हैं। स्थूल इस का भोग है और इस का नाम वैश्वानर है। द्यु, सूर्य, वायु, आकाश, जल, पृथिवी और आहवनीय अग्नि-ये इस के सात अङ्ग हैं। शिर, चक्षु, प्राण, पेट बास्ति (मूत्रस्थान), पैर और मुख-ये सात स्थान क्रमशः सात अङ्गों के रहने के हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, चार अन्तःकरण-ये उन्नीस इस के मुख हैं।

इस का दूसरा पाद 'उकार' स्वप्न-स्थान वाला है। यहां यह अन्तःप्रज्ञ होता है, यानी हृदय में देखने वाला होता है। जाग्रत् के समान यहां भी इस के सात अङ्ग और उन्नीस मुख हैं। यहां यह वासनामय भोग भोगता है, तैजस इस का नाम है।

तीसरा पाद 'मकार' सुषुप्ति-स्थान वाला है, जहां यह सोता हुआ न कुछ कामना करता है, न स्वप्न देखता है। सुषुप्त-स्थान में एकीभूत, प्रज्ञानघन, आनन्दमय होता है, आनन्द को ही भोगता है, यहां यह चेतोमुख होता है, प्राज्ञ इस का नाम है।

यह सर्वेश्वर है, यह सर्वज्ञ है, अन्तर्यामी है, कारण है, सब भूतों की उत्पत्ति और नाश इस से होते हैं।

चौथा पाद 'नाद' रूप न तो अन्तःप्रज्ञ है, न बहिःप्रज्ञ है, न उभयतः प्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ है, न अप्रज्ञ है, अदृष्ट है, अव्यवहार्य है, अग्राह्य है, अलक्षण है. अचिन्त्य है, अव्यपदेश्य है-शब्दशक्ति का अविषय है, एक आत्मा, इस आकार का प्रत्यय यानी अव्यभिचारी ज्ञान ही इस में सार-प्रमाण है; यह प्रपञ्च से रहित है, शान्त है. यह अद्वैत है। यह चौथा पाद माना जाता है। वह आत्मा है, वह विज्ञेय (जानने योग्य) है, जो इसको जानता है, वह आत्मा द्वारा आत्मा को ही प्राप्त होता है।

७. तैत्तिरियोपनिषत् का सार।

'ओम्' यह शब्द-ब्रह्म है। ओम् यह सर्व-स्वरूप है। ब्रह्म का जानने वाला परमात्मा को प्राप्त होता है, ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है। जिस ब्रह्म-रूप परमात्मा को वाणी और मन दोनों नहीं पहुँचते, किन्तु उसे प्राप्त न करके वापिस लौट आते हैं। उस आनन्द-रूप ब्रह्म को जान कर पुरुष किसी से भी भयभीत नहीं होता। आनन्द यह पर-ब्रह्म है। यह ब्रह्म ही जानने योग्य है। सब से पहले यह जगत् असत् अर्थात् अव्याकृत ब्रह्म रूप ही था। उसी अप्रकट ब्रह्म से इस सत् अर्थात् नाम-रूपात्मक व्यक्त जगत् की उत्पत्ति हुई। उस असत् ब्रह्म ने ही स्वयं अपने को ही नाम-रूपात्मक जगत् रूप से रचा। इसी लिये वह सुकृत (वा स्वकृत वा स्वयं रचा हुआ) कहा जाता है। वह सुकृत ही रस-रूप है। वह ब्रह्म रस-रूप है। वह रस आनन्द रूप है। जिस आनन्द से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर आनन्द के द्वारा ही जीते हैं और प्रलय समय में उसी आनन्द में समा जाते हैं, वह आनन्द ब्रह्म है। अन्न, प्राण, मन,

विज्ञान, आनन्द ये सब ब्रह्म-स्वरूप हैं। आनन्द ही ब्रह्म है। यह भृगु ऋषि की जानी हुई और वरुण की उपदेश की हुई अर्थात् वरुण की भृगु से कही हुई विद्या है। यह विद्या हृदयाकाश-रूप गुहा में परमानन्द अद्वैत ब्रह्म में समाप्त होती है। जो विद्वान् इस को जानता है, वह ब्रह्म में स्थित हो जाता है। वह ब्रह्म ही हो जाता है।

८. ऐतरेयोपनिषत् का सार।

आत्मा दो प्रकार का है। जीवात्मा और परमात्मा। इन में जीवात्मा तो उपासक है और परमात्मा उपास्य है। यह जीवात्मा जिस की प्रेरणा से रूप को देखता है, शब्द को सुनता है, गन्ध को सूंघता है, वाणी को बोलता है. रस वा स्वाद को जानता है, मन से सङ्कल्प करता है, बुद्धि से निश्चय करता है, चित्त से ध्यान करता है और सुखःदुख का अनुभव करता है, अहङ्कार से अहम्भाव अर्थात् ' यह मैं और मेरा ' ऐसा विचार करता है, वही विज्ञान-रूप ब्रह्म है। प्रज्ञान सर्व-स्वरूप ब्रह्म से सर्वत्र-विद्यमान है। यह प्रज्ञान रूप आत्मा ही ब्रह्म है। यही इन्द्र है। यही प्रजापति है। ये सब देवता, ये पांच महाभूत पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश प्रज्ञान में प्रतिष्ठित हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज ये चार प्रकार के स्थावर-जगङ्ग प्राणी सब प्रज्ञान में प्रतिष्ठित हैं। वैसे बीज (कारण रूप), पशु, पक्षी आदि सब प्रज्ञान में प्रतिष्ठित हैं। प्रज्ञान ही ब्रह्म है। प्रज्ञान-रूप चैतन्य आत्मा परमात्मा है। जो इस प्रज्ञान-रूप ब्रह्म को जानता है, वह इस लोक से जाकर स्वर्ग लोक में स्वयम्प्रकाश-रूप ब्रह्म में सब कामनाओं को प्राप्त होकर अमृत अर्थात् अमर हो जाता है।

९. छान्दोग्योपनिषत् का सार ।

यह सत् ही सृष्टि के पूर्व एक अद्वितीय था। सब जगत् इसी का स्वरूप है। वह सत्य है, वह आत्मा है, वह तू है। इस एक के जानने से सब का ज्ञान हो जाता है। जैसे मृत्तिका सत्य है, मृत्तिका के कार्य घट-शराव आदि वाणी-मात्र होने से मिथ्या हैं। जैसे लोहा सत्य है, तलवार, चाकू आदि लोहे के कार्य कथन-मात्र होने से मिथ्या हैं और जैसे सुवर्ण सत्य है, सुवर्ण के कटक-कुण्डल आदि कहने-मात्र होने से मिथ्या हैं। इसी प्रकार यह सत्-रूप आत्मा सत्य है और इस का कार्य नाम-रूप जगत् कथन-मात्र होने से मिथ्या है।

सब सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। विद्वान् सुख के लिये इन्द्रियसंयमादि करते हैं। सुख को जानना चाहिये। सुख क्या है? जो भूमा यानी महान् है, वह सुख है। अल्प में सुख नहीं है, । भूमा ही सुख है। भूमा को जानना चाहिये। भूमा क्या है? जहां दूसरे को नहीं देखता, दूसरे को नहीं सुनता, दूसरे को नहीं जानता, वह भूमा है। जहां दूसरे को देखता है, दूसरे को सुनता है, दूसरे को जानता है, वह अल्प है। जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह मर्त्य वा मृत्यु-ग्रस्त है। जो इस भूमा को जानता है, वह स्वराट् होता है और सब लोकों में उस का काम-चार होता है।

१० वृहदारण्यकोपनिषत् का सार ।

इस अक्षर परमेश्वर की आज्ञा में सूर्य और चन्द्रमा वर्तते हैं। इस अक्षर की आज्ञा में स्वर्ग और पृथवी ठहरे हुए हैं। इस की आज्ञा में निमेष, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर हैं। इस अक्षर की आज्ञा से गङ्गा-यमुनादि नदियां हिमालय पर्वत

से निकल कर पूर्व दिशा को बहती हैं । इस अक्षर की आज्ञा से दानी की मनुष्य प्रशंसा करते हैं । देवता अन्य प्रकार से जीने में समर्थ हैं तो भी यजमान के दिये हुए पुरोडाशादि को प्रसन्नता से ग्रहण करते हैं और अर्यमादि पितर श्राद्ध में दिये हुए पदार्थों को लेते हैं । जो इस अक्षर को जान कर हवन करता है, यजन करता है और तप करता है, वह अनन्त फल पाता है । जो इस अक्षर को न जान कर इस लोक से मर कर जाता है, वह कृपण है और जो इस को जान कर इस लोक से मर कर जाता है वह ब्राह्मण है । यह अक्षर अदृष्ट होकर द्रष्टा है, अश्रुत होकर श्रोता है, अमत होकर मन्ता है, अविज्ञात हो कर भी विज्ञाता है, इस के सिवा अन्य द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, विज्ञाता नहीं है । इस से समस्त ब्रह्माण्ड ओत–प्रोत है, रज्जु में भुजङ्गादि के समान आरोपित है । यह सच्चिदानन्द-स्वरूप परमेश्वर जानने और देखने योग्य है । श्रवण-मनन-निदिध्यासन रूप आराधना से ईश्वर जानने और देखने में आता है । इति शम् ।

इति दशोपनिषत्सार–भाषानुवाद ।

नारायणोत्तरपद–गोविन्देन सुधीमता ।
दशोपनिषदां सारो रचितः स्यात् सतां मुदे ॥

गोविन्द–भवन,
जोधपुर ।
ता० २४-११-३८.

गोविन्द.

* ॐ *

मनुष्यजन्मनः सार्थक्यम् ।

अयि पाठकाः,

लोके मनुष्यजन्म दुर्लभम् । पूर्वजन्मविहितशुभकृत्यानामेवैष परिपाकः । पूर्वजन्मजनितं कर्मैवात्र कारणं वर्तते । तत्राप्यस्मिन् जम्बूद्वीपवर्तिनि दृश्यमाने लोके (भारतवर्षे) जन्म विशिष्यते, यथा–विष्णुपुराणे—

> अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ! ।
> यतो हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः ॥
> कदाचिल्लभते जन्तुः मानुष्यं पुण्य-सञ्चयात् ।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागाः । इत्यादयः ।

केचित्तु विषयासक्तमनसः, धनजनमदावलिप्ताः, गार्हस्थ्य-भारवाहकाश्च सन्तः, अतो प्राक्सञ्चितपुण्यकर्मणि ऐहिक-जीवन-लीलां समाप्य यथागता निवर्तन्ते । अन्ये च भगवद्भक्ति-परायणाः, निष्ठाः, निष्कामं कर्म कुर्वन्तोऽभीप्सितं पन्थानं परिष्कृत्येष्टं साधयन्ति । तत्र भगवद्वाक्यम्—

> ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
> लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

ब्रह्मणि परमेश्वरे आधाय समर्प्य सङ्गं फलाभिलाषं त्यक्त्वा ईश्वरार्थं भृत्य इव स्वाम्यर्थं स्वफलनिरपेक्षया करोमीत्यभिप्रायेण कर्माणि लौकिकानि वैदिकानि ह करोति यः लिप्यते न स पापेन पापपुण्यात्मकेन कर्मणेति यावत् । यथा पद्मपत्रमुपरि प्रक्षिप्तेनाम्भसा

न लिप्यते तद्वत् भगवदर्पणबुद्ध्यानुष्ठितं कर्म बुद्धि-शुद्धि-फलमेव स्यात् ।

अन्यच्च—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

निष्कामाः सम्यग्दर्शिनस्तु अन्यो भेददृष्टिविषयो न विद्यते येषां ते अनन्याः सर्वाद्वैतदर्शिनः सर्वभोगनिस्पृहाः अहमेव भगवान् वासुदेवः सर्वात्मा न मद्व्यतिरिक्तं किञ्चिदस्तीति ज्ञात्वा तमेव प्रत्यञ्चं सदा चिन्तयन्तो मां नारायणात्मत्वेन ये जनाः साधनचतुष्टयसम्पन्नाः संन्यासिनः परि सर्वतोऽनवच्छिन्नतया पश्यन्ति ते मदनन्यतया कृतकृत्या एवेति शेषः, अद्वैतदर्शनिष्ठानामत्यन्तनिष्कामानां तेषां स्वयमप्रयतमानानां कथं योगक्षेमौ स्यातामित्यत आह तेषां नित्याभियुक्तानां नित्यमनवरतमादरेण ध्याने व्यापृतानां देहयात्रामात्रार्थमप्यप्रयतमानानां योगं अलब्धस्य लाभं, क्षेमं च लब्धस्य च परिरक्षणं, च शरीरस्थित्यर्थं योगक्षेममकामयमानानामपि वहामि प्रापयाम्यहमिति ।

सत्यनिष्ठाः, धर्मोपजीवनः, कर्तव्यपरायणाः, परोपकारमेव जीवनोद्देश्यं मन्यमानाः कैवल्यमपि नैव काङ्क्षन्ति । तेषु केचिद्देश–सेवां, धर्म–सेवां, समाज–सेवां, साहित्य–सेवाञ्च विदधानाः कालं यापयन्ति, ते तु जीवन्मुक्ता एव । “ परोपकाराय सतां विभूतयः ” इति कवि–वचनं चरितार्थं कुर्वन्ति । एतदेव मनुष्यजन्मनः सार्थक्यम् ।

पं० मनसाराम शर्मा शास्त्री,
संस्कृताध्यापक, श्री उम्मेद स्कूल, जोधपुर.

———

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

हिन्दी-गद्य।

प्रार्थना।

जगदीश! विभो! जगपाल! प्रभो!, विनती जनकी मनमें धरिये।
शरणागत की प्रतिपाल करो, सब ताप हरो करुणा करिये ॥ १ ॥
तुम ही जग की रचना करते, तुम ही जग के प्रतिपालक हो।
तुमही जग के लय को करते, तुम ही जग के अघ को हरिये ॥२॥
तुम नाथ सदा सब दीनन के, दुख दूर करो सुख को भरिये।
अति दुर्गुण से भरपूर सभी, करुणाकर! नाथ! कृपा करिये ॥ ३ ॥
तुम चेतन के चित-रूप तुम्हीं, तुम प्राणन के परिचालक हो।
तुम इन्द्रिय-मानस-प्रेरक हो, तुम ही जन की भव-भी हरिये ॥ ४ ॥
जब गर्भ पड़े यह जीव हरे!, तब दूध करो जननी–थन में।
अब बाहिर जीव रहें जग में, उनकी प्रतिपाल न क्यों करिये? ॥५॥
जगदेव! दयाघन! अर्ज करूं, अज! 'गोविंद' की विनती सुनिये।
कर जोड़ पड़ूं पद पङ्कज पै, शरणागतरक्षक! उद्धरिये ॥ ६ ॥

प्रार्थना।

हे हरे! हर पाप तन के, वचन के मन कर्म के।
शुद्ध अन्तःकरण करके, ज्ञान निर्मल दीजिये ॥ १ ॥
ज्ञान से हो प्रेम हरि में, प्रेम से हरि–भजन हो।
भजन से हो भक्ति हरि में, शरण निज में लीजिये ॥ २ ॥
जो रटें शुचि नाम हरि का, ध्यान में भरपूर हो।
दूर कर सारे अघों को, मुक्ति उनको दीजिये ॥ ३ ॥
नाम अघहर है तुम्हारा, निगम आगम उच्चरें।
'आप से भी नाम बढ़ कर', उक्ति सार्थक कीजिये ॥ ४ ॥
दूर कर पापाचरण को, प्रेम मन उपजाइये।
मुक्ति चाहे नहीं 'गोविंद', भक्ति मुझ को दीजिये ॥ ५ ॥

प्रार्थना ।

भगवन् ! यह नम्र विनती, कर जोड़ के सुनाता ।
जग में नहीं हमारा, भ्राता जनक न माता ॥ १ ॥
सब स्वार्थ के सगे हैं, स्त्री पुत्र मित्र सारे ।
कोई नहीं हमारा, परलोक में सु-त्राता ॥ २ ॥
अघ-पुञ्ज से भरा हूं, नित पाप ही बढ़ाता ।
अब शीघ्र दो सहारा, हरि-भक्ति को कमाता ॥ ३ ॥
करणी न अन ! निहारो, अपना विरुद विचारो ।
इस दास को उबारो, लख जन्य-जनक-नाता ॥ ४ ॥
अच्छा बुरा हूं जैसा, नहिं आप से छिपा हूं ।
पद-कञ्ज में पड़ा हूं, सुध लेहु शरण-दाता ॥ ५ ॥
तेरे विना हमारी, कोई नहीं है सुनता ।
किस से कहूं हे भगवन् !, सब विश्व के विधाता ॥ ६ ॥
जग में कुपूत होते, पर नहीं कु-तात देखा ।
बन चरण-शरण चेरा, "गोविंद" नाम गाता ॥ ७ ॥

आरती ।

जय गोविन्द ! हरे !, प्रभु ! जय गोविन्द ! हरे ! ॥ टेर ॥
अलख अगोचर अक्षर, अच्युत अघहारी ।
अनघ अनन्त अनुत्तम, अज अणु अविकारी ॥ १ ॥ जय०
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर, तीन रूप धारी ।
कर्ता भर्ता धर्ता, प्रभु सब संहारी ॥ २ ॥ जय०
सत चित आनँद रूपी, निखिल विश्वत्राता ।
निर्गुण सगुण अनामय, करुणामय धाता ॥ ३ ॥ जय०
ब्रह्म अकर्ता कर्ता, साक्षी सुखकारी ।
सत्य सनातन सर्वग, अकल कलाधारी ॥ ४ ॥ जय०

राम कृष्ण नरहरि नर, नारायण स्वामी।
मूर्त अमूर्त निरञ्जन, जग अन्तरयामी ॥ ५ ॥ जय०
गो-गोपी-जन-वल्लभ, ब्रज-जन-सुख-दानी।
नन्द-यशोदा-मन-हर, प्रिय राधा रानी ॥ ६ ॥ जय०
हम सब दीन हीन जन, विनय श्रवण कीजे।
'गोविंद' मांगे वर यह, चरण-शरण दीजे ॥ ७ ॥ जय०

आरती।

जय जगदीश ! हरे !, प्रभु, जय जगदीश ! हरे !
मायातीत महेश्वर, मन-वच-बुद्धि परे ॥ जय जगदीश हरे ॥ टेर ॥
आदि अनादि अगोचर, अविचल अविनाशी।
अतुल अनन्त अनामय, अमित-शक्ति-राशी ॥ जय० ॥ १ ॥
अमल अकल अज अक्षर, अव्यय अविकारी।
सत-चित-सुखमय सुन्दर, शिव सत्ताधारी ॥ जय० ॥ २ ॥
विधि हरि शङ्कर गणपति, सूर्य शक्ति रूपा।
विश्व चराचर तुम ही, तुम ही विश्वभूपा ॥ जय० ॥ ३ ॥
माता पिता पितामह, स्वामी सुहृद् भर्ता।
विश्वोत्पादक पालक, रक्षक संहर्ता ॥ जय० ॥ ४ ॥
साक्षी शरण सखा प्रिय, प्रियतम पूर्ण प्रभो !।
केवल काल कला-निधि. कालातीत विभो ॥ जय० ॥ ५ ॥
राम कृष्ण करुणामय, प्रेमामृत-सागर।
मनमोहन मुरलीधर, नित-नव नट-नागर ॥ जय० ॥ ६ ॥
सब-विध-हीन मलिन-मति, हम अति पातकि-जन।
प्रभु-पद-विमुख अभागी, कलि-कलुषित तन मन ॥ जय० ॥ ७ ॥
'गोविंद' पतित-उधारण, पावन सबहिं करो।
अपना विरुद विचारो, आवागमन हरो ॥ जय० ॥ ८ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

कृष्ण–राम–अवतार–समता ।

कृष्णचन्द व्रजचन्द को, गोपीवल्लभ श्याम ।
लीला–पुरुषोत्तम परम, 'गोविंद' करे प्रणाम ॥ १ ॥
लक्ष्मण दक्षिण में लसे, सोह जानकी वाम ।
सन्मुख ठाढ़े मारुती, 'गोविंद' वन्दै राम ॥ २ ॥
कृष्ण पछारे कंस को, राम हने दशशीश ।
लिय उबार जननी–जनक, तीय कोशलाधीश ॥ ३ ॥
कृष्ण उधारे नृग नृपति, राम अहल्या नार ।
दोनों दीनदयाल को, प्रनमों वार हजार ॥ ४ ॥
इन्द्र–धनुष को कृष्ण ने, महादेव–धनु राम ।
तोड़े दोनों देवने, देव–धनुष घनश्याम ॥ ५ ॥
कृष्ण वरी श्रीरुक्मिणी, सीय स्वयम्वर राम ।
दोनों लक्ष्मीरूप थीं, त्रिभुवन में अभिराम ॥ ६ ॥
कृष्ण ग्वाल गोलोक में, प्रजा राम साकेत ।
लाये जन निज लोक में, दोनों कृपानिकेत ॥ ७ ॥
मित्र सुदामा कृष्ण का, राम मित्र सुग्रीव ।
किये निहाल सुरेश ने, दे धन जन सुख सीव ॥ ८ ॥
गुरु सांदीपनि कृष्ण के, कौशिक[१] गुरु रघुनाथ ।
मरा पुत्र लाकर दिया, रक्ष हने जा साथ ॥ ९ ॥
रौहिणेय[२] थे कृष्ण के, लक्ष्मण के श्रीराम ।
शेष देव प्रगटे तभी, भ्राता रूप ललाम ॥ १० ॥
कृष्ण राम[२] प्रद्युम्न पुनि, सह अनिरुद्ध विचार ।
राम–लखन–भरताऽरिहन[३], चतुर्व्यूह अवतार ॥ ११ ॥

---

१ विश्वामित्र २ बलदेवजी ३ शत्रुघ्न ।

कृष्ण ज्ञान अर्जुन दिया, भगवद्गीता जान।
राम-ज्ञान लक्ष्मण सुना, रामगीत पहचान॥ १२॥
गोवर्धन तीरथ रचा, धारण कर नँदलाल।
रामेश्वर की स्थापना, करी राम नरपाल॥ १३॥
जनकराज श्रुतदेव से, मिले कृष्ण बलराम।
भरद्वाज अरु घटज[1] के, दर्श किये श्रीराम॥ १४॥
कृष्ण पछाड़ी पूतना, हनी ताड़का राम।
दुष्टा स्त्री को दण्ड दे, दिया अधम निज धाम॥ १५॥
कृष्ण तजी मथुरा पुरी, राम अयोध्या जान।
गये द्वारका लङ्क को, निज मर्यादा मान॥ १६॥
यमुनानिग्रह कृष्ण कर, सागर-निग्रह राम।
यमुना को निर्विष करी, सिन्धु सुखा किय नाम॥ १७॥
गिरिधारी गिरि धार कर, सिन्धु-सेतु कर राम।
कृष्ण राम अवतार ले, किया अलौकिक काम॥ १८॥
कृष्ण हरै मद इन्द्र का परशुराम-मद राम।
किया गर्व-गञ्जन स्वभू, तीन लोक सुख धाम॥ १९॥
उग्रसेन सहदेव[2] को, राज्य दिये श्रीकृष्ण।
दे सुग्रीव विभीषणहिं, राघव किये वितृष्ण॥ २०॥
सहा विरह श्रीकृष्ण ने, गोपीजन अभिराम।
तृष्णा कनक-कुरङ्ग[3] कर, जनक-नन्दिनी राम॥ २१॥
कृष्ण तजे वसुदेव को, मात देवकी साथ।
कौशल्या दशरथ तजे, रघुपति कोशलनाथ॥ २२॥
किया प्रेम श्रीकृष्ण ने, ग्वाल-बाल के साथ।
करी मित्रता रामने, केवट का गह हाथ॥ २३॥

---

१ अगस्त्य २ जरासन्ध का पुत्र ३ सुवर्ण मृग।

कृष्ण दही काशी-पुरी, लङ्का राघव जान।
कर विनाश निज शत्रु का, राखी पत भगवान ॥ २४ ॥
उद्धव थे श्रीकृष्ण के, रघुपति के हनुमान।
अनुचर आज्ञा-शिर-धरन, बुद्धिमान बलवान ॥ २५ ॥
कृष्ण-राम-समता लिये, रचा पचीसी-छन्द।
कृष्ण-राम अर्पण किया, भक्ति सहित 'गोन्विद' ॥ २६ ॥

पण्डितजी का हिन्दी अनुराग।

(१)

हिन्दी में अब रामकर्ण-बुध की जो लेखनी है चली,
श्रीमद्-भागवतानुवाद करते भी सो न किञ्चित् खली।
श्रीब्रह्मस्तुति में व वेद-नुति में कैसा समुत्कर्ष है,
हिन्दी के अनुवाद की सरलता का एक आदर्श है ॥

(२)

टीकायें अब तो अनेक तुलसी-रामायण-ग्रन्थ की—
पाते हैं, पर आपकी प्रथम थी दिग्-दर्शिनी पन्थ की ॥
श्रीमन् ! काव्यप्रकाश को स्फुट किया द्वारा स्वभाषार्थ के,
मानो सूर्यप्रकाश में कर दिये आलोक गूढार्थ के ॥

(३)

* हे रामकर्णक ! द्विरेफक ! मारवाड़ी—
जूही-कली प्रथमतः तुमने उखाड़ी।

---

* 'रामकर्ण' नाम से दो रेफ होने के कारण प्रस्तुत में द्विरेफ (भ्रमर) का आरोप दिखलाते हुए स्वाभाविक प्रथम दोनों भाषाओं के अनुराग का अपकर्ष प्रकट कर तीसरी हिन्दी भाषा के अनुराग का उत्कर्ष युक्ति से वर्णन किया गया है। जूही, प्रियंगु और वासन्ती समयानुसार क्रम लिखा करती हैं। लेखक।

पा बीच संस्कृत--प्रियंगु-लता सम्हाली,
हिन्दी-वसन्ततिलका पर प्रीति पाली ॥

पण्डित नित्यानन्द शर्मा शास्त्री
आशुकवि-कविराज, जोधपुर ।

हठी-हमीर ।

दोहा-

श्री करणी[१] अरु सरसती, दो युक्ती वरदान ।
करूँ राव हम्मीर का, विधि युत युद्ध वखान ॥ १ ॥
हुआ भूप हिन्द्वान में, वीर धीर चहुँवान ।
कीरति सची की कथा, जाहिर हुई जहान ॥ २ ॥
महावीर हम्मीर जब, राजै रणथम्भोर[२] ।
शंकै चहुँ दिशि शत्रुगन, जालिम ह्वैं कमजोर ॥ ३ ॥
ता दिन दिल्ली तख्त पै, दिपै अलाउद्दीन ।
करी यवन तिंह काल में, दुनिया को वेदीन ॥ ४ ॥
बली भूप हिन्दवान के, मान गये हिय हार ।
बीर हम्मीर विरुद्ध ह्वै, तमकि गही तलवार ॥ ५ ॥

कवित्त-

बादशाह जालिम अलाउद्दीन खिलजी था,
बजा दिया जुलमों का डङ्का एक आन में ।
मारे गये कितने ही बेगुनाह बिचारे नर,
हिन्दुन की चोटी काटी गई हिन्दुवान में ॥

१-बीकानेर राज्य के देशनोक ग्राम में प्रसिद्ध देवी ।
२-राजपुताने का प्रसिद्ध किला, यह जयपुर राज्यान्तर्गत है ।

देव–धर्म का न कहीं दिखता सहारा था न,
बट्टा लगा बड़े बड़े शूरन की श्यान में।
'जोगीदान' आर्यों का गया था समस्त जोश,
जहां देखो तहां हाहाकार था जहान में ॥ ६ ॥
यवन अनी की सुनि धाक भूप भारत के,
आरत ह्वै देश छोड़ी दूर भाग जाते थे।
जहां तहां उपद्रवी देते थे महान दुःख,
दीन दुखी हिन्दुओं का माल लूट खाते थे॥
पत्ते चलदल के ज्यों प्रजा–दल कांपते थे,
मुछमुण्डे मुसल्ले हलचल मचाते थे।
धर्म छांडि जोलों बनजाते ना विधर्मी तोलों,
आतताई तुरकों से त्राण नहीं पाते थे ॥ ७ ॥
एक बार बादशाह सज के शिकार गया,
साथ में ही हरम अमीर लोग सारे थे।
खेलता था मृगया मृगेन्द्र ज्यों अरण्य मांहि,
आयुध समस्त निज अङ्ग पै सम्हारे थे॥
कई मीर तीर तकि मारते अहेरी पर,
कोई शमशेर शेर शीश पै उबारे थे।
मानों पशु जाति नर जाति के प्रगट वहां,
बने ठौर ठौर मल्ल–युद्ध के अखारे थे ॥ ८ ॥
बादशाह साथ में ही बेगम मँगोलिया[१] थी,
ताहि रूप आगे अप्सराएँ शरमाती थी।
ऐसी सुन्दरी के पांय परी परी रहती थी,
रती बिना रती होय हाजिर रहाती थी॥
मृगया निराली खेलती थी मृगलोचनी वो,

१–मंगोलिया देश के नाम से प्रसिद्ध मंगोलिया बेगम।

एक बार ही में दो शिकार मार जाती थी।
जन्तु लोट पोट होत आयुध की चोट उतै,
इतै नैन बान तैं सुजान वेध जाती थी ॥ ९ ॥

हुआ एक शाह[१] था शिकार बीबी साहिबा का,
होके बेकरार लगा नारि को निरखने।
चक्षु द्वै चकोर लगे चन्द्रमुखी ओर तब,
बांधि एक टोर तुले प्रेम को परखने ॥
निज नारि मान हारिणी को लखि रति-नाह,
मारे पुष्प बान अङ्ग लगिगे फरक ने।
मार की अपार मार धीरज बिसारि हारि,
सुकुमारि नारि लगी छतियां धरकने ॥ १० ॥

यार से मिलन काज नारि वो तयार हुई,
लाज को बिडारी तुली जार कर्म करने।
तजि के सहेली ह्वै अकेली चली जङ्गल में,
केलि करने की चाह चित्त लगी धरने ॥
इतने में आशिक अचानक ही पास आय,
मन्द मुसकाय काम पीर लगा हरने ॥
मानों सुलतान की सकेली हुई सम्पति को,
पाय अनायास मीर थैली लगा भरने ॥ ११ ॥

विश्व में विख्यात यह होनहार होके रहै,
रोके नहीं रुकै काहू दैत्य देव नर के।
आगया संयोगवश वहां पै सिपाही एक,
देख हुआ दुखित अचम्भा खूब करके ॥

१—इतिहासों में इसका नाम मैहम शाह लिखा है। कहीं कहीं मीर मंगोल भी लिखा है।

पीछे लौट पड़ा वो अन्याय लखि दबे पांव,
बोले ना वचन घूँट पीके ज्यों जहर के।
मैहम की दीठ ज्यों ही पड़ी सन्तरी की पीठ,
बीबी छिटकाय कर शाह भगा डरके ॥ १२ ॥
यहां सन्तरी ने आय लाय वो लगाय दई,
सुनि सुलतान लगा क्रुद्ध हो कड़कने।
मानों ज्वाल झड़ने लगी थी लाल आंखिन तें,
त्योरियां चढ़ी थी होठ लगे थे फड़कने ॥
सेनापतियों के एक साथ गये तोते सूख,
मूँक भये सारे लगी छतियां धड़कने।
बोला यमराज की ज्यों करके आवाज वीर,
कहां वह मैहम है ? मारूँ ! लगा बकने ॥१३॥
वहां शाह साहब के होश सब हवा हुए,
रहा ना ठिकाने चित्त लाले पड़े प्राण के।
कहां जावै, कहा करै, मन में विचार आवै,
कैसे क्या बचावें जान हुए टके श्यान के ॥
आखीर में आगया विचार एक चित्त मांहि,
रहना न यहां भला भागा यह मान के।
पक्का प्रणधारी है हमीर भूप भारत में,
शरण गहे की लाज राखे दीन जान के ॥ १४ ॥
खूँखवार शेर की ज्यों बादशाह बोलता था,
ताहिं सुनि बेगम के गम का न पार था।
हुरम जहाज पड़ी शोक पारावार बीच,
केवट भी छोड़ि भगा कोई न आधार था ॥
" सत बार है धिकार ऐसें नीच कार पर,
बार बार बीबी को यह आता विचार था।

जो पै आज खुदा जान बचाये तो लाख पाये,
खतर्नाक खांविद का खोफ बेशुमार था ॥ १५ ॥
बेगम को देखते ही बादशाह पूछता है
बता मुझे इसी वक्त जो भी कुछ बात थी ।
सुनते ही सननाटा छा गया शरीर मांहि,
आंखों पं अन्धेरी छाई मानो काल-रात थी ॥
कांपती जबान से बयान किया हे हजूर,
पुरनूर ! इस में तो मेरी ना बसात थी ।
मारो भल छोड़ो यह चेरी तव चाकर है,
दासी पर ' मैहम ' की अनुचित घात थी ॥१६॥
ध्यान देय बीबी का बयान सुनि पातशाह,
धुनि निज शीश कहा तू तो बेकसूर है ।
साफ साफ कहने पर माफ किया आज तुझे,
जानता हूँ मैं भी पाक साफ तू जरूर है ॥
सुभट सिपाही सुनो जुल्म और ज्यादती से,
मैहम ने बदी कर दई भरपूर है ।
होवे जिस हालत में इसी वक्त हाजिर हो,
देखें वह जाता अब कितनीक दूर है ॥ १७ ॥

दोहा--

सोचा मैहम शाह ने, आश्रय है नहिं और ।
चुपके चुपके चोर ज्यों, भागा रणथम्भोर ॥ १८ ॥

कवित्त--

बार बार द्वार पर दीन ह्वै पुकार करी,
शरण गही है मैं हमीर हमगीर की ।
मैं तो हूँ अनाथ अरु आप हैं अनाथ-नाथ,
दीजै मम साथ कही कथा नकसीर की ॥

आप के बगैर मुझे अन्य है सहारा नहीं,
हारा हिय हेरि यह बात है अखीर की ।
गरीबनवाज महाराज सिरताज आज,
लाज आपको है अब मेरे या शरीर की ॥ १९ ॥
शाह की पुकार सुनि वीर वो हमीर भूप,
बोला धरि धीर अरे कायर क्यों कांपता ।
ध्यान रहे तुझे मेरे वचन प्रमाण यह,
जावैगा जरूर हुय जीवन का जाबता ॥
मेरे दृढ़ दुर्ग में घुसे के बाद याद रहै,
हिम्मत है किसकी जो पाड़े फिर भी पता ।
जो पै चढ़ि आवैगा अलाउद्दीन बादशाह,
पावैगा न तुझे खाय जावैगा वह खता ॥ २० ॥
मुलजिम मैहम की करते सिपाही खोज,
जांच लिया शाह है हमीर की शरण में ।
याद रहै वीर चहुँवान आगे कोई शत्रु,
विजय न प्राप्त कर सकै जूझि रण में ॥
कह रहे बार बार भारत में वीर लोग,
पर्शुराम से भी बढ़ गया ये तो प्रण में ।
शाह का यहां से यारो ! असम्भव हाथ,
पारथ भी मात यहां प्रतिज्ञा-करण में ॥ २१ ॥

छप्पय

कठिन समझ कर काम, जीतना नृप हमीर से ।
लौट गये वह सुभट, होय मन में अधीर से ॥
बादशाह से जाय, कही सब सत्य कहानी ।
सुन कर यह सुलतान पत्र लिखने की ठानी ॥
दे पत्र कहा निज दूत से, कहना यह नरनाह को ।

भेज दो बहुत जल्दी यहां, मुजरिम मैहम शाह को ॥२२॥
दौरि गया वह दूत, पत्र ले रणत-भँवर को।
दुर्ग-द्वार पर पहुँचि, इत्तला दी अन्दर को॥
यह सुनि राउ हमीर, बुलाया दूत पास में।
कहा उसे, कह खबर, खोल कर आम-खास में॥
पढ़ दिया खुलासा पत्र का, चर कहता समाचार को।
म्हाराज भेजिये साथ मम, जल्दी मैहम जार को ॥२३॥
सुनिये दूत सुजान, ध्यान दे मेरी बातें।
मिलै न मैहम शाह, घालिये कितनी घातें॥
जो आया मम शरण, जान करके प्रणधारी।
क्यों कर भेजों उसे, अलाउद्दीन अगारी॥
समझाय कहो सुलतान से, प्रण है यही हमीर का।
जो शरणागत हित जाय तो, सोच न तनिक शरीर का ॥२४॥
ज्यों ही सुना जवाब, भूप हम्मीर सुभट का।
एक मिनिट भी और, दूत तिंह ठोर न अटका॥
किया कूँच तत्काल, दाल गलती नहिं देखी।
दिल्ली पहुँचा दौरि, मिली मिट्टी में शेखी॥
करके सलाम बादशाह को, समाचार चर ने कहा।
उस समय अलाउद्दीन का, चित्त ठिकाने नाहिं रहा ॥२५॥
करके अति ही क्रोध, क्रूर दिल्लीपति कड़का।
कितनी सी है रात, और कितना सा तड़का॥
जो चाहूँ तो उसे, कैद कर यहां बुलाऊँ,
अथवा रणथम्भोर, तोरि रज मांहि मिलाऊँ॥
कहि बात बड़ी लघु बदन से, करता व्यर्थ गरूर है।
मम अग्र राउ हम्मीर का, कहिये क्या मकदूर है ॥ २६ ॥
एक दफा फिर उसे, दूत जाकर समझा दो।

मरता क्यों बिन मोत, शाह[1] दिल्ली भिजवादो ॥
क्रोध अग्नि में कूदि, जलें ज्यों हिन्दू राजा ।
क्यों जलता उस तरह, शरण दिल्ली की आजा ॥
जो देख हमारा दब दबा, हिन्दू हुए अधीन हैं ।
तो ताकत क्या हम्मीर की, नाम अलाउद्दीन है ॥ २७ ॥
गया दुबारा दूत, हुकम ले नृप हमीर पै,
कही जबानी कथा, अखिल-हिन्दुवान-वीर पै ॥
सुनि कासिद[2] की बात, बचन नरनाह उकारें ।
बकता है पतशाह, वृथा ही बिना विचारें ॥
जो एक बार तो काल भी, आवै तो उससे लड़ैं ।
मरजायँ भले ही युद्ध में, (पर) पांव नहीं पीछे पड़ैं ॥२८॥
सच्चे क्षत्री सुभट, आन पर मरते आये ।
हम भी तो हैं उसी, वीर जाती के जाये ॥
प्राण भले ही जायं, बचन नहिं जाने देंगे ।
शत्रुन से दिल खोल, युद्ध में लोहा लेंगे ॥
जा कहो अलाउद्दीन से, लड़ने को तय्यार हैं ।
हे दूत ! राउ हम्मीर की, यह अन्तिम ललकार है ॥२९॥
ऐसा उत्तर पाय, चर हुआ रफ्फूचक्कर ।
किया कूँच दर कूँच, ध्यान दिल्ली दिशि धर कर ॥
आय करी सब अरज, बात जो कुछ थी बरती ।
कही बना कर कथा, अलाउद्दीन अखरती ॥
चहुँवान हमीर हजूर से, लड़ने को तय्यार है ।
उस मुजरिम मैहम शाह को, देने से इनकार है ॥ ३० ॥
सुनी दूत के साथ, बात यह बादशाह ने ।
लोचन करके लाल, कहा झट शहनशाह ने ॥

१-मैहम शाह २-पत्र पहुंचाने वाला दूत ।

करो फौज का कूँच, एक दम नृप चौहान पै।
देखें क्यों कर मरै, राउ हम्मीर आन पै ॥
भिड़ बादशाह से विजय का, उसको खास खयाल है।
है क्या मजाल हम्मीर की, कर में जब करवाल है ॥३१॥

छन्द पद्धरी (पज्झटिका)

सेनापति सुनके हुकम शाह। निज चमू ओर फेरी निगाह ॥
करि बादशाह से झट सलाम। चल पड़े तयारी हित तमाम ॥३२॥
बुलवाकर अपने सुभट पास। दे दिया हुकम फिर आम खास।
सुनि दौड़ चले म्हावत मदान्ध। आजानुबाहु अरु अन्ध-कन्ध ॥३३
खोले डगत्रेड़िग से मतङ्ग। ढँग पील देख हुई बुद्धि तङ्ग।
उत्तङ्ग देह परसत अकाश। मनु बैठे बादल भूमि पास ॥ ३४ ॥
फुफकारत सुंडन से फुहार। बारिद मनु फैंकत वारि-धार ॥
उत्तङ्ग काम आवत मतङ्ग। मनु चले नील गिरि भरि उमङ्ग ॥३५॥
गण्डस्थल ऊपर भ्रमत भौंर। मद धार चुवत है दुहुन ओर।
मनु असित कमल मधु लेन काज। भौंरे मँडराते कर अवाज ॥३६॥
सब जेवर सजि प्रत्येक अङ्ग। म्हावत तयार कीने मतङ्ग ॥
साईस चले करने तयार। तीखे अत्यन्त चञ्चल तुखार ॥ ३७ ॥
खूँदत जमीन खोलत तुरङ्ग। केई कुमैत केई सुरङ्ग।
सुन्दर सुडोल आकृति उदार। जिन पीठ चढ़े जंगी जुझार ॥३८॥
घमसान हेत घोटक सजंत। तिन देख देख कायर कपंत ॥
रथ आदि अनेकन यान साजि। मगरूर यवन चल पड़े गाजि॥३९॥
योद्धा अनेक होकर सवार। ले नाम मुहम्मद बार बार ॥
हथियार अङ्ग पै धरि अनेक। रिपुगन हनने की करें टेक ॥४०॥
तय्यार देख निज सेन शाह[१]। कर दिया कूँच उर धरि उछाह।

१—बादशाह।

मानहु समुद्र निज छोरि पाज। चल पड़ा बोरिबे भूमि काज॥४१॥

दोहा—

शाह[1] अलाउद्दीन ने. रटके रब्ब रहीम।
करी तयारी कटक की, गंजन हेतु गनीम॥ ४२॥
फौज सहित पातशाह ने, घेरा रणथम्भोर।
होन लगा दुहुँ ओर से, घमासान रण घोर॥ ४३॥

छन्द मोतीदाम

हुआ दुहूँ ओर से घम्मसान। गये चढ़ि गिद्ध कई असमान॥
लगावत मीर कई तकि तीर। परैं कटि शीश लरैं हमगीर॥४४॥
लगै घुड़दौड़न पै घुड़दौड़। न मावत अङ्गन मांहि मरोड़॥
लिये भट हाथन में शमशेर। फिड़ावत[2] शत्रुन को चहुँ फेर॥४५॥
भिडैं दुहुँ ओरन तें भट भागि। लडैं कसि कम्मर अम्मर लागि॥
मनों घन पावस के घहराय। लगावत टक्कर सम्मुख आय॥४६॥
तिराछत शत्रुन पै तलवार। करैं भट क्षत्रिय वार अपार॥
गिरें कटि शेखन के रण मुण्ड। परे जनु खेत मतीरन झुण्ड॥४७॥
बली करते कई सेलन वार। हुवै ततकाल शरीरन पार॥
बहैं दुहुँ ओरन श्रोणित धार। मनों भई कुंकम-कुम्भन तार॥४८॥
झुके रजपूत अनेक झुझार। दई रण मीरन मार अपार॥
भगे बहु कायर प्राण बचाय। मिली जय क्षत्रिन को मुसकाय॥४९॥

दोहा—

कई मीर घायल हुए, युद्ध मांहि तिंह काल।
कटता लखि निज़ कटक को, हुए यवन बेहाल॥ ५०॥
क्षत्रिय भट शत्रुन कटक, काटि गये गढ़ मांहि।
भूपति सुनि निज विजय को, अङ्ग अङ्ग उमगाहि॥५१॥

१—बादशाह २—दाँव पेच से तंग करना।

हार अलाउद्दीन के, सालत हिये हमेश ।
सोचै मन में हर समय, काटी नाक नरेश ॥ ५२ ॥
लज्जित हो पतशाह ने, दिल्ली भेजा दूत ।
कहा उसे कहना वहां. भेजो अनी अकूंत ॥ ५३ ॥
सेनापति सुनि दूत से. शोक जनक समचार ।
चुनि चुनि शेख पठान की, भेजी फोज अपार ॥५४॥
ले अतुलित दल लार में, द्वितिय वार पतशाह ।
हुआ तयार हमीर पै, पकड़न मैहम शाह ॥ ५५ ॥
घेरा रणथम्भोर को, फोज यवन चहुँ फेर ॥
सुरपति मानहुँ सज चला, ब्रज वौरन की वेर ॥५६॥
तीन वर्ष लों तँह रहा, महा घोर घमसान ।
सुर-नारिन के तिंह समय. घर होगये विमान ॥५७॥
किये उपाय अनेक ही. तोड़न दुर्ग-दिवाल ।
पै हमीर दृढ़ दुर्ग पै, गली न बिलकुल दाल ॥५८॥
आखिर में पतशाह ने, चली घृणित बद चाल ।
फोड़ा नृप का कोष-पति, देय घूंस का माल ॥ ५९ ॥
लालच में आकर निलज, भण्डारी बद जात ।
भोजन वस्तु छुपाय कर, किया स्वामि पै घात ॥६०॥
मालम हुआ हमीर को, क्रूर-भण्डारी-काम ।
किया कृतघ्नी कुटिल का, तिंह छिन काम तमाम॥६१॥
असन वस्तु की लखि कमी, मन में किया विचार ।
द्वार खोल रिपु से लड़ैं, होय जीत कै हार ॥ ६२ ॥
किये इकट्ठे कोट में, शूरवीर सरदार ।
करि सलाह यह तै किया, लड़ मरने में सार ॥६३॥
जोहर करके जो मरें, कर में ले करवाल ।
यहां अमर कीरति हवै, वहां वरैं सुर-बाल ॥ ६३ ॥

छप्पय

आम खास से ऊठि, भूप रणवास सिधारा ।
नृप आगम लखि नारि, हुलसि निज पीव जुहारा ॥
नैन लाल रङ्ग निरखि, बैन बोली पिक-बैनी ।
कहो पीव किंह काज, बदन आकृति दुख-दैनी ॥
समझाय कहो मुझ से सपदि, जो भी कुछ समचार है ।
क्या कोई मैहम शाह का, चित में उठा विचार है ॥ ६५ ॥
पतनी का सुनि प्रश्न वचन बोले नरपति ने ।
मैहम है निश्चिन्त, प्राण मम तन में जितने ॥
जान गये के बाद, बादशा कुछ भी कर दे ।
मैहम को रण मारि, भले ही किला तोर दे ॥
हे वीर-प्रसवनी मम प्रियां, आज बात कुछ और है ।
करतूत भण्डारी याद करि, हिय में उठैं हिलोर है ॥ ६६ ॥
चौंक पड़ी नृप-नारि, नीचपन सुनि भण्डारी ।
हा हा ! विधि गति हुई, हमेशा बाम तिहारी ॥
जो करते निज प्राण, निछावर नीति राह में ।
दैव उन्हें दें फैंकि, दुःख-वारिधि अथाह में ॥
प्रणवीर, धीर हे मम पती, धीरज मन में धार लो ।
अब जोहर कर रण-खेत में, मर जाओ या मार लो ॥ ६७ ॥
पड़ी भूप के कान, वीर पतनी की बातें ।
उमगा ओज अपार, मनों नाला वृर्षातें ॥
धन्य धन्य है धन्य, वीर पुत्री प्रत्यक्ष तू ।
वचन वीरता भरे, कहै पति के समक्ष तू ॥
लखि हिम्मत रानी आपकी, वीर जनों के हिय हिलें ।
ऐसी मिसाल जो आज तक, महिला गण में कम मिलें ॥६९॥
लाल रङ्ग की ध्वजा, चमू अपने की जानों ।

शत्रुन सेना मांहि, वर्ण नीला पहिचानों ॥
चुनि इक चेरी चतुर, बुर्ज भींतर बिठलादो।
देखन को रण-दृश्य, भली विधि से समझादो ॥
लखि नील ध्वजा आती हुई, शत्रुन जय पहचानना।
जो लाल पताका लखि परै, (तो) जीत हमारी जानना ॥७०॥
जाओ जाओ वीर, युद्ध करने को जाओ।
रण में अरिगण मारि, भुवन में सुयश बढ़ाओ ॥
ले जगदम्बा नाम, कूँच की करो तयारी।
है यवनों की हार, जंग में जीत तुमारी ॥
ले सखियां मैं भी साथ में, शोर बिछाकर बैठती।
कलि मांहि करूं कीरति अचल, संग पती के ह्वै सती ॥७१॥
चला हठी-हम्मीर, वीर वर अन्तःपुर से।
मानहुँ भूखा बाघ, गरजि निकला निज घर से ॥
आंखें उगलें आग, मूँछ भौंहों से मिलती।
फरकत अधर सक्रोध, हृदय वीरानल जलती ॥
झट आमखास में पहुँच कर, लगा बोलने वीर--वर।
मानहों थैह[1] बाहर निकरि, नाहर खिज फेरी नजर ॥७२॥
हे क्षत्रिय वर वीर!, सजग ह्वै सेन सजाओ।
करि जोहर सब जोध, कोट बाहर कढ़ि जाओ ॥
ढाल और करवाल, लेय अरिगण ललकारो।
पीछे हटो न पैंड, जुटो रण में झझारो ॥
ले प्राण हथेली पर लड़ो, जीवन आशा छोड़दो।
जुरि शरणागत हित जंग में, तुरकों के सिर तोड़ दो ॥ ७३ ॥
सुनि हमीर का हुकम, एक दम क्षत्रिंय अकरे।
सोते सिंह जगाय, मनहुँ मूँछन कर पकरे ॥

१-सिंह के रहने का स्थान।

कहें वचन करि क्रोध, काल तुरकों का आया।
निश्चय जम्बुक मरन, नगर सम्मुख जब धाया॥
करि वस्त्र कुँकमी कुसुमल, चित में रण की चाह है।
करते कदापि नाहिं वीर नर, प्राणों की परवाह है॥ ७४॥
राजपूत रणवीर, अंग अंगन उमगाये।
शस्त्रन बाढ़ सँवारि, नशे भरपूर जमाये॥
हर हर शब्द उचारि, दुर्ग-दरवाजे आये।
मनहुँ क्रुद्ध यमराज, युद्ध के साज सजाये॥
देखते राह सब हुकम की, चित उछाह छायो अमित।
निज सेन समस्त तयार लखि, आयो झट चहुँवान तित[१]॥७५॥
तब अन्तःपुर मांहि, भई यह विदित कहानी।
सब सखियन को सपदि, पास बुलवाई रानी॥
कही कथा समझाय, सतिन के धर्म कर्म की।
सब ने सहमत होय, मानली बात मर्म की॥
भेजदी चेरि इक बुर्ज में, नृप संदेश समझाय के।
सब सहचरि लेकर साथ में, बैठी शोर बिछाय के॥७६॥
करि प्रणाम हम्मीर, बार बारहि शिव शङ्कर।
चला करन संग्राम, वीरता मद में भरकर॥
चढ़ि तुरङ्ग नृप वीर, जंग हित हिय हरखायो।
शस्त्र धारि निज अंग, शीघ्र दल सम्मुख आयो॥
ललकारि कहा दरवान से, दुर्ग-द्वार को खोल दो।
हे वीरो! शत्रुन सेन पै, इक दम धावा बोल दो॥ ७७॥
सुनि हमीर का हुकम, सुभट बाहर कढ़ि आये।
मनहुँ क्रुद्ध मृगराज, देख गजराज धिकाये॥
चले वीर बानैत, शत्रु-सेना के सम्मुख।

१—तहां।

सूर्य रोकि सप्ताश्व, नजर फेरो हमीर रुख ।।
तब पातशाह की फोज में, फौरन हलचल मच गई ।
आवती देख भूपति अनी, कायर भाग गये कई ।। ७८ ।।
भिड़े सुभट चहुँवान, ध्यान जगदम्बा धरके ।
घोड़न वाग उठाय, बचन बोले हर हर के ।।
काढ़ि म्यान तें खड्ग, अरिन के ऊपर बावें ।
एक एक वार में, शेख केई कटि जावें ।।
चढ़ि के विमान असमान में, घमासान परियां लखें ।
चहुँवान पती निज आन पै, प्रानन की बाजी रखें ।।७९।।
पड़ते शेख पठान, कई रण में कटि कटि कें ।
तुर्क त्यागते प्रान, नाम अल्ला रटि रटि के ।।
खुदा बचावें जान, दीन ह्वै वचन उचारें ।
मारे रे रहमान, यवन हरबार पुकारें ।।
तिंह काल फोज पतशाह की, विचलित होकर भग चली ।
यह देश दशा क्षत्रिय सुभट, दुशमन सेना दलमली ।।८०।।
रण में भट चहुँवान, बोलते मारो मारो ।
करो कतल अरि अनी, हिये हिम्मत मत हारो ।।
छीन अरिन सामान, विजय झंडी फहरादो ।
तुरकों को ततकाल, मार कर दूर भगादो ।।
अब रण-चण्डी को चाव से, वैरिन का बलिदान दो ।
हे वीर गणों ! रण खेत से, जीवित रिपु मत जान दो ।।८१।।
हुई जीत उस समय, वीर चहुँवान नाह की ।
विजय दुंदुभी बजी, लहर फैली उछाह की ।।
पर हा विधि गति वाम, जान सकता नहीं कोई ।
बड़े बड़े बलवान, मान मर्यादा खोई ।।
जो घटित हुई घटना दुखद, वह अब जाती है कही ।

सुनिये सुजान श्रोताजनो ! भाग्य-रेख मिटती नहीं ॥८२॥

नगर ओर चर भगे, विजय की देन बधाई ।
केइन के कर मांहि, पताकायें फहराई ॥
कुछ नहीं रहा खयाल, उमङ्ग के कारण उनको ।
म्लेछन झण्डे छीन, मोद दीन्हों निज मन को ॥
लखि नील ध्वजा आती हुई, दासी छाती धकधकी ।
बुर्ज तें उतरि बारूद में, अग्नी चिगँगारी रखी ॥ ८३ ॥

दहकि उठी बारूद, ज्वलित पावक पड़ते ही ।
ज्यों बिजली का तार, असर करता अड़ते ही ॥
उड़ा एक दम शोर, हुआ अत्यन्त घोर रव ।
अन्धकार चहुँ ओर, साथ ले चला युवति शव ॥
करि क्षत्रिय कुल कीरति अमर, महिला सब सुरपुर गई ।
ततकाल अनी चहुँवान की, दुर्ग-द्वार पै आगई ॥८४॥

देख भयङ्कर दृश्य, भूप परकोटे भींतर ।
सन्न होगया सपदि, चोट पहुँचो दिल ऊपर ॥
सर चकराते हुए, वचन हम्मीर उचारै ।
हा ! हा ! सरजनहार बनी तू बात बिगारै ॥
निज स्वागत के हित द्वार पर, देखूँ किसकी राह मैं ।
किन अग्र विजय वृत्तान्त को वर्णन करूं उछाह में ॥८५॥

कौन युद्ध पोशाक, उतारै भरि उमङ्ग में ।
कौन उड़ावै खुशी, घाव भरपूर अङ्ग में ॥
कौन कहै शाबास, वीर गण को मन भर के ।
कौन सराहै उन्हें, गये सुर पुर रण मर के ॥
हे रानी ! तुझ को हृदय से, बारम्बार सराहता ।
पर अब तेरे बिन जगत में, जीना मैं नहीं चाहता ॥८६॥

यह कह कर हम्मीर, गया शङ्कर के मन्दिर ।

झुक कर किया प्रणाम, नाम लेकर के हर हर ॥
करी प्रतिज्ञा पूर्ण, आपकी कृपा दृष्टि से ।
अब करिये उद्धार, अहो त्रिपुरारि ! सृष्टि से ॥
शिव-भक्ति मांहि अनुरक्त है, महा मोह को तज दिया ।
निज करतें मस्तक काट कर, शशिधर के अर्पण किया ॥८७॥

दोहा–

करि जग में कीरति अमर, सुरपुर गये हमीर ।
करिये उनका अनुकरण, बैठ रहो मत वीर ॥८८॥

कवि–कामना

करैं देश कल्यान, ध्यान देकर तन मन से ।
हरैं प्रजा के कष्ट, प्रेम होवै प्रति जन से ॥
कह कवि " जोगीदान ", दान दीनों को देवें ।
भक्ति–भाव से भरे, शक्ति को प्रतिदिन सेवें ॥
हों क्षत्रिय वीर हमीर से, देवी यह वरदान दे ।
इस आरत भारत वर्ष को, प्रणधारी सन्तान दे ॥ ८९ ॥

दोहा–

कथा वीर हम्मीर की, मम चित लियो लुभाय ।
"कविया जोगीदान" ने, कविता लिखी बनाय ॥ ९० ॥

कुँ० जोगीदान कविया (बारहट)
हैड पण्डित नार्मल एण्ड ट्रेनिङ्ग स्कूल
जयपुर ।
ग्राम सेवापुरा, रियासत जयपुर ।

सती अञ्जना।

महेन्द्रपुरी के नृपती दानी,
चहुँदिशि में थे अति विख्यात।
भाग्य-चन्द्र की रजत ज्योति से,
ज्योतिर्मय थी जीवन-रात ॥१॥

गुणवंती पटरानी उनकी,
नाम मनोवेगा अभिराम।
सफल बनाया जीवन जिसने,
पति-सेवा करके निष्काम ॥२॥

दैव कृपा थी, शत पुत्रों से,
शोभित था भूपति-प्रासाद।
सुता अंजना इकलौती को,
देख उन्हें होता आह्लाद ॥३॥

शनैः शनैः अति लाड़ प्यार में,
हुई यौवना वह बाला।
लगी ढुलकने प्याले में से,
सुन्दरता की नव हाला ॥४॥

सती अंजना मात पिता को,
प्राणों से अति थी प्यारी।
प्रणय-योग्य समझकर मन में,
जगी एक चिन्ता भारी ॥५॥

महेन्द्रराय के सम्मुख था वह,
जटिल प्रश्न प्रत्येक घड़ी।
जिसको हल करने के कारण,
हुई सभा एकत्र बड़ी ॥ ६ ॥

मेघकुमार युवावस्था में,
होगा तापस अति भारी।
अरु शिवपुर पथगामी होगा,
उसकी महिमा थी न्यारी॥७॥

रावण था विद्वान् धुरन्धुर,
किंतु बड़ा अत्याचारी ।
भूपति मन में लगे सोचने,
सुता किसे सौंपूँ प्यारी ॥८॥

रत्नपुरी थी सुन्दर नगरी,
भूप जहां के थे प्रह्लाद।
देख गुणी युवराज 'पवन' को,
होता सबको था आह्लाद ॥९॥

शुभ मुहूर्त में भूप-सुता की,
हुई सगाई उनके सङ्ग ।
सभी प्रजाजन हुए प्रमोदित,
खूब बजे वार्जित्र मृदङ्ग ॥१०॥

सखियां सँग पतिव्रता अंजना,
मोद विनोद मनाती थी।
गाती थी गुण प्राणनाथ के,
मन में शीश नमाती थी ॥११॥

इधर पवनजी एक मित्र सँग,
उन्हें देखने थे आये ।
निरख निरख सौंदर्य-सुधा को,
मन ही मन वे हर्षाये ॥१२॥

द्वार खड़े छिप कर सुनते थे,
रही अंजना जो कुछ बोल।

दृष्टि फिसलती थी रह रह कर,
चिकने थे वे लोल कपोल ॥१३॥

बोल उठी यों सती अंजना,
" धन्य धन्य हो मेघकुमार ।
लात मार कर भव-भोगों को,
पावेगा जो सौख्य अपार"॥१४

आग बबूला हुए पवनजी,
चुभने लगे हृदय में बाण।
लगे सोचने " पतिता है यह,
और पुरुष का करती ध्यान"॥१५॥

"पाणिग्रहण करके मैं त्यागूँ,
उचित यही होगा व्यवहार ।
व्यभिचारी इस नारी को मैं,
सौंपूँगा न हृदय का हार"॥१६

"सभी चमकने वाली चीजें,
नहीं सदा होती कञ्चन ।
अन्तरपट कितना दूषित है,
यद्यपि सुंदर है आनन" ॥१७॥

अजब चाल है कर्म तुम्हारी,
झूठा उनको हुआ प्रमाद ।
बिना विचारे क्रोधित होकर,
छोड़ चले पत्नी-प्रासाद॥१८॥

लग्न-दिवस आया नगरी में,
सब ने साज सजाया था ।
निर्धन, धनिक सभी के मुख पर,
हर्ष नया इक छाया था ॥१९॥

वस्त्राभूषण से सज्जित हो,
निकल पड़े सब नर नारी।
हुई महेन्द्रपुरी थी सचमुच,
इन्द्रपुरी से भी न्यारी ॥२०॥

देश विदेशों से आये थे,
शुभ अवसर पर भूपतिवृंद।
स्वागत करते थे वन्दीजन,
सुना सुना कर मनहर छंद॥२१॥

गोधूली वेला में आये,
सभी बराती सज धज कर।
हर्षोदधि में मग्न हुए थे,
म्लानवदन था केवल वर॥२२॥

रक्त नयन भौंहें थीं टेढ़ी,
जलती थी मन में ज्वाला।
भ्रमवश कुलटा समझ रहे थे,
पतिव्रता थी जो बाला ॥२३॥

परी अंजना का अम्बुज-कर,
उन को लगता था अङ्गार।
नव दंपति का हस्तमिलन वह,
अति कठोर था कारागार॥२४॥

खूब दहेज दिया भूपति ने,
हय, गज, रथ अरु द्रव्य सभी।
पार नहीं हीरक मणियों का,
साथ पांच सौ सखियां भी॥२५॥

लग्न-क्रिया पूरी होने पर,
किया पवनजी ने प्रस्थान।

भाग्यशालिनी रत्नपुरी में,
खूब हुआ दम्पति-सम्मान॥२६

धन्य मानने लगी अंजना,
सासु-श्वसुर-पद-पूजा कर।
पुत्रवधू गुणवन्ती पाकर,
हुए प्रमोदित विद्याधर॥२७॥

शुभाशीष दी केतुमती ने,
दिये अनेकों आभूषण।
गांव पांच सौ सौंपे नृप ने,
पुलकित होकर मन ही मन।२८

सभी जनों को सती अंजना,
लगती थी अति ही प्यारी।
पति का प्रेमाभाव देखकर,
था सन्ताप उसे भारी॥२९॥

प्राणनाथ के बिन दर्शन थे,
झरते नयनों से मोती।
बिना सलिल के म्लान मीन सम,
हिय में व्याकुल थी होती॥३१

और कौन था जग में उसका,
रूठ गये जब जीवन-धन।
बन्दीगृह सम लगते थे वे,
रत्नपुरी के भव्य भुवन॥३१॥

सखि*'वसंत' ही उस दुखिया की,
केवल एक सहारा थी।
जीवन के अशांत सागर में,
वही शांति की धारा थी॥३२॥

* अंजना की वसंतमाला नामक एक सखी।

पति-वियोग में सती अंजना,
नितप्रति नीर बहाती थी।
भक्ति जिनेश्वर की करके वह,
अपना भाग्य बनाती थी ॥३३॥

रावण और वरुण दोनों में,
वैमनस्य था अति भारी।
बढ़ता गया द्वेष तब आखिर,
हुई युद्ध की तैयारी ॥ ३४ ॥

मिला निमंत्रण विद्याधर को,
हुए पवनजी भी तैयार।
कहा पिता को "मैं जाऊँगा,
कर दूँगा अरि-दल-सँहार॥३५॥

मात पिता अरु प्रजा जनों को,
विविध प्रकार सान्त्वना दी।
किन्तु उन्होंने निज भार्या से,
केवल दो भी बात न की॥३६॥

दही-पात्र ले सती-अंजना,
हुई शकुन हित द्वार खड़ी।
प्राणनाथ के पद छूने की,
थी उसको एक चाह बड़ी॥३७॥

भक्ति दिखाने लगी अंजना,
किया उन्होंने लात प्रहार।
कञ्चन-पात्र गिरा भूमीपर,
बढ़ा और भी मन का भार॥३८

बहुत दूर निर्जन वन में जा,
किया पवनजी ने विश्राम।

चकवा चकवी बोल रहे थे,
तरु-शाखा पर वाक्य ललाम॥३९॥

पतिव्रता निज भार्या तज दी,
हृदय-हीन है यह मानव।
हँसता है यह, रोती है वह,
करते दोनों थे कलरव॥४०॥

सुनकर दम्पति की वे बातें,
हुआ उन्हें मन में संताप।
पूर्व किये अत्याचारों पर,
हुआ बहुत ही पश्चात्ताप॥४१॥

लगे सोचने पक्षी भी ये,
निंदा मेरी हैं करते।
और जनों को दुखी देख कर,
दिल में आहें क्यों भरते?॥४२॥

मानव हूँ मैं, हा! दानव सम,
किया निठुर मैंने व्यवहार।
ठुकरा दी पतिव्रता जु अबला,
मैं था जिसका प्राणाधार॥४३॥

लौट चलूँ वापिस अब घर को,
करूं अंजना के दर्शन।
उस देवी की पद-रज ले कर,
सफल बनाऊँ निज जीवन॥४४॥

गुप्त राह से गये पवनजी,
सती अंजना के प्रासाद।
चन्द्रानन लख निज भार्या का,
हुआ उन्हें मन में आह्लाद॥४५॥

युगल नेत्र से आँसू की वे,
लगे वहाने अविरल धार ।
कहा, "क्षमा कर मुझको देवी!,
भूल सभी मम अत्याचार" ।४६।

बोल उठी तब सती अंजना,
"नहीं आपका कुछ भी दोष ।
यह मेरे कर्मों का फल है,
करूँ आप पर क्यों फिर रोष? ।४७।

"लज्जित करते हो क्यों मुझको,
कहो आज हे जीवनधन ! ।
देव ! हुआ है हरा भरा फिर,
उजड़ा मम जीवन उपवन" ।४८।

" द्वादश वर्षों से कुटिया में,
आज पधारे प्राणाधार ।
सफल बनाया जीवन मेरा,
देकर अपना निर्मल प्यार"। ४९।।

पद-पूजा कर, प्राणेश्वर को,
उच्चासन पर बिठलाया ।
मधुर मधुर संगीत सुनाकर,
दुखी हृदय को हर्षाया ।।५०।।

तीन दिवस तक रङ्गमहल में,
हुई नित्य अभिनव क्रीड़ा ।
जीवनधन की सेवा कर वह,
भूल गई मन की पीड़ा ।।५१।।

अवधि पूर्ण तब हुई अन्त में,
किया पवनजी ने प्रस्थान ।

लगी बहाने अश्रु अंजना,
नहीं रहा अपना कुछ भान॥५२

इसी काल में दैवयोग से,
किया सती ने गर्भाधान।
मात पिता को किंतु नहीं था,
निज सुत के आने का ज्ञान॥५३॥

हुई गर्भ की वृद्धि दिनों दिन,
केतुमती ने जान लिया।
क्रोधित होकर, पुत्रवधू का,
घृणित महा अपमान किया॥५४

गरज उठी वह "अरे! पापिणी,
किया घोर यह पापाचार।
और पुरुष के सङ्ग रही तू,
किया न मनमें जरा विचार"॥५५॥

"मेरे उज्ज्वल कुल में तू ने,
लगा दिया यह अमित कलंक।
लज्जा नहीं तनिक भी आती,
बनी हुई है तू निःसङ्ग"॥५६॥

करती तू सामायिक निशिदिन,
कहलाती है गुणशीला।
कहाँ पुण्य पतिव्रतादर्श तव,
कहाँ घृणास्पद यह लीला"।५७।

"ज्ञात न था क्या दुष्टे! तुझको,
गुप्त नहीं रह सकता पाप।
निकल यहाँ से अरी पापिणी!,
करती है क्यों व्यर्थ प्रलाप"।५८।

पुत्रवधू यों लगी बोलने,
सासूजी को जोड़े कर ।
पतिव्रता नारी हूँ मैं तो,
नहीं मुझे अपयश का डर"।५९।

"मेरे मन-मंदिर में केवल,
प्राणनाथ का ही है वास ।
और पुरुष सब बंधुतुल्य हैं,
साक्षी मेरा है आकाश" ॥६०॥

"प्राणनाथ ने दर्शन दे निज,
तोड़ दिये मेरे दुख-पाश ।
तीन दिवस तक संग रहे वे,
सफल हुई मेरी चिर आश"।६१।

"पुत्र आपके आवें जब तक,
रखिये मुझको निज घर में ।
दुर्दिन मेरे यहीं कटेंगे,
नहीं रहूँगी पीयर में" ॥६२॥

कोमल वचनों को सुनकर भी,
केतुमती बोली सक्रोध ।
" लगता पाप तुझे लखने में,
चली यहां से जा निर्बोध ॥६३॥

गिर कर चरणों पर अबला ने,
सासूजी को किया प्रणाम ।
सखि 'वसंत' के संग चली वह,
गई पिता के सुंदर धाम ॥६४॥

मात पिता को शीश नमाकर,
लगी बहाने अविरल धार ।

"निराधार, निर्दोष सुता के,
केवल तुम ही हो आधार"॥६५।

"सासु-श्वसुर ने मुझे निकाली,
कर प्रहार, झूठा आरोप।
नहीं मृत्यु भी आती मुझको,
किया ईश ने मुझ पर कोप"।६६।

निज पुत्री की दीन दशा पर,
नहीं उन्होंने किया विचार।
हृदयहीन वे मात पिता भी,
लगे सुनाने यों फटकार॥६७॥

"पापपूर्ण जीवन का तुझको,
मिला उचित ही है री! दंड।
धूल डाल सबकी आंखों में,
रचा हाय! तू ने पाखंड"॥६८॥

"मेरे कुल के शुभ्र-वसन में,
काला दाग लगाया तू ने।
अपयश फैला कर जगती में,
मुझको घृणित बनाया तू ने"॥६९॥

"कोख जलादो निज माता की,
जिसने तुझको थी पाली।
हृदय चाहता अब तो पी लूँ,
अरे! हलाहल की प्याली"।७०।

"मेरे पावन घर में तुझको,
नहीं मिलेगी ठौर कहीं।
नहीं पिता मैं, नहीं सुता तू,
अब कोई व्यवहार नहीं"॥७१॥

अब भी आशा थी अबला को,
गई बंधुओं के वह पास।
दुःख-कहानी कही उन्हें भी,
किंतु हुई सर्वत्र निराश ।।७२।।

नैराश्य तिमिर से आच्छादित थी,
घड़ियों उसके जीवन की।
सारे जग से अपमानित हो,
राह अन्त में ली वन की ।।७३।।

दुर्गम कंटकमय वनपथ को,
किया सती ने चल कर पार।
कोमल उसके पद-पद्मों से,
बहने लगी रुधिर की धार।।७४

एक भयङ्कर गिरि-गह्वर में,
मुनि निष्कामी थे आसीन।
नहीं ध्यान था उन्हें किसीका,
घोर तपस्या में थे लीन ।।७५।।

लोलुप सभी इन्द्रियों का था,
किया उन्हों ने पूर्ण दमन।
तप समाप्त होने पर आखिर,
उठे मुनीश्वर, खोल नयन।।७६

झुकी अंजना ऋषि चरणों में,
नम्र भाव से किया प्रणाम।
बोले मुनिवर निर्जन वन में,
देवी! क्या है तेरा काम ?।।७७।।

कौन वीर की पत्नी है तू,
क्या है तेरा सुन्दर नाम।

छोड़ दिये क्यों सभी कुटंबी,
तजा अरे! क्यों सुखमय धाम॥७८

लगी सुनाने सती अंजना,
मुनिवर को दुखपूर्ण कथा।
पानी बन कर लगी टपकने,
आंखों से वह घोर व्यथा ॥७९॥

वीर पवनजी की पत्नी मैं,
प्रभो! अंजना मेरा नाम।
महेन्द्रराय की पुत्री हूँ मैं,
रत्नपुरी मम धाम ललाम ॥८०

झूठा दोष लगा जीवन में,
दुखद कहानी है मेरी।
जग बतलाता कुलटा मुझको,
मन कहता मैं पति-चेरी ॥८१॥

पूर्व जन्म की कथा सुनादो,
जन्म जन्म के हो ज्ञाता।
मुझसी पतिव्रता अबला पर,
रूठा क्यों जग-निर्माता ॥८२॥

बोले मुनिवर पूर्व जन्म में,
जिनमत से था तुझको द्वेष।
जैनधर्म के साधु संत से,
रखती थी तू द्वेष विशेष ॥८३॥

जैन साधु का ओघा तू ने,
इक दिन हाय! लिया था चोर।
रक्खा तेरह घड़ी छिपा कर,
किया घोर व्यवहार कठोर ॥८४॥

इसी पाप के कारण तू ने,
भोगा है दुख तेरह वर्ष।
अवधि पूर्ण है होने वाली,
तुझे मिलेगा फिर नव हर्ष॥८५॥

वीर पुत्र की माता वन तू,
भूलेगी सारा सन्ताप।
सासु-श्वसुर अरु मात पिता भी,
वहुत करेंगे पश्चात्ताप॥ ८६॥

जिनके विरह-व्यथा में जल कर,
नित्य वहाती आँसू-धार।
चिंता मत कर, शीघ्र मिलेंगे,
तुझको वे ही प्राणाधार॥८७॥

इतना कह कर चले गये मुनि,
क्षण भर में वे हुए विलीन।
क्षुधा-पिपासा से पीड़ित वह,
वहीं खड़ी थी अबला दीन॥८८॥

इधर केसरी की गर्जन से,
गूँज उठा सारा कानन।
भय से विह्वल उस अबला का,
लगा कांपने कोमल तन॥८९॥

सखी 'वसंत' के सङ्ग अवला ने,
पर्णकुटी में किया निवास।
प्राणनाथ के शुभ दर्शन बिन,
दुखमय लगता था मधु मास॥९०॥

ज्येष्ठ मास की लू सम उसको,
तपा रही थी शीत बयार।

कटु लगती थी कानों को वह,
प्रेमी मधुपों की गुंजार ॥९१॥

शुभागमन लख प्रिय वसंत का,
कलिकाएं मुस्काती थीं ।
ऋतुपति के स्वागत हित कोयल,
मीठे स्वर में गाती थी ॥९२॥

नाच रहे थे मतवाले बन,
हरितभूमि पर सुन्दर मोर ।
विचर रहे थे नव-कुँजों में,
मृग होकर आनंद-विभोर॥९३॥

सभी सुखी थे वन के प्राणी,
दुखमय था अवला-जीवन ।
नेत्र-गगन से बरस रहे थे,
रह रह कर आंसू के घन॥९४॥

चैत्र मास था, कृष्ण अष्टमी,
सोमवार था अति पावन ।
कुसुम-वृष्टि करते थे सुरगण,
हर्षित था सारा कानन॥९५॥

सती अंजना की कुक्षी से,
जन्मे थे हनुमान कुमार ।
जगदीश्वर ने खोल दिया था,
दुखिया का जीवन-सुख-द्वार॥९६

इक दिन दोनों सखियां मिल कर,
शिशु सङ्ग क्रीड़ा थीं करती ।
सुन्दर गीत सुना कर उसको,
मन की पीड़ा थीं हरती ॥ ९७ ॥

पूर्ण चन्द्र की चारु चन्द्रिका,
फैली थी जगतीतल पर।
शशि निज कर में ले लेने को,
आतुर था बालक सुन्दर ॥९८॥

सुखमय इस वेला में नभ से,
वायुयान इक उतर पड़ा।
सहसा उस अबला के मन में,
हुआ एक आश्चर्य बड़ा ॥९९॥

*शूरसेन निज पत्नी के सङ्ग,
यात्रा करके थे आये।
वन में पाकर सती अंजना,
को वे मन में हर्षाये ॥१००॥

दुखद कहानी सुन अबला की,
हुआ उन्हें मन में अति शोक।
अश्रु नीर की तीव्र धार को,
क्षण भर भी वे सके न रोक॥१०१॥

सबको बिठला वायुयान में,
राज भवन में नृप आये।
सती अंजना के दर्शन कर,
नगर-निवासी हर्षाये ॥१०२॥

विजय-पताका फहरा रण में,
इधर पवनजी घर आये।
सूने सब प्रासाद देख कर,
मन ही मन वे घबराये ॥१०३॥

मात पिता के पैरों पर गिर,
सहसा बोल उठे वे यों।

* अंजना के मामा।

लुट जाने पर अतुल द्रव्य निज,
धन-लोलुप घबराता ज्यों ॥१०४

"कहां गई, जल्दी बतलादो,
सच्ची मेरी हृदय-पुजारिन ।
प्राण-त्याग कर दूँगा निश्चय,
प्यारी के शुभ-दर्शन बिन" ॥१०५॥

लगी कांपने माता मन में,
बोली " यह मेरा अपराध ।
क्षमा करो हे वत्स ! मुझे अब,
बनी अंजना की मैं व्याध" ॥१०६॥

जननी के वचनों को सुन वे,
गये महेन्द्र नृपति के द्वार ।
मिला वहां नैराश्य-तिमिर ही,
पाया नहीं हृदय का हार ॥१०७॥

निज हत्या करने का आखिर,
किया उन्होंने सुदृढ़ विचार ।
मात पिता अरु सासु-श्वसुर सब,
लगे बहाने अविरल धार ॥१०८

चहुँ दिशि में सेनाएँ भेजीं,
निष्फल सारे हुए प्रयास ।
ढूँढ लिये सब निर्जन कानन,
किन्तु हुए सर्वत्र निराश ॥१०९॥

शूरसेन नृप की नगरी में,
अबला का तब पता लगा ।
सुन संवाद, पवन के मन में,
चिर-निद्रित वह प्रेम जगा ॥११०॥

विरह-भस्म दोनों हृदयों का,
हुआ अपूरब पुनर्मिलन ।
दोनों ने ही फिर से पाया,
अपना अपना खोया धन॥१११॥

बोल उठे यों वीर पवनजी,
"धन्य दिवस है आज प्रिये !।
निराश होकर आत्मघात के,
सजा दिये थे साज प्रिये !११२॥

"तिमिर पूर्ण जीवन में मेरे,
पाकर तुझको हुआ प्रकाश ।
उजड़े मम जीवन-उपवन ने,
फिर से पाया नव मधु मास"।११३।

"तेरे दुखमय जीवन का री !,
बना हाय ! मैं ही कारण ।
गुप्त राह से मैं आया था,
लगा अरे ! झूठा दूषण"।११४।

"शुष्क, सड़े, कड़वे फल खाकर,
क्योंकर प्रिये ! रही वन में ? ।
स्मरण कर तव असह्य दुखोंका
अतिशय दुख होता मन में"।११५।

लगी बोलने सती अंजना,
"धन्य धन्य मम जीवन आज।
शुभ दर्शन कर देव ! आपके,
सफल हुए जीवन के काज"।११६।

बसे हुए थे आप हृदय में,
वन में भी तो प्राणाधार !।

पति-दर्शन की आशा में ही,
वहन किया मैंने दुख-भार॥११७॥

मृदु बातें कर 'पवन' 'अजना'
मन को यों बहलाते थे।
दैव कृपा थी, जीवन के दिन,
सुख से आज विताते थे॥११८॥

विद्याधर ने हर्षित होकर,
दीन जनों को दान दिया।
प्रजाजनों ने मिल दंपति का,
भाँति भाँति सत्कार किया॥११९॥

केतुमती अरु विद्याधर ने,
राज्य छोड ले ली दीक्षा।
दानवीर कहलाते थे जो,
लगे मांगने अब भिक्षा॥१२०॥

पूर्ण न्याय से वीर पवनजी,
राज्य कार्य सब करते थे।
दीन दुखी निज प्रजाजनों का,
दुःख सभी वे हरते थे॥१२१॥

महावीर हनुमान पुत्र था,
उनको था मन में अभिमान।
धन्य धन्य बजरंग बली वह,
रक्खी जिसने कुल की आन॥१२२॥

पतिव्रता भार्या था उनको,
मन ही मन था हर्ष अपार।
गगनांगण सम विस्तृत पाया,
पत्नी का वह निर्मल प्यार॥१२३॥

शनैः शनैः था युवा चंद्रमा,
जरा गगन में डूब रहा ।
क्षण भर स्थायी जग-वैभव से,
मन उनका था ऊब रहा॥१२४॥

अवसर पाकर पति पत्नी ने.
शुभ दीक्षा करली स्वीकार ।
प्रलयंकर इस जग-सागर से.
जीवन-नाव लगादी पार ॥१२५॥

नयनमल जैन, बी. ए.,
जालोर (मारवाड़).

॥ श्रीः ॥

ऋषिपूजन के अवसर पर

ऋषि-नीराजन

जय जय ऋषिराजा प्रभु जय जय ऋषिराजा ।
देवसमाजादृत मुनि कृतसुरगण काजा ॥
जय दध्यङ्ङाथर्वण भरद्वाज गौतम ।
जय शृङ्गी पाराशर अगस्त्य मुनिसत्तम ॥
वशिष्ठ विश्वामित्रांगिर अत्री जय जय ।
कश्यप भृगुप्रभृति जय, जय कृत तप सञ्चय ॥
वेद मंत्र दर्शक बन सब का भला किया ।
सब जनता को तुमने वैदिक ज्ञान दिया ॥
हम में प्रभु आस्तिकता आप शीघ्र भरदो ।
शिक्षित सारे द्विज हों यह हमको वर दो ॥
सब ब्राह्मण जनता के मूल पुरुष स्वामी !
ऋषि संतति हम ज्ञानी हों सत्पथ गामी ॥

ऐसी कृपा करो प्रभु दिव्य ज्ञान दाता!
ब्राह्मण फिर उन्नत हों वेदों के ज्ञाता ॥
धरणीधर कृत ऋषिगण आरति जो गावे।
दिव्य ज्ञान भूपित हो वाञ्छित फल पावे ॥

पं० धरणीधर शर्मा शास्त्री
अजमेर।

प्रोत्साहन

पराधीन रहना ही जिसको मित्रो! सदा सुहाता है।
शिल्प-कला सारी ही खोकर दुःख उठाता जाता है ॥
अकर्मण्य उत्साह हीन ही प्रजा जहां वस जाती है।
जीवित देश नहीं वह होता, वहां न लक्ष्मी आती है ॥
फूट राक्षसी वड़ी वला है इसके मत पड़ना पाले।
वड़ी वड़ी संस्था के इसने ही लगवाये हैं ताले ॥
यदु कुलनाशक यही कही है, दुर्गति यही कहाती है।
द्वेष-युक्त जनपद में लक्ष्मी कभी न आने पाती है ॥
इसीलिये हे भारतवासी! अव तो कुछ आंखें खोलो।
पूर्वज ऋषियों से अपने को बुद्धि-तराजू में तोलो ॥
तेजस्विता तुम्हारे में है पर बैठी विलखाती है।
उतर देखिये कर्मक्षेत्र में क्यों न इन्दिरा आती है?
इस जागृति के समय आज भी यदि न आप कुछ चेतोगे।
तो क्या उन्नति खाक करोगे, सदा दुःख ही भोगोगे ॥
उन्नति करना पुरुष धर्म है श्रुति भी यह बतलाती है।
लक्ष्मी उद्योगी के आगे हाथ जोड़ कर आती है ॥

पं० धरणीधर शर्मा शास्त्री
अजमेर।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

हिन्दी-गद्य ।

भगवत्प्राप्ति-साधन ।

देवीं दधिमतीं नत्वा सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
गोविन्दः कुरुते भाषा-भगवत्प्राप्ति-साधनम् ॥ १ ॥

भगवान् शब्द का अर्थ है जो 'भग' अर्थात् षट् ऐश्वर्यों से संयुक्त हो वह भगवान् । नीचे लिखे ऐश्वर्यों को 'भग' कहते हैं:-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अर्थ-समस्त प्रकार के ऐश्वर्य वा सम्पदा वा विभूति, वीर्य वा शरीर का पराक्रम, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य, इन छः की भग संज्ञा है ।

ऐश्वर्य वा विभूति आठ प्रकार की है यथा—

अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥

अर्थ-अणिमा (शरीर का छोटे से छोटा हो जाना), लघिमा (शरीर का हलके से हलका हो जाना) प्राप्ति (इन्द्रियां और उन के अधिष्ठाता देवता का स्वरूप), प्राकाम्य (विषयों के भोग, दर्शन, सामर्थ्य का होना), महिमा (शरीर का बड़े से बड़ा कर लेना) ईशिता (शक्तियों का अपनी इच्छा के अनुसार प्रेरणा करना), वशिता (नाना प्रकार के भोगों में आसक्त न होना), और कामावसायिता (सब वाञ्छित विषयों की सीमा को प्राप्त करना)- ये आठ विभूतियां वा सिद्धियां हैं ।

ये आठों सिद्धियां भगवान् के सिवाय किसी दूसरे में नहीं होतीं । शरीर सम्बन्धी तीन सिद्धियां (अणिमा, लघिमा और

महिमा) तो योग-साधन से भी प्राप्त की जा सकती हैं, किन्तु शेष पांच सिद्धियां तो केवल भगवान् में ही होती हैं।

अब भगवान् हैं या नहीं ?, हैं तो कैसे हैं ? और वे कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं ? ये तीन प्रश्न सदा संशय-ग्रस्त पुरुष को सताया करते हैं। भगवान् को मानने वाले पुरुष को तो ऐसे प्रश्न होते ही नहीं, क्योंकि वह इन को घोर पाप का फल समझता है और नास्तिकता की पराकाष्ठा मानता है। वास्तव में भगवान् को न मानना एक भयङ्कर भूल है और अक्षम्य अपराध है। तिस पर भी भगवान् की दया का पार नहीं है कि वह उस को न मानने वालों को भी सभी प्रकार के सुख प्रदान करता है और उन के भोजन-वस्त्र-घर आदि का प्रबन्ध करता है।

सांसारिक व्यवहार के लिये मनुष्य को अपने शरीर के हाथ, हृदय और मस्तक इन तीन मुख्य अङ्गों से काम लेना पड़ता है। इस आधार पर मनुष्य समाज के मुख्य तीन विभाग किये जा सकते हैं:-

१ हाथ से काम करने वाले कर्मप्रधान (practical),

२ हृदय से काम करने वाले भावप्रधान (emotional) और

३ मस्तक वा बुद्धि से काम लेनें वाले बुद्धिप्रधान (intellectual)

इन के सिवा एक विभाग और है जो इन तीनों से ऊपर के स्तल (स्तर) का है जिसे आध्यात्मिक (spiritual) कहते हैं।

भगवत् सम्बन्धी ज्ञान मुख्यतः इस पिछले आध्यात्मिक विभाग से सम्बन्ध रखता है। ईश्वर प्रत्यक्ष तो दिखाई देता नहीं कि उस को भौतिक वस्तुओं की भांति ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा दिखाया जा सके अथवा उस का अनुभव कराया जा सके। ईश्वर अव्यक्त और अचिन्त्य है। अतएव उस का वर्णन करना और भी कठिन है। वह तो बुद्धि द्वारा ही जाना जा सकता है। और

वह बुद्धि भी शुद्ध बुद्धि होनी चाहिये जिस में भगवान् का आभास दिखाई दे सके। बुद्धि को निर्मल बनाने के लिये ही निष्काम कर्मों की साधना करनी होती है। निष्काम कर्म करते करते अन्तःकरण शुद्ध और निर्मल हो जाता है। जैसे मनुष्य को अपना प्रतिबिम्ब ठीक प्रकार से देखने के लिये साफ़ आदर्श (आईने) की आवश्यकता है, वैसे भगवान् की प्रतिमा का अनुभव करने के लिये भी शुद्ध अन्तःकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। यह शुद्ध अन्तःकरण योग-साधन से भी हो सकता है। क्यों कि योग-साधन भी एक प्रकार का निष्काम कर्म ही है।

ईश्वर के अस्तित्व के विषय में प्रमाण इन चर्म-चक्षुओं से तो जाने नहीं जा सकते, किन्तु आध्यात्मिक उन्नति करने से शुद्ध अन्तःकरण में उस के अस्तित्व का अवश्य अनुभव होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो ऋषि, मुनि, भक्त, ज्ञानी, ध्यानी आदि पुरुष ईश्वर के अनुभव का कभी प्रयास नहीं करते। उन्हों ने प्रयत्न कर सफलता प्राप्त की है जिस से अन्य पुरुष भी अभी तक भगवत् प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

साधारणतया ईश्वर के विषय में सब लोगों की यह असंदिग्ध धारणा है कि वह वारम्वार इस जगत् को रचता है, पालन करता है और संहार करता है। उस की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उस की आधीनता में रह कर प्रकृति सब कार्य का सञ्चालन करती है। प्रकृति जड़ है और ईश्वर चेतन है और प्रकृति का कर्ता और नियन्ता है। उसी के बनाये हुए नियमों से कार्य सुचारु रूप से चलता है। उसी के नियमों के अनुसार प्रत्येक जीव जन्म लेता है, बढ़ता है और मरता है। ईश्वर बड़ा दयालु और पतित-पावन है। वह प्रेम का भूखा है। वह प्रेम-रूप भक्ति से वश में किया जा सकता है। उस में निम्न छः

गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं—ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज।

१. ज्ञान—भगवान् का वह गुण है जिस से वह अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डों में रहने वाले असंख्य जीवों की वर्तमान, भूत और भविष्यत् तीनों अवस्थाओं को जानता रहता है। इसी ज्ञान के द्वारा वह प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण के सब भाव व विचारों को क्षण क्षण में जानता रहता है। ईश्वर सर्वोच्च ज्ञान से युक्त है, ज्ञान—स्वरूप है और अन्तर्यामी होने से वह सर्वज्ञ है।

२. बल—भगवान् की वह अपरिमित व अचिन्त्य शक्ति है, जिस के द्वारा वह सब ब्रह्माण्डों को धारण किये है और उन का नियमानुसार सञ्चालन करता है। बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी वस्तु का वही आधार रूप है, जिस से वह सर्वाधार कहाता है।

३. ऐश्वर्य—भगवान् ही सब का स्वामी है, उस का स्वामी कोई नहीं है और दूसरों को भी अपना ऐश्वर्य दे सकने की उस में शक्ति है—यही भगवान् का ईश्वर--पन है, यथा—

ईश एवाहमत्यर्थं न च मामीशते परे।
ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्त्यते॥

अर्थ—मैं सब का अतिशयपन से ईशन वा शासन (हकूमत) करता हूँ, कोई दूसरा मुझ पर शासन नहीं कर सकता और सदा ऐश्वर्य देता हूँ जिस से मैं ईश्वर कहलाता हूँ।

इस ईश्वर की अनिर्वाच्य शक्ति का नाम ही ऐश्वर्य है जिसमें सब प्रकार की सम्पदा, सिद्धि, विभूति, आदि का समावेश होता है। इस ऐश्वर्य के प्रभाव के कारण ही सब सुर, नर, मुनि आदि भगवान् की आदर के साथ भक्ति करते हैं।

४. वीर्य—ईश्वर का वह गुण है जिस से उन्हें लगातार परिश्रम और युद्ध करते भी किसी प्रकार की थकावट मालूम नहीं होती। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की रचना करने, उन का सञ्चालन तथा प्रबन्ध करने, भक्तों की रक्षा करने, दुष्टों को दण्ड देने देवताओं के शत्रुओं को मारने आदि में परिश्रम करने पर भी भगवान् को अवकाश (छुट्टी) लेने की आवश्यकता नहीं होती। यही ईश्वर का अनन्त और अपरिमित वीर्य है।

५. शक्ति—कार्य-शक्ति, इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, विचार-शक्ति आदि शक्तियों का स्रोत भगवान् की महा-शक्ति से निकलता है। मनुष्यों में बुद्धि, चेतना, कान्ति, स्मृति, धृति, भ्रान्ति आदि जितनी क्रियाएँ होती हैं, वे सब भगवान् की महती शक्ति से प्रादुर्भूत होती हैं। भगवान् की अचिन्त्य सङ्कल्प-शक्ति से इन सब शक्तियों का होना, घटना, बढ़ना, मिटना आदि होता है।

६. तेज—भगवान् का वह प्रकाश है जो सब ज्योतिवाले सूर्य, चन्द्र, तारे, ग्रह, नक्षत्र, बिजली, अग्नि आदि में व्याप्त होता है। भगवान् के तेज से ही मनुष्यों की वाणी उत्पन्न होती है। यथा—'तेजोमयी वाक्'। वाक् इन्द्रिय तेज से बनती है। यह तेज भगवान् के साकार स्वरूप के चहरे पर चमकता रहता है जिस से उन की ओर बहुत देर तक देखा नहीं जा सकता। अपमान, निन्दा आदि का सहन न करना भी तेज गुण के अन्तर्गत है, यथा—

अधिक्षेपापमानादेः प्रयुक्तस्य परेण यत्।
प्राणात्ययेऽप्यसहनं तत्तेजः समुदाहृतम्॥

अर्थ—दूसरे की की हुई निन्दा, अपमान, तिरस्कार आदि का प्राणान्त होने पर भी सहन न करना तेज है।

भगवान् में उपर्युक्त छः ही गुणों की पराकाष्ठा होती है।

इसी लिये भगवद्भक्तजन भगवान् की भक्ति कर कृतार्थ हो जाते हैं और मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

अब नीचे भगवान् वा ईश्वर की सत्ता के विषय में कुछ प्रमाण दिये जाते हैं। प्रमाण प्रायः तीन प्रकार के होते हैं, यथा—प्रत्यक्ष, अनुमान और शाब्द। इन में प्रत्यक्ष तो वह है जो पांच ज्ञानेन्द्रियों (आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) के द्वारा जाना जाता है। अनुमान वह है जिस से व्याप्य को देख कर व्यापक का निश्चय किया जावे, यथा—अग्नि, धूँएं का व्यापक है और धूँआं अग्नि का व्याप्य है। जहां धूँआं होता है वहां अग्नि होता है, जैसे कि रसोई (पाकशाला) आदि में देखा जाता है। पर्वत की चोटी में से धूँआ निकलता हुआ देख कर यह अनुमान किया जाता है कि पर्वत की चोटी पर अग्नि है। इस प्रकार के प्रमाण को अनुमान प्रमाण कहते हैं। कोई पुरुष अपने पिता को देखता है और दादा को नहीं देखता। किन्तु वह जानता है कि पिता का पिता अवश्य होना चाहिये क्योंकि कार्य बिना कारण नहीं होता। अगर घड़ा कार्य है तो उस को बनाने वाला कुम्हार कारण अवश्य होना चाहिये। अगर सुवर्ण का आभूषण रूप कार्य है तो उस का कारण सुवर्णकार अवश्य होना चाहिये। कार्य को देख कर कारण का निश्चय करना भी अनुमान प्रमाण है। शाब्द प्रमाण उसे कहते हैं जो शब्दों द्वारा पुस्तक वेद, स्मृति, इतिहास पुराण दर्शन, आदि पुस्तकों में लिखा हुआ होता है। इसे आम्नाय प्रमाण भी कहते हैं।

ईश्वर आंख, कान, नाक आदि ज्ञानेन्द्रियों से तो प्रत्यक्ष जाना नहीं जा सकता, क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है, इसलिये वह 'अगोचर' वा इन्द्रियों से पर कहलाता है। किन्तु वह मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार नामक अन्दर की इन्द्रियों (अन्तः-

करण) से जाना जा सकता है जिस से उस का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। नीचे अनेक प्रमाणों में से पांच प्रत्यक्ष प्रमाण लिखे जाते हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण।

१ प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण--इस जगत् में प्रत्येक पुरुष कहता है कि यह " मैं " हूँ, यह ' मेरा ' स्थूल शरीर है, यह ' मेरा ' सूक्ष्म शरीर है, यह ' मेरा ' मन हैं, यह ' मेरी ' बुद्धि है, यह ' मेरा ' चित्त है, यह ' मेरा ' ज्ञान है, यह ' मेरी ' आत्मा है। इन में जो " मैं " है, वही आत्मा वा परमात्मा अर्थात् ईश्वर है।

२ दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण—इसी प्रकार अन्नमय १, प्राणमय २, मनोमय ३, विज्ञानमय ४, आनन्दमय ५ इन पांच कोशों के विषय में प्रत्येक प्राणी कहता है कि यह ' मेरा ' अन्नमय कोश वा शरीर है, यह ' मेरा ' प्राण है, यह ' मेरा ' मन है, यह ' मेरा ' ज्ञान है, यह ' मेरा ' आनन्द है। यह ' मेरा आनन्द ' ही साक्षात् ईश्वर है।

३ तीसरा प्रत्यक्ष प्रमाण—सब देखते हैं कि यह जगत् है, यह आकाश है, यह सूर्य है, यह चन्द्रमा है, ये तारे हैं, यह अग्नि है, यह वायु है, यह जल है, यह पृथिवी है इत्यादि। इन सब में जो " है " है, वही आत्मा है। यह " है " ईश्वर का ' अस्ति ' वा ' सत् ' रूप है। इस सत्ता की प्रतीति जिस से होती है, वही ईश्वर है।

४. चौथा प्रत्यक्ष प्रमाण—इसी प्रकार प्रत्येक पुरुष यह जानता है कि आंख से रूप जाना जाता है, जीभ से रस जाना जाता है, नाक से गन्ध जाना जाता है, कान से शब्द जाना जाता है, चमड़ी से स्पर्श जाना जाता है। यह देखने वाला, छूने वाला सुनने वाला, सूँघने वाला, चखने वाला, मनन करने वाला,

जानने वाला, आदि ज्ञानवान् चेतन ही ईश्वर है। यह ईश्वर का 'ज्ञान वा भक्ति' अर्थात् 'चित्' स्वरूप है। सब प्रकार के ज्ञान की प्रतीति जिस से होती है वही ईश्वर है। सब पदार्थों का अनुभव करने वाला ईश्वर है।

५. पांचवां प्रत्यक्ष प्रमाण–इस जगत् में मनुष्य को सब से अधिक प्यारा अपना आत्मा ही है। अपना आत्मा पुत्र से प्रिय है, अपनी स्त्री से प्रिय है, धन से प्रिय है, जन से प्रिय है, जमीन से प्रिय है अर्थात् सब से प्रिय है। ये सब पुत्र, स्त्री, धन जन आदि अपने आत्मा के वास्ते प्रिय होते हैं। क्योंकि इन सब से सुख वा आनन्द का अनुभव होता है। यह ईश्वर का 'प्रिय वा आनन्द' रूप है। यह आनन्द ही ईश्वर है। जब कभी कोई बुद्धिवाली विचित्र बात सुनी जाती है तो पुरुष मात्र को आनन्द का अनुभव होता है। जिस को इस आनन्द का अनुभव होता है, वही ईश्वर है।

अनुमान प्रमाण।

१. प्रथम अनुमान प्रमाण–कारण विना कार्य नहीं होता, यह एक नियम है। वैसे ही किसी भी कार्य का कोई न कोई क़ारण अवश्य होता है। जैसे मिट्टी के घड़े रूप कार्य को देख कर मनुष्य समझ जाता है कि इस का निमित्त कारण वा कर्त्ता कुम्हार है। कपड़े को देख कर यह अनुमान किया जाता है कि इस का बुनने वाला जुलाहा है, सोने के जेवर को देख कर लोग जान जाते हैं कि इस का घड़ने वाला सोनार है। इसी प्रकार इस जगत् रूप कार्य को देख कर बुद्धिमान् लोग अनुमान कर लेते हैं कि इस का कर्त्ता परमात्मा है जो चेतन का भी चेतन, सर्व शक्तिमान्, सर्व व्यापक और सर्वज्ञ है।

२. दूसरा अनुमान प्रमाण–कोई भी कार्य किसी प्रकार की

क्रिया वा हरकत वा प्रयत्न विना नहीं होता, और यह प्रयत्न चेतन विना होता नहीं। जैसे घड़े को बनाने के लिये कुम्हार क्रिया करता है, कपड़े को बुनने के लिये जुलाहा हरकत करता है, जेवर को घड़ने के लिये सोनार प्रयत्न करता है, वैसे इस जगत् को बनाने के लिये जो चेतन पुरुष प्रयत्न करता है, वही ईश्वर है। विना किसी चेतन के प्रयत्न के यह विचित्र जगत् अपने आप बन नहीं सकता। इस लिये इस जगत् की सृष्टि (रचना) के आरम्भ में जिसने इसे रचने का प्रयन्न किया है, वही ईश्वर है।

३. तीसरा अनुमान प्रमाण—कोई चीज विना किसी आधार वा आश्रय के टिक नहीं सकती। अगर कोई पक्षी अपनी चोंच में एक लकड़ी का टुकड़ा पकड़ कर आकाश में उड़ता है और जब तक वह उसे पकड़े रहता है वह टुकड़ा नीचे नहीं गिरता। और जब वह पक्षी उस टुकड़े को छोड़ देता है तो वह नीचे आ पड़ता है। यह पकड़ने वा धारण करने का काम किसी चेतन और समर्थ पुरुष के बिना हो नहीं सकता। जिस चेतन और सर्व समर्थ पुरुष ने इस इतने बड़े जगत् को धारण कर रखा है, वह ईश्वर है। यह पृथिवी किसी न किसी आधार पर टिकी हुई है, क्योंकि बिना आधार के कोई चीज़ टिक नहीं सकती। इस से अनुमान होता है कि जिस के आधार पर यह पृथिवी टिकी हुई है, वह सर्व शक्तिमान् ईश्वर है।

४. चौथा अनुमान प्रमाण—कोई कार्य विना नियम के चल नहीं सकता। इन नियमों का बनाने वाला चेतन वो बुद्धिमान् पुरुष ही हो सकता है। जैसे किसी राज्य का प्रबन्ध करना हो तो राजा को उस के लिये कानून बनाना पड़ता है। उन कानूनों की पाबन्दी रखवाना भी उसी राजा का कार्य है। अगर कोई कानून

की पाबन्दी न रखे तो वह कानून तोड़ने वाले को दण्ड देता है। कानून के अनुसार चलने वाले को इनाम देता हैं। ऐसे राज्य का सुप्रबन्ध देख कर कोई पुरुष अनुमान लगा सकता है कि इस राज्य का शासक चतुर वा बुद्धिमान है। इसी प्रकार इस जगत् के नियमों को देख कर बुद्धिमान् पुरुष अनुमान करते हैं कि इन नियमों का बनाने वाला और सब को उन नियमों के अनुसार चलाने वाला चेतन, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान् ईश्वर है। जैसे सूर्य का प्रतिदिन पूर्व में उदय होना, पश्चिम में अस्त होना, नियत समय पर ऋतुओं का बदलना, पानी का सदा नीचे की ओर बहना, वर्षा का मेघों के द्वारा बरसना, आम का बीज बोने से आम लगना और नीम का बीज बोने से नीम उगना आदि असंख्य नियमों का पालन देख कर यह अनुमान होता है कि इन अटल नियमों का बनाने वाला और इन का पालन करने वाला ईश्वर अवश्य है।

५. पांचवां अनुमान प्रमाण—किसी चीज़ को देख कर मनुष्य अनुमान करते हैं कि इस चीज़ का कोई न कोई स्वामी वा मालिक अवश्य है। जैसे किसी ने एक घर को देखा तो वह घर को देख कर अवश्य जान जायगा कि इस घर का कोई न कोई मालक अवश्य है। घर और घर का मालिक एक नहीं हो सकते, क्योंकि घर तो जड़ है और मालिक चेतन प्राणी होता है। जैसे इस जड़ शरीर का मालिक आत्मा है, वैसे इस जड़ जगत् का स्वामी चेतनों से भी चेतन परमात्मा है।

शब्द प्रमाण।

१. प्रथम शब्द प्रमाण—हिन्दुओं की क्या सब मनुष्य मात्र की सब से प्राचीन पुस्तक वेद है। वेद में लिखा है कि परमेश्वर ने वेदों को बनाया, इस से सिद्ध होता है कि वेदों का बनाने

वाला परमात्मा है, इस के प्रमाण में यह श्रुति है कि

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

अर्थ—उस सर्वहुत यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए, उसी से छन्द उत्पन्न हुए और उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ। इस से भी ईश्वर की सिद्धि होती है।

फिर वेद में लिखा है कि—

यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै।

अर्थ—जो उस ब्रह्मा के लिये वेदों को प्रकाश करता है और

अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।

अर्थ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—ये उस महान् ब्रह्म के श्वास मात्र है।

इन से वेदों का बनाने वाला ईश्वर सिद्ध होता है।

२. दूसरा शाब्द प्रमाण—वेद में लिखा है कि यह सब कुछ ईश्वर ही है, उसी से सब यह उत्पन्न होता है, उसी में लय होता है और उसी में चेष्टा करता है। इस के प्रमाण में यह श्रुति है—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।

अर्थ—यह सब निश्चय ब्रह्म है, इसी से सब उत्पन्न होते हैं, इसी में लय होते हैं और इसी में चेष्टा करते हैं। इस लिये शान्त हो कर ब्रह्म की उपासना करे।

३. तीसरा शाब्द प्रमाण—ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में अंगूठे के परिमाण के समान सूक्ष्म रूप से विराजमान है, यथा—

(अ) अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्यं आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुप्सते॥

अर्थ-अङ्गुष्ठ-मात्र पुरुष भूत, भविष्य, वर्तमान का ईश्वर शरीर के मध्य में स्थित है। उस को जान कर पुरुष फिर आत्मा की रक्षा करने की इच्छा नहीं करता।

(आ) अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥

अर्थ—जो आत्मा सब सूक्ष्मों से भी सूक्ष्म, सब महानों से भी महान्, इस जीव की बुद्धिरूप गुफा में बैठा है, उस आत्मा की महिमा को निष्काम, शोकरहित मनुष्य निर्मल मन होने से देखता है।

(इ) ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन! तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

अर्थ—हे अर्जुन! ईश्वर चक्र पर चढ़े हुए समस्त प्राणियों को अपनी माया से घुमाता वा चलाता हुआ सब जीवों के हृदय में विराजमान है।

४. चौथा शाब्द प्रमाण—ईश्वर सब का स्वामी है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

अर्थ—उस ईश्वरों के भी परम ईश्वर, देवताओं के भी परम दैवत, पतियों के भी परम पति, भुवनों के ईश्वर, पूज्य देव को हम परम रूप से जानते हैं।

५. पांचवा शाब्द प्रमाण—ईश्वर सर्व—व्यापक है—

(अ) नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।

अर्थ—वह ईश्वर नित्य, पूर्ण, सर्व—व्यापक, बहुत ही सूक्ष्म और अव्यय है जिस भूतों (प्राणियों) के कारण को धीर पुरुष देखते हैं।

(आ) एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

अर्थ—एक देव सब भूत या प्राणियों में गुप्त (छुपा हुआ) है, सब में व्यापक है, सब भूतों का अन्तरात्मा है। जैसे दूध में घी, तिलों में तेल, काष्ठ में अग्नि, सोते में जल, मेंहदी में रंग छिपा हुआ रहता है, वैसे ही ईश्वर सब चीजों में छिपा हुआ है।

(इ) मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥

अर्थ—माया को प्रकृति जाने, माया वाले को महेश्वर जाने। इन दोनों के अवयव भूतों से यह सर्व जगत् व्याप्त है।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ईश्वर है। किन्तु इस का प्रत्यक्ष अनुभव तो उपासना, योग, भक्ति, ज्ञान आदि के द्वारा अपने आप को ही होता है, जिसे कोई भी पुरुष दूसरे को बता नहीं सकता। ईश्वर स्वयं बुद्धिगम्य है। प्रयत्न करने पर वह अपने आप प्रकट होजाता है। इन प्रमाणों का विस्तार देखना हो तो मेरी लिखी हुई "ईश्वर—सिद्धि" में देख लिया जावे जिस में ५१ प्रत्यक्ष, ५१ अनुमान और ५१ शाब्द प्रमाण, कुल १५३ प्रमाण, दिये गये हैं।

इन प्रमाणों से यह कुछ अंश में सिद्ध होता है कि इस जगत् का रचने वाला, चलाने वाला और नाश करने वाला, सर्व-समर्थ, सर्व-शक्ति-शाली, चेतनों का भी चेतन, सर्व-व्यापक, सर्वाधार और सर्वज्ञ ईश्वर है, जो अपनी इच्छानुसार सभी कार्य करता है। इसका दृढ निश्चय हो जाने पर पुरुष की स्वतः प्रवृत्ति होती है कि उस परमात्मा का और उसकी अचिन्त्य शक्ति का साक्षात्कार करे। इस साक्षात्कार के प्रयत्नों को ही भगवान् की प्राप्ति के उपाय कहते हैं। ये उपाय अनेक प्रकार के हैं, क्योंकि प्रत्येक पुरुष के भाव भिन्न २ प्रकार के होते हैं। भगवान् भावगम्य ही हैं, क्योंकि—

ये यथा मां प्रपद्येरँस्तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अर्थ-जो पुरुष मुझ को जिस भाव से भजता है, मैं उस को उसी प्रकार से प्राप्त होता हूँ।

इन नाना प्रकार के साधनों को निम्न विभागों में विभक्त किया जा सकता है। १ कर्म-प्रधान, २ ज्ञान-प्रधान, ३ भक्ति-प्रधान, ४ प्रपत्ति-प्रधान, ५ गुरु-कृपा-प्रधान और ६ ईश्वर-कृपा-प्रधान। इन का नीचे संक्षेप से वर्णन किया जाता है।

१. कर्म-प्रधान-साधन।

कर्म दो प्रकार के होते हैं, सकाम और निष्काम। किसी कामना वा मनोरथ की सिद्धि के वास्ते जो कर्म किये जाते हैं, वे सकाम कर्म कहलाते हैं और जो कर्म विना किसी कामना के, उस के फल की इच्छा और आसक्ति का परित्याग कर, किये जाते हैं वे निष्काम कर्म कहलाते हैं। सकाम कर्म करने से मनुष्य का बन्धन होता है और निष्काम कर्म के करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। जनक आदि राजा निष्काम कर्म कर मोक्ष को प्राप्त हुए थे, यथा—

कर्मणैव संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। ३। २०

अर्थ-जनक आदि पुरुष कर्म (निष्काम कर्म) करने से ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हुए।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः। ३। १९।

अर्थ-इस लिये हे अर्जुन! तू कर्तव्य कर्म (यज्ञ, दान और तप) को आसक्त न होकर कर, क्योंकि अनासक्त होकर कर्म को करता हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

कर्म अनेक प्रकार के हैं जिन में भगवान् की प्राप्ति के

साधन रूप ये कर्म हैं:—यज्ञ, दान, तप, भगवन्नाम का भजन, शास्त्रोक्त सनातन वर्णाश्रम धर्मों का परिपालन, स्नान, सन्ध्या, जप, देवताओं की पूजा, तर्पण, वैश्वदेव, पञ्च-महायज्ञ, अग्निहोत्र, तीर्थ-यात्रा, श्राद्ध, एकादशी, जयन्ती-व्रत, कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रत, यज्ञशेष वा भगवान् के भोग का प्रसाद, स्वाध्याय, वेद-पाठ, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन, वेदान्त वाक्यों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन, योग-साधन, सांख्य-योग, साधु-पुरुषों का संङ्ग वा सत्सङ्ग, गुरुशुश्रूषा, इष्टापूर्त, दक्षिणा, नियम, यम आदि आदि।

२. ज्ञान-प्रधान-साधन।

भगवान् के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना इस लिये आवश्यक है कि ज्ञान विना परमात्मा में प्रेम नहीं हो सकता। यह परमात्मा का ज्ञान उस के प्रभाव के जानने से, सत्सङ्ग से, धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने से, ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा वा विश्वास रखने से और भगवान् का निरन्तर भजन करने से होता है। भगवान् के भजन के साथ भगवान् की किसी भी साकार मूर्ति का ध्यान किया जाय तो सिद्धि शीघ्र मिलती है, क्योंकि महर्षियों ने परमात्मा का साक्षात्कार ध्यान–योग के द्वारा ही किया था, यथा—

ते ध्यानयोगेनानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥

(श्वेत १। ३)

अर्थ—उन ऋषियों ने ध्यान-योग के द्वारा गुणों से छिपी हुई परमात्मा की शक्ति को देखा। जो परमात्मा इकल्ला काल और आत्मा से युक्त समस्त कारणों का अधिष्ठाता है।

ईश्वर के स्वरूपों का वेद में अनेक प्रकार से वर्णन किया हुआ है, क्योंकि ईश्वर अनन्त-शक्ति-शाली, सर्व-व्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, शुद्ध, बुद्ध, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महान्,

स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों से रहित, धर्माधर्मादि-रहित, सर्व-द्रष्टा, सर्वोत्कृष्ट, सनातन, स्वयम्भू, अनन्त मस्तक-हाथ-पैर-आंख वाला, पृथिवी पर सर्वत्र व्याप्त होकर रहने वाला, सत्य, ज्ञान, अनन्त-रूप, सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है। वही जगत् का उपादान-निमित्त—सहकारी कारण है। चर और अचर रूप अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उसी के स्वरूप हैं और उसी के बनाये हुए हैं। वह गद्रूप है और जगत् उस में प्रतिष्ठित है।

इस प्रकार के ज्ञान से पुरुष का भगवान् में प्रेम होता है, क्योंकि ज्ञान विना प्रेम नहीं, प्रेम विना भक्ति नहीं हो सकती। लौकिक में भी हम जिस पुरुष को नहीं पहचानते उस से हमारा प्रेम होना असम्भव है। जब किसी पुरुष से मेल मिलाप हो जाता है, उस के साथ रहने का अवसर आता रहता है तब हमें उस का ज्ञान होता है। ज्ञान की वृद्धि होते होते उस से प्रेम हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि वह भगवान् के प्रभावों का वर्णन सुने, कथा सुने, सत्सङ्ग करे, भगवन्नाम का जप करे, भगवान् के गुणों का श्रवण करे, भगवान् की अनन्त शक्ति, दया, वात्सल्य, पतित—पावन करने की उदारता आदि का मनन व निदिध्यासन करे, वेदान्त वाक्योंके श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा भी ज्ञान की प्राप्ति होती है जिस से किसी सद्गुरु की शरण में जाकर उसकी शुश्रुषा-पूर्वक सङ्गति में रहे और उसके उपदेश के अनुसार चल कर अपने देह का कल्याण करे। केवल पुस्तकों के पढ़ने से सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। उस से मनुष्य ज्ञान-प्राप्ति का अधिकारी अवश्य हो जाता है। फिर गुरु की शरण में जाकर साधन में लगने से और प्रयत्न करने से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। सत्सङ्गति से भी ज्ञान की प्राप्ति हुई देखी जाती है। ज्ञान विना मुक्ति नहीं हो सकती। लिखा भी है कि—

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।

अर्थ—ज्ञान के विना मुक्ति नहीं मिलती ।

३. भक्ति-प्रधान-साधन ।

भक्ति से तात्पर्य परमेश्वर के साथ प्रेम से है । नारद-सूत्र में लिखा है कि—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।२। अमृतस्वरूपा च ।३। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति ।४। यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ।५। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति ।६। सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ।७।

अर्थ—वह (भक्ति) ईश्वर में परम प्रेम रूप वाली होती है । और वह अमृत स्वरूपिणी है । जिस (भक्ति) को प्राप्त कर पुरुष सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है । जिस (भक्ति) को पाकर मनुष्य न तो किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी में क्रीड़ा करता है वा आसक्त होता है और न (भोगों की ओर) उत्साह-युक्त होता है । जिस (भक्ति) को जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध वा शान्त हो जाता है और आत्माराम वा परमहंस हो जाता है । यह (भक्ति) कामना-युक्त नहीं होती, किन्तु निरोध रूप होती है अर्थात् भक्त लौकिक और वैदिक सब प्रकार के कर्मों का परित्याग कर भगवान् में अनन्य प्रेम करने लग जाता है । भगवान् में सम्पूर्ण प्रकार से प्रेम का नाम ही भक्ति है ।

यही बात महर्षि शाण्डिल्य ने अपने भक्ति-सूत्र में कही है—

सा परानुरक्तिरीश्वरे । तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात् ।

अर्थ—वह (भक्ति) परमेश्वर में परम अनुराग वा प्रेम-रूपा

है। ऐसा कहा गया है कि उन (भगवान्) में चित्त लग जाने से जीव अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है अर्थात् अमर हो जाता है।

ज्ञान की तरह भक्ति अभ्यास से प्राप्त नहीं की जा सकती। वेदवाक्य और गुरु के उपदेश पर विचार करने से मनुष्य ईश्वर सम्बन्धीय ज्ञान प्राप्त कर सकता है, परन्तु भक्ति इस प्रकार से प्राप्त की जाने वाली वस्तु नहीं है। भक्त का मन भगवान् के अनिर्वचनीय गुण, माहात्म्य, स्वरूप, प्रभाव आदि में से किसी में आकृष्ट हो कर भगवान् के अनन्य प्रेम में जब बन्ध जाता है, तभी भक्ति प्राप्त की जासकती है। तब भक्त के और भगवान् के बीच में कोई तीसरी वस्तु ही नहीं रहती, वे दोनों अभेद रूप से रहते हैं; यदि कुछ भी भेद है तो यही कि भक्त भगवान् का भजन करता है और भगवान् भक्त से भजन किये जाते हैं।

भक्ति के दो बड़े भेद हैं, यथा गौणी-भक्ति और परा-भक्ति। इन में से गौणी-भक्ति तो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के भेद से की जाने वाली तीन प्रकार की है। गौणी-भक्ति किसी इच्छा को मन में रख कर की जाती है, जिससे वह निकृष्ट मानी जाती है। आपदा से छूटने के लिये जो भक्ति की जाती है वह 'आर्त-भक्ति' है, जैसे गजेन्द्र, द्रौपदी आदि। भगवान् के तत्व को जानने के लिये जो भक्ति की जाती है वह 'जिज्ञासा-भक्ति' है, जैसे जनक, शुकदेवजी आदि। किसी मनोरथ वा कामना की सिद्धि के लिये जो भक्ति की जाती है वह अर्थार्थि-भक्ति है, जैसे ध्रुव, सुग्रीव आदि। दूसरी पराभक्ति वह है जिस में कोई प्रकार की कामना नहीं होती और भक्त का मन भगवान् के प्रेम में स्वाभाविक ही मग्न हो जाता है। ज्ञानी-भक्त ही भगवान् का परम भक्त होता है, जैसे नारद, प्रह्लाद, आदि। परा-भक्ति ही उत्कृष्ट भक्ति है।

भगवान् को प्राप्त करने के उपायों में भक्ति ही सर्व-सुलभ उपाय है, क्योंकि इस में न तो विद्या की आवश्यकता है, न धन खर्च करना पड़ता है, न आचार-विचार रखने का बन्धन है, न वर्णाश्रम धर्मों के पालन की आवश्यकता है, न योगाभ्यास की कठिन चर्या है, न व्रत, तप, आदि की कठोरता है। श्रीकृष्ण भगवान् उद्धवजी को उपदेश देते स्वयं आज्ञा करते हैं कि—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ! ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ भा० ११।१४
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥
यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥
भा० ११।१४। १९-२१

अर्थ—हे उद्धव ! न तो योग-साधन, न सांख्य-ज्ञान, न वर्णाश्रम धर्मों का आचरण, न वेद-पाठ आदि स्वाध्याय, न तपस्या और न दान से मैं प्राप्त किया जा सकता हूं जैसा मैं बढ़ी हुई भक्ति से प्राप्त होता हूं। सत्पुरुषों को प्रिय लगने वाला मैं श्रद्धावाली भक्ति से ही सुलभ हूं। मुझ में की गई भक्ति चाण्डाल आदि को भी अपनी जाति के दोष से पवित्र कर देती है। जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठों के ढेर को भस्म कर देता है वैसे मेरी भक्ति सब पापों के ढेर को भस्म कर देती है।

यह प्रेम-रूपा भक्ति एक प्रकार की होने पर भी इस के अवान्तर भेद अनेक हैं जिन में से नारदजी ने निम्न ग्यारह भेद गिनाये हैं:—

१. गुणमाहात्म्यासक्ति—भगवान् के गुणों को सुन कर अथवा जान कर भगवान् में प्रेम करना, जैसे नारदजी, व्यासजी, परीक्षित् आदि।

२. रूपासक्ति–भगवान् का मनोहर रूप देख कर प्रेम करना, जैसे गोपियां, मिथिला के नर नारी, राजा जनक।

३. पूजासक्ति–भगवान् की पूजा में प्रेम करना, जैसे लक्ष्मी जी, पृथु राजा, उद्धवजी।

४. स्मरणासक्ति–भगवान् के नाम का स्मरण करने में प्रेम करना, जैसे प्रह्लाद, मीरांबाई, ध्रुवजी।

५. दास्यासक्ति–भगवान् का दास होकर प्रेम करना, जैसे हनुमानजी, विदुरजी, अक्रूरजी।

६. सख्यासक्ति–भगवान् का सखा वा मित्र होकर प्रेम करना, जैसे अर्जुन, सुग्रीव, सुदामा।

७. कान्तासक्ति–भगवान् को अपना पति मान कर प्रेम करना, जैसे रुक्मिणी, राधा, गोपियां, पटरानियां।

८. वात्सल्यासक्ति–भगवान् के 'अपने भक्तों पर कृपा करने के' गुण पर मोहित होकर प्रेम करना, जैसे दशरथजी, वसुदेवजी, नन्दजी।

९. निवेदनासक्ति–भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण कर उन से प्रेम करना, जैसे वलिराजा, विभीषण, अम्बरीष, हनुमानजी।

१० तन्मयासक्ति–भगवान् में तन्मय वा एक-रूप होकर प्रेम करना, जैसे देवाधिदेव महादेवजी, शुकदेवजी, सनकादिक

११. विरहासक्ति–भगवान् का विरह असह्य मान कर प्रेम करना, जैसे गोपियां, उद्धवजी, पाण्डव आदि।

भगवान् की भक्ति की प्राप्ति के लिये किसी भक्त ने भगवान् से यही प्रार्थना की है कि—

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन्! पूर्वकर्मानुरूपम्।

एतत्प्राथ्यं मम न बहुलं जन्मजन्मान्तरेषु
त्वत्पादाम्भोरुहमुपगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥

जिस का निम्न पद्यानुवाद है:—

नहीं आस्था धर्म में है, नहीं धन के पुञ्ज में,
नहीं इच्छा काम में है, नहीं योग--निकुञ्ज में।
लिखा प्राक्तन कर्म में जो, हो वही भगवन्! यहां,
यही मेरी प्रार्थना है, जन्म मैं पाऊं जहां।
आप का गुण-गान करके नाम-जप करता रहूं,
चरण-रज का दास बन कर, भक्ति-रस पीता रहूं॥

भक्ति द्वारा भगवान् को प्राप्त करने के निम्न प्रधान साधन हैं:—

१. भगवान् के नाम का जप।
२. भगवान् का भजन, कीर्तन।
३. भगवान् की किसी भी मनोहर मूर्ति का ध्यान व चिन्तन।
४. भगवान् के गुण, प्रभाव, माहात्म्य आदि का ज्ञान।
५. भगवान् के साकार विग्रह की पूजा।
६. भगवान् की कथा का सुनना।
७. भगवान् की भक्ति वाले शास्त्रों का पढ़ना, मनन करना।
८. भगवान् की भक्ति की वृद्धि कराने वाले कर्मों का करना।
९. भगवान् की भक्ति की साधना के साथ अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणों का पालन करना।
१०. विषयों का त्याग और सङ्ग का त्याग।
११. अखण्ड भजन।
१२. महापुरुषों की कृपा से भक्ति की प्राप्ति।
१३. भगवान् की कृपा के अंश (लेश) मात्र के प्राप्त करने के लिये ऐसे कर्म करना जिससे भगवान् प्रसन्न हों, जैसे सब

प्राणियों पर दया करना, सब प्राणियों का भला करना आदि।

१४. महात्मा, सन्त, साधु, ज्ञानी, भक्त पुरुषों का सङ्ग करना।

१५. वृथा समय न विताना, श्वास श्वास में भगवान् का नाम-स्मरण, ध्यान, चिन्तन आदि करना, कहा है कि—

श्वास श्वास में नाम जप, वृथा श्वास मत खोय।
ना जाने इस श्वास का, आना पुन ना होय॥

१६. भगवान् को घट घट में व्यापक समझ कर सब से मधुर प्रेमसहित आचरण वा बरताव करना, गरीब की सहायता करना, रोगी की शुश्रूषा करना, आदि।

४. शरणागति-प्रधान-साधन।

शरणागति शब्द का अर्थ है "भगवान् की अनन्य शरण ग्रहण करना" अर्थात् भगवान् के सिवाय किसी अन्य का कभी आश्रय न लेना। नारदजी ने लिखा है कि—

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः। कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमाना पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि। तन्मयाः। मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चैवं भूर्भवति। यतस्तदीयाः।

अर्थ—एकान्त अर्थात् अनन्य भक्त ही श्रेष्ठ हैं, ऐसे अनन्य भक्त के कण्ठ का रुक जाना, रोमाञ्च (पुलकावलि) हो आना, नेत्रों में से प्रेमाश्रुओं का बहना आदि से प्रेम-घन परमात्मा के विषय में भक्त लोग आपस में सम्भाषण करते हैं। ऐसे भक्त अपने कुल को और पृथिवी को भी पवित्र करते हैं। ऐसे भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सच्छास्त्र कर कर देते हैं, क्योंकि वे तन्मय (भगवद्रूप) होते हैं। ऐसे भक्तों को देख कर पितर प्रसन्न होते हैं, देवता नाचते हैं और पृथिवी

सनाथा वा स्वामीवाली (धन्या) हो जाती है। क्योंकि भक्त उन (भगवान्) के ही हैं।

परा-भक्तिवाला पुरुष ही शरणागति ग्रहण करता है। भगवान् को अपना सर्वस्व अर्पण कर देने का नाम ही शरणागति है। भगवान् को सर्वस्व अर्पण कर देने पर शरणागत भक्त को कुछ करना कराना नहीं पड़ता। उस का पालन, रक्षा, विघ्न-बाधाओं का हरण, रोगों से मुक्ति, पापों का नाश, प्रेम का प्राकट्य, विरह में व्याकुलता आदि सब कार्य स्वयं भगवान् ही करते हैं। शरणागत हो कर भक्त सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में उपदेश दिया है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ ८।२२
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ ६।३०
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत !।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ १८।६२
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ १८। ६५
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ १८। ६६

अर्थ—जो पुरुष मेरे सिवा किसी दूसरे का चिन्तन नहीं करते और केवल मेरी ही उपासना करते हैं उन सदा मुझ में परायण पुरुषों के योग (अप्राप्त वस्तु का प्राप्त करना) और क्षेम (प्राप्त वस्तु का रक्षण) मैं करता हूं। जो मेरा भक्त मुझ को तो सर्वत्र देखता है और सब को मुझ में देखता है, उस के पास से न तो मैं दूर रहता हूं और न वह मुझ से दूर रहता है। हे भारत !

उसी भगवान् की शरण में सर्व-भाव से जा, उसी की कृपा से तू परम शान्ति को और सनातन पद (वैकुण्ठ) को प्राप्त हो जावेगा। तेरा मन मुझ में लगा, मेरी भक्ति कर, मेरी पूजा कर, मुझे नमस्कार कर, तू मुझ को ही प्राप्त हो जावेगा, मैं तुझ से सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, क्योंकि तू मेरा प्रिय (सखा) है। सब धर्मों को छोड़ कर मुझ इकल्ले की शरण में आजा, मैं तुझे सब पापों से छुड़ा दूँगा, तू शोक मत कर।

इस से बढ़ कर भगवान् की क्या प्रतिज्ञा हो सकती है? यदि कसर है तो केवल इसी बात की है कि मनुष्य भगवान् की शरण नहीं लेता। भगवच्छरण में जाने पर किसी बात की कमी नहीं रहती। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की यह प्रतिज्ञा है कि-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ वा. रा. ६।१८।३३

अर्थ-जो पुरुष केवल एक बार "मैं आपका (आप की शरण में आया हुआ) हूँ" ऐसा कहता है तो उस शरणागत पुरुष को मैं सब प्राणियों से अभय-दान देता हूँ, यह मेरा प्रण है।

भगवान् की भक्ति का पर्यवसान शरणागति में ही होता है। शरणागति से भगवान् की प्राप्ति असन्दिग्ध हो जाती है। भगवान् का शरण ग्रहण करने वाले पुरुष को कुछ अन्य उपाय नहीं करना पड़ता।

५. गुरुकृपा-प्रधान-साधन।

गुरु शब्द का अर्थ है-जो अज्ञान का नाश करे और धर्म का उपदेश करे, वह गुरु होता है। मनुस्मृति में लिखा है कि-

निषेकादिकर्माणि यः करोति यथाविधि।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥

अर्थ-जो विधि-पूर्वक वीर्य-सेक आदि कर्म करता है, अन्न से पोषण करता है, वह ब्राह्मण गुरु कहाता है।

इस से प्रथम गुरु संज्ञा तो पिता की है जो उस को जन्म देता है। दूसरा गुरु माता है जो उस का स्तन-पान, अन्न-प्राशन आदि से पालन करती है। ये दोनों माता-पिता ही बालपन में शिक्षा देने से शिक्षा-गुरु कहलाते हैं। इन के सिवाय

स गुरुर्यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।

अर्थ-जो संस्कार करा कर वेद पढ़ाता है वह गुरु है। इस से अध्यापक वा आचार्य तीसरा गुरु है। माता, पिता, आचार्य ये तीन शिक्षा-गुरु होते हैं। अज्ञान का नाश करने और ज्ञान की वृद्धि करने के कारण ही शास्त्र में गुरु-महिमा लिखी गई है, यथा-

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

अर्थ-अज्ञान रूप अन्धकार वाले पुरुष के नेत्रों को ज्ञान रूप काजल की शलाका से जिस ने खोल दिया, उस गुरु को नमस्कार है। जिस से चर और अचर रूप समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त हो रहा है उस परमात्मा का स्थान जिस ने बता दिया, उस गुरु को नमस्कार है।

इन में से पहला तो शिक्षा-गुरु है और दूसरा दीक्षा-गुरु है जो ब्रह्म-ज्ञान द्वारा परमात्मा की प्राप्ति करा देता है।

श्रीकृष्ण भगवान् ने गुरु की महिमा की प्रशंसा की है, यथा-

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा॥ भा० १०।८०।३४

अर्थ-यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तप, इन्द्रियों के जय से सर्व भूतों का

आत्मा मैं ऐसा प्रसन्न नहीं होता हूं जैसा गुरु की सेवा से सन्तुष्ट होता हूं।

भगवान् कहते हैं कि पिता, माता, गुरु इन तीन प्रकार के गुरुजनों में से पहला गुरु तो पूज्य है, दूसरा मेरे समान पूज्य है और तीसरा गुरु तो मेरा ही स्वरूप है। इस मनुष्य जन्म में वर्णाश्रम धर्मों का पालन करने वाले जो पुरुष साक्षात् मेरे स्वरूप ज्ञान-प्रद गुरु के उपदेश से अनायास ही संसार रूप अपार सागर को तिर जाते हैं, उन्हें ही अपना प्रयोजन सिद्ध करने में चतुर समझना चाहिये। दीक्षा-गुरु को परमात्मा का स्वरूप समझ कर ही उसकी सेवा करनी चाहिये। दीक्षा का यह लक्षण है कि-

दीयते विमलं ज्ञानं क्षीयते कर्मवासना।
तेन दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥

अर्थ-जिस से निर्मल ज्ञान दिया जाता है और जिस से कर्मों की वासना का नाश होता है, इस लिये तत्वदर्शी मुनिलोग उसे दीक्षा कहते हैं।

गुरु-सेवा करने से गुरु-कृपा होती है, गुरु-कृपा से गुरु-दीक्षा होती है। गुरु-दीक्षा से ब्रह्म-ज्ञान के साधन का उपदेश होता है, उपदिष्ट-साधन के अभ्यास से परमात्मा की प्राप्ति होती है.

६. ईश्वर-कृपा-प्रधान-साधन।

ईश्वर की कृपा विना तो कुछ भी नहीं हो सकता। प्रथम तो गर्भवास में रक्षा, प्रसूति के दुःख से छुटकारा, शैशव अवस्था के रोग वा आपत्तियां, उच्च कुल में जन्म, विद्या की प्राप्ति, गुरु की उपलब्धि, आत्म-ज्ञान की इच्छा, अभ्यास का बन आना, शरीर की स्वस्थता, अभ्यास में सफलता, कर्म-ज्ञान-भक्ति की प्राप्ति, आदि सभी कार्य भगवान् की कृपा विना कुछ भी नहीं हो सकते। नारदजी स्पष्ट कहते हैं कि-

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा। महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव। तस्मिँस्तज्जने भेदाभावात्। तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्।

अर्थ-भक्ति की प्राप्ति का साधन मुख्यता से महापुरुषों की कृपा से अथवा भगवान् की कृपा के लेशमात्र से होता है। परन्तु महापुरुषों का सङ्गम दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। उस (भगवान्) की कृपा से ही महापुरुषों का सङ्ग मिलता है। क्योंकि भगवान् में और उन के भक्तों में भेद का अभाव है। इस लिये उस महत्सङ्ग की ही साधना करो, उसी की साधना करो।

वास्तव में महात्मा पुरुषों की कृपा और भगवत्कृपा एक ही वस्तु है। क्योंकि भगवान् की कृपा विना महात्मा मिलता नहीं और मिल जाय तो भगवान् की कृपा विना महात्मा की भी कृपा नहीं होती। और महात्मा की कृपा विना भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते। किन्तु इन दोनों में मुख्य भगवान् की ही कृपा समझनी चाहिये। जड़भरतजी ने राजा रहूगण को उपदेश देते यह स्पष्ट कहा है कि—

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकात्॥
भा० ५।१२।१२

अर्थ—हे रहूगण! भक्ति की प्राप्ति न तो तपस्या से, न यज्ञ से, न घर छोड़ कर जाने (संन्यासी बनने) से, न वेद-पाठ से, न जल-दान (तर्पण) से, न अग्निहोत्र से, न सूर्योपस्थान वा सूर्य में बैठ कर तप करने से हो सकती है, किन्तु यह तो केवल महात्माओं की चरण-रज की सेवा से ही मिल सकती है।

भगवान् स्वयं फ़रमाते हैं कि—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !॥

अर्थ—हे नारद ! मैं न तो वैकुण्ठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में रहता हूँ, किन्तु जहां मेरे भक्त भजन, कीर्तन करते हैं, वहां मैं रहता हूँ।

भगवान् का भजन कीर्तन करने वाले लोग ही महात्मा हुआ करते हैं। महात्मा के सङ्ग से मनुष्य का मन शुद्ध होजाता है, मन शुद्ध होने से ज्ञान वा भक्ति की प्राप्ति और पुण्य का सञ्चय होता है। किन्तु इन सब का प्रधान कारण भगवान् की कृपा ही है।

इस कलियुग में तो भगवन्नाम-स्मरण से बढ़ कर कोई दूसरा साधन नहीं है। व्यासजी ने कलियुग में भगवत्प्राप्ति का मुख्य साधन भगवन्नाम के जप वा कीर्तन को ही बताया है, यथा—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थ—हरि भगवान् का नाम ही, नाम ही, केवल नाम ही मेरा सच्चा जीवन है। भगवन्नाम को छोड़ कर और कोई दूसरी गति वा उपाय नहीं है।

इस का यह कारण है कि हरि भगवान् के नाम में इतनी शक्ति है कि वह जितने पाप पापी कर सकता है उस से अधिक पापों का नाश कर सकता है, यथा—

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

अर्थ—श्रीहरि भगवान् के नाम में पाप नाश करने की इतनी शक्ति है कि उतने पाप पापी लोग कर ही नहीं सकते। इसलिये

इस कलियुग में तो भगवन्नाम जप वा कीर्तन करना ही प्रधान साधन है ।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

अर्थ–जिन हरि भगवान् के नाम का कीर्तन सब पापों का नाश करने वाला है और जिन को किया हुआ प्रणाम दुःखों की शान्ति करने वाला है, उन सर्वश्रेष्ठ हरि भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ । ओम् शम् ॥

नारायणोत्तरपद–गोविन्देन सुधीमता ।
भगवत्प्राप्त्युपायोऽयं रचितः स्यात्सतां मुदे ॥

गोविन्द ।

॥ श्रीहरिः ॥

श्रद्धा के कुछ फूल ।

राजस्थान की पवित्र भूमि हिन्दु जाति के लिये पवित्रमय तीर्थ रूप है । अपने अमर साहित्य–अपनी वीर गाथायें–अपने महान् बलिदान के कारण वह धन्य है । वहां का साहित्य राजपूत, वैश्य और शूद्रों के अपूर्व त्याग और रक्त से निर्माण हुआ है । यही कारण है कि उस में इतना ओज, इतना प्राण और इतनी संजीवनी शक्ति है ।

राजपूताने के कवियों ने असंख्य ग्रन्थ लिखे हैं–वे सारे राजपूताने में बिखरे पड़े हैं । उन के संग्रह का कार्य बड़ा ही पवित्र एवं महान् है । जो विद्वान् इस साहित्य के किसी भी अंश के सम्बन्ध में कुछ भी कर रहे हैं, वे हमारी श्रद्धा के पात्र हैं ।

'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' के कार्यों से मुझे राजस्थानी साहित्य के कुछ अमूल्य रत्न मिले । साहित्य भी मिला और साहित्यिक भी । पूज्यपाद पंडित रामकर्णजी आसोपा से परिचित होने का सौभाग्य भी सोसाइटी के कारण प्राप्त हुआ । डिंगल साहित्य के प्रति आप का अद्भुत अनुराग, आप का अप्रतिम ज्ञान देख कर चित्त को बड़ी शान्ति मिली ।

पूज्य आसोपाजी कलकत्ता विश्वविद्यालय में पहले भी रह चुके थे । परन्तु उस समय परिचय ही नहीं था–नहीं तो क्या जाने और भी कितने ही हीरे उन से परखने का सौभाग्य होता । पर इस बार के मिलन ने जगाजी खिड़िया द्वारा कहे हुए जो कवित सोसाइटी के संग्रह में थे–उन का जौहर आप के द्वारा सामने आया । इन कवित्तों ने आज तक मेरे हृत्पट पर अपनी

छाप लगा रखी है। जब जब जगाजी के कवित पढ़ता हूँ तब तब आसोपाजी को श्रद्धा के साथ याद कर लेता हूँ। ये कवित राजस्थानी साहित्य में एक अपूर्व वस्तु है।

पूज्य आसोपाजी का अभिनन्दन राजस्थानी साहित्य संसार कर रहा है, इस से बढ़ कर खुशी की बात और क्या होगी? उन्हों ने अपने इस दीर्घकाल में साहित्य और अन्वेषण के संबंध में जो कुछ किया है, वह महान् है। सैकड़ों अपठनीय शिलालेखों को पढ़ने में उन्हों ने अपनी रातें बिताई हैं। डिंगल साहित्य के हीरों को परखने में अपने समय और शरीर दोनों की आहुतियें प्रदान की हैं।

संस्कृत साहित्य पर तो आप का असीम अधिकार है। राजपूताने में आप के जैसा विद्वान्—संस्कृत साहित्य से परिचित—शायद ही प्राप्त होसके। इतना ही नहीं, इस बीसवीं सदी में भी आप ने संस्कृत में एक महाकाव्य का निर्माण किया है। इस महाकाव्य में राठोड़ों के राज्य जोधपुर का विस्तृत इतिहास है। परन्तु, यह ग्रन्थ भी अभी तक अप्रकाशित है। इस के अतिरिक्त इन के अनेकों ग्रन्थ अप्रकाशित रूप में इन के पास हैं। क्या ही अच्छा होता कि 'आसोपा अभिनन्दन समिति' अभिनन्दन ग्रन्थ के साथ साथ इन के समस्त ग्रथों के प्रकाशन की चेष्टा करती।

राजस्थान का यह दधीचि साहित्य के एक महान् कार्य में अब तक लगा था। वह कार्य था "डिंगल कोश का निर्माण"। डिंगल भाषा दुरूह है। सर्व साधारण जनता उसे समझ नहीं सकती। उस के कोश का निर्माण होना बहुत ही आवश्यक कार्य है। पूज्य आसोपाजी ने अपना बहुतसा समय इस महान् कार्य में लगाया है। क्या ही सुन्दर होता कि राजस्थानी साहित्य संसार उन की इस अमर कृति को उन के जीवनकाल में ही

प्रकाशित कर उन की आत्मा को संतोष प्रदान करता।

पर समय बलवान है। समय जो कुछ करवाता है, उस में मनुष्य का वश नहीं। पर यह कार्य अब ठीक समय पर कर देने का ही है। इस से राजस्थानी के कितने ही हीरों के लिए कसोटी तैयार हो जायगी। इस अभिनन्दनोत्सव के साथ मेरे जैसा राजस्थानी साहित्य का अनभिज्ञ व्यक्ति उन का क्या अभिनन्दन करे? मैं तो राजस्थानी साहित्य का एक तुच्छ पुजारी हूँ। इन महर्षियों से जो कुछ फूल कभी मिल जाते हैं, उन्हें सर आंखों पर चढ़ा लेता हूँ। इस अभिनन्दन ग्रन्थ में अपनी ओर से मैं पूज्य आसोपाजी के चरण कमलों में अपनी श्रद्धा के ये ही फूल भेंट करता हूँ और उस परम पिता परमात्मा से प्रार्थना भी है कि, वह डिंगलकोश को प्रकाशित देखने के लिए आसोपाजी को हमारे बीच में रहने की शक्ति प्रदान करे।

रामदेव चोखानी

श्रद्धांजलि

जयन्तु ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकामे जरामरणजं भयम्॥

हरे भरे लहलहाते सघन वृक्ष की छाया में बैठ कर किस श्रान्त पथिक का चित्त प्रसन्न नहीं हो जाता। परन्तु बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने वृक्ष के पीछे छिपे हुए बीज के त्याग का स्मरण किया होगा। बीज नष्ट होकर वृक्ष को जन्म देता है। वह अपनी सत्ता का विकास पत्ती-शाखा-फल-फूल के रूप में

करता है। यही उस का त्याग है, यही उस का परिचय। श्रद्धेय पण्डित रामकर्णजी आसोपा राजस्थानी साहित्य के उन संस्थापकों अथवा उन्नायकों में से हैं, जिन्होंने कई वर्षों पहले राजस्थानी साहित्य के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया था। उस जमाने में राजस्थानी साहित्य को बहुत कम महत्व दिया जाता था। पण्डित जी ने अपनी मूक साधना से जो दीपक जलाया था, आज उस का प्रकाश देश के कोने कोने में जगमगा उठा है। राजस्थानी साहित्य की उत्तमता की ओर हिन्दी और इतर भाषाभाषी प्रान्तों के सामन्तों और सहृदय विद्वानों की दृष्टि अब जाने लगी है। यह क्या कम गौरव की बात है। हाल ही में शान्तिनिकेतन के हिन्दी-भवन की स्थापना के उपलक्ष में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने राजस्थानीय साहित्य के विषय में गौरव पूर्ण उद्गार प्रकट किये हैं—

"कुछ समय पहले कलकत्ते में मेरे कुछ राजस्थानी मित्रों ने रण-सम्बन्धी कुछ राजस्थानी गीत सुनाये। मैं तो उन को सुन कर मुग्ध होगया। उन गीतों में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है! वे लोगों के स्वाभाविक उद्गार हैं। मैं तो उन को सन्तसाहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूँ। क्या ही अच्छा हो, अगर वे गीत प्रकाशित किये जाँय। वे गीत संस्था के किसी भी साहित्य और भाषा का गौरव बढ़ा सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो मैं उन को शान्तिनिकेतन के हिन्दी-भवन द्वारा प्रकाशित कराऊँगा।"

"मैं हिन्दी-भवन को प्राचीन हिन्दी-साहित्य की खोज बीन का एक जीवित केन्द्र बनाना चाहता हूँ। उदाहरणार्थ राजस्थानी साहित्य को भारत की जनता के सामने लाने की मैं हिन्दी-भवन द्वारा पूर्ण कोशिश करूँगा।"

ये हैं विश्वकवि के उद्गार। इसी प्रकार राजस्थानी साहित्य के अन्यान्य मर्मज्ञों और अन्वेषकों ने भी यदाकदा अपने उत्साह पूर्ण उद्गार प्रकट किये हैं। पाश्चात्य देशों तक में हमारे साहित्य का मुक्तकण्ठ से स्वागत हुआ है। कर्नल टाड और डाक्टर टेसी-टोरी तो इस के गुणों पर मुग्ध ही थे और उन्हों ने अपने जीवन का बहुमूल्य भाग इस साहित्य के अनुशीलन और प्रकाशन में दे डाला। रोम विश्वविद्यालय के डाक्टर तूची तथा लण्डन स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज के श्री ग्राहम बेली भी इस साहित्य की उत्कृष्टता से आकर्षित हुवे। इधर देश में भिन्न भिन्न देश-भाषाओं के साहित्य-सामन्तों ने भी राजस्थानी के ओजस्वी साहित्य की प्रशंसा की है। बङ्गाल में सर आशुतोष मुकर्जी और श्री. विधुशेखर भट्टाचार्य्य और गुजराती के स्वर्गीय श्री केशव हर्षदध्रुव तथा श्री. मोहनलाल दलीचन्द देसाई आदि महोदय इस साहित्य के गुणों पर रीझ गये। बङ्गाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी, काशी की श्री. नागरी प्रचारिणी सभा, प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी, गुजरात की वर्नाक्युलर सोसाइटी तथा शान्तिनिकेतन के हिन्दी-भवन ने इस साहित्य को अपनाया है और इस के प्रकाशन तथा अनुसंधान के लिए ये सभी सचेष्ट हैं। सारांश, वर्तमान काल में राजस्थानी साहित्य की पुनरुद्धार भावना का देश-विदेश में सर्वत्र स्वागत हो रहा है।

राजस्थानी के इस अभ्युदय और पुनरुत्थान काल में यदि हम उन बीजारोपक सामन्तों की स्वार्थहीन साधना और सात्विक त्याग को भूल जाँय, जिन्हों ने अनवरत प्रयास और अध्यवसाय पूर्वक इस अमर साहित्य के उत्थान और विकास के अवरुद्ध मार्गों को खोला है, तो हम जैसा कृतघ्न कोई न होगा ? जब तक स्वयं राजस्थानी अपने साहित्य-साधकों और सामन्तों का आदर

करना नहीं सीखेंगे, तब तक संसार के अन्य लोग तथा अन्य साहित्य उन के साहित्य का विशेष आदर नहीं करेंगे। जिस साहित्य में महामहोपाध्याय डाक्टर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा और इतिहासरत्न श्री: आसोपाजी जैसे विश्रुत साहित्य महारथी मौजूद हैं और जिसे देशभक्त सेठ जमनालाल बजाज तथा श्री बिड़ला बन्धुओं जैसे संरक्षक और मनस्वी हितचिन्तक प्राप्त हैं, जिस का देशप्रेम देशी राज्यों के प्रतापी नरेशों के हृदय में तरङ्गित होता रहा है, उसे मार्गप्रदर्शन संरक्षक और संगठन की क्या कमी होनी चाहिए? परन्तु यदि आज हमसे कोई पूछे कि राजस्थान के साहित्य और इतिहास की निस्वार्थ सेवा करने वाले इन वृद्ध तपस्वियों और अद्वितीय विद्वानों का राजस्थान वासियों ने अब तक क्या सन्मान किया, तो उत्तर देते हुए संकोच होता है। माना कि रातदिन अपनी निस्वार्थ साधना की लगन में रहने वाले विद्वान पुरस्कार और सम्मान की वांछा नहीं रखते, परन्तु समाज का भी उन के प्रति कोई विशिष्ट धर्म होता है। हमारा तो विचार है कि जिस प्रकार महाराष्ट्र की उस महान साहित्य-विभूति के नाम से "भण्डारकर रिचर्स इन्स्टीटयूट" अमर स्मारक प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार हमारे राजस्थानी सामन्तों के संस्मरण में भी-ओझा-खोज परिषद, आसोपा अन्वेषण इन्स्टीटयूट मुंशी देवीप्रसाद इतिहास परिषद, तथा पुरोहित हरिनारायण-संत-साहित्य-मण्डल स्थापित होने चाहिए। और भी अच्छा होगा यदि ये संस्थाएँ इन सामन्तों के जीवनकाल में इन का आशीर्वाद और मार्गप्रदर्शन प्राप्त कर सकें।

महामहोपाध्याय डाक्टर गौरिशङ्कर हीराचन्द ओझा, स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी, कविराजा स्यामलदास, पं० रामकर्णजी आसोपा, पु० हरिनारायणजी, दीवान बहादुर हरविलास सारड़ा,

श्री. विश्वेश्वरनाथ रेऊ, आदि आदि राजस्थानी के पुनरुत्थान युग के संचालक एवं संरक्षक हैं, जिनके मार्गप्रदर्शन में अनेक उत्साही विद्वान् साहित्य सेवा के मार्ग पर आगे बढ़ते आये हैं और बढ़े जा रहे हैं, जिनके साधना–प्रदीप से उत्तरवर्ती साहित्यसेवियों ने अपनी प्रतिज्ञा के दीवे जलाये हैं। ये महानुभाव हमारी संस्कृति साहित्य और इतिहास के प्रकाशवाहक (Torch-dearars) हैं, अग्रणी (Pioneers) हैं और इसी गौरव के अनुकूल हमें उनका उचित सम्मान करना चाहिए। कृतज्ञता की भेंट ही सर्वोत्तम भेंट होती है, जिसे अर्पित करके हम शिष्य भाव से उनके प्रदर्शित मार्ग पर चलने के अधिकारी बन सकते हैं।

राजस्थानी साहित्य के महत्व पर विचार करने का यह अवसर नहीं है, उसे तो सब कोई स्वीकार करते हैं। इस समय की सब से बड़ी आवश्यकता यह है कि हम उस प्राचीन और ओजस्वी साहित्य के प्रकाशन और अनुसाधन में तत्परता के साथ लग जावें। हमारे अग्रणी सामन्तों का आशीर्वाद हमारे साथ है और गुणग्राही साहित्य–संसार उसे ग्रहण करने को उत्सुक है। तो हमें चाहिए ही क्या ? छिन्न भिन्न प्रयासों के संगठन और केन्द्रीगण की सब से बड़ी आवश्यकता है। हम देखते यह हैं कि राजस्थान के भिन्न भिन्न प्रान्तों में खोज और साहित्य निर्माण का कार्य तत्परता के साथ जारी है। परन्तु खेद इस बात का है कि जोधपुर के साहित्यिकों को बीकानेर के अन्वेषकों का सहयोग प्राप्त नहीं है। नतीजा यह होता है कि स्थानीय उद्योग स्थानीय सीमा तक ही परिसीमित रह जाता है और सहयोग रूपी जल के अभाव में उस पौधे की यथेष्ट वृद्धि नहीं हो पाती। समन्वय (Co-ordination) के अभाव में हमारा विशृङ्खल प्रयास प्रायः प्रभावहीन ही रह जाता है। हमारे प्रान्त में साधन

और उत्साह की कमी नहीं है, धन की प्रचुरता है, परन्तु कमी है संगठन और केन्द्रीकरण की। साहित्यिक उर्वरता में राजस्थान किसी प्रान्त से पिछड़ा हुवा नहीं, इस में अत्युक्ति नहीं है। यदि साहित्यिक खोज का संगठित प्रयास किया जाय, तो राजस्थान में इतनी उच्च कोटि का और इतने प्रचुर परिमाण में साहित्य हाथ लग जाता है कि उसके प्रकाश में आने पर मातृभाषा हिन्दी का मुकुट जगमगा उठे और भाषाएँ दांतों तले उँगली दबा कर आश्चर्य-चकित हो जाँय।

श्रद्धेय पं० रामकर्णजी आसोपा की साहित्य साधना के विषय में दो शब्द कहना आवश्यक है। किसी भी गौरवशील साहित्य की स्थायी स्थापना के लिए उस साहित्य और भाषा के उत्तम व्याकरण, व्यापक शब्दकोष और उसकी साहित्य-गरिमा के परिचायक 'साहित्य के इतिहास' की सब से बड़ी आवश्यकता होती है। आसोपाजी ने अपनी साधना में इस त्रिमुखी योजना का उपक्रम वर्षों पहले कर दिया था। उन्होंने सर्व प्रथम राजस्थानी का संक्षिप्त व्याकरण लिखा, जिस के आधार पर वृहत् व्याकरण की रचना करना उन के भविष्य का स्वप्न था। राजस्थानी डिंगल शब्द-कोष के निर्माण-कार्य में भी पिछले कई वर्षों से वे लगे हुए थे और इस कार्य में उन्हें मारवाड़ राज्य के भूतपूर्व प्रधान मंत्री सर सुखदेवप्रसाद का प्रोत्साहन भी मिला अब रही साहित्य के इतिहास की बात। वह भी उनके लक्ष्य के अन्तर्गत था, सवाल केवल समय और अवकाश का है। क्या हम आशा करें कि पण्डितजी की वृद्धावस्था में उनके इस महान् कार्य में राजस्थानी के अन्य सेवक और उत्साही विद्वान् हाथ बँटावेंगे और उन के लक्ष्य को उन के सामने ही सम्पन्न करके दिखावेंगे। वास्तव में, हमारे लिए उन के कार्य को सम्पन्न करना

ही उन के प्रति समुचित श्रद्धांजलि भेंट करना होगा। यही कृतज्ञता प्रकाशन का सर्वोत्तम मार्ग है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में राजस्थानी इतिहास के व्याख्याता रह कर श्री. आसोपाजी ने राजस्थान की जो सेवा की है, उस से हम उऋण नहीं हो सकते। हमारा कर्तव्य तो केवल यही रह जाता है हम उन के दिखाये हुए मार्ग पर निश्चित संकल्प के साथ क्रियाशील बने रहें। यही आशीर्वाद हम उन से चाहते हैं।

सूर्यकरण पारिक

॥ श्री ॥

पण्डितजी के कुछ गुणों का उल्लेख।

सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर प्रतीत हुवा है कि धन-दाता के द्रव्य से विद्यादाता के द्रव्य का फल अधिक, अनुपम और सुखतर है। उन दाताओं की स्तुति और प्रशंसा कितनी ज्यादा है, उसकी अनुमान से ही कल्पना की जा सकती है। सत्य उदारता वस्तुतः विद्यादान की ही है।

ऐसे दाता महानुभाव, महामहाध्यापक, विद्वद्रत्न पण्डित आसोपा के नाम से कोई ही शिक्षित इस मरु प्रान्त में अपरिचित होगा। प्रकृत्या आप पाठक के लक्षणों से विभूषित हैं। निर्दिष्ट है कि शिक्षा के फल का आधार शिक्षक के प्रभाव और संस्कार पर है। जिस शिक्षा से शिष्य की उस विषय में अभिरुचि उत्पन्न हो ऐसी शिक्षा के दाता को संसारी शिक्षक कह सकते हैं। गुरु में उन विषयों का सम्पूर्ण ज्ञान होना भी आवश्यक लक्षण है। ऐसे गुणों से समन्वित आप व्याकरण, साहित्य, इतिहास आदि अनेक विषयों के ज्ञाता हैं। उतना ही नहीं किन्तु तन, मन से

पवित्र सरस्वती देवी की सेवा उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखकर की है, और इस तरह आपने साहित्य क्षेत्र को समृद्ध बनाया है कि उस दान के उपकार को कोई भी शिक्षित मरुदेशवासी भूल नहीं सकता।

अजराऽमरवत्प्राज्ञो, विद्यामर्थश्च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्ममाचरेत्॥ १॥

इस नीति को आपने चरितार्थ कर दिखाया है। शान्ति, सुशीलता, अक्रोध, सौम्यचित्त, दृढ़व्रत आदि ब्रह्मकाय लक्षणों का पालन करने के लिए प्रथम से ही आपने लेखन कार्य सम्पादन किया है। किन्तु हर्ष है कि इन के ज्ञान भण्डार में " इति " शब्द नहीं है। विद्या और अर्थ आप के मन ब्रह्म हैं, और आप उसकी समाप्ति करके सन्तुष्ट बनना नहीं चाहते, मानो कि आयु अनन्त है, देह जर्जरावस्था रहित है, मर्त्य अमर्त्य है, इन सूत्रों पर जीवन निर्भर करके आप ने विद्या को अपना ध्येय बना कर अपना जीवन समूल्य करके जगत् को नवीन साहित्य की भेंट की है। और भीः—

कान् पृच्छामः सुराः स्वर्गे, निवसामो वयं भुवि।
किं वा काव्यरसः स्वादुः, किं वा स्वादीयसी सुधा॥

हम किन को पूछें कि अधिक स्वादुतर क्या है? काव्य रस या अमृत? देव स्वर्ग में रहते हैं और हम पृथ्वी पर। अमृत रस स्वर्ग में है और काव्य रस पृथ्वी पर। दोनों का मुकाबिला कैसे करें? परन्तु यह निर्विवाद बात है कि काव्यरस दाता कवि उच्चतम मनुष्य होकर बहु गौरवशाली और सुप्रतिष्ठित व्यक्ति है। आसोपाजी ने ऐसे कवि पद को विराजित करके कई काव्य-मालाएँ बनाई हैं इतनी विद्वत्ता और कवित्व होने पर भी आप अतिशीतल स्वभाव के हैं।

मुझे आपके साथ काम करने का सौभाग्य नीमाज का इतिहास लिखने के समय हुवा। मुझे इस बात को देखकर विस्मय हुवा कि आप उत्तरावस्था में होने पर भी आप अपने कार्य में उत्साह सम्पन्न, अदीर्घसूत्री और साहसी हैं।

धन्य हैं ऐसे सुरम्यमूर्ति, विद्या-भास्कर कि जिन्होंने अपना जीवन सफल करके देश और जाति को धन्यवादास्पद बनाया है। हम आप के इन गुणों और लक्षणों को उद्दिष्ट कर आप को हार्दिक अभिनन्दन देते हैं और परमात्मा से प्रार्थी हैं कि आप स्वस्थ रह कर शतायु हों।

आपका शुभाकांक्षी—
शिवशक्तिराय मिश्र,
जुडिशियल आफिसर, नींबाज
(मारवाड़)

पण्डितजी का गुणानुवाद।

(by Pandit Indra Raj Acharya B. A.,
Teacher, D. H. School, Jodhpur.)

विद्वत्ता—

पूज्यपाद श्रद्धेय विद्वद्रत्न पण्डितवर्य्य श्रीमान् रामकर्णजी महापुरुष हैं। गीर्वाणवाणी (संस्कृत) भाषा के आप पूर्ण पारंगत विद्वान् हैं। व्याकरण, न्याय, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, धर्मशास्त्र, इतिहास आदि भिन्न भिन्न विषयों के वेत्ता हैं। आधुनिक काल के इतिहासज्ञों में आपका मुख्य स्थान है। आपने कई प्रकार के प्राचीन लेखों व शिला लेखों का, जो संस्कृत, प्राकृत और डिंगल आदि के पृथक् पृथक् क्लिष्ट शब्दों में लिखे गये थे और जो

दीर्घकाल से जीर्ण होने के कारण अस्पष्ट व क्षताक्षर होगये थे और अर्थहीन मालूम होते थे, पुनः संशोधन किया और पश्चात् उनका नूतनभापा में अनुवाद किया सो मानों मृतक विद्या को पुनर्जीवित किया। इस प्रकार के अनुवाद आपने केवल जोधपुर गवर्नमेन्ट के आर्चियोलौजिकल डिपार्टमैन्ट में ही नहीं किये हैं, अपितु कलकत्ता-नगर के प्रधान इतिहास-विभाग में भी विशेप श्लाघनीय रीति से किये हैं, जिससे वहां के विभाग ने सहर्ष आपको प्रशंसापत्र और रुचिकर पारितोषिक प्रदान किया। निस्सन्देह इस प्रकार के चमत्कार से भारत के सुप्रसिद्ध विद्वानों में आपकी गणना हुई और मरुभूमि का मान बढ़ा कि उसके दुलारे लाल ने दूध लज्जित नहीं किया है।

धर्मनिष्ठा—

आप धर्मप्राण, अजातशत्रु, त्रिगुणातीत, शान्तमूर्ति, सौजन्यस्वरूप, न्यायनिष्णात, कर्मनिष्ठ, उत्साही, प्रेमी, परिश्रमी और निष्कपट महान् व्यक्ति हैं। कलिकाल में बुझती हुई दीपक की लौ को पुनः संजीवन करने के लिये आप अचूक भिषज हैं। जोधपुरीय सनातन धर्म की संस्था के एक मात्र स्तंभ हैं। आपकी अलौकिक मल्लिनाथ की सी सद्धर्म की सरल रूप की टीका टिप्पणियों ने नास्तिक पुरुषों को भी आस्तिकता में परिवर्तन कर दिया है। धार्मिक आदि विषयों में छात्रों को निःशुल्क विद्यादान देने में आपने कभी किसी प्रकार की कमी नहीं रक्खी है। आपका प्रतिदिन नित्य नियम का पालन करना इस वार्द्धक्य पूर्ण अवस्था में श्रमित्व का आदर्श प्रकट करता है। सच्चे ब्राह्मणपन के लक्षण आप में विद्यमान हैं, आपको छूआछूत का इतना पूर्ण ध्येय है कि साधारण जगह के जल तक का भी प्रयोग नहीं करते हैं। आप जैसे सच्चे धर्मपरायण, सत्यशील,

ब्रह्मनिष्ठ, आदर्श पुरुष इस कराल कलिकाल में विरले ही रह गये हैं।

सुशीलता—

गीता की दृष्टि से पण्डितजी का जीवन सफल समझना चाहिये क्योंकि उन्होंने तन, मन, धन और निःस्वार्थ भाव से मरुधरा की सेवा की, संस्कृत साहित्य को लोक-प्रिय किया और उसका प्रचार किया। आपके अनुकरणीय मानवीय गुण सर्वजन विदित हैं। आप उदार, सरल, निरभिमानी, सुशील, धर्मनिष्ठ और परिश्रमी हैं। आप आदर्श अध्यापक, आदर्श पण्डित और सनातनी हैं। माननीय धर्मप्राण पण्डितजी ने लोक-प्रिय की सतत और हार्दिक लगन से प्रेरित होकर भव्य भारती माता संस्कृत की वार्धक्यावस्था में भी सेवा की है और अनेक विद्याओं में पारंगत हैं। आपने "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन", "सर्वभूतहिते रतः" इत्यादि आदर्शता को चरितार्थ कर दिखाया है। आप विद्वान् होने पर भी नम्र हैं और आपका चित्त विशुद्ध ज्ञान और धर्मोन्नति में सदा रमा रहता है। आप अपना विशेष काल परोपकार में व्यतीत करते हैं। सरल जीवन और उच्च विचार ही आपका ध्येय है। आपमें सहनशीलता गुण विद्यमान है। आप सरल प्रकृतिवाले, मृदुभाषी व उच्च विचारशील हैं।

पाठकवृन्द! आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार का अद्वितीय विद्वान्, धर्मनिष्ठ, सदाचारी और परोप-कारी हो, वह निःसंदेह आदर्श पुरुष है और उसका जीवन सदा अनुकरणीय और नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित करने के योग्य है।

॥ श्रीः ॥

श्री "ब्रजनिधि"-भक्त कविवर

महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी

(लेखक-पुरोहित श्री हरिनारायण बी. ए. विद्याभूषण)

सवाई जयपुराधीश महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिंहजी देव राजा होकर भी एक बड़े भगवद्भक्त और सुकवि होगये हैं। उन ही के उत्तम साहित्य कार्य और काव्यरचना पर थोड़ासा लिख कर हम पाठकों का कुछ मनोरञ्जन करके अपने आप को धन्य बनाते हैं।

महाराजा प्रतापसिंहजी महाराजा माधवसिंहजी प्रथम के पुत्र, और महाराजा सवाई जयसिंहजी के पौत्र थे, जो कछवाहा क्षत्रिय वंश ही में नहीं भारत के उस समय के सर्व क्षत्रियवर्ण में धर्म-विद्या-नीति और शासनविधान में बहुत प्रसिद्ध और योग्य गिने गये हैं।

प्रतापसिंहजी का जन्म जयपुर में वि० सं० १८२१ में हुआ था। इन से बड़े पृथ्वीसिंहजी थे। माधवसिंहजी के स्वर्गवास करने पर पृथ्वीसिंहजी वि०सं० १८२४ में पांच ही वर्ष की अवस्था में गद्दी बैठे थे। परन्तु वि० सं० १८३५ में वे देवलोक चले गये तब प्रतापसिंहजी गद्दी बैठे। उस समय प्रतापसिंहजी १५ वर्ष के थे। परन्तु बाल्यावस्था ही से विद्याभ्यासी, चातुर्यप्रेमी, सुशील, भगवत्प्रेमी और सुविज्ञ थे। उनकी, हिन्दी, संस्कृत दोनों भाषाओं के काव्यों, व उस जमाने की उर्दू (हिन्दवी) और कुछ पंजाबी तथा ब्रज भाषा में, अच्छी रुचि थी। महाराजा ने अनेक पंडितों और कवियों तथा गायकों व भक्तों आदि से काव्य और गायन सीखा था। इनके पिता महाराजा माधवसिंहजी परमवैष्णव थे। वल्लभसम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय तथा रामानुजीय श्री

सम्प्रदाय आदि के महात्मा, पंडित, आचारी, भक्त, कवि आदि का सत्सङ्ग रहा। भगवत्सेवा और भक्तिभाव का जमाव तब ही से लगा। और अपने दादा सवाई जयसिंहजी के समय के बचे हुए पण्डितों की अब भी कमी नहीं थी। तथा इन के पिता महाराजा माधवसिंहजी भी पण्डित प्रेमी थे। इस से विद्वानों, कवियों और सब प्रकार के गुणियों की किसी प्रकार न्यूनता नहीं थी। इस कारण महाराजा प्रतापसिंहजी को विद्या प्राप्त करने में बहुत ही अच्छा अवसर मिला। महाराज ने काव्य के उत्तम २ रीतिग्रंथ, अङ्गउपाङ्ग और नृत्यगीतवादित्र आदि के वड़े २ आचार्य गुणी और विशेषज्ञ पुरुषों का सत्सङ्ग भली भांति से रक्खा। कवि, पण्डित, गुणी, शूरवीर आदिक पुरुषों का इतना जमघट होता चला गया कि एक २ प्रकरण और विद्या के पुरुषों की बाईसी बना दी गई। यथा—(१) कवी बाईसी, (२) गांधर्व बाईसी, (३) पंडित बाईसी, (४) वैद्य बाईसी, (५) भक्त बाईसी, (६) वीर बाईसी इत्यादि संख्या के विशेषज्ञों का बाहुल्य था। इस प्रकार गुणियों का समूह जिस के पास रहे उस राजा के समीप गुणों और विद्याओं का क्या ठिकाना रहे। महाराजा प्रतापसिंहजी का ज़माना राजस्थान में एक प्रशंसनीय समय रहा है। महाराजा सवाई जयसिंहजी से लगा कर प्रतापसिंहजी तक बराबर न्यूनाधिकता के साथ, जयपुर की राज सभा परम सुशोभित ही रही। इतने पण्डित, कवि और गुणी इस राजपूताने में अन्य किसी रियासत में रहे हों यह बात ढूँढकर शोधन की अपेक्षा रखती है। तभी तो जयपुर को छोटी काशी और छोटी दिल्ली कहा गया।

महाराजा प्रतापसिंहजी परम भगवद्भक्त थे। श्री गोविन्ददेवजी महाराज उन के परम इष्टदेव थे। कहते हैं श्री गोविन्द-

देवजी बाल-स्वरूप से दर्शन देते थे और अभीष्ट सिद्धि प्रदान करते थे। उन के कई एक पदों से भी यह बात स्पष्ट होती है। यथा:-१ आजु मैं आंखियन को फल पायो...हरिपदसंग्रह पृ. २६४
(२) अब जीवन को सब फल पायो...उक्त पृ. २३५
(३) फरज़न्द नन्दजी का वह सांवला सलोना...रे. सं. पृ. ३३३
(४) गुल दावदी बहार बीच यार खुश खड़ा था...उक्त पृ. ३७२*
इत्यादि बीसों पद आदि से अपरोक्षानुभूति और भगवत्कृपा विदित होती है। यह दर्शन किसी अपराध से बन्द हो गये तब "ब्रजनिधि" जी का मन्दिर बनवा कर श्री ब्रजनिधि के दर्शन और भक्ति करने की भगवदाज्ञा मिली थी। "ब्रजनिधि" यह काव्योपनाम तक भी भगवान् का प्रदान किया हुआ था। यथा—
(१) अब तो दरस दीजे, जो इनायत किया है "ब्रजनिधि" नाम ॥१९५॥ (हरिपद संग्रह)।
(२) धन्यौ "ब्रजनिधि" नाम तो अब लीजिये चित चोरी॥१६५॥ (हरिपद संग्रह)

महाराजा प्रतापसिंहजी "ब्रजनिधि" श्री गोविन्ददेवजी के मन्दिर तक चन्द्रमहल (अपने निवास के भवन) से, कनक दण्डवत् करते जाते थे। और रास्ते में गद्दे आगे २ बिछते चले जाते थे। आप के अस्वस्थ होजाने और युद्धों आदि में बाहिर जाने पर पुरोहित, जो भक्त और कृपापात्र थे, इस कनक दण्डवत् का काम करते थे। यह सेवा कनक दण्डवत् की अब भी पुरोहित ही करते हैं, बन्द नहीं हुई है। यह पाठकों को ज्ञात ही होगा कि जयपुर के राजा तो श्री गोविन्ददेवजी हैं और जयपुर के राजा श्रीजी के दीवान मात्र ही हैं, जैसे उदयपुर में श्री एकलिङ्ग

* ये पृष्ठ "ब्रजनिधि ग्रंथावली" के हैं। यह काशी नागरी प्रचारिणी सभा से छपी है (लेखक)

महादेवजी हैं । इस ही कारण राज्य के फरमानों में " श्रीदीवान वचनात् " ऐसा प्रारम्भ में लिखा जाता है ।

जैसे महाराज के पिता माधोसिंहजी परमवैष्णव थे वैसे ही प्रतापसिंहजी (" ब्रजनिधि " जी) भी परमवैष्णव थे । इन के साम्प्रदायिक गुरु श्री जगन्नाथजी भट्ट सुप्रसिद्ध "वंशीअलिजी" थे । वंशीअलीजी बड़े सुरस सत्कवि थे । श्री लाड़लीजी के मंदिर के ये गुसांई भी थे । अपने गुरु की प्रशंसा और स्तुति में "ब्रजनिधि" जी ने कई पद और छन्द कहे हैं । यथाः—

(पद)

(१) मैं कहूं कहा अब कृपा तुम्हारी ।
याहि कृपा करि गुरु मैं पाये, "जगन्नाथ" जयकारी ॥
जातैं मेरी लगन लगी है, ताको देत मिलारी ।
"ब्रजनिधि" राज सांवरो ढोटा ताको दिए बतारी ॥१९१)
(हरिपद संग्रह)

(कवित्त)

(२) सोभित उदार ....
....
भवनिधि तारन कौं भट्ट जगन्नाथ भए,
इहि कलि मांहिं सुक मुनि के स्वरूप हैं ॥ २८ ॥
(हरिपद संग्रह)

वंशीअलीजी की कविता का उदाहरण । यथाः—

" कैधौं बनवास घास रास मांझ त्रास पाइ,
कैधौं एकांत प्रांत एकहि पद लीनौ है ।
कैधौं जप तप व्रत तीरथ असे समाधि,
आसन हुतासन कौ करि तनु छीनौ है ॥
कैधौं विधि करि हरि पूजे बनमाली आली,
यातें याहि अधर सुधा कौ बास दीनौ है ।

निसिदिन रहत अधर कर पर अरी,
बंसी मन-मोहन की कौन पुन्य कीनों है " ॥१४१॥

" सीस पर सोहत अमित दुति चंद्रिका की,
बानिक रह्यौ है बनि ललित ललाट कौ।
राजत उदार उर पर वनमाल लाल,
कटितट सकत पिछौरा पीतपट कौ ॥
गजगति ऐबौ वर बांसुरी बजैबो मृदु,
मुसुकि चितैबो चित चेटक उचाट कौ।
नैननि निहारि सुधिहारी या बिहारी छवि,
तबतैं न मेरो मन घरकौ न घाटकौ " ॥ १४२ ॥
(हरिपद संग्रह)

इन बंसीअलीजी के अनेक उत्तम शिष्य हुए हैं। उनमें एक " किसोरीअली " बड़े भारी भक्त और अच्छे कवि थे। उन की बहुतसी कविताएँ " हरिपद संग्रह " नाम के संग्रह में है। उदाहरणार्थ एक यहां देते हैं। यथाः—

"आस यहै जिय लागी रही, मोहि दासी करो निज कुँजगली की।
रैन दिना बसिकै वनराज में, सेवा करूँ वृषभानुलली की॥
साथनि व्है ललिता गहि हाथनि, केलि लखौं कब रंगरली की।
रावरो रूप कबै दरसाइहौ, जीवनमूरि "किसोरीअली" की ॥२९॥
(हरिपद संग्रह)

" ब्रजनिधि " जी ने बाईस ग्रन्थ रचे थे, किसी के मत से पचीस ऐसा विख्यात है। उनमें सब से बड़ा ग्रन्थ " ब्रजनिधि-मुक्तावली " है, जिसमें ५००० पांच हज़ार से भी बहुत अधिक पद, भजन, प्रबन्ध, ख्याल, टप्पा, रेखता, छन्द, गीत आदिक हैं। यह ग्रन्थ पूर्ण तो महाराजा के पोथीख़ाने में है। परन्तु इस में के बहुत से पद बाहर प्रजाजनों में, भक्तजनों में और गायकों

में प्रचलित हैं। कई लोगों के पास खर्रे वा पोथियों में भी हैं। इन में के कई सौ पद "ब्रजनिधि ग्रंथावली" में प्रकाशित हुए हैं। जो ग्रंथ अब तक जाने गये हैं उनकी नामावली नीचे दी जाती है:—

(१) प्रीतिलता
(२) सनेह संग्राम।
(३) फागरङ्ग— ।
(४) प्रेम प्रकाश।
(५) विरह सलिता।
(६) सनेह बहार।
(७) मुरली विहार।
(८) रमक झमक बत्तीसी।
(९) रास का रेखता।
(१०) सुहाग रैनि।
(११) रङ्ग चौपड़।
(१२) नीति मंजरी।
(१३) सिंगार मंजरी।
(१४) वैराग मंजरी।
(१५) प्रीति पच्चीसी।
(१६) प्रेम पन्थ।
(१७) ब्रज सिंगार।
(१८) दुख हरन वेली।
(१९) सोरठ ख्याल।
(२०) ब्रजनिधि पद संग्रह।
(२१) हरिपद संग्रह।
(२२) रेखता संग्रह।

"ब्रजनिधि मुक्तावली" का नाम ऊपर आही चुका। रचना में पदों की संख्या सब से अधिक है। "ब्रजनिधि" जी की कविता बहुत सरस, भावभरी, भक्तिभरी, आनंदमयी, जिस में अटल अनन्य भगवद्भक्ति, प्रभुप्रेम, राधामाधव में अनन्य सद्भाव और आश्रिति, सच्चे गहरे हरिपदपंकज मधु-पीयूष-वासनाभरी-वांछा-समुद्र की तरंगों से भरी हुई, दीप्तिमान, आद्योपांत शांत-रस, उच्चतम आध्यात्मिक शृंगाररस, राधागोविंदलीला की ललित लावण्यमय-सुरुचि-रचना, गंभीर, धीमी, अनुद्विग्न, लीला-लोलित तरङ्गरङ्गउमंगें, मनोमुग्धकारी विहारी विहार की न्यारी सजावट लिये हुये चतुराई से भरी हुई, महाराज की कविता राजापसंद, राजाप्रीतिप्रसादिनी, राजा-कविता है। रस, अलङ्कार,

छन्द और रागरङ्गरंजन तथा काव्यकलाप के अनेक प्रकारों से गुम्फित सद्भावभरी चटकीली, नुकीली, रसीली बनावटें इस में विद्यमान हैं। राजपूताने के राजस्वी शासक-महज्जनों में नागरीदासजी, यशवन्तसिंहजी, मानसिंहजी, बुधसिंहजी आदि कवि बड़े नामी गिरामी हुए हैं। परन्तु महाराजा प्रतापसिंहजी "ब्रजनिधि" जी की अनन्यभावुकता और राधागोविन्दप्रेम, शरणागति और तल्लीनता से भरी कविता अन्य किसी की हो तो सहज ही बताई जाने में क़ठिनता ही प्रतीत होगी। इस बात का निश्चय वा निर्णय, उनकी कविताओं के अध्ययन और परस्पर के मिलान और तुलना से, इस काम के अभ्यस्त सिद्धहस्त जौंहरी लोगों द्वारा ही सम्भव है। हमारी शक्ति की इतनी पहुँच कहां कि इस महती क्रियाकलाप के काण्ड में पदार्पण कर सकें।

उपरोक्त ग्रन्थों में से एक २ उदाहरण दे देते हैं जिस से पाठकों को रसास्वादन और चाशनी किंचित् मिल जायगी। अधिक आनन्द तो ग्रन्थों के पठन पाठन श्रवण मनन ही से प्राप्त हो सकता है।

(१) "ब्रजनिधि मुक्तावली" सेः—

राग सोरठ ख्याल तिताला।

"प्यारो लागैरी गोविन्द।
केसरिया फैंटो सिर सोहै, माथे पर मृगमद को विंद॥
नवघनश्याम मदनमद मर्दन, दुखमोचन लोचन अरविंद॥
"ब्रजनिधि" छैल छबीले मुखपर, वारों कोटि सरद के इंद॥४९॥

(२) "प्रीतिलता" सेः—

"परसनि सरसनि अङ्ग की, हुलसनि हिय दुहुँ ओर।
नैन बैन अङ्ग माधुरी, लए चित्त बिन चोर॥ ६७॥

निपट विकट जे जुटि रहे, मो मन कपट कपाट।
जब खूटैं तब आप ही, दरसैं रस की बाट "॥ ७० ॥

(३) "सनेह संग्राम" से:—

"राधे सज्यो गुमानगढ, रुपी रूप की फौज।
ताकि ताकि चोटैं करत, उदभट सुभट मनोज॥
उदभट सुभट मनौज औज अपनौ बिसतारयो।
"ब्रजनिधि" बुद्धिनिधान कान्ह अवसान संवारयो॥
सन मुख दियो सुरङ्ग उड़े पन-पाहन आधे।
निकसी खोलि किंवारी रारि करबा कौ राधे "॥ २४ ॥

(४) "फागरङ्ग" से:—

"विधि वेद भेद न बतावत अखिल विस्व,
पुरुष पुरान आप धार्‍यौ कैसो स्वाङ्गवर।
कइलास वासी उमा करत खवासी दासी,
मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर॥
निजलोक छांड्यौ "ब्रजनिधि" जान्यौ ब्रजनिधि,
रङ्ग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर।
ब्रह्मलोक वारौं पुनि शिवलोक वारौं और,
विष्णुलोक वारि डारौं होरी ब्रजफाग पर "॥४७॥

(५) "प्रेम प्रकास" से:—

"प्रीतम तुमरे हेत, खेत न तजि हैं प्रीति कौ।
प्रान काढ़ि किन लेत, तजि हैं पै भजिये नहीं " ॥ ४४ ॥

(६) "बिरह सलिता" से:—

"जीवन जड़ी लै आवौ, अमृत अधर का प्यावौ।
रङ्ग सङ्ग अङ्ग मिलावौ, जियदान यों दिवावौ " ॥ ४८ ॥

(७) "स्नेह बहार" से:—

"और इस्क सब खिस्क है, खल्क ख्याल के फन्द।
सच्चा मन रच्चा रहे, लखि राधे ब्रजचन्द " ॥ ३९ ॥

(८) " मुरली विहार " सेः—

" जोग ध्यान जप तप करैं, नहिं पावत यह थान।
अधर मधुर अमृत चुवन, सोहि करत है पान " ॥ २९ ॥

(९) " रकम झमक वत्तीसी " सेः—

" वानी सी वानी सुनी, वानी वारह देह।
वनी वनी सी पै वनी; नजर वना की नेह " ॥ २१ ॥

(१०) " रास का रेखता " सेः—

" घूमिरि लेत घूमि घूमि अधर लेत चूमें।
मधुर रस को लूमि लूमि परस्पर हि झूमें " ॥
एक ही सरूप दोऊ भेद नां दुह में।
सोभा भई अपार आज, देखि व्रज की भू में " ॥ १२ ॥

(११) " सुहाग रैनि " सेः

" नवल विहारी नवल तिय, नवलकुँज रस केल।
सब निसि सुरत सुहाग मिलि, दम्पति आनन्द रेल" ॥३॥

(१२) " रङ्ग चौपड " सेः—

" खेल न लागे प्यार सौं, प्यारी पिया प्रसन्न।
वाजी समुझत परसपर, धन्य भाग है धन्य " ॥ ९ ॥

(१३) " नीति मंजरी " सेः—

" सब ग्रंथन को सार, मधुर वानी जिनके मुख।
नित प्रति विद्या देत, सुजस को पूरि रह्यौ सुख ॥
ऐसे कवि जहँ बसत, रहत निरधनता क्यों अति।
राजा नांहि प्रवीन, भई याही तें यह गति ॥
वे हैं विवेक संपति सहित, सब पुरषन में अति हि वर।
घटि कियौ रतन को मोल, जिहिं वहै जौहरी कूरनर "॥७॥

(१४) " सिङ्गार मंजरी " सेः—

" पण्डित जन जब तब कहत, तिय तजिबे की बात।
बकत वृथा बकवाद वह, तजी नैंक नहिं जात ॥

तजी नैंक नाँहि जात, गात छबि कनक बरन बर ।
कमल पत्र सम नैन, बैन बोलत अमृत झर ॥
सोहत मुख मृदुहास, अङ्ग आभूपण मंडित ।
ऐसी तिय कौ तजै, कौन धौं ऐसो पंडित " ॥ ६ ॥

(१५) " वैराग मंजरी " से:—

" जौं लौं देह निरोग, और जौं लौं न जरा तन ।
अरु जौं लौं बलवान, आयु अरु इंद्रिन के गन ॥
तौं लौं निज कल्याण, करनकौं जतन उचारत ।
वह पंडित वह धीर, वीर जो प्रथम विचारत ॥
फिरि होत कहा जरजर भए, जप तप संजम नहिं बनत ।
भभकाय उठ्यौ निज भवन जब, तब का हो कूपहि खनत"।८०॥

(१६) "प्रीतिपचीसी" से:—

" आयो हो अक्रूर सो तौ महा मतिक्रूर हुतो,
आँखिनि में धूरि दैकै करदीनौ परदै ।
अब तुम आए ऊधो जोग सोग रोग लाए,
लागत अभाए अब काहि कौजु डरदै ॥
"ब्रजनिधि" कही सोतौ सबै वातैं सुनीं हम,
हम कहैं सोभी तू धरम काज करदै ।
पंचागनि कहा साधैं पंचबान हमैं दाधै,
ह्वै बेदरद होय अग्नि मांझ धरदै" ॥ १० ॥

(१७) " प्रेमपंथ" से:—

" अपत कहा पहिचानि हैं ,"पता" पते की बात ।
जानैंगे जिनके हिये, प्रेम भक्ति दरसात" ॥ २७ ॥

(१८) "ब्रज सिंगार" से:—

" छबिकी छटा है वढ़ी रंग की अटा है लखि,
मदन हटा है सो बिलास बेलि कंद है ।

जगमग दिवारी है कि दामिनी उज्यारी है कि,
देवता संवारी है कि मंद हास पंद है॥
"ब्रजनिधि" जूकी प्यारी लली वृषभानुवारी,
सोभा की सरित मानौं अदभुत छंद है।
रूप है अगाधे चितवनि दग आधे साधे,
राधे मुखचंद को चकोर ब्रजचंद है" ॥ ३३ ॥

(१९) "ब्रजनिधि मुक्तावली" सेः—

(राग सोरठ तिताला)

"कैसे कटै री दइया परवत सम री रतियां।
घन गरजत अति चपला चमकत, बरपत झर जियपर इह घतियां॥
सुरत दिखावत पीय पपीहा, मारत मदन बदन कों कतियां॥
"ब्रजनिधि" विन छिन नाहीं जीवन, दारयों ज्यों दरकत हैं छतियां॥"

(अन्य सोरठा तिताला जयपुरी बोली में)

थांकी कांनी थे जावो जी (कन्हैया) ओगण म्हांका मत देखो।
अधम उधारन बिड़द रावरो, जीं ने जी मैं नींका पेखो।
अधमी छां म्हे नहीं जी ठिकाणूं, थां विन कुण पर करां परेखो॥
"ब्रजनिधि" म्हांने थांका कहै छै, भीड़ करो छो राज यो कुण लेखो"

(२०) "ब्रजनिधि पदसंग्रह" सेः—

बिलावल धीमा तिताल।

"वङ्क बिलोकनि हिये अरीरी॥
जबतें दृष्टि परे मनमोहन, लोक लाज कुलकानि टरीरी।
दिन नाहिं चैन रैन नाहिं निद्रा, नां जानों विधि कहा करीरी।
ह्वै निसंक "ब्रजनिधि" सों मिलिहौं, सो वह ह्वै है कौन घरीरी।"

(२१) "हरिपद संग्रह" सेः—

पद। झंझोटी

"जिन के श्रीगोविन्द सहाई, तिन के चिन्ता करै बलाई।
मनवांछित सब होंहि मनोरथ, सुख सम्पति सरसाई॥ टेर॥

व्यापत नांहिं ताप तिहिं तीनों, कीरति बढ़त सवाई ।
नष्ट होंहि सत्रू सब तिनके, उर आनन्द बधाई ॥ १ ॥
भूमि भंडार विभव कञ्चन मणि, रिद्धि सिद्धि समुदाई ।
जोइ जोइ चहै लहै सोइ सोई, त्रिभुवन विदित बड़ाई ॥ २ ॥
विमल भक्ति अनुराग निरंतर, अधिक अधिक अधिकाई ।
करुनासिंधु कृपाल करहिं नित, सब "ब्रजनिधि" मनभाई ॥ ३ ॥

(२२) " रेखता संग्रह " से:—

रेखता (कालिंगड़ा)

" इस दर्द की दाइ कहां कोई हकीम पास ।
जो आइ नब्ज देखै सो छोड़ता है आस ॥ १ ॥
यह इश्क बदबला है जिसको लगै है आन ।
तिसको न सूझता है कोई भला जहान ॥ २ ॥
महबूब की जुदाई मुझ से सही न जाय ।
यह मर्ज़ है अनोखा किस से कहूं सुनाय ॥ ३ ॥
जब से नजर पड़ा है " ब्रजनिधि " सलौना स्याम ॥
तब से नहीं रहा है मुझ को, किसी से काम " ॥४ ॥१९८॥

" हरिपद संग्रह " से

(अन्य) रेखता (राग खमाच)

" सुन्दर सुघर सलौना सोहन, मनमोहन वह हुस्न उजारा ।
खूबी खूब खुमार चश्म में, अजब सजा दिलदार पियारा ॥ १ ॥
सिर फबि फैंटा जर्द अमैंठा, तुर्रा धर इक सजदा ।
अंग जेवर जगमगदा जाहर, बदन पड़ा इक धजदा ॥ २ ॥
नीमां अङ्गदा तङ्ग सुर्खरङ्ग, मदन गर्द कर दीना ।
दुपटा सबज गजब रङ्ग मन को, कबज अजब ढङ्ग कीना ॥३॥
कञ्चन बूँटी चमक अनूँठी, सूथन सुंघरी झमकै ।
जिन उसदा दीदार लिया है और कहूँ नहिं रमकै ॥ ४ ॥

उस विन छिन कल नाहिं न रहती कहो मैं कैसे जीया।
चरण कमल मकरंद मधुप हो, परस सरस रस पीया ॥ ५ ॥
ताले वहाल उसीदे हैंगे, कदम जिन्हों यह छींया।
"व्रजनिधि" पर मैं फिदा होय के, नजराने सिर दीया" ॥६॥
(रेखता संग्रह ॥७४॥)

(२३) " सोरठ ख्याल" सेः—
"अरि यह लालन ललित त्रिभंगी। व्रजराज कुंवर नवरंगी ॥१॥
"व्रजनिधि" द्यो फगुवा गंगी। चारौं मैं कोटि अनंगी ॥ १७ ॥
(यह क्षुद्र प्रवंध फाग का है।)

"व्रजनिधि" जी के पदों की लावण्यता तो उनकी गायनोपयोगी रचनाओं से देखी समझी जा सकती है। और उनके कवित्त, छप्पय, दोहा, सोरठा, कुंडलिया आदि छंदों में जो काव्य है वह उनके ग्रंथों से पृथक् करके रक्खा जाय तो उसका आस्वादन निराला ही है। यहां ऐसा कर दिखानें का न तो स्थान ही है और न अवसर। इसे, हमारे निहोरे से, पाठक "व्रजनिधि ग्रंथावली" के अंतर्गत ग्रंथों को पढ़ कर कर सकेंगे तो एक पदार्थ बनैगा।

कविता-काल।

"व्रजनिधि" जी की कविताओं का रचना काल, उनके ग्रंथों के अंत में दिये हुए संवतादि से. संवत् विक्रमी १८४८ से १८५३ तक का, मिलता है। जन्म संवत् १८२१ के विचारने से २७ वर्ष की उम्र से कविता का आरंभ और ५–६ वर्ष तक होता रहना ही दिखाई देता है। परन्तु ऐसा नहीं है। उनकी कविता का आरंभ बहुत पहिले से हो चुका था। वे कोई १२–१३ वर्ष के थे तबही से। और स्वर्गवास के समय (सं० १८६०) तक चलता रहा। काव्यप्रवाह कभी रुका नहीं था। चाहे कुछ ग्रांस

ग्रंथों में ये संवत् मिलते हैं। परंतु इनसे ऐसा कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। हम उनके कविता काल को सं० १८३३ से १८६० तक मानते हैं। अपनी रुग्णावस्था में पद और दोहे कहे हैं वे स्पष्ट ही पीछे की रचनाएं हैं। इनमें से "हरिपद संग्रह," "ब्रजनिधिपद संग्रह" और ब्रजनिधि मुक्तावली' आदि में हैं। कई रेखते भी बहुत पीछे रचे हैं ॥

भाषा और रचना।

"ब्रजनिधि" जी की रचनाएँ प्रायः ब्रजभाषा में हैं। अनेक पदादि शुद्ध जयपुरी (ढूंढाहड़ी) बोली में भी हैं। रेखते खड़ी उस समय की "उर्दू रेखता" में हैं। कई पद पंजाबी भाषा में भी हैं। संस्कृत की शुद्ध रचना हमें प्राप्त नहीं हुई। वैसे वे संस्कृत के पंडित थे, फ़ारसी भी कुछ जानते थे।

काव्य-रचना सरस, सरल, मनोमुग्ध-कारिणी, सद्भावना के भावों से भरी हुई है। अन्य कवियों की तरह खैंचातान ऐसी नहीं है कि जो भाषा के रूप को विकृत करे। यमक और तुकांत का प्रयास तो प्रचुरता से प्रगट ही है। अलंकारों को बनाकर वा खैंच कर लाने की चेष्टा नहीं है, तब भी स्थान २ में अलंकार चमक रहे हैं। राजाओं के अलंकारों का क्या घाटा हो सकता है ? रस तो शांत, शृंगार, करुण और कुछ २ रौद्रादि का भी कहीं २ लेश है। भक्ति और विरह की प्राधान्यता से शांत और शृंगार और कहीं वात्सल्य भी झलते हैं। रचना १९ वीं शताब्दी के मध्यकालीन होने से स्फीत, निर्मल और सरस है। विशेष विवेचन यहां अपेक्षित नहीं।

"ब्रजनिधि" जी (महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी) का समय, भाषाकाव्य और भाषा के ग्रन्थों की रचना के लिए, भाषा साहित्य की उन्नति का एक युग सा होगया है। वे स्वयम् श्रेष्ठ

कवि तो थे ही और कवियों के आदर करने वाले भी थे, उन के सकाश, आज्ञा वा प्रसन्नता के लिए बहुत ग्रन्थ उनके समय में रचे गये। उनके समय के कुछ कवियों के नाम दिये जाते हैं:- जगन्नाथ भट्ट (वंसीअली), आनन्दघन, किशोरीअली, अली-भगवान, शुभचिंतक, व्रजनाथ, केशवराम, रूपअली, अग्रअली,१० आजिज, मेहरवान, दयासखी, रसरास, रसपुंज, गुणनिधि, कल्याण, अमृतराम, अनन्य, गणपति भारती, २० वुधप्रकास, नाथुराम, राधाकृष्ण, वख़तेश, राव शंभुराम, चतुरशिरोमणि, वारैठ सागर कविया, वारैठ महेशदास महड्ड, वारैठ हुक्मीचन्द, वारैठ हरिदास भादा, ३० मनभावन, अमृतराम (गणपति भारती के छोटे भाई), व्रजपाल कवि, मनीराम कवि, मोहनलाल कवीश्वर (म० क० पद्माकर के पिता), मण्डन भट्ट, मिश्र शंभुराम मालपुरे के, कलानिधि, द्वारकानाथ सरस्वती, ३९ म० क० जगदीश भट्ट, इत्यादि अनेक कवि, पण्डित, गुणी, गायक, भक्त आदिक इनके समय में हुये हैं। बहुतों के नामादि तक ज्ञात नहीं। जिनके नाम ज्ञात हैं उनके कुछ ग्रन्थ मिलते हैं, कुछ नहीं मिलते। यहां स्थानाभाव तथा समयाभाव से उनका उदाहरण रूप में भी उल्लेख असंभव है। नामोल्लेख मात्र से संतोष कर्त्तव्य रहा है॥

आपने सवाई जयसिंहजी, अपने प्रसिद्ध विद्वान् प्रपिता, के बनवाये ज्योतिष यंत्रालय में सुधार और वृद्धि की थी और कई अच्छे २ ज्योतिषी भी इनके समय में विद्यमान थे। वैद्यक के कई ग्रन्थ बने थे। ज्योतिष के भी बने थे। धर्मशास्त्र के भी बने थे। सांगीत के भी बने थे। श्रीराधाव्रजनिधिजी की मूर्ति आपके प्रेम और पसंद से बनी थी और आपका उस में हाथ था और श्रीजी की प्रतिष्ठा और विवाहकार्य बड़े समारोह और व्यय से हुआ था। दोलतरामजी हलदिया के यहां से पियाजी व्याह कर

आये थे। विग्राह मंगल का व्यावला ग्रन्थ और अनेक उत्तम कविताएँ निर्मित हुई थीं।

कुछ ग्रन्थों के नाम यहां देते हैं, जो "ब्रजनिधि" जी के समय में बने थे और जिन में कई तो बहुत प्रसिद्ध हैं:—

(१) नवरस—म० क० गणपति भारती रचित।
(२) अलङ्कार सुधानिधि—गणपति भारती महाकवि रचित।
(३) सिंगार हजारा—उक्त कवि और उनके भ्राता का संगृहीत।
(४) वीर हजारा—उक्त कवि और अन्य कवियों का संगृहीत।
(५) भीष्मपर्व छन्दोऽनुवाद—गणपति भारती महाकवि।
(६) योगवाशिष्ठसार— " "
(७) नैमपच्चीसी— " "
(८) विरह पच्चीसी— म० क० गणपति भारती।
(९) प्रीति मंजरी—(बड़ा काव्य ग्रंथ) " "
(१०) अन्योक्ति काव्य— " "
(११) नवरस विलास— " "
(१२) अलंकार सुधानिधि— " "
(१३) प्रताप मार्त्तंड—कवि अमृतरामजी कृत जो गणपति भारती के छोटे भाई थे।
(१४) कवित्त रत्नमालिका—गुसांई रसरास कृत
(१५) फुटकर काव्य संग्रह— " "
(१६) सांगीत राधागोविंद (वा राधागोविंद सांगीतसार) — बहुत बड़ा ग्रंथ, ७ अध्यायों में, "पबलिक लाईब्रेरी" में, सहस्त्र बुद्धि द्वारा प्रकाशित, विद्यमान है।
(१७) स्वरसागर—बुधप्रकाश मीयाँ चाँदखां रचित।
(१८) रागरत्नाकर—कवि राधाकृष्ण कृत।

(१९) अमृतप्रकाश—कवि अमृतराम पल्लीवाल रचित ।

(२०) प्रतापार्क—धर्मशास्त्र का ग्रंथ-विश्वेश्वर महाशब्दे नाम दक्षिणी पंडित रचित संस्कृत में ।

(२१) प्रतापसागर—संस्कृत में वैद्यक का संग्रह ग्रंथ ।

(२२) अमृतसागर—भाषा में प्रतापसागर का अनुवाद । बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है ।

(२३) अमृतपदावली-कवि "अमृतअटल" रचित भक्ति भरे पद ।

(२४) भाषा आईने अकबरी—महाराज के मीरमुंशी गुमानी-रामजी कृत फ़ारसी से सरल भाषानुवाद ।

(२५) छंदोबद्ध दीवाने हाफ़िज—महाकवि हाफ़िज़ के दीवान का भाषा छंदों में अनुवाद—मुंशी गुमानीरामजी कृत ।

(२६) धर्मजहाज—एकादशी आदि व्रतों का धर्मशास्त्र ग्रंथ व्रजपाल आदि पंडितों का बनाया हुआ ।

(२७) प्रतापचंद्रिका—बिहारी सतसई पर टीका—मनीराम कवि कृत ।

(२८) बख़्तेशभक्तिप्रकाश-कवि भक्त बख़्तावरसिंहजी रचित ।

(२९) प्रताप सुजसचंद्रिका-म० क० मंडनभट्ट रचित ।

इत्यादि अनेक ग्रंथों की रचना हुई । अनेकों के नामादि भी इस समय-संकीर्णता और अवसर कुंठितता में कैसे हो सकें ? आनंद तो जब आता कि प्रत्येक कवि, पंडित, गायक वा गुणी का वृत्त, रचना के उदाहरणादि दिये जाते । परंतु एतावन्मात्र दिग्दर्शन से, स्थालीपुलाकन्यायेन, बुधवर पाठकगण जान सकेंगे कि इन महाराज "व्रजनिधि" जी का समय, कविता, भक्ति, सांगीतकला और अन्य गुण प्रकाशन के लिए कितना उत्तम था । अपने प्रपिता श्री सवाई जयसिंहजी, अपने पिता श्री सवाई माधवसिंहजी के समयों से कई कारणों और लक्षणों में इनका

समय भी कुछ न्यून गौरव का नहीं रहा। भाषा काव्य और सांगीत की कितनी उन्नति और वृद्धि इन के समय में हुई थी कि फ़ारसी के ग्रंथों का भी भाषा में अनुवाद, ज्योतिष, वैद्यक, सांगीत, धर्मशास्त्र इत्यादि विषयों के अनेक उत्तम और उपयोगी ग्रंथ भाषा में रचे गये। कवियों, पंडितों, गुणियों का कितना आदर हुआ। भक्ति भगवती की आनंदधारा का प्रवाह नगर और राज्य में बहता रहा। यद्यपि यह समय बहुत विकट और कठिनता से भरा हुआ था। युद्धों और दुष्टों तथा शत्रुओं आदि के निवारण, दमन और प्रबन्धों में तन, मन, धन और जन की आहुतियां दी जा रही थीं। ऐसा कोई समय नहीं था कि चिंता, दुविधा, बाधा और फ़िक्र का आतंक घेरे न रहा हो। परन्तु धन्य महाराज प्रतापसिंह की प्रतिभा और उनकी भगवद्भक्ति का प्रताप कि उन सब आपत्तियों के होते हुए भी, "साहित्य-संगीत-कला-विहीन" कभी नहीं रहे। भक्ति और कविता का साधन कभी नहीं छूटा। भगवत्कृपा उन पर बनी रही। उनका यश साहित्य-जगत् में साहित्य के जीवन तक चिरजीवित और अमर रहेगा॥

भारतीय इतिहास पर एक दृष्टि

[लेखक—कुँवर शिवसिंह चोयल, बिलाड़ा।]

इतिहास द्वारा हमको देश का अस्तित्त्व, गौरव, आचार, प्रकृति और धर्म आदि ज्ञात होते हैं। अपने पूर्वजों का इतिहास पढ़ कर ही राजा प्रजापालन में उत्तम रूप से समर्थ होता है। मनुष्य इतिहास द्वारा योगबल की तरह यह मालूम कर सकता है, कि हम क्या थे और क्या होगये और भविष्य में क्या होने वाला है।

इतिहास पुरातत्त्व-वेत्ताओं का और कवियों की चातुरी का मूलाधार एवं सर्वस्व है। इतिहास बुद्धिमान् शासकों को सुमार्ग पर चलाने वाला सद्गुरु है। इतिहास का लिखना सर्व प्रथम इस आर्यावर्त्त देश (भारतवर्ष) में ही प्रारम्भ हुआ था। लेकिन इस विषय में बहुत मतभेद है। कोई कहता है कि वैदिक काल (ईसाह से २००० वर्ष पूर्व) में इतिहास लिखे जाने लगे थे। और कोई कहता है कि मुसलमानी राज्य काल में और कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने तो यह भी सिद्ध करने का साहस किया है कि भारतीय लोगों को तो आज कल की भांति इतिहास लिखना ही नहीं आता था। यह बड़े शर्म की और विचारणीय बात है। यह कदापि नहीं हो सकता। भला, जिस भारतवर्ष में चारों वेद, गणितशास्त्र, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, व्याकरण और ज्योतिष शास्त्र रचे गये थे, क्या सचमुच भारतवासियों को इतिहास लिखना नहीं आता था? अस्तु, यह विदेशी विद्वानों का कथन सर्वथा गलत है कि "यहां के निवासियों को इतिहास लिखना नहीं आता था।"

भारत के आधुनिक विद्वानों ने भारत के मुख्य पांच "प्रारम्भिक काल" नियत किये हैं:—

१-पहला "वैदिक काल" का आरम्भ होता है, जो ईसाह से १४००० वर्ष पूर्व से २००० वर्ष पूर्व तक है। और इसी काल में चारों वेदों की रचना हुई थी। इसके पश्चात्—

२-ऐतिहासिक काव्यकाल शुरु होता है, जो ईसाह से २००० वर्ष पूर्व से १००० वर्ष पूर्व तक का कहा जाता है। इतिहासकारों का यह कथन है कि वेदों का सम्पादन इसी काल में हुआ था। और ऐतिहासिक काव्यकाल के पश्चात्—

३–दार्शनिक काल आरम्भ होता है, जो ईसाह से १००० वर्ष पूर्व से ३२० वर्ष पूर्व तक का है। इस काल में यास्क, पाणिनि सूत्रकार और सुलव सूत्र (रेखागणित) आदि के निर्माणकर्त्ता हुए हैं। और इसी काल में पाणिनि संसार भर में व्याकरण का सब से बड़ा पण्डित हुआ है। दार्शनिक काल के बाद—

४–बौद्धकाल का आरम्भ होता है, जो ईसाह से ३२० वर्ष पूर्व से ५०० वर्ष तक का है। इसी बौद्धकाल में मगध का राजा चन्द्रगुप्त, विन्दुसार, अशोक आदि धार्मिक एवं पराक्रमी नरेश हुए थे। इस बौद्धकाल के पश्चात्—

५–पौराणिक काल का आरम्भ होता है, जो ईसाह से ५०० वर्ष से १००० वर्ष तक का है। इस काल में उज्जैन के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य, कालिदास, अमरसिंह (संस्कृत कोप का लेखक), आर्यभट्ट और भर्तृहरि आदि सुविख्यात महापुरुषों ने इस देश में जन्म लिया था। कविकुलभूपण कालिदास का तो भारत में ही नहीं, आज समस्त योरप में नाम सादर के साथ स्मरण किया जाता है।

अब पाठकों को भारत के कुछ संसार प्रसिद्ध ऋषि मुनियों का संक्षिप्त वर्णन एवं उनके प्रसिद्ध ग्रन्थों का वर्णन सुनाने की धृष्टता करूँगा।

दार्शनिककाल में कपिल मुनि ने जन्म लिया था। उसका दर्शनशास्त्र संसार के समस्त दर्शनशास्त्रों में अति प्राचीन कहा जाता है। कपिलमुनि और महात्मा बुद्ध का एक ही सिद्धान्त था। योगशास्त्र का प्रसिद्ध पंडित पतञ्जलि का बनाया महाभाष्य और योगशास्त्र भी संसार प्रसिद्ध है। अब पाठकों को प्रसिद्ध अँग्रेज लेखकों के नाम एवं उनकी सम्पादित पुस्तकों से परिचित करायेंगे। जिससे यह ज्ञात हो जायगा कि भारतभूमि

पर लिखे गये ग्रन्थों को देख कर विदेशी विद्वानों के मुँह में भी पानी भर आया था।

भारत के इतिहास में महात्मा बुद्ध का शासनकाल स्वर्णयुग कहा जाना चाहिये। क्योंकि उसके चलाये बौद्धधर्म के जरिये संसार के अन्य प्रसिद्ध देशों में भी इस भारत की धर्म, नीति एवं सभ्यता की ख्याति फैली थी। समय-समय पर फारसी और यूनानी विद्वान् लेखकों ने भारत में आकर यहां की "धर्म पुस्तकें" आदि ले जाकर भारत की सभ्यता से वहां के लोगों को परिचित कराया।

बौद्धधर्म की नीति को जानने के लिये चीन देश के मिंगटो (ईसाह के जन्म से ६७ वर्ष पश्चात्) नामक बादशाह ने भारत से बौद्ध भिक्षुकों को बुलाने के लिये अपने दूत भेजे थे। वे दूत कश्यप-मातंग और धर्मरक्षक नामक दो आचार्य्यों को अपने साथ चीन ले गये थे। उन दोनों भारतीय विद्वानों ने बौद्ध धर्म की पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद कर वहां बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। उसी समय से भारत के साथ चीन का गुरु-शिष्य सम्बन्ध सुदृढ होगया था। और इससे चीन देश से सैकड़ों बौद्धधर्मावलम्बी भारत आते रहते थे, इनमें फाहियान सबसे पहला चीनी यात्री था। जिसने यहां के नगरों को देख कर उनका वर्णन लिखा और बौद्धधर्म की बहुत सी हस्तलिखित पुस्तकें चीन ले जाकर भारत का महत्व बढ़ाया।

फ़ाहियान की भांति एक मेगस्थिनीज नामक अँग्रेज ईसाह से पहले चौथी शताब्दी में भारत आया था, और पाटलीपुत्र (पटना) के राजा चन्द्रगुप्त मौर्य्य के दरबार में कई वर्षों तक रहा था। इतिहासकारों का यह भी मत है कि उसका बनाया मूल भारत का इतिहास अब नहीं मिलता है, तथापि उसके अंश

बहुत सी उत्तर काल की पुस्तकों में उद्धृत मिलते हैं। और उनका संग्रह ब्रोन के डाक्टर 'स्वानबेंक' ने किया है। और मिस्टर मेकिंडल ने उनका चीनी भाषा से अँग्रेजी में अनुवाद किया है।

यूनान का प्रसिद्ध इतिहासकार हेरोडोटस्, जो ईसाह से पांचवी शताब्दी पूर्व हुआ, स्वंय भारत नहीं आया। लेकिन फिर भी उसने भारत का इतिहास जो सुनकर लिखा है, बहुमूल्य है। हेरोडोटस् लिखता है कि-"भारत के हिन्दू लोग उस समय की सब जातियों में सबसे बड़े थे, वे कई जातियों में बंटे हुए थे। और जुदी-जुदी भाषाएं बोला करते थे।" इससे यह प्रकट होता है कि ईसाह से पांचवी शताब्दी पूर्व भी भारत में भिन्न भिन्न भाषाएँ बोली जाती थीं। और इसके अलावा भारत में बने कई धार्मिक ग्रन्थों का अँग्रेज लेखकों ने अँग्रेजी में अनुवाद कर भारत की सभ्यता का सितारा संसार में चमका दिया था।

अँग्रेजों में सर विलियम जोन्स का नाम बड़े आदर के साथ लिया जायगा, क्योंकि उन्होंने आज से १२५ वर्ष पूर्व कालिदास-कृत 'शकुन्तला' का संस्कृत से अँग्रेजी में अनुवाद किया और मनुस्मृति का भी अँग्रेजी में अनुवाद किया और "बंगाल एशियाटिक सोसायटी" की स्थापना भी की। कोलब्रुक साहब ने सन् १८०५ ई. में वेदों का अँग्रेजी में अनुवाद कर अन्य देशों के निवासियों को वेदों से परिचित कराया।

यह सर्वमान्य है कि किसी देश का इतिहास जितना अच्छा उसी देश का निवासी लिख सकता है, उतना विदेशी कभी ठीक नहीं लिख सकता। यही कारण है कि भारत का पूरा और सच्चा इतिहास अभी तक नहीं लिखा गया है। भारत के आधुनिक इतिहासकार आक्षेपों से परिपूर्ण विदेशी विद्वानों द्वारा ही

लिखी पुस्तकों की सहायता से अपने नाम से इतिहास लिखकर सन्तोष कर बैठे हैं। और भारत में राजाओं के इतिहास की पुस्तक राजतरंगिणी नामक एक संस्कृत भाषा का ग्रन्थ काश्मीर के राजा अमात्य चम्पंक के पुत्र कल्हण ने वि० सम्वत् १२०५ (ई० सन् ११४८) में प्रथमखंड बनाया था। जिसमें कौरव पाण्डवों के समकालीन और गोनर्द से लेकर काश्मीर के राजा जयसिंह का विस्तारपूर्वक इतिहास लिखा है। इसके बाद दूसरा खंड जोनराज नामक राजा ने वि० सं० १४६७ (ई० सन् १४१०) में बनाकर कल्हण से लेकर अपने समय के राजाओं का वर्णन पूर्ण रूप से किया है। तीसरा खंड जोनराज के चेले श्रीधर पंडित ने और चौथा खंड अकबर के शासनकाल में प्राज्यभट्ट ने लिखा। अब तो राजतरंगिणी के सब खंडों का प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। इसका चौथाखंड वि० सं० १८९७ (ई० सन् १८४०) में पेरिस में भी प्रकाशित हुआ था। इसके सिवाय नाटकीय इतिहास, ज्योतिष, गणित आदि विषय के इतिहास भी भारत में ही लिखे गये हैं। लेकिन कुछ अँग्रेज विद्वानों ने सदा यही चेष्टा की है कि भारत में इतिहास का लिखना सर्व प्रथम आरंभ नहीं हुआ था। और कुछ पक्षपाती विदेशी विद्वानों ने तो यहां तक लिख दिया है कि 'भाषा अथवा लिपि का प्रचार भी इस भारत में पहले पहल नहीं हुआ था। बाद में दूसरों की निर्माण की हुई लिपि का भारतीय लोगों ने अनुकरण किया है'। यह सर्वथा झूठ एवं भ्रान्ति-पूर्ण बात है। अब भारत के कुछ सुप्रसिद्ध इतिहासकारों के नाम नीचे लिखे जाते हैं:—

१—राय बहादुर महामहोपाध्याय साहित्यवाचस्पति डाक्टर गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझा (अजमेर)

२—सर यदुनाथ सरकार (कलकत्ता)

३–महाराजकुमार श्री रघुवीरसिंहजी (सीतामऊ)
४–महामहाध्यापक विद्वद्रत्न पण्डित रामकर्णजी आसोपा (जोधपुर)
५–साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथजी रेऊ (जोधपुर)
६–विद्याविनोद जगदीशसिंहजी गहलोत (जोधपुर)
७–श्रीजयचन्द्रजी विद्यालङ्कार आदि...।

भारत का अभी बहुतसा इतिहास अप्रकाशित ही कहा जाता है। सुचारु रूप से और सच्चा इतिहास अभी तक किसी ने नहीं लिखा। पैसा कमाने या नाम प्रसिद्ध करने के अभिप्राय से आज कल लोक इतिहास लिख कर संतुष्ट हो जाते हैं। कई इतिहासवेत्ता तो घर बैठे ही उधर इधर से नकलें कर दिखावटी इतिहासकार बन बैठे हैं। और कईयों की तो बाद में सब पोलें खुल भी गई हैं। इतिहासकार अपने इतिहास में बहुतसी "गप्प-सप्प" की बातें भी लिखते नहीं हिचकते। किसी इतिहासकार ने जयचन्द्र को देशद्रोही ठहराया, तो किसी ने उसका खण्डन किया। आज कल तो भारतवर्ष में और विशेषकर राजस्थान (राजपूताने) में और इतिहासकारों में ऐसी होड़ लगी है कि नये नये फोटू और छपी हुई पुस्तकों में से घर बैठे ही शिलालेखों का वर्णन कर इतिहास की शोभा बढ़ाकर ही इतिहासकार बन गये हैं।

भारत का सच्चा और पक्षपात-रहित इतिहास तैयार करने के लिये गत ३० दिसम्बर सन् १९३७ ई० को बनारस में "भारतीय इतिहास–परिषद्" नामक एक संस्था स्थापित हुई है। जिसके संरक्षकों में से कुछ ये हैं:—

१—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी।
२—सर यदुनाथ सरकार।
३—डाक्टर रघुवीरसिंहजी।

४—जमनालालजी बजाज।

५—जयचन्द्रजी विद्यालंकार।

अब भविष्य में यह आशा की जा सकती है कि भारत का शोधपूर्ण और अतिप्राचीन पक्षपात-रहित इतिहास लिखा जा सकेगा। जो भारत के भावी होनहार नवयुवकों के लिये अति-हितकर होगा।

भारतीयों का जीवन और आयुर्वेद की पुकार

अमेरिका आदि देशों की सरकारें भारत-सरकार की तरह प्रजा के स्वास्थ्य के लिये हैल्थ डिपार्टमेन्ट का ढकोसला ही नहीं रचतीं वरन् उत्तमोत्तम स्वास्थ्य विशारदों को चुन चुन कर इकट्ठे करती हैं। वे लोग सतत विचार-विनिमय अथवा खोज एवं गवेषणाओं के बाद स्थास्थ्य रक्षा एवम् उसकी वृद्धि के लिये अनेक उपाय निर्धारित करते हैं। और वे जनता के स्वास्थ्य सम्वर्धन की दृष्टि से उनका समस्त देश में प्रचार करते हैं। इनका जो शुभ परिणाम निकलता है वह जानकार लोगों से छिपा नहीं है।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्" के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक की प्राप्ति आरोग्यता पर ही निर्भर है। जिस देश में आरोग्यता होगी वहां के निवासी विशेष बलवान् और बुद्धिमान् होंगे। और वे ही अन्त में अपनी जाति, देश और धर्म की रक्षा करने में समर्थ होंगे। लेकिन दुःख है कि हमारा यह अभागा भारतवर्ष नित नये रोगों का केन्द्र बनता जा रहा है। शहर २, ग्राम २ और घर घर में रोगों ने अपना अड्डा

जमा लिया है। जिस से प्राणी अपनी रक्षा करने में प्रायः असमर्थ हो रहे हैं। इसका कारण यही है कि, हमारे देश पर विदेशियों का शासन होने के कारण एक और तो हमारा हर तरह से आर्थिक शोषण हो रहा है, दूसरे जो विदेशी चिकित्सा-पद्धति उन्होंने हम पर लाद रक्खी है वह एक तो अत्यधिक खर्चीली है जिसे सर्व साधारण बर्दास्त नहीं कर सकते। इसके सिवा वह हमारी प्रकृति के अनुकूल भी नहीं पड़ती। "यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्" के अनुसार हमारे देश के लिये तो सब से अधिक उपयुक्त आयुर्वेद-चिकित्सा ही हो सकती है।

हमारे भाग्य-विधाता इस असलियत से आंखें मूँद कर उक्त पद्धति को अपनाने के बजाय मक्खी, मच्छर, मूषक, कुत्ते आदि की हत्या करने कराने में लाखों रुपया खर्च करते हैं। जिस से कुछ गौराङ्गों के पलने और विदेशी दवा का प्रचार बढ़ने के सिवा देश को कोई वास्तविक लाभ नहीं पहुँच पाता। सच्चा सुख, सच्ची आरोग्यता आयुर्विज्ञानाचार्यों ने आयुर्वेद में कही है। वह देश, काल और प्रकृति के अनुसार होने के कारण हमारे लिये सर्वथा उपयोगी है।

मुझे वह समय याद है जब कि पिछले युरोपीय महायुद्ध के समय अंग्रेजी औषधियों का अभाव होगया था तब बड़े बड़े अस्पतालों में कुनैन की जगह कुटकी, चिरायता और आयडोफार्म की जगह सुहागे ने भारतीयों को रोगों से बचाया था। आज भी यह बात प्रत्यक्ष है कि ऐसी गई गुज़री और असहाय हालत में भी अनेक जटिल और प्राण सांघातिक रोग जैसे संग्रहणी, जीर्ण-ज्वर, क्षय और उन्माद तथा मोतीझारा आदि रोगों के मिटाने में हमारे ऋषि महर्षियों की निमार्ण की हुई यह

आयुर्वेदिक-चिकित्सा-प्रणाली ही सबसे अधिक कारगर सिद्ध होती है। यह सिद्ध है कि किसी भी देश की विद्या और कलाओं का उत्थान और वृद्धि उसी के शासकों के संरक्षण और प्रोत्साहन पर निर्भर रहती है। अतः अपनी प्यारी मारवाड़ सरकार और अपने "मरुधराधीश" की सेवा में हमारा विनम्र निवेदन है कि अपने राज्य और प्रजा के हित के लिये इस सुलभ और सहस्रों वर्षों से अनुभूत आयुर्वेद-प्रणाली को अपनावें। कस्बे २, ग्राम २ में इसका प्रचार करें। इससे अपने ही राज्य में उत्पन्न होने वाली आक, नीम, धतूर, खेजड़ी, सोंठ, मिर्च और पीपर आदि कौड़ियों के मूल्य की औषधियों से आपकी प्यारी प्रजा के प्राण और राज्य की धन-राशि बच जावेगी। और आप प्रजा-वत्सल बनेंगे। वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध श्रीमान् पं० रामकरणजी आसोपा की जयन्ती के शुभ अवसर पर मुझे उनके प्रति हार्दिक अभिनन्दन प्रकट करते हुये यह निवेदन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्रीआसोपाजी ने अपने जीवन भर राज्य और प्रजा की जो बहुमूल्य सेवा की है वह सदा स्मरण रहेगी। श्रीआसोपाजी अपनी जाति और कुल के ही नहीं अपितु सारी मारवाड़ और भारत के गौरव हैं। मैं आप को लगभग ३० वर्षों से भली प्रकार जानता हूं। आपका गृहस्थ-रूप, तपस्वी-जीवन, हम समस्त लोगों के लिये अनुकरणीय, एवम् अनुगमनीय है। आप की अगाध विद्या, प्रेम और योग्यता प्रशंसनीय है। आपने अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना और अनेक शास्त्रों पर टीका, टिप्पणियां की हैं जो कि बहुमान्य और अमूल्य हैं। ऐसे पुरुष सदैव बहु-सन्मान के पात्र होते हैं। ऐसी हस्तियों का जीवन अपने कुल ही के लिये नहीं बल्कि समस्त जन-समुदाय के लिये है। अतः

भगवान् से मेरी प्रार्थना है कि वह आपको चिरायु करें, जिस से राज्य और प्रजा आप से सतत लाभान्वित होती रहे।

एक विनीत मारवाड़-निवासी—

वैद्य रामचन्द्र शर्मा

श्रीराजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय, अजमेर.

॥ श्रीरामः सर्वमङ्गलम् ॥

दाधीच अथवा दाहिमा*

'दाधीच' और 'दाहिमा' ये शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। तात्पर्य यह है कि इन दोनों शब्दों में से चाहे किसी का भी प्रयोग करिए, मतलब एक-सा ही निकलेगा। तदनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ के नायक ने भी स्व-रचित ग्रन्थों में अपने नाम के साथ किसी में 'दाहिमा' किसी में 'दाधीच' शब्द का प्रयोग किया है। अत एव सर्व-साधारण को यह जनाना अत्यन्त आवश्यक है कि, किस व्युत्पत्ति के अनुसार ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं।

इनमें प्रथम 'दाधीच' शब्द को लीजिए। यह शब्द दध्यञ्च, दधीचि† अथवा दधीच† शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में अण् प्रत्यय

---

* इसका दिग्दर्शन हम स्व-रचित आर्यामुक्तावली की भूमिका और श्रीराम-चरिताब्धिरत्न काव्य के दाधिमथी-मङ्गल में कर चुके हैं। उसी का सविस्तर विवेचन हिन्दी में यहां किया जा रहा है। लेखक।

† 'दध्यञ्च्' शब्द से स्वार्थिक इञ् और अण् प्रत्यय करने से क्रम से 'दधीचि' और 'दधीच' बनते हैं। पृषोदरादि के कारण वृद्धि नहीं होती। देखो वाचस्पत्य में दध्य शब्द।

करने से सिद्ध होता है। जिस प्रकार भरत से भारत। तदनुसार दाधीच शब्द का अर्थ होता है:-दधीचि-वंश में उत्पन्न होने वाला। ये दधीचि अथर्वा के पुत्र थे। इसके लिए "दध्यङ् ह यन्माध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच" ऋ० १।११६। १२। इत्यादि कई वेद-मन्त्र प्रमाण हैं।

अब 'दाहिमा' शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान दीजिए। यह संस्कृत 'दाधिमथ' शब्द का अपभ्रंश है। यह 'दधिमथी' शब्द से देवतार्थक अण् प्रत्यय करने से सिद्ध होता है। तदनुसार इस शब्द का अर्थ होता है:-दधिमथी का उपासक। जैसे विष्णु का उपासक वैष्णव और शिव का शैव। 'दाधिमथ' का प्राकृत भाषा में रूप होता है 'दाहिमह'। उस (भाषा) में 'ध' और 'थ' को 'ह' हो जाता है। जैसे:-दधि का दही और कथना का कहना इत्यादि। अब यह जानने की आवश्यकता है कि, 'दधिमथी' शब्द कैसे बना? इसे भी लीजिए।

'दधिमथी' अर्थात् समुद्र-जल-रूप दधि को मथनेवाली आदिशक्ति। दधिमथी-रूप आदिशक्ति (प्रकृति) की उपासना से उपासक की मातृ-भक्ति और उपास्य देवता का पुत्र-वात्सल्य झलकता है। क्योंकि दधि मथनेवाली माता मक्खन निकाल कर उसे अपने प्यारे बालबच्चों को दिया करती है। जिस आदिशक्ति (प्रकृति) ने समुद्र-जल-रूप दधि मथ कर अमृत-रूप मक्खन देवता-रूप भक्त-बालकों को दिया, उस मातेश्वरी की उपासना करना ही भक्त-भावना का लक्ष्य है। अतएव वे (भक्त) उसे 'दधिमथी'-रूप से मानते हैं। 'दधिमथी' का पर्याय 'दधिमती' भी कई स्थलों पर देखने में आया है। यह शब्द मतुप् प्रत्ययान्त है। इसका अर्थ भी उसी भाव को प्रकट करता है। धारणार्थक 'दध' धातु से 'इन्' प्रत्यय के द्वारा 'दधि' शब्द बनाया जाकर

'मतुप्' प्रत्यय के जोड़ने से भी 'दधिमती' शब्द बन सकता है, किन्तु वह 'दधिमथी (ती)' का यथार्थ पर्याय नहीं हो सकता। क्योंकि उस प्रकार बनाये हुए 'दधिमती' शब्द का अर्थ होगा धारण करनेवाली अर्थात् वही आदिशक्ति (प्रकृति)। अर्थ में अन्तर इतना ही पड़ता है, कि उस (दधिमती-शब्द में) मातृ भक्ति और पुत्र-वात्सल्य व्यक्त होता है, इसमें नहीं। किन्तु वाच्यार्थ दोनों प्रकार से बने हुए 'दधिमती' शब्द का एक ही है, अर्थात् आदिशक्ति। अस्तु।

अब प्रश्न यह उठता है कि, दाधीचों की दधिमथी-उपासना कब से और क्यों प्रचलित हुई ? इस का यही उत्तर है कि, जब से दाधीच हुए, तभी से उनकी दधिमथी-उपासना स्वाभाविक प्रचलित हुई। क्योंकि उनके वंश के मूल-पुरुष महर्षि दधीचि भी अपने पिता अथर्वा के समान उसी की उपासना किया करते थे, इसलिए परम्परा से उनके वंशजों के भी वही उपासना जारी रही। इस में प्रमाण दधीचि (च)-वाचक 'दध्यञ्च्' शब्द ही है। इस की व्युत्पत्ति पर ध्यान दीजिए। दधिं दधिमथीं (तीं) अञ्चति पूजयति इति दध्यङ् अर्थात् दधि[1] याने दधिमथी (ती) की पूजा करनेवाला। लोक में प्रायः पिता अपने पुत्र के नाम को उस देवता के नाम से अङ्कित किया करता है, जो उसका उपास्य हो। वास्तव में पिता उस से इस बात को प्रकट करता है कि उस देवता की कृपा ही से मुझे इस पुत्र की प्राप्ति हुई है। जैसे राम-शिव आदि देवों के भक्त अपने पुत्र का नाम रामदत्त, शिवदत्त अथवा हरसेवक आदि रक्खा करते हैं। इस से स्पष्ट

१ "नामैकदेशे नाम-ग्रहणम्" इस व्याकरण-परिभाषा से नाम का एक अंश भी सारे नाम का बोधक होता है। जैसे भीमसेन के लिए भीम कह देना भी बस है।

ज्ञात होता है कि दधीचि के पिता अथर्वा भी दधिमथी-रूप आदिशक्ति के उपासक थे, और दधीचि का तो नाम ही कह रहा है कि वे अवश्य ही थे। इस प्रकार परम्परा से दाधीचों के लिए दधिमती-उपासना स्वभाव-सिद्ध है। इस से बिलकुल सिद्ध हो गया कि दाधीच और दाहिमा एक दूसरे के पर्याय हैं।

इसके साथ इस बात पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए कि, प्रस्तुत दाधीच अथर्वा के पुत्र दधीचि के अतिरिक्त अन्य किसी दधीचि-नामक व्यक्ति की सन्तान नहीं कहाये जा सकते, क्योंकि कल्पित दधीचि-नामक व्यक्ति 'दध्यञ्च्' नहीं कहलाया जा सकता, इसलिए कल्पित दधीचि की सन्तान जो दाधीच माने जायँ, उनके लिए दधिमती की पूजा जन्म-सिद्ध सिद्ध नहीं हो सकती। वैष्णव कहलाने वाले आदिम विष्णु ही से संबन्ध रखते हैं न कि किसी कल्पित विष्णु-नामक व्यक्ति से।

जान पड़ता है, कि बहुत प्राचीन समय में यही दाधीच (दाधिमथ) 'दध्य' नाम से भी प्रसिद्ध हों। क्योंकि गुप्त संवत् २८९ अर्थात् विक्रम संवत् ६६५ के शिलालेख (जो दधिमती-मन्दिर में निकला है उस) में 'दध्याः ब्राह्मणाः' ऐसा पाठ मिलता है। सुप्रसिद्ध जैन वैयाकरण श्रीहेमचन्द्राचार्य ने भी "*य्वीवर्णयोः" इस सूत्र के भाष्य में 'दध्यञ्चमाचक्षते ते दध्याः' इस प्रकार उदाहरण देते हुए 'दध्य' शब्द को स्मरण किया है। उन्होंने अपने व्याकरण में प्रायः लोक-प्रसिद्ध ही उदाहरणों का समावेश किया है। चौलुक्यवंशी सिद्धराज कुमारपाल के समकालीन होने के कारण विक्रम की १२ वीं शताब्दी में इन जैनाचार्य का होना सिद्ध है। यह

*यह 'दाधांविव्री दाम्" इसका स्थानापन्न सूत्र है।

१ 'णाविष्टवत् कार्यम्' इस वचन से इष्टवत् होने के कारण "विन्मतोर्लुक्" से मतुप् का लोप हो जाता है।

'दध्य' शब्द दधिमतीं आचष्टे १दधयति, ततो दधयतीति 'दध्यः' इस प्रकार भी सिद्ध हो सकता है। इन दोनों प्रकार की व्युत्पत्तियों से दाधीच-वाचक एक ही 'दध्य' शब्द अपने मूल-पुरुष दधीचि को और कुल-देवता दधिमती को स्मरण करा रहा है। संभव है, बाद में समय के हेर फेर से वे ही 'दध्य'-नामक ब्राह्मण 'दाधीच' और 'दाहिमा' नाम से प्रसिद्ध हुए हों।

पं० नित्यानन्द शर्मा शास्त्री,
काशल्या, आशुकवि-कविराज,
(जोधपुर)

मन्दिरों की महिमा

[लेखकः-महोपदेशक पण्डित छोटेराम शुक्ल, साहित्यरत्न, दक्षिण-औरङ्गाबाद।]

सनातनधर्म विश्वव्यापक धर्म है। प्रत्येक कल्पके आदिमें परमेश्वरने सनातनधर्मकी मर्यादाको ऋषिमहर्षियों द्वारा प्रकट किया है। सनातनधर्म सनातन होते हुए भी अविरोधी है और अटल है। वह मौलिक होते हुए भी त्रिकालव्यापित तत्वज्ञानकी भित्तिपर स्थित है। हमारा सनातन वैदिक धर्म ईश्वरकी भावना से ओत-प्रोत होकर ज्ञान, भक्ति और धर्मका पूर्ण सामञ्जस्य करता है। ज्ञान, भक्ति तथा धर्म की एकाग्रता के लिये मठ-मन्दिरोंकी सृष्टि हुई है। मन्दिरोंमें अनेक उपास्य देवताओं की स्थापना हुई है। लोग अपनी-अपनी भावना के अनुसार मन्दिरों में जाकर अपने उपास्य देवकी आराधना करके इच्छित फल प्राप्त करते हैं। स्वर्गीय धर्मप्राण लोकमान्य तिलक ने सनातनी

हिन्दू की यह व्याख्या की है कि वेदों में प्रामाण्य बुद्धि अर्थात् वेदोंकोप्रमाण मानना। ईश्वर-प्राप्तिके अनेक साधन हैं, इस बातको स्वीकार करना और उपास्य देवता अमुक ही हो, इस प्रकारका नियम न होना। बस, यही हमारे वैदिक धर्मके लक्षण हैं। इस धर्म का अवलम्बनकर जो श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त परम्परागत विधि-संस्कारोंसे संस्कृत हुआ हो और श्रद्धा भक्ति से युक्त होकर शास्त्रीय आचारों का पालन करता हुआ अपने-अपने अर्थात् वर्णाश्रमके अनुसार कर्ममें निरत हो, वही सनातनी हिन्दू है।

किन्तु आजकल लोग भूलभुलैयामें पड़ रहे हैं। कुछ लोग अपने बड़े बूढ़ोंको मूर्ख बतलाते हैं, तो कुछ लोग ब्राह्मणोंको गालियोंका दान दे रहे हैं। कुछ लोग मठ, मन्दिरोंको व्यभिचार का अड्डा बतलाते हैं, तो कुछ लोग वेद-शास्त्रपुराण-मन्त्रोंको सार-शून्य और अर्थहीन घोषित करते हैं। कुछ लोग नवग्रहोंको सत्ताहीन एवं जन्मपत्रिकाओंको कपट-जाल कहकर ज्योतिषियों को मायावी कहते हैं और कुछ लोग आचारसे नाता तोड़ हर किसीके हाथका खानेमें ही उन्नति समझते हैं। ढङ्ग कुछ ऐसा बिगड़ रहा है, कि लोग दिनपर दिन गिरते ही चले जा रहे हैं। सज्जन पुरुषोंपर, साधु-सन्त, ब्राह्मण, विधवा, गो, दीनजनोंपर कष्टोंके पहाड़ टूटने लगे हैं। यह सब हमारी बुरी वासनाओंके फल हैं। धर्म, वेद, गुरुजन, मठ-मन्दिरके अपमानोंका बदला है।

बौद्धकालके अन्तिम समयमें पधारनेवाले विदेशी यात्री भारतवर्षको मन्दिरोंका देश कहते थे। आज भी खुदाई होनेपर जमीनकी गहरी तहमें, हिन्दुओंके मन्दिर निकलते हैं। हिन्दुओंके मन्दिर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्तिके साधन हैं, परन्तु आजकल इनका उपहास किया जा रहा है। हमलोगोंकी धार्मिक रीतियों एवं व्यवहारोंको आध्यात्मिकता एवं नैतिकताकी कठोर

से कठोर कसौटीपर कसा जा चुका है; और इसकी ही बदौलत मानवसमाजकी आध्यात्मिक एवं नैतिक उन्नतिका चूड़ान्त विकास हो चुका है। साहित्य, शिल्प, स्थापत्य, कलांकौशल, मठ मन्दिरके निर्माणमें लालित्य एवं सौन्दर्यकी अद्भुत सृष्टिका आविर्भाव होता है। मन्दिरोंके विकासमें आध्यात्मिक सौन्दर्यका रसानुभव प्राप्त होता है। जब हम माता के चरणतलमें उसके आह्वाहनको उसके मन्दिरमें पहुँच, विद्युत्शक्तिजनक घण्टेकी टङ्कारसे 'वन्दे मातरम्' की तुमुल–ध्वनि करते हैं, माता की मञ्जुल मूर्तिको भक्तिपूर्वक अनवरतरूपसे लगातार देखते हैं, हमें एक अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है। हमारी समस्त द्रोह–भावना एवं कलह–कालुष्य नष्ट हो जाता है। मातृ–प्रेमकी सरस सरिता में हम शराबोर हो जाते हैं। हममें जितना ही विश्वास तथा आत्मबल होता है, उतना ही फल हमें मिलता है। मन्दिरोंकी नगरी काशीमें भारतमाता के मन्दिरका उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया। दानवीरों को मन्दिरके पुनर्निर्माणकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। भग्न और टूटे मन्दिरों की मरम्मत अवश्य होनी चाहिये। मन्दिरोंमें घड़ियाल और घण्टे बजते रहते हैं, उसमें दर्शनार्थी मनुष्यको बिजली की शक्ति प्राप्त होती है। एक डाक्टरने सिद्ध किया है, कि कांसे में ताम्र और बङ्ग के सहयोग से विद्युत्शक्ति या बिजली का समावेश होता है। घड़ियाल और घण्टे कांसे के ही होते हैं। एक वैज्ञानिकका कथन है, जो मनुष्य कांसे की थाली में भोजन करता है, वह न जानते हुए भी प्रत्येक ग्रास के साथ एक फँका बिजली की शक्ति का भी लगाता है। सारांश यह, कि हमारी प्राचीन प्रणाली, रीति–रस्म, विज्ञान से परिपूर्ण हैं। जो लोग मन्दिरमें दर्शनको जाते हैं, वह तुलसीदल जरूर ग्रहण करते हैं। सन् १९०७ ई. में इम्पिरियल मलेरिया

कान्फरेन्स का अधिवेशन बम्बई में हुआ था। उसकी राय यह थी: कि कृष्णातुलसी से मलेरिया हट जाता है। तुलसी ग्रहण से विकृति नहीं होने पाती। फेंफड़ा शुद्ध रहता है, पेट के कृमि तथा कद्दूदाने नष्ट हो जाते हैं। भला कहिये, मन्दिरोंसे और कितना लाभ चाहिये?

बीसवीं सदी का विज्ञान आज जो बतलाता है, वही हजारों वर्ष पहले का धर्म सिखलाता है। एक युरोपीय महिलाने ब्लैक-बोर्ड, खरिया और बिजली की बैटरी का तार छोड़कर, जी बहलाने के लिए एक भारतवासी को बुलवाया और उससे कोई धार्मिक गीत गानेका अनुरोध किया। इस भारतीय को 'कालभैरवाष्टक' कण्ठाग्र था। जब उसने अष्टक कहना समाप्त किया—बोर्ड पर काशी के कालभैरव का चित्र बन गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि उपासना और ध्यान वैज्ञानिक हैं। जैसे जैसे हमारी साधना पूर्णता को पहुँचती है, वैसे वैसे शून्याकाश में हमारे इष्टदेव का चित्र बनता जाता है। एक दिन प्रकट होकर वह हमें वरदान देते हैं। यह लाभ भी तो हमें मन्दिरों में स्थापित मूर्तियों से ही प्राप्त होता है।

पौष वदि २ सं० १९९५ वि० के 'श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचारमें' परम धर्मनिष्ठ भगवत्परायण श्रीयुक्त सेठ श्रीहरिप्रसादजी भरतियाने शङ्कित होकर पूछा है, कि श्री भगवान्‌का चरणामृत वितरित होते समय भक्त तथा उपासकगण उसे हाथकी अंजुली में लेकर पान-आचमन किया करते हैं। अतः हाथकी अंजुलीमें प्रभु-चरणामृत ग्रहण करना शास्त्रविहित है अथवा शास्त्रनिषिद्ध? इसपर हमारा निवेदन है, कि प्रभु-चरणामृत पात्र या पत्तोंसे ग्रहण करना चाहिये; हाथकी अञ्जुलीसे कदापि नहीं। 'मनुस्मृति' अध्याय ४ श्लोक ६३ में "न वार्यञ्जलिना पिबेत्" अर्थात्

अंजुलीसे पानी न पीवे यह आदेश है। भला फिर भगवान् का चरणामृत अञ्जुलीसे कैसे पान कर सकते हैं? अतः मन्दिरके पुजारियोंके लिये केलेके पत्तोंपर चरणामृत देते रहना श्रेयस्कर है। भगवान् के चरणामृत एवं गङ्गाजल से अजीर्ण रोग, जीर्ण-ज्वर, संग्रहणी, क्षय, दमा, इत्यादि समस्त रोग दूर होते हैं। सरकार की तरफ से नियुक्त किये हुए डाक्टर हैंकिंस साहब का कथन है, कि प्राचीन काल में भारत में विज्ञानविद् पण्डित होते थे? जिस समय समस्त संसार असभ्यता के अन्धकूप में डूबा हुआ था; हिन्दू जाति की सभ्यता पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी। गङ्गाजल में बहुत कुछ तत्त्व है। स्वेदज कीटविज्ञान का इतना पता प्राचीन हिन्दुओं को कैसे लग गया? इस प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक हमारी प्राचीन आर्य-संस्कृति पर आश्चर्य प्रकट करते हैं और हमारे भी कुछ मनचले भाई मन्दिरों तथा तीर्थों का उपहास करते हैं। विदेशी लोग जर्मन आदि, भारतीय सभ्यता को अपनाने में भलाई समझ रहे हैं। जर्मनी ने कानून पास किया है, कि हमारे यहां के युवक तथा युवती अन्य देशवासियों के साथ विवाह नहीं कर सकते। किन्तु भारतवासी धार्मिक नियमों को तोड़नें में भलाई समझ रहे हैं। वह चाहते हैं, कि मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट होजायें। किन्तु जिन मन्दिरों में ईश्वर की तेजोमय शक्ति विराज रही है, जो शक्ति समस्त विश्व की रक्षा करती है, वही तेजोमय शक्ति मन्दिरों की भी रक्षा करेगी। मन्दिरों से अवर्णनीय लाभ हैं। ब्रह्मा अर्थात् पीपल का वृक्ष मन्दिरों में या उसके आसपास जरूर होता है। स्त्रियां पीपल की सैंकड़ों परिक्रमा करती हैं। कई जिज्ञासु उस पर जल चढ़ाते हैं। वृक्ष से एक प्रकार की वाष्प निकलती है, जिस से शीतज्वर नहीं होता। पीपल के फल वृषता प्रदान करते हैं। इसकी दाढ़ी गर्भकारक है

पत्तों की भस्म उलटी से रोकती है । छाल घिसकर लेप करने से फोड़ा-फुँसी को आराम करती है । इसीलिये पीपल को काटना पाप वतलाया है । मन्दिरों में चन्दन भी लगाया जाता है । चन्दन, पञ्चगव्य, चरणामृत, प्रसाद सभी चीजें स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखती हैं । मन्दिरों के देव-दर्शन से मन पवित्र होता है । प्रसन्नता दौड़ कर शरीर में प्रवेश करती है । चाहिये आत्म-बल, विश्वास एवं अटल श्रद्धा ।

हमारे मन्दिर प्राचीन काल से हमारी संस्कृति और धर्म के आधार स्तम्भ हैं । हमारी उपासना और श्रद्धा के प्रतीक तथा संगठन के मूल केन्द्र हैं । आज ' अपने को जमाने के अनुसार बनाइए ' का शोर मचा हुआ है और स्पर्शास्पर्श की घोर निन्दा की जा रही है। परन्तु डाक्टर लोग स्पर्शजन्य बीमारी के अस्तित्व को मानते हैं । प्लेग, हैजा, क्षय, कोढ़ आदि स्पर्शजन्य बिमारियों से बचने के लिए रोगियों से दूर रहने को वे बाध्य करते हैं, तब स्पर्शास्पर्श आवश्यक बात होती है । परन्तु मन्दिरों में दर्शन के लिये इन रोगियों को मनाई नहीं । यदि मंदिर में जाकर रोगी भगवान् के चरणों में एकटक निगाह लगावे, तो रोगी को शान्ति तो अवश्य प्राप्त होती है । जब बुढ़ौती के कारण मन और बदन में सुस्ती आ जाती है, तब मंदिरों में जाकर देवताओं के दर्शन से उनको स्फूर्ति प्राप्त होती है । मन आनन्द-विभोर होकर बदन में शक्ति दौड़ने लगती है । ज्ञान-लिप्सा की प्रबल प्यास को बुझाने के लिये ही पवित्र मंदिर हैं ।

भक्त लोग भगवान् की मूर्ति के दर्शन तथा ध्यान के अवलम्बन से अपने मन को परमात्मा की एकता में विश्राम देते हैं । मंदिरों में कथायें, सत्सङ्ग, सदुपदेशों से उपस्थित जनता को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है । श्रद्धालुजन भग्न तथा जीर्ण-

शीर्ण मंदिरों को यथाशक्ति सहायता दें। मंदिरों के सञ्चालक पूजा के लिये विद्वान् पुजारी की योजना करें। मंदिरों में अनाश्रितों तथा अपाहिजों को सहायता मिले। सदाचारी उपदेष्टा से धर्म का निरूपण करा राष्ट्र के प्राणों में प्रेम की, भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी प्रवाहित करें, जिस से समस्त मानव-हृदय दिव्य प्रकाश से आलोकित होते रहें।

मानव जीवन में कभी-कभी ऐसे प्रसङ्ग आते हैं, कि मनुष्य को कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह क्लेशों से घिर जाता है। यद्यपि दुःख सुख का कर्ता मनुष्य स्वयं है, तथापि वह ऐसे समय में हताश होजाता है। ऐसे समय किसी पवित्र मन्दिर की शरण में जाना चाहिये। परमात्मा के दर्शन कर उनमें स्नेह लगाना चाहिये। मन एकाग्र होते ही दुःख के काले बादल सहसा छिन्न भिन्न हो जायेंगे।

हिन्दू राज्यों की परमोन्नति कैसे हो ?

[लेखकः—पण्डित राजविहारीलाल, ज्योतिषाचार्य, आकाशदर्शी, नवीन फलित ज्योतिष रचयिता, अलीगढ़]

हम हिन्दू राज्यों को प्राचीन समय के समान परमोन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ देखने के अभिलाषी हैं। और इसी कारण से हमने इस विषय पर अत्यन्त गम्भीर विचार किया है, सो राजगुरुओं और राजा, महाराजाओं के ध्यान देने योग्य जो विषय हैं, वे विस्तार पूर्वक नीचे लिखे जाते हैं।

१. राजगुरुओं के सम्बन्ध में।

निम्न प्रकार के ८ विषय धर्माचारियों और राजगुरुओं को

सावधान होने और अपनी पूर्ण देख रेख रखने के लिये लिखे जाते हैं। श्रीशङ्कराचार्य आदि धर्माचारियों और राजगुरुओं को चाहिये कि राजा महाराजाओं और राजवंशजों के ऊपर निम्न प्रकार अपना पूर्ण और प्रभावशाली नियंत्रण धार्मिक विषयों में रखा करें।

(१) कोई भी राजा महाराजा धर्मकार्य में हेर फेर नहीं करसकें। जितने भी धर्म-सम्बन्धी कार्य हों वे सब धर्मशास्त्रों के अनुसार धर्माचारियों और राजगुरु की सम्मति से ही किये जावें।

(२) अंग्रेजी सरकार हिन्दू राजपुत्रों को विलायत पढ़ने के लिये भेजती है और भारतवर्ष में भी उनके अध्यापक प्रायः अंग्रेज को ही नियत करती है। सो जहां तक हो सके भारतीय व सनातन-धर्मी अध्यापक होने चाहिये।

(३) भारतवर्ष में जो राजकुमारों के पढ़ने के कालिज हैं उन में धर्मशिक्षा का पूर्ण प्रवन्ध होना चाहिये।

(४) धार्मिक-ज्ञान सम्पादन के वास्ते गद्दीपर बैठने से पहिले अनेक तीर्थों की यात्रा करनी आवश्यक समझी जावे और फिर सम्पूर्ण रामायण तदुपरान्त सम्पूर्ण भागवत कथा सुनली जावे तो अधिक लाभदायक होगा।

(५) प्रत्येक राजा महाराजा जिस देवता में अपनी भक्ति रखते हों उस देवता का मंत्रजाप किया करें तो सिद्धि मिलना दुर्लभ नहीं।

(६) राजकुमारों को २० वर्ष की अवस्था से पहिले ही धार्मिक शिक्षा देदी जावे तो अवश्य ही लाभ प्राप्त होगा।

(७) कोई भी राजा, महाराजा तथा राजकुमार अपनी जाति को छोड़ कर किसी अन्यजाति में विवाह सम्बन्ध नहीं किया करें।

(८) समुद्र-यात्रा अत्यन्त आवश्यक हो तो की जावे।

२. राजा महाराजाओं के सम्बन्ध में ।

अब नीचे १२ विषय ऐसे लिखे जाते हैं जिन पर राजा, महाराजाओं को भले प्रकार अत्यन्त ही गम्भीर दृष्टि से पूर्ण विचार करने और तदनुसार कार्यान्वित होने की आवश्यकता है।

(१) राजा, महाराजाओं को स्वयं न्याय कार्य करना उचित है। क्योंकि न्याय की बड़ी उच्च श्रेष्ठ पदवी है, इससे स्वर्ग प्राप्त होता है और प्रजा प्रसन्न रहती है।

(२) राजा, महाराजाओं को अपनी मामूली कानूनी डाक के सिवाय गैर मामूली डाक को, जो अपने राज्य से वा कहीं बाहर से आवे, स्वयं ही देखना और उस पर यथोचित हुक्म देना चाहिये।

(३) राजा, महाराजाओं को अपनी समस्त प्रजा की पुकार पर तुरन्त ही ध्यान देना चाहिये और उस पर शीघ्रता-पूर्ण विचार करके उपयुक्त आज्ञा जारी कर देनी चाहिये।

(४) जिन २ राज्यों में कुशासन प्रणाली और दमन नीति चल रही है उनको इनका परिपूर्ण त्याग कर देना चाहिये और लाठी प्रहार की रीति भी उठा देने ही योग्य है। इसके बदले में भीड़ को भगा देने के लिये हलके कोड़े लगाने का आदेश जारी किया जाना उचित है।

(५) राजा, महाराजा समाचार पत्रों में ऐसे समाचार दृष्टि-गोचर किया करते होंगे कि जहां किसी अफसरी की जगह (ऊँचे पद पर) कोई विधर्मी पहुंच जाता है तो वह हिन्दुओं और हिन्दू-धर्म पर अनेक प्रकार के कुठाराघात करने लगता है। अतएव कोई अफसरी का ओहदा किसी भी महकमे में जहां तक हो सके विधर्मी को नहीं देना चाहिये। सम्पूर्ण महकमों के कुल अफ़सर हिन्दू ही हों। नीचे दर्जे की जगहों पर विधर्मी रक्खे

जा सकते हैं परन्तु वहां भी तीन चौथाई संख्या हिन्दुओं की हो और केवल एक चौथाई नौकरियां विधर्मियों को दी जावें और पुलिस में तो नीचे ऊँचे पदपर कहीं भी विधर्मी न हों।

(६) वर्तमान समय में कितनेक राजा लोग अछूतों का मन्दिरों में प्रवेश कराना चाहते हैं, यह अनुचित है क्योंकि कोई भी पुरुष किसी दूसरे के घर में विना उस के मालिक की अनुमति के घुस नहीं सकता है तो फिर अछूत मालिक मन्दिर की अनुमति विना मन्दिरों में कैसे प्रवेश कराये जा सकते हैं ? राजा का कर्तव्य अपने राज्य में प्रत्येक की रक्षा करना और प्रजा के स्वत्वों को अक्षुण्ण वनाये रखना है। सो मन्दिरों के मालिक वा मूलपुरुष वा उनके कुटुम्बी तथा अन्य सर्व ट्रष्टी लोग जैसा प्रवन्ध मन्दिरों का करने के इच्छुक हों, राजाओं को उन की वैसी ही सुव्यवस्था की सहायता करनी चाहिये, यही राज्य-धर्म और राजनीति की आज्ञा है। मन्दिर जिनके वनाये हुये हैं वा जिनके अधिकार में हैं वे सब उनके मालिक हैं। मालिक के होते हुए अन्त्यजों का मन्दिर पर कोई अधिकार नहीं हो सकता। फिर यह भी विचारने की वात है कि अन्त्यजों अर्थात् अछूतों को कहीं किसी वहु-मूल्य मकान में घुमा लाने वा वलात्कार वहां घुसेड़ देने से अछूतों का कुछ उद्धार वा भला नहीं हो सकता ? यदि किसी राजा को अछूतोद्धार ही करना हो तो उन की उन्नति के कार्य में सहायता देनी चाहिये जैसी सहायता अन्य प्रजा के लोगों को दी जावे। इससे उनका कुछ भला और उद्धार हो सकेगा।

(७) राजा, महाराजाओं को यह खूब ध्यान रखना चाहिये कि कांग्रेस सर्व राजाओं के राज्य छीनना चाहती है। यह नीति कांग्रेस की कई वार समाचारपत्रों में प्रकाशित होचुकी है, सो अवश्य ही राजा, महाराजाओं को प्रत्येक समय ध्यान में

रखना उचित है। अब कांग्रेस अपनी यह चाल खेलना ही चाहती है जिस से वह सभी राज्यस्थानों में भी कांग्रेस कमेटी बना रही है। इसके संबंध में राजा, महाराजाओं को यह गम्भीर विचार भी करना उचित है कि जब बृटिश राज्य में तो यह कहकर कि राज्य की बागडोर परदेशियों के हाथ में है सो उन से छीन कर स्वराज्य प्राप्त करने का मीठा लड्डु जनता को दिखला कर कांग्रेस अपना वेग बढ़ा रही है तो कोई यह तो बतादे कि जहां भारतवर्ष के ही राजा राज्य कर रहे हैं वहां तो स्वराज्य प्राप्त है ही, फिर वहां कांग्रेस की कौन आवश्यकता? इस गम्भीर विषयपर सम्पूर्ण राजा, महाराजाओं को तत्काल अवश्य ही ध्यान देना और उनको अपनी जड़ खोखली कर देने से पहिले ही पूर्ण प्रबंध करना चाहिये कि कांग्रेस का प्रभाव अपने यहां पड़ने ही नहीं दें। जैसे दूसरी संस्थाएँ अपने कार्य राजकीय कानून के अनुसार चलाती हैं, वैसे कांग्रेस भी कर सकती है, क्योंकि राजस्थान में स्वराज्य पहले से ही प्राप्त है तो फिर कांग्रेस की क्या आवश्यकता रही?

(८) सम्पूर्ण राजा, महाराजाओं और भारत-देश-प्रेमी सर्वहितैषियों को यह प्रत्येक समय अपने ध्यान में रखना चाहिये कि कांग्रेस वाले धार्मिक-विषय, रीति, रिवाज, आदि में हस्तक्षेप न कर सकें और वे कोई नया कानून बनाकर पेश करें तो धार्मिक पुरुषों से सम्मति लेकर और जनता की रुचि के अनुसार कार्य करें।

(९) राजा, महाराजाओं को हिन्दू-धर्म की नाश-कारक नीतिपर कदापि भी नहीं चलना चाहिये, न हिन्दू-धर्म के विरुद्ध अन्तर्जातीय विवाह आदि कानून पास करने चाहिये जिन का दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है-(अ) जाति-पांति-तोड़क कानून।

(आ) मन्दिरों को भ्रष्ट करना । (इ) शादी कानून । (ई) विधवा विवाह । (उ) तलाक कानून । (ऊ) विजाति विवाह । (ऋ) सहशिक्षा अर्थात् लड़का और लड़कियों का एक साथ पढ़ाना । (ॠ) स्कूलों में धार्मिक-शिक्षा का अभाव । (ऌ) लड़कियों को बच्चों के पालने तथा आवश्यक औषधियां को जानने तथा उनके प्रयोग का ज्ञान न सिखाना । (ॡ) संयुक्त-परिवार-प्रथा को कानून द्वारा खंड २ करना । (ए) नीच जातियों की तरफ़दारी और पूर्ण हिमायत करके तथा उच्च जातियों से परिपूर्ण शत्रुता रखते हुये अछूतोद्धार के नाम पर नीच और उच्च जातियों को परस्पर लड़ाना । (ऐ) विधर्मियों की झूठी तरफ़दारी करके हिन्दूओं को कुचलना । विधर्मियों का अक्सर हिन्दूओं पर कोई मेला वा धर्मोत्सव आदि अवसरों पर आक्रमण करे तो उसे न रोकना । (ओ) हिन्दूओं में प्रचलित धार्मिक प्रथाओं का उत्मूलन इत्यादि २ । अतः राजाओं को उचित है कि अपनी प्यारी हिन्दू-जाति प्रजा तथा अपने परम-प्रिय हिन्दू-धर्म की परिपूर्ण रक्षा करें, जैसा की प्राचीन समय के राजा, महाराजा वर्णाश्रम-धर्म की सर्वदा ही पूर्ण रक्षा करते आये हैं । यह ऐसा सुदृढ़ गढ़ (किला) है कि विधर्मियों के अनेक घोर आक्रमणों से भी कदापि टूट नहीं सका । सो इस सुदृढ़ क़िले की अवश्य ही रक्षा करना श्रीमान् राजा, महाराजाओं का परम कर्तव्य होगा । और इस अपने हिन्दू-धर्म-रक्षणरूप महान् कर्तव्य के परिपूर्ण साधन के लिये अपने अपने धर्माचारियों और राज्यगुरु की आज्ञानुसार ही सर्व धार्मिक-कार्योंका करना ही प्रशस्त होगा । और इन्हीं धार्मिक कार्यों की सेवा द्वारा ही इस धर्म-युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त होगी, और यह वर्णाश्रम धर्म का गढ़ अवश्य ही परिपूर्ण-तया सुरक्षित रखने में परमोन्नति में परिपूर्ण सफलता प्राप्त होगी ।

(१०) राजा, महाराजाओं को प्रत्येक विषय में सनातन-धर्मी हिन्दुओं की सहायता और रक्षा करनी चाहिये। उद्दण्ड जातियों को दबाये रखना और साम्प्रदायिक मुकद्दमों में कठोर दण्ड देना उचित है।

(११) विधर्मियों का प्रभाव भारतवासियों पर अब तक इसलिये बना हुआ है कि उन में फूट, वीरता का अभाव और नासमझी है।

हम राजा, महाराजाओं की सेवा में सादर विनय पूर्वक निवेदन करते हैं कि हिन्दू-धर्म की रक्षार्थ हिन्दू-धर्म की आन-बान, शान रखने के हेतु हिन्दुओं की धार्मिक प्रथा और कार्य में सहायक बनें और ऐसी राजाज्ञायें जारी करदें जिन से हिन्दूओं को सुभीता हो।

(१२) राजा, महाराजाओं को इस विषय पर भी अपना गम्भीर ध्यान आकर्षित करने की अत्यन्त ही आवश्यकता है कि विधर्मियों से कालिजों में हिन्दू-धर्म-नाशक शिक्षा दी जाती है उस को रोकने की भरसक चेष्टा करें। इति शुभम्।

सनातन धर्मकी रक्षा और परमोन्नति कैसे हो ?

[लेखकः-पण्डित राजबिहारीलाल ज्योतिषाचार्य, आकाशदर्शी, नवीन फलित ज्योतिष रचयिता, अलीगढ़।]

(१) भारतवर्षीय समस्त सनातन-धर्मी सभाओं को चाहिये कि वे अपने २ केन्द्र से अपने २ अधिकार में होनेवाले प्रान्तों में सनातनधर्मी उपदेशकों का जाल पूर दें। अबतक यह व्यवस्था जो रही है कि जहां से कोई बुलावे और खर्च दिया

जावे वहीं पर उपदेशक भेजे जाते हैं और जहां कोई खर्च न देसके तथा बुलावे भी नहीं वहांपर उपदेशकों को नहीं भेजा जाता, यह प्रथा धर्म—घातक है । यदि ऐसा प्रबन्ध होजाये कि सब जगह ही धर्म उपदेशकों का दौरा होता रहे और जो कुछ वहां से पूर्ण वा थोड़ा सा ख़र्चा मिले वा नामिले उसीपर निर्भर किया जाये, तो सनातन धर्मका अवश्य ही बोलबाला होगा और प्रत्येक हिन्दू अपने धर्मपर सुदृढ़ होजायेगा ।

(२) मंत्र—जाप करके देवसिद्धि प्राप्त करना तीनों उच्च वर्णों के प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य होजाये तो कोई भी दुःख, शत्रु तथा कर्मचारी और रोगादि तनिक भी कष्ट नहीं देसकते, अतिरिक्त इसके धर्म भी सुदृढ़ होजायेगा, डांवाडोल नहीं रहेगा ।

(३) किसी भी महान् दुःख के उपस्थित होने पर अपघात करना वा घरसे निकल जाना बुरा है जैसे कि गतवर्ष परीक्षा में उत्तीर्ण न होने के कारण यू० पी० प्रान्त के लगभग २० छात्रोंने अपघात किया है तथा कई छात्र अपना घर छोड़कर निकल भी गये हैं । और हार्टफेल अर्थात् मनुष्य के हृदयकी कलका चलना एकदम बन्द होजाना कि जिससे तुरन्त ही स्व-स्थावस्था में अर्थात् विना कुछ बीमारी के ही तुरन्त मृत्यु होती है । ये ३ रोग पाश्चात्य सभ्यता पर चलने वालों अर्थात् मंत्र, भजन, पूजन, व्रतादि न करने वालोंको ही ग्रसते हैं । परन्तु हिन्दू-धर्म में देव-पूजा का विधान जो मंत्रजाप और व्रतोपासना है उनके करनेवालों पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, अतएव अपनी भलाई और स्वस्थता के लिये मंत्रजाप नित्य नियम—पूर्वक अवश्य ही करना और नियम—पूर्वक कोई व्रत भी रखना चाहिये ।

(४) आज कल कुछ धर्म--विहीन जन अनेक प्रकार के धर्म-घातक कानून वना २ कर सनातन-धर्मियों पर कुठाराघात करके महाघोर संकट उपस्थित कर रहे हैं सो इसको मिटाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

(५) धर्मशिक्षा का प्रवन्ध करने की अत्यन्त ही आवश्यकता है । इसकी ओर सवसे पहिले ध्यान दिया जावे और हमारा निम्न लिखित सन्देश जहां कहीं भी सनातनधर्मियों की कोई भी सभा हो प्रत्येक जगह सर्व उपस्थित समुदायको सुनादिया जाया करे ।

(क) वालकों को सर्व प्रथम ही हिन्दू वा संस्कृत पढ़ानी चाहिये । तदुपरान्त धर्म शिक्षा सर्वोपरि मुख्य है इस लिये उनको धर्म--पुस्तकें पढ़ावें । इसके वाद उर्दू वा इंग्रेज़ी पढ़ानी चाहिये ।

(ख) जव वालक हिन्दी तथा संस्कृत में कुछ सुयोग्य होजावे तव १६, १७, १८ वर्ष की अवस्था में ही मंत्रदीक्षा देकर उसको जिस देवता में प्रेम हो उसकी सिद्धि अवश्य ही करा देनी चाहिये ।

(ग) छात्रों को सर्वदा ही उपहार में धार्मिक, उपदेशप्रद पुस्तकें वितरण करनी चाहिये ।

अव हम कुछ धर्मशिक्षा के विषय में लिखते हैं कि धर्मशिक्षा का प्रस्ताव वर्णाश्रम--स्वराज्य--संघके वार्षिक महाधिवेशन, कलकत्ता, में अवसे कोई तीन चार वर्ष पहिले पास हो चुका है परंतु वह कार्यान्वित आज तक नहीं हुआ है । सो इसकी ढीली लगाम छोड़ देना ही सनातन-धर्म के विनाशका कारण है । इस हेतु यह धर्मशिक्षा का प्रबन्ध सर्व प्रथम तुरन्त ही आरम्भ करना अत्यन्त ही आवश्यकीय कार्य है । यदि संघ इस दुस्तर कार्य को करने में असमर्थ है तो इसका एक महकमा कायम करके इसका सर्व

भार अर्थात् धर्मशिक्षा के संपूर्ण प्रबंध का कर्तव्य किसी धर्मप्रेमी योग्य सज्जन पर छोड़ देना अत्यन्त ही उचित है। इसके लिये एक इन्स्पैक्टर, एक क्लर्क, एक सिपाही का वेतन और दफ़तर का सारा ख़र्च देना होगा। और सनातनधर्मी शिक्षालय, पुत्री पाठशालाएं तथा कालिजों की एक सूची तैयार कराई जाकर उस विद्वान् को दीजावे तो धर्मशिक्षा का प्रचार और प्रसार सुगमता से हो सकता है।

(५) स्त्री-शिक्षा के संबंध में यह बताना आवश्यक है कि वर्तमान समय में कई गत वर्षों से सहशिक्षा की प्रथा डाली गई है वह धर्म-नाशक और निषिद्ध है। इससे तो पुरुषों में बेरोजगारी फैलती है, क्योंकि जब स्त्रियां पढ़कर नौकरी करने लगी हैं तो अब पुरुषों को नौकरी मिलना और कठिन हो चला है और भविष्य में और भी हो जायगा। दो घर के रोज़गार चलने के बदले, एक ही घर में स्त्री, पुरुष दोनों के रोज़गार चलेंगे और दूसरा घर भूखा मरेगा। दूसरे लड़कियों को परीक्षाएँ पास कराने की जो प्रथा चल पड़ी है वह विवाहोपरांत उनके किसी भी काम नहीं आती। तीसरे ऐसी परीक्षा पास करने के वास्ते अत्यधिक ख़र्च करना व्यर्थ में रुपयों का दुरुपयोग करना है। चौथे इस प्रकार स्त्रियों को सीने, पिरोने, भोजन बनानें, बालकों का पोषण करने और उनको स्वास्थ्य तथा दीर्घायु बनाने और श्रेष्ठज्ञान देने की आवश्यक शिक्षा से वञ्चित रक्खा जाता है। पांचवें इस लिये इन आवश्यक गृह-कार्यों के करने से उनको घृणा भी उत्पन्न हो जाती है। छठे जाति-बन्धन तोड़ने और स्त्रियों को स्वच्छन्द तथा स्वेच्छाचारिणी बनाना बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ है। सातवें आजकल कितने ही सनातन धर्मी लड़कों को यह कहते सुना गया है कि अब तो स्कूल में ही विवाह होजाया करेगा,

यही हमारा स्वयम्वर है। संघ के नेताओं और सम्पूर्ण सनातन-धर्मी संस्थाओं को इसे खूब कान खोल कर सुन लेना चाहिये कि फिर तो अपनी जाति में विवाह की प्रथा टूट जायगी। यदि आपकी संस्थाओं का कार्य हिन्दू-धर्म को जीवित रखना है तो तुरन्त चेतियेगा। बहुमत इस सहशिक्षा के अत्यन्त हीं विरुद्ध है सो यदि धर्मशिक्षा का प्रवन्ध कराना हो तो लड़के और लड़कियों दोनों की शिक्षा को विभिन्न करके दोनों प्रकार के शिक्षालयों को पृथक् २ कर देना चाहिये। परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या संघादि संस्थाएँ इस सम्मति के मानने को तय्यार भी होंगी? यदि वे इस सम्मति से सहमत होजायें तो वे धर्म-शिक्षा को जारी करा सकती हैं, अन्यथा तो यह कार्य उनके बूते से बाहर है, उन से सम्पन्न होना कठिन है और इस सहशिक्षा से हिन्दूओं में विधर्मी-पन अत्यन्त ही शीघ्र फैलनेवाला है। क्या संघादि संस्थायें अब भी अपनी गम्भीर नींद को त्याग नहीं करेंगी? और अपने नेता-पन को गर्वित-दृष्टि से देखकर अपने मन ही मन सर्वदा प्रसन्न चित्त ही होती रहेंगी?

(६) अब "नवीन-फलित-ज्योतिष" का प्रकाशन कैसे हो? इस के सम्बन्ध में लिखा जाता है कि हम ने "नवीन ज्योतिष" की रचना कर एक उत्तम कार्य किया है जो पांच वा छः ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित हो सकेगा। परन्तु जब तक ये सर्व ग्रन्थ भारतवर्ष भर में बिना दाम बिलकुल मुफ्त वितरण नहीं किये जावेंगे तब तक नवीन ज्योतिष का प्रचार होना केवल दुस्तर ही नहीं प्रत्युत इस प्रकार तो नवीन विद्या का अवश्य ही लोप हो जाना संभव है। इस हेतु प्रत्येक ग्रन्थ लाखों की संख्या में प्रकाशित कराकर भारतवर्ष भर में बिलकुल मुफ्त वितरण कराना ही निश्चय किया गया है। अब विद्याप्रेमी दानवीर महानु-

भावों का क्या कर्तव्य होना उचित है ? सो इस विषय में उन की जैसी सम्मति हो सो वे कृपा करके हम को सूचना देने का कष्ट सहन करेंगे। हमारे इन उपर्युक्त ग्रन्थों के ऊपरी पृष्ठपर ही दानवीरों के नाम तथा पते सहित उनकी प्रदान की हुई धन सहायता प्रकाशित करदी जावेगी, जिस से उन की सुख्याति भारतवर्ष के बाहर भी सम्पूर्ण दुनिया में पहुँचेगी। ग्रन्थों के छपने की देर है कि तुरन्त ही ये ग्रन्थ अफ्रिका, अमेरिका तक में भेजे जायेंगे, क्योंकि कई ऐसे आर्डर वहां के आचुके हैं। विद्यादान महादान है, सर्व दानों में श्रेष्ठतर है, इस पर सशीघ्र ही ध्यान दीजियेगा।

(७) फलित-ज्योतिष के जितने भी ग्रन्थ हैं वे सब अशुद्धियों से भरपूर हैं। सो इन सब को उपर्युक्त नवीन ज्योतिष प्रकाशन के साथ २ शुद्ध कराया जावे तो श्रेष्ठ होगा। इस विषय पर भी किंचित् गम्भीर-दृष्टि से विचार-पूर्वक ध्यान दीजियेगा।

(८) दानवीरों को पात्र कुपात्र का विचार करके सुपात्र को ही दान देना उचित है। और विना विचार किये कुपात्रों को दान देने का यही फल है, जो हिन्दू-धर्म-नाशक तथा अन्य विधर्मप्रचारक साहित्य के प्रकाशन से हो रहा है। देखिये कि कांग्रेस को एक करोड़ रुपये सनातन-धर्मियों ही ने दान दिया था, जिसका फल यह प्राप्त हो रहा है। सनातन-धर्मी दानवीर हैं और दानशीलता में तत्पर हैं, परन्तु पात्र कुपात्र का ज्ञान किये विना दान देने का यही फल है कि वह दिया हुआ दान तुम्हारा ही नाशकारक बने।

हमने हरिद्वार कुम्भ के मेले पर स्वयम् देखा था कि दान विना विचारे अनाब शनाब दिया जाता था। जो दान देना चाहिये था ऋषिकुल आदि सनातन-धर्मी संस्थाओं को। परन्तु वह अन्य

मत की संस्थाओं को दिया जा रहा था। अन्य-मत पोषक और सनातन-धर्म-खण्डक संस्थाओं को पचीस सहस्र रुपये वहां दान में प्राप्त हुये थे। हरिद्वारमें श्रीगङ्गाजी के स्नान के लिये कुम्भका महापर्व सनातन-धर्मियों का मेला है। फिर अन्य समाज संस्थाएँ वहां क्यों और उनको क्यों दान दिया जावे ? ऐसे विरुद्ध संस्थाओं से अलग रहना ही सनातन-धर्म की परमोन्नति के लिये श्रेष्ठ है।

किसी भी विधर्मी संस्थाओं को एक पैसा भी दान नहीं देना चाहिये। यह दान, दान नहीं वरन् महान् पाप है। कुम्भ के मेलेपर जाने वालों को सर्वदा ही याद रखना चाहिये कि ऋषिकुल में जाकर वहां अथवा अन्य सनातन-धर्म के कार्य में दान देना उचित है।

(९) सनातन-धर्मी पत्रों की यह बड़ी भारी त्रुटि है कि वे अन्य संस्थाओं की, सुधारकों की बड़ाई करते नहीं अघाते। उनका यही कार्य्य तो सनातन-धर्म की जड़ को खोखली कर रहा है सो ऐसा नहीं करना चाहिये।

(१०) सुधारक लोग [१] विवाह अपनी जाति बिरादरी में नहीं करते, [२] वे विवाह जैसा पवित्र कार्य ईसाइयों की रीति से रजिस्टरी द्वारा सपन्न करते हैं, [३] इनकी तरुणावस्था की लड़कियां विलायत में पढ़ने भेजी जाती हैं और वहां भ्रष्ट हो जाती हैं, [४] जो वहां से बैरीस्टर बनकर आती हैं और भारतवर्ष में बैरीस्टरी करती फिरती हैं और [५] इनकी अनेक स्त्रियां ऐसेम्बलियों के पद का शासन कार्य कर रही हैं और अपने पद-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण भी करती फिरती हैं, हमने सं० १९९५ वि० के कुम्भ मेले पर सुधारकों की ये नई पांच बातें देखी; जा सनातन-धर्म के विरुद्ध हैं। और इससे स्पष्ट है कि सुधारक-नेता हिन्दू-धर्म का नाश करते चले जाते हैं। सनातन-धर्मी हिन्दूओं की सब से बड़ी त्रुटी यह है कि इन

सुधारकों को वोट दे देते हैं। इन को वोट न देने का आरम्भ बड़ी तीव्रगति से कर देना चाहिये कि नवीन सुधारकों को वोट न देकर सनातनी हिन्दूओं को ही वोट दिये जावें। इसलिये म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और प्रान्तीय तथा केन्द्रीय ऐसेम्बलियों में सनातनी हिन्दूओं का आधिपत्य हो जाय। हिन्दूओं की सीटों में से एक भी सीट इनको कदापि नहीं मिलनी चाहिये, क्योंकि ये हिन्दू नहीं हैं। हिन्दूओं की जो सीटें हैं उन में से चौथाई आर्य्य—समाजियों को दी जावें और चौथाई जैनियों को मिलें, शेष आधी सनातन—धर्मियों के पास रहेंगी। इससे ईसाई लोग ईसाइयों के लिये, आर्य्य—समाजी अपने आर्य्य-समाज के लिये, जैनी अपने जैन—धर्म के लिये और सनातन-धर्मी अपने सनातन-धर्म के लिये कानून बना सकेंगे, किन्तु दूसरे के लिये किसी को भी कानून बनाने का अधिकार नहीं होना चाहिये। सनातन-धर्मी नेता वृन्दों को चाहिये कि सब से पहिले तुरन्त ही इस प्रकार सीटों का बटवारा करालेवें। इसी विधिपर अग्रसर होने से बहुमत-वाली, और गवर्नमेन्टी पदपर पूर्ण अधिकार रखती हुई, अत्यन्त गर्वित, सुधारक पार्टी अधोमुख होकर नीचे गिर पड़ेगी और सनातन—धर्मी परिपूर्ण प्रकार से अपना आधिपत्य प्राप्त कर सकेंगे।

यह नं० १० अत्यन्त ही अधिक महत्वका है जिससे सनातन—धर्मियों की पूर्ण विजय होगी और धर्मध्वंसी—सुधारक नामधारी दल अवनति के गर्त में गिरकर सर्व-नाश को प्राप्त हो जायेगा। इस पर शीघ्र कार्यान्वित होना चाहिये।

ये उपर्युक्त १०. अत्यंत आवश्यक विषय हैं जिनपर यदि सनातनधर्मी जनता, सनातनधर्मी सभाएं तथा सनातनधर्मी नेता और सनातनधर्मी राजा महाराजाओं ने ध्यान दिया तो अवश्य

ही सनातनधर्म का बोलबाला होगा और वह अपने विरोधियों का नाश करता हुआ उन्नति के शिखर पर पहुंचेगा और परिपूर्ण सुदृढ़ भी होजायेगा। इस बात पर अत्यन्त गंभीर दृष्टि से विचार करना अवश्यक है।

भारतवर्ष दिनों-दिन अधोगति के गर्त में क्यों गिरता जारहा है ?

[लेखक—पंडित राजबिहारीलाल, नवीन ज्योतिष शास्त्र रचयिता, आकाशदर्शी, अलीगढ़]

वर्तमान काल में यूरुप, अमरीका आदि देश सर्व कलाओं में उन्नति के शिखर पर पहुंच रहे हैं। परन्तु भारतवर्ष दिनोदिन अधोगति के गर्त में गिरता जाता है। इसका मुख्य कारण यही है कि पाश्चात्य देशों में तो जहां कोई व्यक्ति किसी भी नवीन कार्य के आविष्कार पर उसके अनुसन्धानार्थ खड़ा होता है तो उसका पूर्ण विवरण वहां के समाचार-पत्र अत्यधिक ही हर्ष और प्रसन्नता से प्रकाशित करते हैं और फिर दानवीर महानुभाव तथा वहां की गवर्नमेंट भी उस नवीन कार्य-कर्ता को अत्यधिक धन-सहायता देती हैं और शीघ्रातिशीघ्र ही लाखों रुपये उसके चरणों में आ पड़ते हैं। जिससे वह अनुसन्धानकर्ता अपने उत्साहकी अभिवृद्धि के साथ अपने कार्य्य की गहरी छानबीन करता है और अन्तको वह उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त करलेता है। परन्तु यहां भारतवर्ष में तो उपर्युक्त साधनों में से कोई भी ऐसा साधन नहीं है। यदि कोई विद्वान् किसी भी विद्या में कोई नवीन खोज करे वा किसी प्रकार का आविष्कार करने के लिये गम्भीर अनुसन्धान

करने पर खड़ा होजाये तो कहीं से भी उसको धनसहायता प्राप्त नहीं होती। इन बातों का तो यहां पूरा अभाव ही है। जब भारतवर्ष की सम्पूर्ण पुरानी कलाओं का नाश ही किया जा रहा है, भला वहां कैसे कुछ सहायता मिल सकती है ? कदापि नहीं। यहां तो आजकल मशीनरी की ही बढ़ती हो रही है। दस्तकारी को कोई नहीं पूछता। अब रहे राजा, महाराजा सो स्वयं निज बुद्धि से तो वे कुछ करते ही नहीं, प्रत्युत वह तो गवर्नमेंट इंग्रेजी का ही अनुसरण करते रहते हैं, सो वे भी उसी भारतवर्षकी सम्पूर्ण कलाओं की नाश-कारक नीति पर ही चल रहे हैं, अतएव वह भी कुछ धन-सहायता देने को तय्यार नहीं होते। अब रहगये अन्य दानवीर महानुभाव, सो ये तो अपने ही नगरों में और अपने जाने पूछे व्यक्तियों को ही दान देना जानते हैं। जिस मनुष्य से इनकी जान पहचान ही नहीं और इनके नगर से अत्यन्त दूरका रहने वाला है उसको तो ये एक पैसा भी दान नहीं देते। और सबसे बड़े अभियुक्त इस विषय के भारतवर्षी समाचार पत्रों के सम्पादक-गण हैं जो किसी कार्यकर्ता के गुण गान करना और उसको धन-सहायता दिलवाने के लेख लिखना महान् पाप समझते हैं और वह अपने इस महान् पापके दण्ड स्वरूप महाघोर नरक में पड़ने के भय से ऐसा कोई लेख कदापि भी नहीं लिख सकते। आप का लेख लिखना तो दूर रहा, यदि वही कार्यकर्ता अथवा उसके लिये अन्य कोई विद्या-प्रेमी धन-सहायता संबन्धी लेख भेजे तो उसको भी छापना अत्यंत कलंक और महान् पाप समझते हैं और महाघोर नरक में पड़ने के भय से उसको तो तुरन्त ही फाड़कर रद्दी की टोकरी में डाल देते हैं। वैसे तो वे सब खान-पान, रहन-सहन, बूट-सूट, जूते, टोप, विदेशी भाषा बोलने, विवाह-प्रथा, कानून तलाक़ आदि

की नक़ल उतारने में भारी चतुर और बड़े प्रशस्त हैं, परन्तु पाश्चात्य देशों में धन-दान देने और दिलाने की जो उपर्युक्त प्रणाली है उसकी नक़ल उतारने में नहीं है और अपने किसी भारतीय भाई के उत्साह-युक्त कार्य-क्षेत्र में बाधा डालते हैं। वे यह नहीं सोचते कि किसी के उत्साह-युक्त कार्य-क्षेत्र में बाधा डालना तो महापाप है और इसके फलस्वरूप उनको अवश्य ही महा-घोर नरक के गर्त में गिरना होगा। क्या कभी इस विषय पर भी उन्होंने विचार किया है ? कदापि नहीं। अतएव जिस देश में नवीन आविष्कारक के उत्साह को भंग करने के लिये इतने उपर्युक्त कारण उपस्थित होरहे हैं, वह देश पाश्चात्य देशों की तरह कभी अभिवृद्धि न कर सके और दिनों दिन अधोगति के गर्त में ही गिरता हुआ चला जावे तो इस में आश्चर्य क्या ? इस प्रगति को रोकने के लिये प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है।

सुख का मूल।

इस जगत् में प्रत्येक मनुष्य को धर्मानुसार आचरण करना चाहिये। धर्म एक ऐसी वस्तु है जिसके आचरण करने से मनुष्य की हर स्थान पर विजय होती है और वह नाना प्रकार के दुःखों से विमुक्त होता है। यथा—

धर्मेण हन्यते व्याधिर्धर्मेण हन्यते ग्रहाः।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः॥

जो मनुष्य धर्मानुसार आचरण नहीं करते हैं, वे पशु के समान हैं, यथा—

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

धर्माचरण के लिये विद्याध्ययन करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। जो विद्या पढ़े हुए नहीं हैं, वे पशु के समान है, यथा—

विद्याविहीनः पशुः।

जो न तो विद्या पढ़े हुए हैं, न तपस्या करते हैं, न ज्ञानी हैं, न शान्त-स्वभाव रखते हैं, न गुणी हैं, न धर्म करते हैं, वे इस मनुष्य-लोक में पृथ्वी के भार-रूप हैं और केवल नाम मात्र के मनुष्य हैं किन्तु वास्तव में पशु ही हैं, यथा—

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

यह विद्याभ्यास केवल आयु के प्रथम भाग में ही हो सकता है और उसके लिये समय की पूर्णावश्यकता है। समय को व्यर्थ नष्ट करने से विद्या नहीं आसकती, यथा—

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्।
क्षणे नष्टे कुतो विद्या कणे नष्टे कुतो धनम् ॥
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या महादेवता,
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥

विद्या मनुष्य का सुन्दर स्वरूप है, अर्थात् विद्यावान् का सर्वत्र आदर होता है, विद्या एक छिपा हुआ धन है अर्थात् उसे कोई चुरा नहीं सकता। विद्या से मनुष्य को यश मिलता है, सुख मिलता है, विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विदेश में विद्या बान्धव की

तरह सहायता देती है, वह बड़ी देवता है, राज्य में विद्या की पूजा होती है न कि धन की, विद्यारहित मनुष्य पशु है।

इस विद्या को न तो कोई चोर चुरा सकता है, न राज्य छीन सकता है, न भाई इस में से भाग मांग सकता है, न यह बोझ देने वाली है। इस में एक अद्वितीय गुण है, वह यह कि यह व्यय करने से दिन प्रतिदिन बढ़ती है, अतः सर्व धनों में विद्याधन सर्वश्रेष्ठ है। यह बात निम्न श्लोकों से सिद्ध होती है—

न चोरहार्यं न च राजहार्यं,
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं,
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥
सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥
अपूर्वः कोऽपि कोषोऽयं विद्यते तव भारति!।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात् ॥

यह विद्या माता की तरह हमारी रक्षा करती है, पिता की तरह हमारी भलाई में तत्पर रहती है, स्त्री की तरह खेद को दूर कर चित्त को प्रसन्न करती है। दिशाओं में निर्मल यश फैलाती है, लक्ष्मी देती है, यह कल्पवृक्ष के समान क्या क्या सिद्ध नहीं कर सकती है? अर्थात् सब कुछ सिद्ध कर सकती है। यथा—

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते
कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥

विद्याध्ययन करने से ही तो मनुष्य प्रखर विद्वान् होता है। उस विद्वान् की तुलना राजा से भी नहीं की जा सकती अर्थात्

वह विद्वान् राजा से भी बढ़ कर है क्योंकि राजा तो केवल अपने देश में ही पूजा जाता है किन्तु विद्वान् सब जगह पूजा जाता है, यथा–

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

इसी विषय में यह और लिख देना अनुचित न होगा कि प्रत्येक बालक के माता पिता का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे अपने पुत्रों को विद्याभ्यास करावें। यदि वे नहीं कराते हैं तो वे केवल उन बच्चों का जीवन ही निष्फल नहीं करेंगे, अपितु स्वयं उनके शत्रु बनेंगे और उस बालक का मान कहीं न होगा। जैसे–

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यदि माता-पिता पुत्र को विद्याध्ययन न करावें तो वे उसके शत्रु हैं, वैसे यदि पुत्र न करे और वह मूर्ख हो तो वह शत्रु है, यथा–

पुत्रः शत्रुरपण्डितः।

एक समय का वृत्तान्त है कि एक मनुष्य का एक पुत्र बहुत ही परिश्रम से विद्याध्ययन किया करता था। किन्तु कुछ दिनों से उसने पढ़ना बन्द कर दिया, तब उसके पिता को दुःख हुआ, कारण वह अपने पुत्र का शुभचिन्तक था। इस पर उसने कहा–

हाहा! पुत्रक! नाधीतं सुगतैतासु रात्रिषु।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि॥

ऊपर विद्या के गुणों का वर्णन किया जा चुका है और यह भी बतलाया जा चुका है कि विद्या से ही सुख मिलता है।

वास्तव में यह सुख किस प्रकार मिलता है, वह निम्नलिखित श्लोक से सिद्ध होगा—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

विद्या से नम्रता आती है, नम्रता से पात्रता (योग्यता) आती है, योग्यता से धन मिलता है, धन से धर्म होता है और धर्म से सुख मिलता है ।

अतः सुख का मूल विद्या है ।

K. Vishnu Narayan Asopa,
Govind Bhawan,
Jodhpur.

प्राचीन काल के रीति रिवाज का रहस्य ।

प्राचीन-काल से जो रीति-रिवाज अर्थात् प्रथाएं चली आ रही हैं, उनमें अवश्य कुछ न कुछ रहस्य छिपा रहता है । परन्तु आज कल इन प्रथाओं को कुरीतियां समझी जाती हैं । उन में से कुछ रीति-रिवाज इस प्रकार हैं जिन का नीचे वर्णन किया जाता है ।

(१) प्रथम-पुत्र-जन्म—जब प्रथम-पुत्र का जन्म होता है, उस समय अत्यन्त उत्सव मनाया जाता है और रिश्तेदारों तथा मित्रगणों को इसी उत्सव में भोजन कराया जाता है । यह सब क्यों किया जाता है ? कारण यह है कि भोजन करने वालों को मालूम हो जाय कि यह पुत्र उसके पिता की सारी सम्पत्ति का मालिक होगा । उसको अधिकारी बनाने में कोई बाधा नहीं डाल सके ।

(२) गोदी-रस्म—यह प्रथा भी भारतवर्ष में प्राचीन-काल से चली आती है। गोदी की रस्म उस प्रथा को कहते हैं जिस में किसी पुरुष के पुत्र न हो और वह स्वयं अपने सजातीय के पुत्र को अपने घर रख कर अपनी पूर्ण सम्पत्ति का उसको अधिकारी बना दे। सब मित्रों तथा रिश्तेदारों को इकट्ठा करके यह रस्म की जाती है। सब को इकट्ठा इसलिये किया जाता है कि सब उसके गवाह होजावें और जिसको अधिकारी बना दिया जावे उस पर कोई दावा (मुकद्दमा) न कर सके।

(३) यज्ञोपवीत—के अधिकारी केवल तीन वर्ण के ही होते हैं, यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य। यज्ञोपवीत से हमारे दांतों की रक्षा होती है। कैसे ? जब यज्ञोपवीत होता है तो गुरु कुछ शिक्षा देते हैं। उस में यह भी शिक्षा दी जाती है कि वे Urine House पेशाब घर and Latrine House पैखाने में जावें तो यज्ञोपवीत कान पर धारण करके जाना चाहिये और वहां मुँह नहीं खोलना चाहिये। क्योंकि मुँह में विशुद्ध हवा पहुँचने से दांत कमजोर होजाते हैं। ऐसी राय वैद्यों की भी है। इसमें यही रहस्य पाया गया, कि यज्ञोपवीत हमारे दांतों को कमजोर बनाने से बचाती है।

(४) संबन्ध या सगाई:—यह रस्म शादी (Marriage) के पहले होती है। इसमें जाति (Clan) वालों को बुला कर लिखा-पढ़ी की जाती है। ताकि जाति वाले सब इस सम्बन्ध के गवाह हो जावें। लेकिन प्राचीन काल में यह प्रथा न थी, आज कल ही है।

(५) लग्न:—प्राचीन-काल में कागज पर लिख कर भेजा जाता था और उस में यह लिखा जाता था कि स्वयम्वर अमुक तारीख या तिथि को है। इस में रहस्य यह पाया गया कि

उस कागज से स्वयम्वर में उपस्थित होने की तारीख मालूम हो जावे। और यह लग्न सदा लड़की के घर से लिखा जाता है। क्यों कि लड़की के घर पर ही स्वयम्वर होता है। लेकिन आज कल स्वयम्वर बन्द होने से लग्न में शादी का कार्यक्रम लिखा जाता है और इसी लग्न के कार्यक्रम के अनुसार शादी का तमाम काम होता है।

(६) गणेश-पूजन अथवा माता-पूजनः—इसी कारण की जाती है कि स्वयम्वर या शादी विना विघ्न-बाधाओं के कुशल-पूर्वक होवे और स्वयम्वर में जब जाते थे तो उनकी पूजन तथा प्रार्थना करते थे कि उन्हें स्वयम्वर में सफलता प्राप्त हो। स्वयम्वर में प्रायः झगड़ा अवश्य हो जाता था। क्योंकि वर बहुत और वधू एक होती थी। रहस्य इस में यही पाया गया कि देवता शान्ति को स्थापित करें व ऋद्धि सिद्धि को प्रदान करें।

(७) उबटन या चीकसाः—शादी में उबटन शरीर पर लगाया जाता है। इस उबटन में हल्दी, बादाम, चिरौंजी या चारोली, कपूर-काचरी (एक सुगन्धित पदार्थ) व चन्दन का बुरादा मिला कर बनाया जाता है। हल्दी खून को साफ करती है। केसर मिला सकते हैं पर वह खून साफ नहीं कर सकती। बादाम व चारोली—बदन के मैल को साफ करती हैं। चन्दन व कपूर-काचरी शरीर को सुगन्धित बनाती हैं।

(८) बाने करना अथवा मौजेंः-इस में जो युवक स्वयम्वर में जावे या जिस युवक की शादी हो, उस के दोस्त या उस के रिश्तेदार अपने २ घर पर उसे बुला कर भोजन कराते हैं। या उस युवक के घर पर सब दोस्त और रिश्तेदार, सामान व कुछ नकद रकम भी भेजते हैं। क्यों ?

सामग्री तथा नकद रकम इस लिये भेजी जाती हैं कि प्राचीन-काल में हमारे भारत-वर्ष में कोई रेलें तथा मोटर-गाड़ियां नहीं थी। वर के साथ जाने वालों की (जिनको आज कल वाराती कहते हैं) भोजन-सामग्री भेजने के लिये रकम दी जाती थी।

अथवा रिस्तेदार वा मित्र भोजन-सामग्री वर के घर न भेज कर स्वयं वर को ही भोजन करा देते हैं। इसका कारण यह है कि वर अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों के यहां स्वयं भोजन करके शक्तिमान् वने ताकि लड़की का विवाह होने के वाद वह विजयलक्ष्मी रूप से घर में आवे तो उसको किसी दूसरे के हाथ न जाने देवे।

(९) विनोरीः—उस को कहते हैं जिस में वर के साथ जाने वाले पुरुष अक्सर खेलते हैं। विनोरी डण्डे से खेली जाती है। और लड़की के घर भी विनोरी निकलती है। यह क्यों? खास कारण यह है कि स्वयम्वर में वहुधा लड़ाई झगड़े हुआ करते थे तो लड़के वाले और लड़की वाले दोनों विनोरी रूपी कवायद करते हैं जिस से लड़ाई में स्वयं अपनी २ विजय प्राप्त कर सकें।

(१०) काजल और मेंहदी शादी में खास कर वर के लिये निम्न कारण से काम में लाई जाती है।

काजलः—वर तथा वधू दोनों को ही शादी में अधिकतर जागना पड़ता है, क्योंकि हमारे मालवे में प्राचीन काल से यह प्रथा है कि विनोरी खेलते खेलते रात की १२ वज जाती है। इस कारण काजल का प्रयोग किया जाता है कि निद्रा न आसके।

मेंहदीः—वर वधू दोनों के हाथ-पैरों में इसलिये लगाई जाती है कि यह मेंहदी उनके कामदेव को शांत करदे अथवा वे उनके हाथ पैरों में शान्ति पहुँचावें।

(११) बाजे का बजानाः—बाजे फौज (Military) के सामने भी बाजा करते हैं। इसका यह कारण है कि बाजों में वीरता भरे गाने गाये जाते हैं जिस से मनुष्यों के कदम आगे बढ़ते चले जावें।

(१२) गानेः—औरतें वीरता भरे गीत गाया करती थीं जिस से स्वयम्वर में आने वालों का साहस बढ़े। लेकिन आज कल ये गाने बिगाड़ दिये गये हैं। और इन में भद्दी गालियां शुरु करदी गई है, जो अनुचित है।

(१३) केशरिया बाणाः—इस को उस समय पहना जाता है कि जब लड़ाई में कोई भी विजय पाने का मौका न हो। इसी प्रकार शादी (Marriage) में भी यही केशरिया बाणा पहन कर जाते हैं क्योंकि स्वयम्वर में शायद विजय प्राप्त करने का मौका न मिले। इस बाणे को राजपूत लोग शादी में अधिकतर पहनते हैं। कहीं बाणे को बागा कहते हैं।

अब मैं कुछ हिन्दुओं के तहवार के बारे में वर्णन करता हूँ।

(१) गणेश चतुर्थीः—यह भादों मास में आती है। इस दिन गणेशजी का जन्म हुआ था। इस दिन रात्रि को नारियल तथा लड्डू की वर्षा की जाती थी, लेकिन भारत आज कल पैसे से कमजोर होने के कारण पत्थर वर्षा करते हैं।

(२) मकर-संक्रान्तिः—इस दिन सूर्य नारायण मकर रेखा से कर्क रेखा की ओर जाते हैं। इसलिये मकर सक्रान्ति इसका नाम पड़ा, क्योंकि सूर्य मकर रेखा से उत्तर की ओर जाता है।

बी. एल. गुप्ता,
नरसिंहगढ़।

" ॐ श्री अज्ञात "

Mysticism in Hindi-literature.

[हिन्दी-साहित्य में रहस्यवाद]

हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद की प्रस्तुत परिस्थिति का निरीक्षण करने के प्रथम उसकी उद्गम-अवस्था तथा उसके विकास का विवेचन करना भी आवश्यक अंग है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि साहित्य सदैव देश, समाज तथा संस्कृत का प्रतिबिंब हुआ करता है। वह सामयिक सभ्यता, आचरण एवं अवस्था का एक व्यक्त विवरण है जो कवि या लेखक के मानस में कल्पना-द्वारा अनुभूत होकर लिपि-बद्ध होता रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि पूर्वानुभव विद्यमान ही नहीं रहते। वह तो पूर्व अनुभवों का प्रस्तुत अनुभवों से एक प्रकार का सामंजस्य खा लेता है कि दोनों की प्रकृति को पृथक् करना भी कठिन है। क्योंकि वह एक बंधे सरोवर की प्रतिम नहीं रहता जिसमें केवल एक ही स्थान के वृक्ष आदि की प्रति-छाया पड़ती रहें और उसका जल शैवाल या रज-कण से आच्छादित रहे। वह तो निर्मल सरिता की भांति अविदित किस अज्ञेय स्थान से निकलकर निरंतर प्लावित होता रहता है। यदि ऐसा न होता तो वह साहित्य केवल किसी व्यक्ति विशेष या समुदाय विशेप का रह जाता और वह समाज का समष्टि रूप से प्रति-निधि न कहा जाता।

इसी दृष्टि-कोण से जब वर्तमान हिन्दी साहित्य के इस युगान्तर-कारी पर्व की विवेचना करने को अग्रसर होते हैं तो यह कहना पड़ेगा कि आज का रहस्यवाद अपने अतीत की

अनेक स्मृतियों को सिमटाये हुये हैं।' इस स्थान पर अब इस बात को स्पष्ट करना होगा कि ये अतीत की स्मृतियां कौनसी ? इनका आशय यही है कि हमें उस रहस्यवाद का विश्लेषण करना होगा जो प्रथम-रूप में रहस्यवाद के नाम से प्रस्तुत हुआ और जिसकी निरन्तर प्रेरणा आपके रहस्यवाद में भी प्रभाव-रूप से पुनः सजग हो उठी।

प्राचीन रहस्यवाद के समय पर आने के पूर्व यदि हिन्दी साहित्य के उस अध्याय का, जो रहस्यवाद काल से पहिले साहित्य पर अपनी छाप लगाये हुये था, विवेचन करें। जिस से यह प्रकट होजाय कि हिन्दी साहित्य में कब, किस प्रकार, किसके द्वारा और किन २ दशाओं में रहस्यवाद हमारे यहां संभव हुआ ?

यह तो स्पष्ट है कि साहित्य की भाषा साधारण बोलचाल के परिष्कृत तथा व्याकरण-बद्ध होजाने से बनती है। अतः हिन्दी भाषा भी अपभ्रंश के बिगड़ जाने के पश्चात् का निकला हुआ रूप है। यहां पर यह अनिवार्य है कि हिन्दी भाषा को संस्कृतजन्य करने वालों को ध्यान रखना चाहिये कि संस्कृत के साहित्यिक-भाषा बनने के पश्चात् उसका रूप बिगड़ चुका था और हिन्दी उस बिगड़े हुये रूप के अनेक परिवर्तनों के पश्चात् बनी। अस्तु।

हिन्दी की साहित्य-भाषा कब साहित्यिक बनी और उसका प्रथम परिष्कारक, या परिष्कृत रूप का लेखक, कौन था, ये सब बातें अभी अनिश्चित-सी हैं। फिर भी हिन्दी का प्रथम काव्य जो पतेवार उपलब्ध है वह भाट चारणों का लिखा विशालरासो, पृथ्वीराजरासो आदि हैं। यों तो कवि पुष्प तथा जगनीक आदि प्रथम कवि माने जाते हैं और ग्रंथ 'खुमानरासो' (९ वीं शताब्दि) प्रथम

माना जाता है पर उन कवियों के ग्रंथ अप्राप्य हैं और खुमानरासो के लेखक का परिचय नहीं मिलता।

इतिहास से स्पष्ट है कि हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत की कैन्द्रिक-शासन-शक्ति का ह्रास हो चुका था। भारत की राज्य-सत्ता इस प्रकार विश्रृङ्खल होकर भिन्न २ राजपूत राजाओं में बंट गई, जिसके एक-सूत्र में ग्रथित न रहने के कारण और उनका क्षत्रियोचित आत्माभिमान केवल स्वार्थ-पूर्ण स्वाभिमान में परिणत होजाने के कारण वे परस्पर लड़ते रहते और चारण लोग उनकी प्रशस्ति के रूप में अपने २ कवित्व का विकास करते। साहित्य के समाज तथा आदर्श का भापांकित चित्र होने के कारण उस समय का साहित्य केवल उन राजपूत सर्दारों की वीरता की गाथा-कथा में ही संलग्न था और वह समय फिर वीर-गाथा काल ही कहलाया।

पर समय परिवर्तन के प्रपंचना-मय चक्र में अवरोध-रूप से चलता रहता है। उत्कर्ष से अपकर्ष तो स्वाभाविक गति है। राजपूतों की वह व्यक्तिगत वीरता यवन-काल में आकर जाति-द्वेष की भयानक लपटों में जलकर खाक होगई और भारत की प्रजा एक बारगी निराश्रित होकर केवल उस अज्ञेय की ओर अभिलपित नेत्रों से कुछ आशा की अभीप्सित होकर आर्द्र होने लगी। हिन्दू-सत्ता अपने स्वातंत्र्य के आवेश में उठी, गिरी, फिर उठी, फिर गिरी और अंत में उसका अस्तित्व तक विलीन होने लगा। हिन्दू-जाति निःशक्त होगई; उसके रक्त में अब वह उबाल न था जो अपने अपमान पर फिर एक बार खौखला उठे। अंत में मानव-शक्ति को जब मानव-रक्षा में असमर्थ पाया तो मानव-प्रकृति अपने ही उत्पादक का अन्वेषण करने को तत्पर हुई कि शायद अगर उनका निर्माता उनकी रक्षा कर सके। यही

समय हिन्दी साहित्य में भक्ति-काल बना। अनेक कवि हिन्दू-संस्कृति को मानव-जाति से विशेष मान कर उसकी रक्षा करने को प्रस्तुत होगये। फल-स्वरूप तुलसी तथा सूर आदि अद्वितीय कवियों ने हिन्दूसंस्कृति में एक शक्ति देदी जिसके सहारे हिन्दू-जाति अब भी अटल रह सकती थी। किन्तु मानव-संस्कृति की रक्षा कौन करे? हिन्दू-मुस्लिम जातियों के उस व्यवहार से पारस्परिक द्वेष दिन प्रतिदिन तीव्र हो रहा था। इधर हिन्दू-कवि हिन्दू-संस्कृति की अमरता प्रकट कर दूसरों को हेय मान रहे थे। उधर मुसलमान शासक जाति होने के बल पर हिन्दुओं पर बर्बरता-पूर्ण व्यवहार करते। ऐसे समय मानव-संस्कृति को इन जातियों के समक्ष कौन रख कर उन्हें तात्विक ज्ञान देकर यह समझाता कि तुम सब का एक ही निर्माता है? ऐसी परिस्थिति में ही हमारे रहस्यवाद का बीजारोपण हुआ और हिन्दू-कवियों की सगुण-भक्ति के विपरीत निर्गुण-भक्ति का निनाद महात्मा कबीर तथा सूफी कवियों के द्वारा प्रसरित होकर प्रत्येक मानव-मात्र को मोहने लगा। अतः इसी निर्गुण-पंथ से रहस्यवाद का आवागम समझना चाहिये। हिन्दू-संत, कवियों में भी कुछ रहस्यवाद की झलक थी, पर वह तुलसी तथा सूर जैसे कवियों के द्वारा प्रकट न होने के कारण वह प्रमुख-रूप न धारण कर सकी।

रहस्यवाद के भाव का साधारणतः अर्थ लेकर कुछ अंशों तक उसकी अप्रतिष्ठा की जारही है, वह कबीर का रहस्यवाद नहीं था। यहां पर वर्तमान रहस्यवाद के विभिन्न अर्थों को छोड़कर केवल कबीर के रहस्यवाद का वर्णन करेंगे। यहां पर यह कह देना भी उचित है कि हिन्दी-साहित्य में उस समय के रहस्य-वाद-स्तंभ में केवल कबीर ही ऐसे महाकवि कहे जासकते हैं जिनके द्वारा रहस्यवाद पूर्ण-रूपेण प्रदर्शित किया गया हो।

अन्य दूसरे कवि भी ऐसे थे जिनके ग्रंथों में रहस्यवाद की उक्तियां उपलब्ध होती हैं जिनमें मलिक मुहमद् जायसी प्रमुख है। फिर भी इन कवियों में ऐसे स्वतंत्र पद्य नहीं मिलते जो केवल रहस्यवाद की कविता के अभिप्राय से ही लिखे गये हों। पद्मावत की कथा के वर्णन में जायसी ने अनेक स्थान पर वर्णनों को इस प्रकार छोड़ा है कि वे रहस्यमय हो गये हैं और आध्यात्मिक या दार्शनिक रूप धारण कर रहस्यवाद की उक्ति ही बनगये हैं। जैसे—

नवौं खण्ड नव पौरी और तहँ वज्र केवार।
चारि बसेरे सों चढै, सत सों उतरै पार॥ आदि।

अतः कबीर ही एक ऐसे व्यक्ति ठहरते हैं, जिन्हें हम स्वतंत्र रहस्यवाद के कवि मान सकते हैं। जैसा हम पहले कह चुके हैं कि हिन्दीमें इस निर्गुण-भक्ति का उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम की एकता को करना था। इसी हेतु कबीर के काव्यों में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का संमिश्रण होना स्वाभाविक था। यही कारण है कि कबीरदास-जी के रहस्यवाद में हम सूफीमत के सिद्धान्तों तथा हिन्दूओं के अद्वैतवाद को मिले-रूप में प्राप्त करते हैं। इसी अद्वैतवाद का कबीर पर प्रभाव भी विशेषरूप से पड़ा। अद्वैत का स्पष्टी-करण यही है कि एक रूप। अर्थात् आत्मा तथा जीवात्मा का एक ही रूप होना। केवल माया का आवरण चढ़ जाने के कारण जीव ब्रह्म को नहीं पहिचान सकता, पर ज्योंही जीव का माया-वरण नष्ट हो पाता है तब जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। इसी पर कबीरजी कहते हैं—

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ, जल जल ही समाना, यहु तत कथौ गियानी॥

कितना उत्तम सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है? वास्तव में

अद्वैत-वाद का ऐसा उत्तम उदाहरण अन्यतः उपलब्ध होना कठिन है। छोटा-सा घड़ा जलके ऊपर तैर रहा है, उसमें थोड़ा जल है। अब यह जल बाहिर के जल से कैसे भिन्न है? घड़े की पतली झिल्ली के नष्ट होते ही वह जल, उस अथाह जल में लीन हो-जाता है। तब भी क्या कह सकते हैं कि वे दोनों जल भिन्न २ थे? कदापि नहीं। वास्तव में यही दशा ब्रह्म और जीव की है। जब माया का आवरण जीव के ऊपर से नष्ट होजाता है तब जीव उस ब्रह्म में उसी जल की प्रतिम मिलजाता है, तब ब्रह्म और जीव को भिन्न २ कैसे मान सकते हैं? यही है कबीर का अद्वैत-रहस्यवाद जो हिन्दू-दर्शन से उसे प्राप्त हुआ।

अब कबीर के रहस्यवाद के दूसरे पहलू पर ध्यान देना चाहिये जिसमें उसके सूफी-सिद्धांत प्रकट होते हैं।

यह तो स्पष्ट है कि कबीर की रहस्यवादता पर जो हिन्दू संस्कृति का प्रभाव पड़ा, वह दार्शनिक तथा ज्ञानाश्रयी था। यद्यपि कबीर एक प्रकाण्ड पंडित तो न थे पर तो भी सत्संग से उन्होंने अगाध ज्ञान प्राप्त कर लिया था और इसी ज्ञान-द्वारा वे हिन्दू तथा मुसलमानों को समान-दृष्टि से उपदेश किया करते और पक्षपात-हीन बातें कहा करते। उन्होंने मुसलमानों को कहा है-

" बकरी पाती खाती है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल ॥

हिन्दू-मुस्लिम भेद की निरर्थकता पर कहते हैं—

"गहना एक कनक तै गहना, इन मँह भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुई करि थापिन, इक निमाज इक पूजा ॥

यह सूफीमत के अनुसार कबीर का रहस्यवाद उतना ज्ञान-जन्य नहीं रहा जितना वह प्रेम-प्रसूत होगया। कारण, सूफीमत

का स्वयं ही प्रेमाश्रयी होना था। और इस प्रकार के रहस्यवाद के प्रदर्शन में कबीर का यही अभिप्राय था कि हिन्दू-मुस्लिम प्रेम से रहने लगें और अपनी मानवीयता को पहिचान कर पारस्परिक अन्तर्द्वेष छोड़ दें। जहां ब्रह्म को पहिचानने में ज्ञान का आश्रय लेना पड़ता था, वहां अब परमात्मा के प्रति प्रेम मान कर कबीर की कविता में प्रेम का एक अपूर्व संमिश्रण बन-गया। वह अलौकिक प्रेम-साधना का अनुयायी नहीं, अपितु सरस, कपट-रहित है और उसमें कुछ भी भेद नहीं मानता। वे कहते हैं:—

यह तत वह तत एक है, एक प्राण दुई गात।
अपने जियसे जानिये, मेरे जियकी बात॥
उठा बगुला प्रेम का, तिनका उड़ा आकाश।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास॥
"जो देखे सो कहे नहीं, कहे सो देखे नांहि"
सुने सो समझावे नहीं, रसना, दृग, श्रुति काहि॥

इस प्रकार कबीर के रहस्यवाद का निरूपण कर कहा जा सकता है कि वह विशेष दार्शनिक था और उसमें सूफी-भावनाओं के सामंजस्य से प्रेम-मय होकर विशेष सजीव तथा सुखद होगया। आप के रहस्यवाद की प्रतिम कोरा प्रश्नवाची तथा निरुत्तर नहीं। उसमें जीवन का एक सजीव उत्तर था, जीवन-समस्या का एक सुखद समाधान था। जीवन के उत्थान और पतन को देख कर वह आपकी भांति कांप न उठा। कठोर यातनाओं की कुलिश-पीड़ा से चिल्ला कर उसने निरभ्र किसी अव्यक्त को संबोधन नहीं किया किंतु वह एक वीर की प्रतिम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में डंटा रहा। वह केवल निराशा के सान्द्र नैश आवरण पर ही न टिका रहता, किंतु उस स्वर्ग-प्रकाश को धारण किये था जो उन्नति की

ओर ठेलने में समर्थ हो। वह आज की भांति 'मैं नीर भरी दुख की बदली' या 'कोई विस्तृत नभ एक कोना' बन मानव-क्षुद्रता को प्रकट करने वाला नहीं था, अथवा—

"तुझे बांध पाती सपने में,
तो चिरजीवन की प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में।"

कह कर मानवव्यक्तित्व को इतना पतित करने वाला नहीं था। उनके जीवन के उज्ज्वल भविष्य की एक प्रकाशमान आभा थी जो प्रत्येक मानव-हृदय में एक प्रकार की शक्ति का संचार करती।

वास्तव में कबीर ही सर्व प्रथम हिन्दी के रहस्यवाद-कवि हुए। सभी संत कवियों में वैसे थोड़ा रहस्यवाद मिलता है पर उनका काव्य विशेष कर कबीर ही का ऋणी है। विश्व-कवि रवीन्द्र स्वयं भी कबीर के कृतज्ञ हैं क्योंकि उनके रहस्यवाद का बीज कबीर ही में विद्यमान था।

कबीर के अतिरिक्त सूफी कवि, कुतवन, जायसी, उसमान, आदि प्रेम-मार्गी कवियों ने भी अपने काव्यों में रहस्यवाद की झलियां प्रकट की हैं जो विशेष कर आध्यात्मिकता की द्योतक हैं। किंतु इनका रहस्यवाद कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं अंकित करता। यही कारण है कि इनका रहस्यवाद हिन्दी के रहस्यवाद के इतिहास में गणित या मान्य नहीं है। किंतु इतना तो मानना पड़ेगा कि इनके काव्यों से विशेष प्रकार की प्रेरणा प्राप्त हुई।

अब यहां से हट कर हमें वर्तमान काल पर आना चाहिये। अर्वाचीन साहित्य में रहस्यवाद का दूसरा नाम छायावाद भी है। वास्तव में हिन्दी में इस समय रहस्यवाद या छायावाद का प्रभाव होना सामयिक अवस्था का फल है। यूरोप के गीति-काव्य के

विकास के साथ २ जब बंगला में भी गीति-काव्य की आराधना आरंभ हुई, उस समय हिन्दी साहित्य कैसे बच रहता ? भारत के कवियों में सर्व प्रथम रवीन्द्र बाबू ने 'गीतांजली' के रूप में पश्चिमीय तथा पूर्वीय का अनुपम सामंजस्य कर भारतवर्ष की हिन्दी के लिये एक नया युग रखा और वास्तव में (Gitanjali is a synthesis of western and oriental elements) ही सिद्ध हुई जिसमें ऊमरखैयाम तथा कबीर के पथ-चिन्ह स्पष्ट झलकते हैं। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर हिन्दी साहित्य में भी 'लीरिक' कविता के आधार पर लोगों ने कवितायें बनाईं और उन्हें रहस्यवाद से पुकारने लगे। दूसरे युरोप में Blank verse का भी काफी चलन था जो हमारे हिन्दी में 'लीरिक' से मिलकर नये रूप में प्रस्फुटित हुआ और लोग इस प्रकार की कविताओं को रहस्यवाद अथवा छायावाद कहने लगे। पर यह रहस्यवाद या छायावाद प्रकृति-रहस्यवाद से कोसों दूर था। पर होते होते हिन्दी में भी ऐसे युगान्तर-कवि प्रकट हुये, जिन्होंने रहस्यवाद को तत्वमय बनाया।

इन्हीं कवियों की श्रेणी में बाबू जयशङ्करप्रसाद सर्व प्रथम आते हैं। उन्हीं की कविता वास्तव में जायसी तथा उमरखैयाम के आधार पर छायावाद के रूप में प्रकट हुई। उसे हम प्रकृत-रहस्यवाद तो नहीं कह सकते, पर हां छायावाद उस में उच्च कोटी का था। उनकी 'आंसू' 'लहर' आदि पुस्तकें वास्तव में अमर होने योग्य हैं। जिन में मानव-प्रकृति को उन्होंने बड़े अनूठे ढङ्ग से अङ्कित करने का सफल प्रयास किया है। प्रसादजी के काव्यों में मानव-जीवन की निरर्थकता तथा वैराग्य को जीवन की सजीवता से इस प्रकार मिलाया गया है कि वह जीवन की समष्टि परिभाषा बन जाय। 'आंसू' के लिये वे कहते हैं—

जो घनी-भूत पीड़ा थी, मस्तिष्क में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आंसू बनकर, वह आप बरसने आई ॥

फिर देखिये—

फूल चू पड़े वात से, भरे हृदय का घाव।
मन की कथा व्यथा-भरी, बैठो सुनते जाव ॥
कहां जाते चले।
पी लो छवि-रस माधुरी, सींचो जीवन-बेल।
जी लो सुख से आयुभर, यह माया का खेल ॥
मिलो स्नेह से गले।
घने प्रेम तरु तले ॥

यह प्रसादजी के कविता की सरसता जो वास्तव ऊमर-खैयाम का प्रतिनिधि बन कर कहती है—

"यह रमणीय वनस्पति जिसकी मृदुल हरितम है विलसित।
जल माला का अधर प्रान्त यह जिस पर हम दोनों आश्रित ॥
आह, तनिक आश्रय ले धीमे तन्वि ! कौन सकता है कह।
किसके विस्मृत मधुर अधर से हुई उच्छ्वसित अविदित यह ॥

पर इतना होने पर भी प्रसादजी में वह प्रकृत रहस्यवाद नहीं जो "जल में कुम्भ, कुम्भ में जल" और "बाहिर भीतर पानी" कह कर माया का मर्म समझाते और जीव का पर्दा हटा कर ब्रह्म से मिलवाते। यहां तो माया का आदेश है अतः मानव-जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न कर। अस्तु।

प्रसादजी के पश्चात् कुछ एक कवियों की टोली-सी आई जिन्होंने रहस्यवाद तथा छायावाद का बहुत सुन्दर निरूपण किया। यों तो आजकल के अतुकांत गीत लिखने वाले सभी अपने को रहस्यवादी मानने हैं पर उन्हें छोड़कर वास्तव में जो कवि हैं-उनमें सूर्यकांत त्रिपाठी, सुमित्रानन्द पंत, महादेवी

वर्मा, मोहनलाल महतो तथा भगवतीचरन वर्मा आदि मुख्य हैं, बाकी के फुटकर कवि स्वतन्त्र रहस्यवादी नहीं कहे जा सकते।

निरालाजी भारत के अद्वैतवाद को लेकर रहस्यवाद का निर्माण करने वाले हैं। यद्यपि उन की सभी कविताएँ इस दार्शनिक रंग में नहीं रंगी हैं और नीचे दरजे की हैं, पर जहां पर उन्होंने इस अद्वैतरहस्य का प्रयोग किया है वहां काव्यत्व उच्च कोटि का है।

"तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म, मैं मन-मोहिनी माया।

पंतजी ने पश्चिमीय प्रश्रय लेकर रवीन्द्र की भांति वैष्णव कविता की भी सहायता ली है। पर इनका रहस्यवाद विशेषकर प्रकृति-मय है। दार्शनिक तत्व इतना न तो प्रबल है और न जीवन के गूढ-तत्व उसमें सुलझाये गये हैं। पंतजी पहाड़ी होने के कारण प्रकृति-सौन्दर्य के विशेष प्रेमी हैं और मधुर भावुक हैं। यही कारण है कि इनकी कविता में प्रकृति की सौन्दर्यानुभूति का साक्षात्कार हुआ है। इनकी पल्लव, ग्रंथी, गुंजन तथा वीणा आदि उत्कृष्ट पुस्तकें हैं और रहस्यवाद-स्तंभ में विशेष महत्व रखती हैं। उनकी मधुर कल्पना बड़ी अनूठी है। जैसे-

प्रथम रश्मि का आना रंगिनी, तूने कैसे पहिचाना।
कहां कहां हे बाल विहगिनी, पाया तूने यह गाना॥

फिर देखिये-

अचिरता देख जगत की आप, शून्य भरता समीर निःश्वास।
डालता पातों पर चुप चाप, ओस के आंसू नीलाकाश॥

कहने का अभिप्राय यह है कि पंतजी की कविता के प्रकृति के सौन्दर्य में जो रहस्य है उसी को उन्होंने अपनी भावुक कल्पना द्वारा प्रकट किया है।

अब महादेवी वर्मा की ओर अग्रसर होइये। यदि रहस्यवाद की दृष्टि से देखा जाय तो महादेवी ही एक सर्वोत्कृष्ट कवियत्री ठहरती है। उन्होंने जीवन के करुणराग का दार्शनिक तत्व सब से बड़े मीठे स्वर में गाने का प्रयास किया है और जीवन के तत्व को कई अंशों तक खोलने का प्रयत्न किया है। पर इनके रहस्य-वाद में मानव-व्यक्तित्व इस विश्व में बहुत ही क्षुद्र है, करुण है और मानव-जीवन एक क्षणिक तथा नैराश्य-पूर्ण। इन के नीहार, रश्मि, सांध्य गीत तथा नीरजा आदि एक से एक बढ़ कर हैं और नीलमा पर सेकसरिया पुरस्कार भी प्राप्त होचुका है। इनका काव्य वेदना-प्रधान तथा उस में आत्मानन्द की अनुभूति से पूर्ण है। वास्तव में रहस्यवाद ने यहीं आकर क्रमिक विकास पाया और एक उच्च कोटी का बनकर सम्माननीय बन गया। इन के प्रत्येक पद में मानव-जीवन की वेदनाध्वनि की विशेष झङ्कार मिलेगी। जो दार्शनिक तत्वों से विशेष अनुरंजित है। जैसे—

उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन,
उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूनापन।
कितनी करुणा कितने संदेश, पथ में बिछ जाते बन पराग।
गाता प्राणों का तार तार, अनुराग भरा उन्माद राग॥

इन पंक्तियों में हृदय की आकांक्षा है, विह्वलता है और उन्माद है। फिर देखिये—

मेरे जीवन में उसकी स्मृति भी तो विस्मृति बन जाती,
उसके निर्जन मन्दिर में काया भी छाया हो जाती।
क्यों यह निर्मद खेल सजनि, उसने मुझ से खेला-सा है॥

फिर देखिये—

शून्य मेरा जन्म था, अवसान है मुझको सवेरा,
प्राण आकुल के लिये सङ्गी मिला केवल अंधेरा।

मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूं,
शलभ ! मैं शापमय वर हूं ! किसी का दीप निष्ठुर हूं ॥

इन पंक्तियों से यह विदित होगा कि महादेवी वर्मा के रहस्य-वाद (जीवन-राग के करुण तत्व) ने कितनी कोमलता से मानव-हृदय को छूने का सफल प्रयास किया है। वास्तव में रहस्यवाद महादेवी वर्मा के हाथों से ही ऐदिल रहस्य बना और जीवन के इस पट का प्रथम प्रकाश अनुभूत हुआ।

मोहनलाल महतो तथा अन्य नवोदित कवि भी इस ओर काफी प्रगति कर रहे हैं और जिन में रामकुमार वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, रामेश्वर शुक्ल आदि कवियों ने भी काफी महत्व-पूर्ण कार्य किया है।

आज बीसवीं शताब्दी में रहस्यवाद हिन्दी-साहित्य का एक प्रमुख आवरण बन गया है। पर इतना होते रहने पर भी रहस्य-वाद अभी अन्तर्साहित्य महत्व को न पासका है। यद्यपि इन कविताओं में खड़ी बोली कोमल होकर आई है पर अप्रासादिकता बहुत है और कविता केवल लाक्षणिकता की मूर्ति बन कर ही हमारे सन्मुख प्रस्तुत हो रही। भाषा, वाक्य-विन्यास तथा छंद-विधान तो एक भारी परिवर्तन के चक्र में पड़े हैं, जिनका क्या भविष्य होगा, नहीं कहा जा सकता। जैसे, निरालाजी के वाक्य-विन्यास के ढंग तो विचित्र हैं, वे अपने बादल राग में कहते हैं—

ऐ निर्बंधः—
अंध तम-अगम-अनर्गल बादल !
ऐ स्वच्छंद;
मंद-चंचल समीर-रथ पर उच्छृंखल।

भाषा की क्लिष्टता भी अपनी सीमा को तोड़ कर आगे बढ़-गई है और पंतजी तो भाषा-जाल से कुछ तो वैसे कविता के अर्थ

को रहस्य-मय बना देते हैं। अतः भाव, अनुभूति और कल्पना की प्रधानता होते हुवे भी उसका लालित्य जाता रहता है। कवि अपने युग का प्रतिनिधी है और उसे युग के आदर्श के अनुकूल ही अनुभूति-काव्य के चित्र-पट पर अंकित होना आवश्यक है। अतः इस रहस्यवाद के कवियों को इस ओर ध्यान देना अनिवार्य होगा। वैसे हिन्दी-साहित्य में इसे एक प्रकार का युगांतर समझना चाहिये। जो हिन्दी केवल पौराणिक आख्यानों को वर्णन करने में थी. उसमें भी आज कल स्वतंत्र कल्पना तथा प्रकृति आचरित हो रही है और यह युग अपना विशेष अस्तित्व रखने लगा है।

शायद है हिन्दी-साहित्य में एक दिन वह आवे जब यह युग भी अन्तर्साहित्य के रहस्य को प्राप्त कर सके।...

ओ३म् शान्तिः। ओ३म् शान्तिः। ओ३म् शान्तिः।

कुं० गोपाललाल पुरोहित.
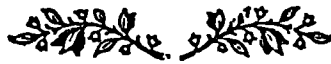
॥ श्री ॥

वैदिक सभ्यता में स्त्रियों का स्थान

By R. V. Kumbhare, M.A., B.T., T.D., (London)
Inspector of Schools, Government of Jodhpur,
Jodhpur.

१. जन्म

वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान क्या था? यह जानना परमावश्यक है, क्योंकि वर्तमान हिन्दू-सभ्यता वैदिक-सभ्यता से ही उत्पन्न हुई है। अत एव आज कल के विद्वानों को, विशेषतः हिन्दू-धर्म के अभिमानियों को, वैदिक-कालीन स्त्रियों के

विषय में जानना अत्यावश्यक है। इस छोटे से लेख में वैदिक कालीन स्त्रियों का जीवन स्थूल-रूप से देने का प्रयत्न किया है।

साधारणतः लड़कियों का होना अच्छा नहीं समझा जाता था। यदि पुत्र न होवे तो कुलकी शोभा नहीं बढ़ती थी। ऐतरेय ब्राह्मण शुनश्शेपाख्यान में पर्वत और नारद ऋषि हरिश्चन्द्र के यहां जाते हैं। वहां पर यह संवाद है।

शतं जाया बभूव। तासु पुत्रं न लेभे। पुत्रं ब्रह्माण इच्छध्वम्।

लड़कियां आपत्ति समझी जाती थीं और पुत्र कुलका प्रकाश समझा जाता था। इस संबन्ध में नीचे लिखा मंत्र देखिये—

अन्नं ह प्राणः शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्।

पुत्रों का होना कदाचित् इसलिये योग्य समझा जाता था कि इस आर्यावर्त में जब आर्य लोग आये ही आये थे उनको पुरुष-बलकी अधिक आवश्यकता हो। कुलकी वृद्धि करने के लिये भी पुत्र की आवश्यकता अधिक समझी गई हो। "हमें बहुत पुत्र मिलें, इस पुरुष को पुत्र होवें, पुत्र तो हमारी ही आत्मा है," ऐसे वाक्य ब्राह्मण और गृह्य–सूत्रों में आते हैं।

भ्राता भ्रातृस्थानो वा। पुत्रान्विन्दावहै बहून्।
पुमाँसोऽस्य पुत्रा जायन्ते य एवं वेद। आत्मा वै पुत्रनामासि।

२. बाल्यावस्था।

पुत्र या पुत्री का जन्म दसवें मास में होता था। प्रथम जन्मते ही दूध या शहद चटाया जाता था। इसके बाद माता का स्तनपान कराया जाता था। पहिले दस दिन बड़े चिन्ता के समझे जाते थे और इसी लिये शांति–सूत्रों का पाठ किया जाता था। नाम–करण बारहवें दिन किया जाता था। जैसी लड़कियां बड़ी होतीं उनके केश और नखों की तरफ और दांतों की तरफ

विशेष प्रकार से ध्यान दिया जाता था। "शावदन्ती और कुनखी" ये दोष समझे जाते थे। केश बढ़ाये जाते थे और उनको गूंथा भी करते थे, जिसकी "ओपश" यह संज्ञा है और पीछे बांधे भी जाते थे जिसकी "कपर्द" यह संज्ञा है। इसी को महाराष्ट्र में "बुचड़ा" कहते हैं। और आज कल की नई सभ्यता की स्त्रियें बहुत पसन्द करती हैं। "चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा" ऐसा वर्णन वेद में आता है। इस प्रकार की केश-रचना पुरुष भी करते थे। रुद्र का वर्णन "कपर्दी" शब्द से किया है।

" नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय ",

" इमां रुद्राय तवसे कपर्दिने " ।

लड़कियां मांग काढ़ती थीं। नीवी एवं अन्दर का वस्त्र पहिना करती थीं। उस पर 'प्रवार' नाम का वस्त्र परिधान करती थीं। कन्धे के ऊपर 'वास' जिसको महाराष्ट्र में "शेला" कह सकते हैं ओढ़ने की प्रथा थी। यह प्रथा महाराष्ट्र में वृद्ध-स्त्रियां अभी तक काम में लाती हैं। नेत्रों में लड़कियें एवं स्त्रियें अंजन डाला करती थीं और यह अंजन घी में तय्यार किया जाता था।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीरांजनेन,

सर्पिषा संविशन्तु। "चक्षुराभ्यंजनम्"

कमर में कन्दोरा पहिना करती थीं जिसमें तीन लड़ें हुआ करती थीं इसको "त्रिवृत्त" कहा करते थे। हाथ में बांधने का एक प्रकार का ताबीज हुआ करता था, जिसकी "प्रतिसरा" कहा करते थे। बाजू-बंद पहिनने की भी प्रथा थी। इसकी "खादि" यह संज्ञा थी। गले में सोने की माला, जिसको "निष्क" कहा करते थे, पहिना करती थीं। मस्तक में मणि पहिना जाया करता था जिसको "कुंब" कहते थे, जिसको आजकल "बोर" कहते हैं।

३. उद्योग

जैसे पुत्र पढ़ाये जाते थे वैसे लड़कियां भी पढ़ायी जाती थीं। वे वेद पढ़ा करती थीं। यहां तक कि उनका उपनयन संस्कार भी हुआ करता था। लड़कियों के लिये अलग अलग नाम दिये जाते थे। जिससे यह मालूम होता है कि लड़कियें कुटुंब में कौन २ से काम करती थीं। 'दुहिता' यानी लड़की यह शब्द "दुह्" धातु से होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि लड़कियां गायों का दूध निकाला करती थीं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में "पेशस्करी" शब्द आया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वे कपड़ा भी गूंथती थीं। उसी ब्राह्मण में "नड्वला" शब्द आया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वे टोकरियां भी बनाया करती थीं।

४. विवाह

लड़कियों के लिये विवाह करना अत्यावश्यक नहीं था। जो प्रपंच नहीं करना चाहती थीं किन्तु ज्ञानार्जन में अपना समय बिताना चाहती थीं, वे विवाह नहीं भी करती थीं। ऐसी स्त्रियों को "ब्रह्मवादिनी" कहा जाता था। जो स्त्रियां स्वयं पढ़ाती थीं उनकी "आचार्यिणी" यह संज्ञा थी। जो लड़कियां विवाह न करके अपने पिता के यहां रहती थीं, उनके कई नाम हैं, जैसे अमाजुर, पित्रशत, घोषा, अपाला इत्यादि। विवाह तभी होता था जब वे युवावस्था प्राप्त करलेती थीं। लड़के और लड़कियां साथ पढ़ा करती थीं, और एक दूसरे का प्रेम होने पर उनका विवाह भी होजाता था। पुरुष की स्त्री से प्रेम-याचना करने की प्रथा वेदकाल में प्रचलित थी।

सूर्यो देवी मुषसं रोमानां यर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।

लड़की का गौर वर्ण का होना अच्छा समझा जाता था।

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम्।

नष्ट हुए प्रेम को पुनः उत्पन्न करने के लिये प्रयत्न किये जाते थे। अथर्ववेद में "स्त्री-कर्माणि" नाम के काण्ड में इसका वर्णन आता है। कभी कभी छोटा भाई बड़े भाई के पहिले ही विवाह कर लेता था। जिसको "परिविविद्वान" कहा करते थे और उसकी स्त्री की "परिविविदाना" यह संज्ञा है। कभी कभी बहिन अपने बड़े भाई के पहले विवाह कर लेती थी। उनको "दिधीषू" और उनके पति को "दिधीषू-पति" कहा करते थे। विवाह करने के समय "सहधर्मं चराव" "हम दोनों साथ ही धर्म का आचरण करेंगे।" ऐसी प्रतिज्ञा करते थे। माता-पिता की सम्पत्ति से भी कन्याओं का विवाह हुआ करता था और वर-संशोधन के समय वर में क्या क्या होना चाहिये और लड़की के क्या २ लक्षण होने चाहिये, इसका वर्णण गृह्य-सूत्र में मिलता है। कभी कभी धन देकर भी स्त्री प्राप्त की जाती थी।

धनेनोपतोष्यो पयच्छेत स आसुरः।

क्योंकि "आसुर" यानी असीरिया देश की स्त्रियें सुन्दर हुआ करती थीं और उसको खरीदना पड़ता था। यदि कन्या सुन्दर हो और चाहे वह अच्छे कुलकी न हो तो उसके साथ भी विवाह करने के लिये तीव्र निषेध नहीं किया जाता था।

"स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि"।

कन्यादान के समय वधू को अलङ्कार पहिनाकर उदक छोड़ कर दान देना चाहिये और उसके पूर्ति में दक्षिणा भी देनी चाहिये, ऐसी प्रथा वेदों के समय में थी।

अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यात्।

इसी का रूपान्तर दहेज (Dowry) में हुआ और इसका

विकृत स्वरूप आज बंगाल और महाराष्ट्र में दिखाई देता है। गाय और बैल देकर भी विवाह होता था।

"गोमिथुनं दत्वोपयच्छेत् स आर्षः" ।

असभ्य लोगों में लड़की को चुरा कर या मारपीट कर भी विवाह हुआ करते थे। ऋग्वेद में "सत्येनोत्तभिता भूमिः" इससे प्रारंभ होने वाला सूत्र है। जिसको विवाह-सूक्त भी कहते हैं। जिसके मंत्रों को पढ़ने से यह जान पड़ता है कि प्राचीन आर्यों की विवाह की कल्पना बड़ी ही उदात्त थी। यहां तक की आज कल के भी सभ्य समझे जाने वाले राष्ट्रों में भी ऐसी उदात्त कल्पना अंशमात्र में भी दृष्टिगोचर नहीं होती। आज विवाह-संस्था के ऊपर बड़े हमले हो रहे हैं और अपन आज कल के हिन्दू पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण करते हैं। विवाह एक उपहास हो गया है। इसका स्वरूप पाश्चात्य देशों में कहीं कहीं इतना विकृत होगया है कि शादी कुछ दिनों के लिए भी हो सकती है और तोड़ी भी जासकती है। थोड़े ही दिनों में उनके घटस्फोट का अनुकरण अपन करने वाले हैं। प्राचीन सभ्यता का ज्ञान नष्ट होने के कारण से और विवाह-संस्था के सात्विक तथा धार्मिक उच्चतम तत्वों को भूल जाने के कारण गन्दे पानी का प्रवाह जिधर लेजाता है उधर अपन बहते चले जाते हैं।

५-गृह-कुटुम्ब में गृहिणी का स्थान।

कुटुंब में गृहिणी का स्थान बहिन से अधिक ऊंचा समझा जाता था।

एतस्मात्समानोदर्या स्वसा न्योदर्या
यै जायाया अनुजीविनी जीवति।

वह घर की सम्राज्ञी समझी जाती थी और उसकी अनुमति के सिवाय कोई भी घर का पत्ता भी नहीं हिल सकता था।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननांदरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।

भला ऐसा क्यों न हो जब कि वह अच्छे दस पुत्रों को—वीरों को—प्रसव कर कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली है।

वीरसूर्देवकामास्योना शं नो भवद्विपदे शं चतुष्पदे
इमां त्वमिं द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि।

पत्नी का स्थान पति के बराबर हुआ करता था। यहां तक कि उसके बगैर अग्निहोत्र भी नहीं हो सकता था। यजमान से यजमान-पत्नी अधिक श्रेष्ठ समझी जाती थी। स्त्रियें सभा में जा सकती थीं, आध्यात्मिक वाद–विवादों में भाग लेती थीं। एक पति की एक से अधिक स्त्रियें हो सकती थीं। किन्तु एक स्त्री के एक से अधिक एक ही समय पति नहीं हुआ करते थे।

तस्मादेकस्य बहवो जाया भवंति नैकस्यै बहवः सहपतयः।

याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियें थीं। मैत्रेयी और कात्यायिनी। कभी कभी कौटुंबिक संपत्ति के लिये झगड़े भी हुआ करते थे। कुटुंब में समय समय पर आपस में झगड़े हुआ करते थे। पति और पत्नी में भी कालुष्य उत्पन्न हो जाता था और उनको एक करने के विधि भी हुआ करते थे। ये विधि अथर्ववेद में दिये हुए हैं।

जायापत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्ति वाम्।

स्त्रियें महीने में रजस्वला हुआ करती थीं और उनको 'रजयत्री' इस संज्ञा से पुकारा जाता था। स्त्रियों को पिशाच की बाधा होने का भी उल्लेख पाया जाता था

तस्या दुहिता गन्धर्वगृहीता।

राजा के चार या अधिक रानियां हो सकती थीं। "महिषी"

तो वह कहलाती जो कि यज्ञों में मुख्य स्थान ग्रहण करती थी। 'परिवृत्ति' वह होती थी जिसको नाराजगी से त्याग दिया हो। 'पालादली' वो जो कि राजा को प्रसन्न करने के लिये अधिकार न दी हुई हो। 'वावाता' वो जिस पर राजा की विशेष प्रीति हो। यों तो नैतिक-बन्धन बड़े कड़े थे और प्राचीन स्त्रियों का पातिव्रत्य-धर्म संपूर्ण जगत् में प्रसिद्ध है। इसी का अनुकरण राजपूत स्त्रियों ने प्राणार्पण कर बतलाया और आज भी सामान्यतः हिन्दू-जाति की कुलीन स्त्रियें करती हैं। यदि गलती से गलत रास्ते पर कोई स्त्री चली जाती तो उसके साथ दया का बर्ताव किया जाता था। उसको सन्मार्ग में लाने का प्रयत्न किया जाता था। इस विधि को "वरुण-प्रकाश-विधि" कहते थे। हरेक समय में और हरेक सभ्यता में अच्छी और बुरी प्रवृत्ति के मनुष्य हुआ करते हैं, वैसे प्राचीन समय में भी थे। ऐसी स्त्रियें भी हुआ करती थीं, जिनका नैतिक आचरण शुद्ध नहीं हुआ करता था। समाज में वेश्यायें भी हुआ करती थीं, जिनको "आतित्वरी" इस संज्ञा से पुकारते थे। अनीति से गर्भाधारण भी हुआ करता था। और उसका पात भी स्त्रियें करती थीं जिसकी 'अतिष्कद्वरी' यह संज्ञा थी। कुमारी को भी बच्चा होजाता था, जिसको "रहसूह" कहते थे। बुरे प्रवृत्ति के पुरुष चाहे जिस स्त्री से-वृषली के साथ-भी गमन करते थे।

वृषलिगमनमैथुनसंगमात्।

कोई ऐसे भी पतित हुआ करते थे कि जो अपनी गुरु-पत्नी के साथ भी गमन करते थे

गुरोर्दाराभिगमनात्।

ऐसे पतितों को पावन करने का एवं उनको सन्मार्ग पर लाने का समाज प्रयत्न करता था।

६. गृह—व्यवस्था

घर में स्त्री के लिये या तो अलग हिस्सा या कमरा हुआ करता था, जिसको "पत्नीनां सदनम्" कहते थे। मकान में 'सदः' यानी खुले बरामदे हुआ करते थे। स्वयंपाक—गृह की तरफ तो विशेष प्रकार से ध्यान दिया जाता था। "शिक्य" यानी "छींके," "परिणाह्य" यानी बर्तन, "कुंभ" यानी घड़े हुआ करते थे। "दति" यानी चर्म के कुप्पे हुआ करते जिनमें तेल, घी या दूध भी रक्खा जाया करता था। मकान में "पर्य्यङ्क" झूला हुआ करता था जो कि "सदः" नाम के बरामदे में लटकाया जाता था। "प्रोष्ठ" यानी लकड़ी के पट्टे होते थे और सोने के लिये "तल्प" यानी खाटें हुआ करती थीं।

इस वर्णन से यह सुचारु रूप से ज्ञात होगा कि प्राचीन आर्यों के गृह कैसे व्यवस्थित हुआ करते थे, और उनमें सुख की सामग्रियां भी कैसी विपुल होती थीं ? गृहिणी वह अच्छी समझी जाती थी जो कुटुंब में लगने वाली आवश्यक वस्तुओं को पहिले ही से जमा कर रख लेती थी। इसीलिये उसको "पुरंध्रिः" कहा करते थे। पुरंध्रिर्योषाः।

यह पद हमेशा इसीलिये काम में आता है।

यदि पति मर जाय और कुटुंब में कोई सन्तान न होने के कारण कुटुंब की वृद्धि न हो तो केवल कुटुम्ब की वृद्धि के लिये एक ही सन्तान उत्पन्न करने के लिये स्त्री अपने देवर के साथ सहगमन कर सकती थी, इसको "नियोग" कहते हैं।

को वां शयत्रा विधवेव देवरं मर्यं योषा कृणुते स ध स्थ आ।

कभी कभी विधवायें दूसरा विवाह भी करती थीं, जिसका उल्लेख नीचे के मंत्र में है:—

उदीर्ष्व नार्याभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि

हस्तग्रामस्य दिधिषा स्तवेदं पत्युर्जनित्वमाभिसंबभूय।

'विधवा-विवाह' यह आज कल एक बड़ा वादग्रस्त प्रश्न हो बैठा है। कई पंडित ऐसे मिलेंगे जो विधवा-विवाह को निषिद्ध मानते हैं और यह भी कहते हैं कि विधवा-विवाह के लिये वेदों में कोई आधार नहीं है। दूसरा पक्ष ऐसे भी विद्वानों का है जो कहते हैं कि विधवा-विवाह में निषेध है, ऐसी कोई बात नहीं और इसके लिये आधार हैं। वे ऊपर दिये हुए मंत्र का आधार देते हैं, जिसका अर्थ इस प्रकार है—

"हे स्त्री, तूने इस मरे हुए पति के पास शयन किया है तो इस जीवित लोगों के समुदाय को देख। इस प्रेत के पास से उठ और इधर आ और पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले तेरा पाणि-ग्रहण करने वाले इस पति का भार्यात्व स्वीकार करने के लिये तय्यार हो।"

आज इस लेख में विधवा-विवाह के जटिल प्रश्न की चर्चा करने की आवश्यकता हुई। विवाह यह मन की तय्यारी पर निर्भर है। जिस पति का अपनी पत्नी पर अथवा जिस पत्नी का अपने पति पर यथार्थ सात्विक और उत्कट प्रेम होता है, उनके लिये पुनर्विवाह की आवश्यकता ही प्रतीत न होगी। जहां पर ऐसे प्रेम का अभाव है, या वैवाहिक जीवन का आस्वाद लेने की प्रबल इच्छा है, वहां उसे रोकना भी बड़ा कठिन है। आर्यावर्त की असंख्य स्त्रियाँ इस असिधारा-व्रत का पालन करती हैं और इसके प्रतिकूल उदाहरण भी समाज में दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन काल में भी विधवा-विवाह हुआ ही करता था, ऐसा नहीं, किन्तु होता ही नहीं था, ऐसा भी नहीं था। जिसमें समाज सुसंगठित होकर ओजस्वी तथा प्रगतिशील बने, ऐसा प्रयत्न प्राचीन आर्य करते थे। किस समय किस बात की आवश्यकता है, इसका

विचार कर प्राचीन आर्य हरेक विवाह करते थे। विधवाओं को समाज में सम्यक् प्रकार से रखते थे। उनका स्थान उतना पतित और दुःखमय नहीं था, जितना आज है।

युवं ह कृशं युवमश्विनाशयुं युवं विधत्तं विधवामुरुष्यथः।

इसमें विधवाओं के संरक्षण का उल्लेख है। सती होना प्राचीन समय में प्रचलित था।

॥ श्री ॥

जीवन कर्म और आमोद का समन्वय है।

[लेखकः—पं० मदनलाल शर्मा, जयपुर]

हमारा जीवन इस संसार में क्यों हुआ? व्यर्थ तो कोई भी बात नहीं होती। सबका कुछ न कुछ अर्थ है ही। फिर इसका क्या अर्थ है? क्या यहां हम साधु बनकर 'दुनियां ठगना मक्कर से, रोटी खाना शक्कर से' वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करने आये हैं। एक कहता है, 'क्षणिक जीवन को यदि सफल बनाना है तो ईश्वर-भजन करो; मानव-जीवन दुर्लभ है। मानव बुद्धि का सदुपयोग केवल ईश्वर का जाप है'। दूसरा इसके ठीक विपरीत आनन्द पूर्वक पड़े पड़े मौज़ उड़ाना ही जीवन का वास्तविक ध्येय समझता है। पर वास्तविकता क्या है, यह कौन जाने?

पंगु न होने पर भी हाथ पैरों के पट्टी बांधकर पंगु होने का बहाना करने वाले केवल गुंडे हैं। जब हृदय पर आलस्य ने डेरा आ जमाया तो निकले मांग कर खाने के लिये। कपटी वेष, केशर का त्रिपुंड और तन पर भस्म लगा लेना ही यदि

जीवन का ध्येय होता तो वह तो चुटकियों का खेल है। साधु बनना केवल एक ढोंग है। ईश्वर ही जाने उनके जीवन में क्या जीवन है?

ईश्वर-भजन और मौज़ उड़ाने का कार्य तो उस स्थान पर भी हो सकता है जो ईश्वर का निवास स्थान है और जिसका नाम-करण हमारी कल्पना ने 'स्वर्ग' रक्खा है। फिर इस संसार में हमारी आवश्यकता ही क्या है? यदि ईश्वर का मानव-सृष्टि करने का सिद्धान्त अपनी प्रशंसा सुनना है तो वह स्वर्ग में भी हमको पंक्तिबद्ध खड़ा कर के अपनी प्रशंसा करने को बाध्य कर सकता है।

हाँ! ईश्वर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उपस्थित है। गीता में भी कहा है:—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन! तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

गीता अध्याय १८, श्लोक ६१.

तो फिर 'आपन मुख तें आपन करणी' का वर्णन दोष है ही। स्वयं ईश्वर सदा अपनी प्रशंसा करता रहे, यह बात कितनी हेय है।

हमारे यह कहने का तात्पर्य ईश्वर को भूला देने का नहीं है। जब हम स्वयं उसके अंश हैं तो उसकी ओर आकर्षित ही होंगे, पर जीवन का ध्येय ईश्वर-भजन मान लेना कहां तक ठीक है। हमें तो यह बात कुछ पाखण्ड-सी प्रतीत होती है।

मौज़ उड़ाने की बात तो और भी उपहासास्पद है। मश़नद के सहारे बैठकर अपना हाथ, पैर भी न हिलाना, मूर्तिवत् मूक होकर बैठे रहना, कैसा स्वर्ग? पर वे भी कुछ न कुछ करते ही हैं। इस दृष्टि से तो पत्थर ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है जो कुछ भी नहीं करता। उसे भी हिम, वर्षा और ताप सब कुछ सहना

पड़ता है। अचेतन पदार्थों में भी कर्म-भावना रहती है। मौज़ उड़ाने की बात तो केवल वार्ता है जो निराधार है।

अच्छा तो फिर हम क्यों आये हैं? आवश्यकता विना तो कोई काम ही नहीं होता। यदि हमारी आवश्यकता ही न होती तो फिर हम जन्म क्यों लेते?

हम इस संसार में कुछ काम करने के लिये आये हैं। हम यहां कुछ कर दिखाने के लिये आये हैं। हम चाहते हैं कि कुछ काम करें। बच्चा जब छोटा रहता है तब ही कुछ न कुछ काम करने लगता है। वह कभी किसी खिलोनें को उठाकर मुँह में दबाता है या कभी अपने हाथ के अँगूठे को ही मुँह में रख लेता है। बड़ा होकर वह मिट्टी में खेलने लगता है। मिट्टी के घर बनाता है। कूप खोदता है। उनके अन्दर पानी भर देता है और हँसता हुआ अपना बचपन व्यतीत कर देता है। उस छोटे जीवन में भी वह काम करता है और हँसता है। उन कामों से अपना मन-बहलाव करता है और इस ही तरह वह धीरे धीरे बड़ा हो जाता है।

बड़ा होते ही उसे पेट की चिन्ता आ सताती है। बुद्धि कुछ प्रगति की ओर अग्रसर होती है और वह ईश्वर-भजन को छोड़ कर, मौज़ को तिलाञ्जलि देकर, कर्म की ओर अनायास ही झुक-जाता है। प्रत्येक मनुष्य यदि मांगकर खाने पर उतारू हो जाय तो संसार में हाहाकार हो जाय। इस ही तरह कोई दूकान खोलता है और कोई नोकरी करता है।

वृद्ध चाहे होजाय पर कर्म की लगन मिटती नहीं। गुँडों के अतिरिक्त सब अपना कार्य करते हैं। इस ही तरह बचपन, युवा-वस्था और वृद्धावस्था सब में कर्म प्रधान है। महात्मा तुलसी-दासजी ने भी कहा है कि—"कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।"

मनुष्य जीवन का पहला मुख्य ध्येय कर्म है। अन्य सब बातें इसके अन्तर्गत ही है।

स्फूर्ति प्रत्येक बच्चे से लेकर बड़े तक में है। सब ऊँचे उठना चाहते हैं, नीचे गिरना नहीं। सब बचपन में बड़े होने के मनके लड्डू बनाया करते हैं। धीरे धीरे यही सब बातें प्रयत्न के रूप में प्रस्फुटित होती हैं और जीवन को सफल बनाने के लिये हम साधन एकत्रित करते हैं। इन साधनों को एकत्रित करने का कर्म ही जीवन का मुख्य ध्येय है और इस के द्वारा ही हमें जीवन-तत्व की प्राप्ति होती है।

अतः कर्म करना जीवन का पहला मुख्य ध्येय है। पर कर्म के साथ आमोद सदा रहता है और रहना भी चाहिये। जीवन इस संसार में कर्म के लिये हुआ है, पर केवल कर्म-प्रधान जीवन भी नीरस है। यदि मनुष्य सदा काम ही काम किया करे तो न मालूम क्या हो? उसे कुछ शान्ति और मन-बहलाव अवश्य चाहिये। यदि ऐसा न हो तो जिस तरह घोड़े को अधिक पीटने पर वह अड़ने लग जाता है, उसी तरह मनुष्य कर्म से थक जाता है और आलसी हो जाता है।

प्रकृति ने यह सब सोच ही लिया होगा। इस ही लिये तो उसने कर्म के साथ साथ आमोद या मन-बहलाव को भी स्थान दिया है। बस, यही एक वस्तु है जिससे हमें कर्म की थकान मालूम नहीं होती। आप यदि कभी मित्रों के साथ दो चार कोस पैदल गये हों तो आप आमोदयुक्त कर्म की सफलता का रहस्य जल्दी समझ सकते हैं। गप्पों में रास्ते चलने का काम इतना शीघ्र हो जाता है कि हमें पूरी तरह यह भी तो मालूम नहीं होता कि हम कहां आ गये? बस, रास्ता शीघ्र ही तै कर लिया जाता है।

हम जो काम करते हैं उसमें कुछ मन-बहलाव अवश्य होना

चाहिये। यदि आप कोई पुस्तक पढ़ें और उस में कुछ आमोद की सामग्रियां एकत्रित न हों तो आप उसे वहां ही रद्दी की टोकरी में रख देंगे और फिर शायद उस पुस्तक को कभी देखेंगे भी नहीं। यह ही हाल सब अन्य बातों में भी है। भोजन का कर्म बातों के मन-बहलाव में शीघ्र ही समाप्त हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन का प्रत्येक कर्म आमोद बिना पूरा नहीं पटता। बाजार में कई बनियें अपनी दुकानों पर बैठे पंखी हिलाया करते हैं और किसी खरीदने वाले की राह देखा करते हैं। पर वे लोग जो इधर उधर फिरने के साथ साथ कुछ चनों की इधर उधर की बहार सुनाते रहते हैं, अपनी वस्तु के जल्दी ही बिक जाने के कारण, दिन के कार्य को थोड़ी ही देर में पूरा करके घर आ जाते हैं। यह है आमोद और कर्म का समन्वय करने से जीवन की सफलता का एक दृष्टान्त। ऐसे दृष्टान्त एक दो नहीं, सैकड़ों हैं। कहां तक गिनाते जांय?

परन्तु यह जीवन आमोद ही आमोदमय न होना चाहिये। फिर कर्म करने को मन नहीं रहता है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। किसी भी वस्तु की अधिकता अच्छी नहीं है। सम-भाग ही सब से श्रेष्ठ है। अतः इस जीवन को कर्म और आमोद का समन्वय कहा जाय तो ठीक ही है। इस में कोई अत्युक्ति नहीं।

आस्तिकता; मत अथवा मानसिक अनुभव?

लेखक—प्रोफेसर अमृतलाल के. माथुर, एम्. ए.,
जसवन्त कॉलेज, जोधपुर।

मनुष्य की बुद्धि का कहां अन्त होता है? उसके साहस की सीमा कहां होती है? कहां उसका सामर्थ्य थक कर रह जाता

है ? किस परिधि के उपरान्त मनुष्य के आत्म-विश्वास को धक्का लग कर उसे यह प्रतीत होता है कि वह विवश है ? किन परिस्थितियों के चक्कर में डांवाडोल होकर वह उद्धार को असंभव मानता है ? वह कौनसा क्षण है जब वह कल्याण की प्रतीक्षा में बैठा हुआ, सफलता की ओर टकटकी लगाये, अपनी ही आंखों से अन्यथा होने की संभावना निश्चित रूप से देखता है—और हाथ पैर नहीं हिला सकता ? उसी विवशता के क्षण में ईश्वर-भाव की उत्पत्ति होती है; वही असामर्थ्य ईश्वर की महत्ता का मान-दंड है; उसी असंभव-संभाव्य में ईश्वरीय विभूति का उसे दर्शन होता है। यथार्थतः, मनुष्य का अन्त ही ईश्वर का आदि है।

संसार मनुष्य की परीक्षा-भूमि है। इस खिलवाड़ में कितने सचेत रहते हैं ? कितने गहरे पानी में डूब जाते हैं ? कितनी प्रवंचना है इस खिलवाड़ में ! मनुष्य को कर्ता का रूप मिल गया। उसे अपनी सामर्थ्य और शक्ति का ज्ञान होगया। उसमें अहं की उत्पत्ति हो गई। इस अहं की जड़ में केवल यही आभास, यही आत्म-विश्वास है—मैं कर्ता हूँ, मैं शक्तिमान् हूँ। मनुष्य स्वयं अपने को ईश्वरत्व प्रदान कर देता है, क्योंकि अहं-शक्ति ईश्वर की ही परिभाषा है। मनुष्य को अपने इस नक़ली ईश्वरत्व की झोंक में सच्चे ईश्वरत्व का कभी आभास होता ही नहीं। केवल तब, जब समय की कसौटी पर, दुःख की ज़्वाला में, निराशा से पिघल कर उसकी आन्तरिक अक्षमता छटपटा कर अपना यथार्थ, संकुचित, सीमा-शोभन रूप दिखा देती है, तब ही वह अपने से बड़ी किसी शक्ति का अनुभव अथवा अनुमान करता है। उसके सामने असंभव नामकी एक निराश भावना है; क़ेवल हृदय में लुकी छिपी, क्षीण-सी, अस्पष्ट-सी;

एक और भावना है–"यदि यह हो जाय तो जानूँ !···नहीं जी यह भी कभी हो सकता है ?···क्या ज़ाने···फिर भी···!" यह ईश्वरत्व का अनुमान है। ऐसा प्रत्यक्ष संभव होना ईश्वरत्व का अनुभव है। उस अनुभव का परिमाण ईश्वरत्व की महत्ता है, उस असंभव–संभूत का आल्हाद ईश्वर का अनुग्रह है।

मनुष्यत्व की हार में ईश्वर–विश्वास का जन्म है। परन्तु मनुष्य हार से भागता है, वह हार को दूर रखने की चेष्टा करता है। इस पराभव–अस्वीकार के यथार्थ में दो रूप हैं—कर्मण्यता और अहंभाव। कर्मण्यता की आड़ में अहंभाव अपना ईश्वरभाव-विरोधी आवरण फैलाये रहता है। यदि अहंभाव और चेतनता (क्योंकि चेतनता ही कर्म है) की संसृष्टि का नाम संसार है, तो कहा जा सकता है कि संसार वह सौम्यरूप वाली संस्था है जो अत्यन्त सुचारुरूप से ईश्वर–भाव का विरोध करती है। यदि स्वयं संसार की सृष्टि मनुष्यों की परीक्षा के लिये ही है, तो इस लीला में कितने विमुग्ध और किंकर्तव्य–विमूढ़ हो गये हैं ? केवल एक विश्वास है, केवल एक आशा है—जिसने परीक्षा में डाला है, वही उद्धार करेगा—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। अथवा–
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच।

मनुष्य अपने क्षुद्र अहं की लाश से लिपटा हुआ उस परा-शक्तिमान् अहं की प्रतीक्षा में बैठा है:–

कफ़न बांधे हुए सर पे तेरे पे यार बैठे हैं।
बहुत आगे जमे पीछे जो हैं तैयार बैठे हैं॥
न छेड़ ऐ नगहते वादे बहारी राह लग अपनी !
तुझे अठखेलियां सूझीं, यहां बेज़ार बैठे हैं !!

यही प्रतीक्षा मनुष्य के ईश्वर का मानस–स्वरूप है।

ईश्वरत्व का यह मानसिक अनुभव ही यथार्थ आस्तिकता है। अन्यथा, आस्तिकता का एक निर्जीव कङ्काल भी संसार में सर्व-व्याप्त है। संसार ने ईश्वर का विरोध बड़े सौम्यरूप में किया है—यथार्थ ईश्वर का केवल मौखिक आह्वाहन, और नकली ईश्वर (अहं) का अनुकरण। इन बे-मेल के धागों से जीवन की पवित्रता कैसे बुनी जाय ? किसी ने सफ़ाई से कहा, किसी ने पांडित्य से काम लिया, परन्तु उजड्ड जुलाहा कबीर तो बिल्कुल मुँहफट निकला, जो जीभ पर आया वही कह गया और चलता बना—

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांहि।
मनुआ तो चहुँ दिशि फिरे, यह तो सुमिरन नांहि॥

आस्तिकता की यह मानस-अनुभव वाली परिभाषा केवल उतनी व्याप्त नहीं है जितनी कि मौखिक स्मरण वाली परिभाषा, परन्तु इससे उसकी यथार्थता में अन्तर नहीं पड़ता। इस प्रकार मानसिक अनुभव को ही ईश्वरीय सत्ता का प्रमाण मानने में कुछ ऐसे प्रश्न उठ सकते हैं:—

१. सबको ऐसे मानसिक अनुभव नहीं होते। जिन्हें नहीं होते, क्या उन्हें आस्तिक न कहा जाय ?

२. भिन्न भिन्न व्यक्तियों के मानस-अनुभव भिन्न भिन्न गहनता के होते हैं, क्या इससे उनकी आस्तिकता की मात्रा में अन्तर पड़ता है ?

३. क्या यह अनिवार्य है कि ऐसे मानस अनुभव का प्रभाव स्थायी होता है ?

अपने को आस्तिक नहीं कहना अपने ही आत्मसम्भाव को धक्का पहुँचाना है। इसी लिये हम अपने को आस्तिक कहते हैं। इसीलिये हमने आस्तिकता की परिभाषा उतनी ढ़ीली और अ-विशेष कर दी है कि प्रत्येक मनुष्य का कार्यक्रम उसमें समा

जाय। "हम आस्तिक हैं"—इसी को आस्तिकता का प्रमाण मान कर, प्रत्येक मनुष्य 'मम' कह कर छुटकारा पा जाता है। परन्तु हमारे हृदय को एक जगन्नियन्ता, पराशक्ति की सत्ता में, 'अस्ति' में, विश्वास नहीं। यह विश्वास तभी हो सकता है, जिस क्षण हमारे हृदय पर यह छाप बैठ जाय कि हमारी मानव-सामर्थ्य और मेधा के अनुसार 'असंभव' को भी संभव कर सकने वाली एक शक्ति है, जिस क्षण हमें विश्वास हो जाय कि हमारे बल और बुद्धि की सीमा ही बल और बुद्धि को यथार्थ सीमा नहीं है; जिस क्षण हमें विश्वास हो जाय कि हम नगण्य हैं—एक विशाल शक्ति के सामने; हम क्षुद्र हैं—एक अपरिमित क्षमता के समक्ष; हम वास्तव में कर्ता नहीं हैं, क्योंकि कर्ता की सामर्थ्य, स्वच्छन्दता और फल-प्राप्ति-शक्ति हम में नहीं है—उसी क्षण हम तत्वतः आस्तिक हैं। जिसे यह विश्वास नहीं, वह आस्तिक नहीं, चाहे वह भीरु हो, उपासक हो अथवा आत्म-प्रवंचक न हो।

जैसे यह अनिवार्य नहीं कि सब आस्तिक हों ही, वैसे ही यह भी अनिवार्य नहीं कि आस्तिक भी प्रत्येक क्षण 'आस्तिक' हों। ईश्वर के अस्तित्व से मानसिक साक्षात्कार भी परिस्थितिवश अथवा भावना की दृढ़ता से किसी किसी क्षण ही होता है, उसी क्षण मनुष्य वास्तव में आस्तिक होता है। आस्तिकता को आस्तिक-वाद का नाम देकर धर्म और सम्प्रदाय की श्रेणी में घसीटना व्यर्थ है, क्योंकि आस्तिकता एक मानस अनुभव है, किसी धर्म-प्रणाली की भांति कोई संस्कार-समूह, अथवा दार्शनिक-सिद्धान्त, अथवा धार्मिक-विधान नहीं।

आस्तिकता जनसाधारण की पितापुत्रागत सांप्रदायिक सम्पत्ति नहीं है। इस विषय में जनसाधारण की पोल कबीर ने खूब ही खोली है—

दुख में सब सुमिरन करें; सुख में करे न कोय।
जो दुख में सुमिरन करे, (तो) दुख काहे को होय?

वास्तव में, अधिकतर, दुःख ही मनुष्य को ईश्वर का अनुभव कराता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं की सुख में सुमिरण करने वाले को दुःख या विपत्ति होती ही नहीं। किसी भी वन्दनीय साधु संन्यासी ने संसार से तंग आकर महात्मापन नहीं पाया। मीरां को क्या दुःख था? सूरदास को एक वेश्या की झिड़की ही तो मिली थी। तुलसी क्या केवल अपनी पत्नी के ताने से तिलमिला कर उस अपमान के प्रतिशोध में राम-मय हो गये थे? तात्पर्य यह है कि आस्तिक को हमारा सांसारिक दुःख, दुःख प्रतीत नहीं होता—चाहे उसे विष दो, चाहे अग्नि में डालो, चाहे फांसी चढ़ाओ। प्रह्लाद की आस्तिकता और मीरां की भावना संसार के द्वन्द्वों से परे थी। उनकी दृष्टि में परमेश्वर की इस लीलामय रचना में वैषम्य को स्थान ही नहीं है—फिर क्या विष, क्या अमृत? आस्तिकता, वास्तव में, केवल इसी मनोवृत्ति का नाम है। क्या यह मनोवृत्ति इतनी सस्ती और सर्व-व्यापी है कि प्रत्येक मनुष्य निःशङ्क होकर आस्तिक होने का दावा कर सके?

'अस्ति' के मानस अनुभव की गहनता भी सब में एक-सी नहीं होती। यह तो कोई तर्क नहीं कि पुराने भक्त और आस्तिक ही अद्वितीय हैं, फिर भी, प्रह्लाद, मीरां और नरसी से अपनी तुलना करते हुए यही कहना पड़ता है कि सब के अनुभव एक ही मात्रा के नहीं होते। न यही माना जा सकता है कि दुःखमोचन के अवसर पर अपने अपने दुःख की गरिमा के अनुसार ही अनुभव की गहनता होती है। दुःख एक ('relative') शब्द है। जो एक के लिये दुःख है, वह दूसरे के लिये बाधा-

मात्र ही हो सकता है। कबीर के 'दुख में सब सुमिरन करे' का तात्पर्य अपने आपके दुःखों की असह्य मात्रा से ही है। दुःख सब के भिन्न भिन्न हैं, परन्तु सब में यह बात समान है कि मनुष्य के लिये वह असह्य की मात्रा को पहुँच गया है। उस मनुष्यातीत मात्रा से परे ईश्वर की सत्ता स्पष्ट व्यक्त होती है।

यथार्थ आस्तिकता का एक ही क्षण भी तीर्थ–फल से अधिक लाभदायक है क्योंकि उस एक ही क्षण में मनुष्यके मानस-तीर्थ की शुद्धि हो जाती है।

ऐसा अनुभव स्थायी रहता है कि नहीं?

यह मनुष्य की परिस्थिति, उसके जीवन और संस्कारों पर निर्भर है। अवश्य ही, ऐसे अनुभव की सत्ता की कोई सीमा नहीं, क्योंकि कट्टर से कट्टर नास्तिक, अर्थात् सत्य बोल कर अपने को नास्तिक कहने वाले भी, एक ही क्षण में सदैव के लिये आस्तिक बन सकते हैं। परन्तु यह अनिवार्य नहीं। जिनका अहंभाव एक बार चूर चूर होकर फिर उत्तेजित हो जाता है, वे इस अनुभव की सत्ता स्वीकार करके फिर यही कह सकते हैं—"कैसी रही! संसार है, सब प्रकार की बातें कहां होती हैं!" उनके सांसारिक, व्यावहारिक संस्कार इतने प्रबल हैं, अथवा परिस्थिति उन्हें ऐसा उत्तेजित कर देती है, कि वे एक पार–सांसारिक सत्ता को संसार ही की विभूति मान बैठते हैं। एक क्षण का शुष्क वैराग्य मनुष्य को कालान्तर में अधिक सांसारिक और लिप्त बना देता है। संसार और आस्तिकता विषय प्रतिद्वन्द्वी हैं, क्योंकि संसार मनुष्य में उस भाव की सृष्टि करता है जो आस्तिकता को पनपने नहीं देता। संसार उस भाव का पोषक है जिसका पूर्ण प्रतियोगी आस्तिक–भाव है। संसार की चतुराई इसी में है कि वह आस्तिकता को एक हृदयंगत भाव न मान कर केवल एक निर्जीव मत अथवा

प्रथा के रूप में अपना सहयोगी बना लेता है। परन्तु जिस अनुभव से किसी प्रथा का जन्म होता है, उस अनुभव मेंऔर तदनन्तर उसकी जो लीक पीटी जाती है, उस में, उतना ही विभेद होता है जितना उस अनुभव में और उसके विपरीत में। जिस अनुभव का उद्गम हृदय से हुआ, वह सूख कर निर्जीव, शुष्क संस्कार बन जाता है; और संसार में संस्कार का प्राबल्य इतना है कि उसके सामने उसी संस्कार के आदि का फिर से अनुभव होना प्रायः असम्भव हो जाता है। तभी तो, जब प्रह्लाद ने अपने संस्कार-दैत्य पिता के सामने—'अस्ति' की कह अमर-घोषणा की—

"तो में, मो में, खड्ग खंभ में!"

तो भगवान् नृसिंह ने 'खंभ चीर प्रह्लाद उबार्‌यो'। अन्यथा, क्यों वें हिरण्यकशिपु की संस्कारजड़ित देह को ही चीर कर प्रकट न हो जाते? उस संस्कार-कलुष 'तो में' में आस्तिकता के लिये स्थान ही नहीं था!

भक्त कवि ओपाजी आढा

(ले०-शुभकर्ण बदरीदानजी चारण, एम. ए., एल. बी., जोधपुर)

डिङ्गल प्रायः प्राचीन काल ही से राजस्थान की लोकभाषा है। डिङ्गल भाषा का साहित्य समुन्नत और समुज्ज्वल है। वह ईश्वर-भक्ति, स्वातंत्र्य-प्रेम, स्वावलम्बन, वीरत्व, औदार्य, देश-प्रेम, आत्मत्याग, सच्चारित्र्य-शीलता आदि मानव-हृदय के महान् भावों से ओतप्रोत है। उस में वीर-रस ही नहीं, भक्ति, शृङ्गार, करुणा, वात्सल्य आदि सभी रसों की उत्कृष्ट व्यंजना हुई है।

श्रद्धेय विशेषज्ञ स्व० ठाकुर किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य के शब्दों में " मुगल राज्य के पतन तक या यों कहिये कि विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक वि० सं० १९१४ की क्रान्ति से पहिले पहिले राजपूताना और मध्य-भारत के राज्यों में डिङ्गल का बड़ा दौरदौरा था । उस समय की डिङ्गल की उन्नति की तुलना में ब्रजभाषा का नामोल्लेख करना डिङ्गल का अपमान करने के समान है । विक्रम की १३ वीं या १४ वीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इस भाषा में अच्छे अच्छे कवि होगए हैं । इस भाषा के साहित्य में इन छः सौ वर्षों की घटनाओं का उल्लेख है । "

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी की बड़ी बहिन (विभाषा) होते हुए भी डिङ्गल भाषा और साहित्य का स्वतंत्र उत्थान हुआ है । डिङ्गल का अपना शब्दकोष, अपनी छन्द-व्यवस्था और काव्यशैली है । लोक-मङ्गल के लिए चिरस्थापित महान् आदर्शों के प्रति जनरुचि उत्पन्न करने और उन्हें सार्वजनिक जीवन में कार्यरूपता दिलाने में डिङ्गल कवियों का बहुत हाथ रहा है । हिन्दी के आलोचकों और इतिहासकारों ने चाहे किसी भी कारण से डिङ्गल के कवियों का समुचित रूप से उल्लेख तक करने की सहृदयता प्रदर्शित नहीं की हो, परन्तु यह निर्विवाद है कि हिन्दी ही नहीं, भारतीय भाषासाहित्यों के इतिहास में डिङ्गल (जिसका आधुनिक नाम राजस्थानी है) का अपना स्वतंत्र महत्व है ।

चारण जाति में काव्यप्रतिभा परंपरागत और प्राकृतिक है । डिंगल भाषा और उसका साहित्य जितना चारण कवियों के हाथों में पल्लवित और प्रफुल्लित हुआ, डिंगल साहित्याकर को जितना चारण कवियों ने अपने ग्रन्थ रत्नों से सजाया, उतना

शायद अन्य किसी ने नहीं।

सिरोही (राजपूताना) राज्यान्तर्गत पेशुवा गांव निवासी आढा शाखा के चारण स्व० ठाकुर श्री बखतसिंहजी के सुपुत्र स्व० श्री ओपाजी डिंगल के सुप्रसिद्ध कवि और हरिभक्त होगए हैं। वे जोधपुर (मारवाड़) के स्व० महाराजा श्री मानसिंहजी, जिनका शासन-काल संवत् १८६० से संवत् १९०० तक था, के समकालीन थे और सरलमना, शान्तिप्रिय और निरभिमानी व्यक्ति थे। उन्होंने डिंगल साहित्य-शास्त्र के "गीत" छंद में अपनी अधिकांश काव्य रचना की है। जैसा कि इस लेख में आगे उद्धृत "गीतों" से मालूम होगा, उनकी कविता सरल, स्वाभाविक, अनुभवगम्य और मर्म-स्पर्शी है और गंभीर भावों से ओतप्रोत है। उन्होंने साधारण लोक-जीवन से विविध सरल उपमान लेकर भक्ति और ज्ञान जैसे गूढ़ विषयों को प्रभावोत्पादक ढंग से बड़ा अच्छा समझाया है। उनकी कविता शान्तरस-प्रधान और उपदेशात्मक होते हुए भी बहुत ही लोक-प्रिय है। उनके व्यक्तित्व में दार्शनिक, भक्त और कवि का समुचित मेल हुआ है। उनके रचे हुए सैकड़ों गीत कहे जाते हैं परन्तु उनमें से बहुत कम उपलब्ध हैं।

यह सर्वमान्य-सिद्धान्त है कि इस विराट विश्व का संचालन एक सर्वोपरि-शक्ति (सत्ता) करती है, जो परमेश्वर या परमात्मा के नाम से चिर प्रसिद्ध है। उक्त अलौकिक शक्ति द्वारा संस्थापित सत्य, प्रेम, अहिंसा, स्वातंत्र्य, कर्तव्य-परायणता, सौजन्य, आत्मत्याग आदि धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों की भित्ति पर ही यह ब्रह्माण्ड टिका हुआ है। धर्म या भक्ति (जो धर्म की रसात्मक अनुभूति है) का मुख्य उद्देश्य मानव-समाज में उक्त सिद्धान्तों के प्रति पूज्य बुद्धि एवम् अभि-

रुचि उत्पन्न करना और उन्हें सार्वजनिक-जीवन में कार्यान्वित करवा कर विश्व-कल्याण-संपादन या लोकहित-साधन करना है। यही हमारे धार्मिक या भक्ति काव्य की सार्थकता है। भारतीय भक्ति-पद्धति में प्रभुनामस्मरण-महिमा, अनासक्ति, ईशगुणानुवाद और आस्तिकता (ईश्वर में अटल विश्वास) आदि की भी यही चरितार्थता है। संस्कृत और हिन्दी के संत और भक्त कवियों की तरह ओपाजी की कविता के प्रधान विषय ईश्वर के प्रति अनन्य-भक्ति या प्रेम और अटल विश्वास, मानव-जीवन की क्षण भंगुरता, ईश्वरीय विश्वविधान की सत्यता, कालकी सबलता, सांसारिक वैभव की अनित्यता, दुर्लभ मानव-जीवन व्यर्थ व्यतीत होजाने के कारण पश्चात्ताप और कर्तव्य-ज्ञान कराने के लिए चेतावनी आदि हैं. परन्तु उनका कहने का ढंग सर्वथा मौलिक है। और वास्तव में काव्यक्षेत्र में यही मौलिकता है।

अपने आपको संबोधन करते हुए. ओपाजी माया के आडंबर में आत्मविस्मृत, कर्तव्य-पथ से विचलित, पशु की तरह खाने पीने और सोने में व्यस्त मानव को ईश्वरभक्ति की ओर कैसे विलक्षण ढंग से आकृष्ट करते हैं:—

॥ गीत ॥

दिलड़ा समझ रे सगलो जगदापे. पछे घणो पछतासी।
पुरष जलम तूँ कद पामेला, गुण कद हर रा गासी॥ १ ॥
मात-पिता बन्धव दौलत मद, सुत त्रिय लोय सँधांणो।
माया रा आडम्बर मांहें, बन्दा केम बन्धांणो॥ २ ॥
समझे क्यूं न अजूं समझाऊं, भूल मती अब भाया।
दौड़े ऊमर चटका देती, छित जिम बादल छाया॥३॥
सुवै खाय करे नंह सुकृत, खोवे दीह खलीता।
प्रीत करे सिंवरे सीतापत, जिके जमारो जीता॥४॥

यह अमूल्य मानवजीवन न मालूम कब फिर मिलेगा। हे मूर्ख मनुष्य! यदि अब भी तू परमेश्वर का गुणानुवाद नहीं करेगा, तो कब करेगा, तू समझ, नहीं तो तुझे बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा। माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, धन-दौलत आदि के मिथ्या आडंबर में तू क्यों कर भूल गया। देखता नहीं तेरी अल्प आयु पृथ्वी पर बादल की क्षणिक छाया की तरह जल्दी जल्दी व्यतीत हो रही है। तू केवल खाने-पीने और सोने में व्यर्थ समय खोता है और कुछ भी सुकृत (लोकहित) नहीं करता। याद रख। जीवन उसी का सफल है, जो सबके साथ प्रेम-भाव रखता है, परमात्मा का निरंतर स्मरण करता है और सदा लोकहित-साधन में संलग्न रहता है।

उक्त गीत में कितना हृदयस्पर्शी आत्मनिवेदन है। एक २ शब्द कितना खरा और मार्मिक है। मानव-जीवन की कसौटी, जो कवि ने स्थिर की है वह कितनी गंभीर और यथार्थ है। उक्त गीत में कवि ने यह कितना महान् सिद्धान्त निर्धारित किया है कि ईश्वर को रिझाने और उसकी भक्ति प्राप्त करने के लिए उसके नाम की मालाएँ फेरने में ही मानव-कर्तव्य की इतिश्री नहीं होजाती है. प्रत्युत मानव-जीवन की सफलता परमेश्वर के निरंतर गुणानुवाद से प्रोत्साहन और प्रेरणा पाकर सबके साथ प्रेम-भाव रखने और सत्कृत्यों द्वारा लोकहित करने में है। वास्तव में मानव-जीवन का यही उद्देश्य है।

॥ गीत ॥

होय सुनाथ जलम मत हारव, नाथ सिंवर हर लोक नरेश।
नाम लियां जोयां नह मिलसी, बीस क्रोड़ देतां लघुवेस ॥ १ ॥
सूने गाम न फाड़े साड़ा, गाफल हिरदै राख गिनांन।
'ओपा' ऐ दिन कदे न आसी, भजसी भले कदे भगवान ॥२॥

परसराम भज चाख इम्रतफल, जलम सफल होय जासी ।
पाछो भले अमोलक पंछी, इण तरवर कद आसी ॥ ३ ॥

भगवद्भक्ति की तुलना अमृतफल से करते हुए ओपाजी अनुरोध करते हैं कि हे मूर्ख मनुष्य ! तू ज्ञान और विवेक धारण कर । यह दुर्लभ मानवजीवन फिर नहीं मिलेगा । यह प्राणरूपी अमूल्य पक्षी, न मालूम इस शरीररूपी वृक्ष पर फिर कब आवेगा । इसलिए युवावस्था से ही तू भगवद्भजन में संलग्न रह कर और अपना जन्म सफल कर ।

मानवजीवन की क्षणभंगुरता-सूचक उक्त गीत में जो शब्द प्रयुक्त किए गये हैं, उन से मानवजीवन का सदुपयोग करने के लिए कवि के हृदय में कितनी स्वाभाविक चिन्ता, आतुरता और कर्तव्यपथ से विमूढ होने पर कितना नैराश्य प्रदर्शित होता है ।

भगवद्भक्ति और सत्कर्तव्य-पालन द्वारा लोकहित-साधन का सापेक्षिक महत्व शायद बहुत कम भक्त कवियों ने दिखलाया है । परन्तु ओपाजी के प्रत्येक गीत में हमें ईश्वर-भक्ति और प्रेम से प्रेरित होकर सत्कृत्यों द्वारा लोकहित-साधन की गहन महिमा व शिक्षा मिलती है ।

" विसन सिंवरजो मीठी बांणी, बावरजो धन देह विरांणी ।
ओपा ऊमर यूँ ओछाणी, परवत हूँत विछूटा पाणी ॥ "

' ओपाजी ' ने ऊपर लिखी हुई पंक्तियों में लोभी मनुष्य के लिए कैसा व्यावहारिक, मार्मिक और यथार्थ उपदेश दिया है ।

लोभ-वश धन-सञ्चय करना व्यर्थ है । जिन्दगी का क्या भरोसा है । हमारी आयु पहाड़ से निकलने वाले द्रुतगामी झरने के पानी की तरह सरपट जा रही है । धन नाशवान् है । ऐसी अनिवार्य परिस्थिति में हमें अपने शरीर और धन को दूसरों का समझते हुए उनसे ममता नहीं रखनी चाहिए और लोक-कल्याण

के लिए उनका भरसक सदुपयोग करना चाहिए।

" खावो खुलावो भलपण खाटो, ज्यां घर सम्पत हुए जिती।
मुख में मेलण काज न मिलियो, रावण रे इक हेम रती॥
' ओपो ' कहे दियो ऊवरसी, गाडी जिकां गमांणी।
वीस कोड़ वीसलदे वाली, पड़गी ऊँडे पांणी॥ "

लोभियों की संचित-निधि को उनके मरने पर उनके साथ जाते किसी ने नहीं देखा। इसलिए जिस के पास जितना धन हो, उसका सदुपयोग कर भलाई और सत्कीर्ति प्राप्त करनी चाहिए। जो धन को गाड़ते हैं, वे उसे खोते हैं और जो अपने धन का सात्विक दान करते हैं वे वास्तविक धन-सञ्चय करते हैं। साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या, मरणासन्न रावण को भी मुँह में रखने के लिए एक रत्तीभर भी सोना नहीं मिला।

कैसा अकाट्य तर्क है। उक्त पद्य की तीसरी पंक्ति में विरोधाभास की कैसी सुन्दर छटा है। 'ओपाजी' की काव्यशैली कितनी उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण, सरल और मर्मस्पर्शी है।

अब ओपाजी के मुँह से ऐसे लोभी मनुष्य के लिए फटकार सुनिये, जिसका कठोर हृदय उक्त उपदेश से तनिक भी प्रभावित नहीं होता, जो निन्नानवे के फेर में माया-मोह-वश इतना भूला हुआ है कि अपनी साधारण आवश्यकताओं पर भी पैसा खर्च नहीं करता और पास में पैसा होते हुए भी फाके निकालता है और "चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय" के सिद्धान्त को मानव-जीवन का चर्म उद्देश्य समझता है:—

॥ गीत ॥

दिये ब्याज दूणा लिये न मांगे दोकड़ो,
रोकड़ो देखियों घणो राजी।
आगले घरे तेड़ावियो आंधला,
पाछला घरां री मकर पाजी॥ १॥

लोभियो पराया खेत सदका लिये,
थवावे औखड़ो भरे ठाला ।
आंगणे बैठा दरबार रा आदमी,
किसी घरबार री आस काला ॥ २ ॥
घटीड़े जावे ने गोऊँ बेचे परा,
भाटके रुपिया करे भेळा ।
शमरा हाथ रो दूत लाया रुको,
बावळा जीवणो किती वेळा ॥ ३ ॥
न पाए राब न जीमे मीठा कदे,
न पैरे लूगड़ा कदे नीका ।
डाकिया जम जिसा प्रसण हेला दिये,
कसी पल आंवसी नींद कीका ॥ ४ ॥
कळह रो मूळ कड़वो घणो कुटंब सूं,
नारायण नांम मन मांय नांणे ।
उठा रा दूत तो खोटी व्हे आंगणे,
जीतवो अठारी आस जांणे ॥ ५ ॥
आप डायो रहे गिणे काला अवर,
खावळो कमाई करे खोटी ।
चारिया चलत ज्यूं पान गिणिया चरे,
मरण री न जांणे खोड़ मोटी ॥ ६ ॥
आप संसार रञ्जियो घणो आतमा,
अलख ना भेटियो कदे आम्बो ।
थोबियो दीह घड़ी एक नां थोबियो,
लोभियो पियांणो कियो लाम्बो ॥ ७ ॥
'ओप' कव कहे मत भूल जो अनन्ता,
बड़ा बड़ा जोध जोधार बीता ।

गावियो ना कृष्ण जके तो रीता गया,
जाँणियो परमगुरु जके जीता ॥ ८ ॥

लोभी मनुष्य का जीवन भी निराला होता है। वह रुपए की क्रयविक्रय में उपादेयता को महत्व नहीं देता। उसे तो रुपए के दर्शन-मात्र से ही सन्तोप हो जाता है और उसकी झनझनाहट मात्र से उसका रञ्जन हो जाता है। उसकी धुन रुपए एकत्र करने मात्र में लगी रहती है और ज्यों ज्यों रुपयों का ढेर बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसे आनन्द आता है। वह रुपए के श्वेत-वर्ण, चमकीले आकार प्रकार और सुरीली ध्वनि पर मन ही मन मुग्ध होता रहता है।

बलिहारी है उस लालची मनुष्य की समझ और संसार के ज्ञान और अनुभव की, जिस पर वह गर्व करता है और अपनी तुलना में दूसरों को मूर्ख समझता है। उसने पैसा खर्च करना तो सीखा ही नहीं। वह गेहूँ तक बेच कर रुपिया कर लेता है। और जौ पर दिन निकालता है। मीठा भोजन तो दूर रहा, वह "राब" (पकाया हुआ तरल आटा) भी नहीं पीता। न कभी वह अच्छे कपड़े पहनता है। मितव्ययता की हद होगई है।

परन्तु उसे यह पता नहीं है कि वह पागल की तरह किस दिन के लिए अत्यधिक व्याज लेकर धन संचय करता है, और उसमें से एक पैसा भी खर्च नहीं करता। वह मूर्ख ईश्वर को भुला देता है और यह अनुभव नहीं करता कि मौत के नकारे उसके सिर पर घुर रहे हैं। मनुष्य जीवन क्षण-भंगुर है। यमके दूत (आधि व्याधि आदि) यमराज का परवाना लिए चारों तरफ फिरते हैं, न मालूम उसे यहां से कब कूच करना पड़े।

मनुष्य की हालत ऐसी ही चिन्तनीय है, जैसी बलिदान के अर्थ लाए हुए बकरे की होती है, जिसको मारने के पहिले थोड़े

दिन तक हृष्टपुष्ट बनाने के लिए अच्छा घास और धान खिलाया जाता है। अंत में एकदिन वह लोभी भी अपना धन–माया सब कुछ छोड़ कर इस संसार से प्रयाण करदेता है। जब वास्तविक स्थिति यह है तो अत्यधिक लालच, कुस्वारथ, परधन-हरण पिया-सा, तृष्णा और ईर्षा निंदनीय हैं। इस संसार में परम-लोक कल्याण-कारी परमेश्वर का प्रेम–पूर्वक गुणानुवाद और यथाशक्ति लोकहित–साधन ही सार वस्तु है।

अनन्यभक्त परमेश्वर को ही अपना एक–मात्र जीवनाधार मानते हैं। वे अपना "दुखड़ा" सिवाय परमात्मा के और किसी के आगे नहीं रोते। वे केवल जगदीश्वर से ही आशा करते हैं, जो इस जगत् का पालन करने वाला है। 'ओपाजी' के निम्न लिखित "गीत" में यही भाव प्रदर्शित किया गया है। यह गीत उनकी अनन्य प्रभु–भक्ति का परिचायक है।

॥ गीत ॥

त्रिभुवन चो सांम जगत चो तारण,
आधारण ब्रह्मन्ड इकवीस।
जुण जण कना कहा तू जाचे,
जाच एक दाता जगदीश ॥ १ ॥
भूल म अवर भरोसे भ्रम भ्रम,
क्रम क्रम धणी सुधारण काज।
मूरख मनष अगे की मांगे,
मांग एक दाता महाराज ॥ २ ॥
जुग सुख लहै सुदामा ज्यूँही,
जनम जनम चा मेट जंजाल।
पुरष पुरष प्रतक सुपारषै,
पारथ एक जगत प्रतिपाल ॥ ३ ॥

भगत-वछल़ कह कवि रद भण,
चाव भाव कर कर गुण चाल ।
दीन वचन दूजो की दाखे,
दाख भाख मुख दीन-दयाल ॥ ४ ॥

परमुखापेक्षी अकर्मण्य मनुष्यों के लिए कर्मवीर बनने का कैसा रामबाण उपदेश है । कैसा महान् आदर्श है । वह मनुष्य मूर्ख है, जो मनुष्य से याचना करता है । मनुष्य मनुष्य को क्या दे सकता है । सबका लोक-पालक परमात्मा ही मनुष्य का दुख-दारिद्रय दूर कर सकता है । हमें जो कुछ मांगना हो वह जगदाधार, भक्त-वत्सल, सुदामा-सुहृद् भगवान से मांगना चाहिए । वही हमारे उद्देश्य की सिद्धि करने वाला है ।

उस मनुष्य के स्वातंत्र्य-प्रेम, स्वाभिमान, निर्द्वन्द्वता, निर्भयता और आत्मबल की कहां तक सराहना की जावे, जो अपनी आशाओं और अभिलाषाओं का संरक्षक और पूरक जगत्-प्रतिपालक परमेश्वर को ही मानता है । विशेषतः एक पराधीन राष्ट्र के सदस्य के लिए ऐसा आदेश मंगलाशा और नवजीवन का संचार करने वाला है ।

ओपाजी की भक्ति दास-भाव की थी । निम्न लिखित "गीतों" में ओपाजी आत्म-निवेदन के रूप में भक्त के विनम्र दैन्य-पूर्ण-दास-भाव का कैसा हृदय-स्पर्शी निरूपण करते हैं:-

॥ गीत ॥

म्हूँ बीदग किसा बाग री मूली,
लागा दांवण चवदै लोक ।
हूँ हर थारे चाकर हलको,
थूं हर म्हारे मोटो थोक ॥
ओपो कहे न मेल्हूं अलगो,
सहजे पारस पायो सोय ।

करतारे हूँ पग कीड़ी रो,
करता समां न म्हारे कोय ॥

॥ गीत ॥

पाँतरियाँ वाट नपीरों पीहर,
आलंबन नौधारों आप ।
तूँ तो मात न मायों तीकम,
बापो तूँ ही न बापों बाप ॥ १ ॥

अलख तूँ ही आलसियों उद्दम.
पाळग तूँ ही न पंखों पांख ।
तूँ पग हाथ पांगलों टूंटों,
आंधों तूं परमेसर आंख ॥ २ ॥

परमेसर तूँ त्रसियां पांणी,
सन्त भूखियो साकर साल ।
गूँगों वाच तुँ ही गिरधारी,
बड़ो तूँ ही है अकल विशाल ॥ ३ ॥

ब्रजवासी थाकों वीसरियों,
जल ऊँडारी तूँ ही जिहाज ।
नीघरियों घर तूँ नारायण,
मांदों रो ओषद महाराज ॥ ४ ॥

साचो धणी विपत में सम्पत,
तेह्यो आवे तीजी ताल ।
विषमी घाट तणा वोलाऊँ.
सांई दुकालों तणो सुगाल ॥ ५ ॥

तोड़ण तुँ ही वेड़ियों ताला,
पालों री तुँ है सुखपाल ।

वौह नामी उघाड़ों अपतर,
ढालियो लोह नढालों ढाल ॥ ६ ॥
'ओपो आढो' कहे ईशवर,
नत राखो चित थारो नांम ।
तसती मांय देण सुख तूँ ही,
*रान तणी वसती तूं राम ॥ ७ ॥

दैन्य और विनय की पराकाष्ठा होगई है। उक्त एक एक शब्द से ओपाजी का निरभिमान, प्रेम-सर्वस्व के स्वामी परमात्मा के प्रति अनन्य-भक्ति और उसकी तुलना में उनकी नगण्यता प्रदर्शित होती है। १४ लोक के स्वामी परमात्मा के सामने बेचारा मनुष्य भला किस बाग की मूली है। इसलिए ओपाजी

*इस लेख में जो गीत उद्धृत किये गये हैं, वे अखिल भारतीय चारण सम्मेलन के त्रैमासिक मुखपत्र 'चारण' तथा झांकर गांव (सिरोही राज्य) निवासी भवानीदानजी आढा के संग्रह और राजस्थान के सुप्रसिद्ध डिंगल कवि स्व० श्री शंकरदानजी आढा, गांव पांचेटिया निवासी, के पितामह मेघराजजी द्वारा किए हुए गीतों के वृहद् संग्रह 'गुण-जहाज' में से लिए गये हैं, जिसमें डिंगल के ६१९ गीत इकट्ठे किए हुए हैं। मैं चारण-पत्र के संपादक ठा० ईश्वरदानजी आसिया, गांव मेंगटिया, ठा० भवानीदानजी आढा झांकर और ठा० स्व० शंकरदानजी आढा के सुपुत्र सत्यदेवजी आढा एम. ए., ऐल एल. बी., के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ, जिनकी कृपा से मुझे ओपाजी के गीत मिल सके। ओपाजी की जीवनी के संबंध में मैंने जो सूचना इस लेख में दी है, उसमें से अधिकांश मुझे मेरे मित्र ठा० सीतारामजी लालस, नेरवा निवासी, से मिली जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। लेखक।

अपनी तुलना परमात्माके चरण–कमलों की रज या उनके नीचे चलने वाली चींटी से करते हैं ।

इन " गीतों " में परमात्मा के सर्वजन–हितकारी लोकपालक चरित्र का विशद चित्रण किया गया है। परमात्मा के लोक-मङ्गलकारी चरित्र की जितनी महिमा की जाय, उतनी थोड़ी है। वह अनाथ, निर्धन और निराधार प्राणियों का एक-मात्र आधार है। माता–पिता का देहावसान होने, मार्ग भूल जाने, गहरे जल में डूब जाने, अकाल पड़ने आदि अनेक विकट विपत्तियों में वही हमारी रक्षा करने वाला है। वही अन्धों की आंख, गूङ्गों की वाक्-शक्ति,युद्धभूमि में योद्धाओं का कवच, निरुद्यमियों का उद्यम, पंगुओं और टूंटों का पैर और हाथ है। वही प्यासों को पानी और भूखों को अन्न देता है और दुःखग्रस्त प्राणियों को सुख देनेवाला है। " ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या " भारतीय वेदान्त–दर्शन का विश्व–विख्यात सिद्धांत है। इस सिद्धांत की व्यावहारिक उपयोगिता यह है कि मानव–जीवन की क्षणभंगुरता और अनित्यता को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को निरंतर लोकहित में संलग्न रहना चाहिए और इस प्रकार अपना जीवन सफल करना चाहिए। ओपाजी निम्न लिखित गीतों में इस सिद्धांत का बहुत ही सरल और हृदय–स्पर्शी निरूपण करते हैं—

॥ गीत ॥

कर जोंणों जिको, भलाई कीजो,
लाभ जनम रो लीजो जोय ।
पुरुष दोय दिन तणा पोंमणा,
किण सूँ मती बिगाड़ो कोय ॥ १ ॥
जाणों छै जाणों छै जाणों,
समझो भीतर बार समांन ।

बे दिन काज जहर मत बोवो,
मरदो दूर करो अभिमांन ॥ २ ॥
यूंझ करतां जावै ऊमर,
पर मन कलप रार न पौर।
ओपै वात करां अवरां री,
ओपोरी कोइ करसी और ॥ ३ ॥
गरवाहूओं हरी गुण गावो,
छीलर जेम मदाखो छेह ।
आजक काल वहणां ओपा,
दीहड़ा गया सताळी देह ॥ ४ ॥

मनुष्य संसार में दो दिन का पाहुना है। उसे यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि उसको एक दिन यहां से निश्चय कूच कर जाना है। इसलिए थोड़े दिन के जीने के लिए उसे अभिमान वश किसी से बात नहीं बिगाड़नी चाहिए। उसकी आयु का एक एक दिन सरपट व्यतीत हो रहा है। ऐसी शोचनीय परिस्थिति में यह स्पष्ट है कि किसी के साथ कुस्वार्थ, दंभ, और कुटिलता-वश कटु वचन कह कर या बुरा व्यवहार करके जहर न बोया जाय। संसारी के लिए यही श्रेयस्कर है कि वह लोक-मंगलकारी भगवान् का स्मरण करे, होसके जितनी दूसरों की भलाई करे और इस प्रकार अपने अमूल्य जीवन से लाभ उठावे।

॥ गीत ॥

मिलियो अत वणज संसार मंडोंणो,
आया जगत खाटवा आथ ।
लाख अनेक हेक द्रब लेगा,
हेक गया मसळंता हाथ १ ॥

मांडे हाट दाव छल मोंडे,
जग आया वौपार जिता ।
केता गया सुधारे कारज,
कर मसलंता गया किता ॥ २ ॥
वोह छल छेद भेद मोंडे वोह,
कर ओंचो वापार करे ।
बंधिया जिके करम धन वांधै,
नीभी खोई अवर नरे ॥ ३ ॥
विणज हुओ वीछड़ती वेला,
वलियो कर आपरो वराड़ ।
ववणा करे केइक वाबड़िया,
गया कितायक मूल गमाड़ ॥ ४ ॥

इस गीत में सांसारिक वैभव को मिथ्या बतलाते हुए संसार की तुलना हाट से की गई है, जहां अनेक मनुष्य वाणिज्य करने के लिए आते हैं। ज्ञानी मनुष्य लोकहित–साधन के उद्देश्य से किए गये सत्कर्म रूपी अर्थ संचित करते हैं। जो मूर्ख मनुष्य होते हैं, वे विभिन्न अमूल्य मानवी गुणों से सम्पन्न जीवन रूपी मूल-धन खोकर हाथ मलते हुए चले जाते हैं और कुकर्मों का बोझ अपने साथ ले जाते हैं। इस वाणिज्य की रीति यह है कि जो मनुष्य अर्थ–प्राप्ति के लिए जितना अधिक दाव–पेच और छल–छद्म का प्रयोग करता है, उतना ही अपना मूल–धन खोता है। विरले ही ऐसे मनुष्य हैं, जो इस संसार में अपना काम सुधार कर जाते हैं। इस वाणिज्य में सत्य, प्रेम और सेवा–भाव से सफलता मिलती है।

॥ गीत ॥

माटी रो ठांम जोत जिण मोंहें,
घणत्री फेरे घणे घरै ।

घुड़लो कितयिक वार घूमसी,
फोड़न हारा लार फरै ॥ १ ॥
अत जतनों माथै ऊपाड़े,
रम्भा दोली थकी रहै।
आस कसी जेरी आंणीजे,
वैरी छोरा पास वहै ॥ २ ॥
गोरी मलै गीत शुभ गावै,
जतन रहावै जुओ जुआ ।
फेरू हमें कता घर फरसी,
हेरू लोच पलोच हुआ ॥ ३ ॥
रतन तणी पर जतन राखतों,
खड़ग तणों घा खमियो ।
पोहर तणों हूतो पोंमणडों,
गावतड़ों इज गमियो ॥ ४ ॥
मटियो तेल जोत मुरझोणी,
पड़ियों कुंभ पीयारो ।
अदखण मोंय हुओं अणचीतो,
उजवाले अंधिरायारो ॥ ५ ॥
औ घट घुड़लौ जोंण ओपला,
गोवंद क्यूं नह गावै ।
खल दल जसो उगाड़े खोंडे,
आतुर कीधों आवै ॥ ६ ॥
मोटा प्रसण डोंगले मोटी,
काल घणा नर कूटै ।
काचो कुंभ मनख री काया,
करतों गरतों फूटै ॥ ७ ॥

इस गीत में सांगोपांग रूपक द्वारा मानव शरीर की तुलना मिट्टी के घड़े (घुड़ले*) से करते हुए उसकी नश्वरता और

---

*यह रूपक मारवाड़ी लोक-जीवन से लिया गया है और इसका संबंध जोधपुर के सुप्रसिद्ध उत्सव से है, जिसे 'घुडलों का मेला' कहते हैं। यह उत्सव 'गनगोर' के त्योंहार से पहिले कुंभाल्या कुआ (जोधपुर) पर मनाया जाता है। सुंदर युवतियां वस्त्राभूषण धारण कर सिर पर एक छोटा मिट्टी का जालीदार घड़ा (घुडला), जिसमें एक प्रदीप्त दीपक रहता है, लिए हुए समूह में मंगल गान करती उत्सव मनाती हुई धीरे २ निकटवर्ती जलाशय तक बड़े समारोह से जाती हैं और उसी समारोह से लौटती हैं। अंत में गनगोर के उत्सव के बाद उस 'घुडले' को जल में प्रविष्ट कर दिया जाता है। यह त्योंहार एक ऐतिहासिक घटना का स्मारक कहा जाता है। वह घटना इस प्रकार बतलाई जाती है।

खेड़ का राव मल्लीनाथ का पुत्र जगमाल एक प्रसिद्ध वीर पुरुष था। वह गुजरात के बादशाह की पुत्री गींदोली का हरण कर लाया था। उसके पीछे गींदोली का भाई घुड़लेखां फौज लेकर चढ़ आया। प्रति-द्वंदियों में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें घुडलेखां बहुत ही वीरता के साथ लड़ा। उसके भालों की इतनी चोटें लगीं कि उसके शरीर में अनेक छिद्र होगये और अंत में वह बहादुरी के साथ काम आया। जब गींदोली को यह खबर मिली तो वह अत्यंत दुखी हुई। जगमाल ने उसे सान्त्वना दी और कहा कि जो वह चाहे वही किया जाय। गींदोली ने कहा कि मेरे भाई का ऐसा स्मारक बनाया जाय कि उसका नाम इस संसार में अमर होजाय। तदनुसार जगमाल ने उक्त त्योंहार मनाना शुरु किया, जिसका वर्णन ऊपर किया जाचुका है। यह त्योंहार चैत्र कृष्णा सप्तमी को अभी तक मनाया जाता है। मारवाड़ में गींदोली का

क्षण-भंगुरता बतलाई है।

इस गीत में जीवात्मारूपी ज्योति से आलोकित मानव-शरीर की तुलना दीपक से प्रदीप्त जालीदार "घुड़ले" से की गई है। मानव-शरीर मिट्टी के कच्चे घड़े के समान है, जो चलते फिरते सहज ही में नष्ट होजाता है, चाहे कितने भी यत्न किये जायें। जिस प्रकार घुड़लों के मेलों में युवतियों द्वारा बहुत यत्न करने पर भी नट-खट बालकों द्वारा घुडले को फोड़ दिये जाने का डर रहता है, उसी प्रकार सबल काल, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, दम्भ, मत्सर आदि शत्रुओं से घेरे हुए मानव-शरीर के नष्ट होने का हर समय भय बना रहता है।

॥ गीत ॥

जालंधर दसकंध जरासंध जेहा,
केथी गया न दीसे कोय।
चंवरी मोटा भेंगुल चढ़िया,
लाडा गरब न कीजै लोय॥ १॥

बल दुध मार वयण बांणसुर,
आयै दिन नह कीध अवार।
बडा बडा गा तोरण बांधे,
नवल बना अहँकार निवार॥ २॥

कव ओपा लाडी ले कीरत,
भुपत वार भजाड़ै।

एक गीत घुड़लों के त्यौंहार के समय अभी तक गाया जाता है. जिस की टेर इस प्रकार है, "गींदोली जगमाल मालै, गींदोलां किम दीजै ओ राज"। उपर्युक्त जालीदार घुड़ला घुदलेखां के छिद्रों से परिपूर्ण शरीर का द्योतक माना जाता है। लेखक।

अणमां डहडै आला आला,
वलिया ढोल वजाडे ॥ ३ ॥

इस गीत में दूसरे प्रकार के सांगोपाङ्ग रूपक द्वारा संसार की अनित्यता और नश्वरता बतलाई गई है। यह संसार मानो एक विशाल विवाह-मण्डप है, जहां सत्कीर्ति-रूपी दुलहिन के साथ विवाह करने के लिए अनेक मनुष्य आते हैं। जलंधर, अभिमानी रावण, जरासन्ध, बली आदि बड़े बड़े लोग इसी उद्देश्य से यहां आकर न मालूम कहां चले गये। उनका पता भी नहीं है। इसलिए मनुष्य को गर्व नहीं करना चाहिए और सुयश रूपी दुलहिन को प्राप्त करना चाहिए।

इस गीत में कवि ने यह कितना महान् और व्यवहारोपयोगी सिद्धान्त रक्खा है कि सत्कीर्ति ही जीवन है, जीवन का चरम उद्देश्य है। बलिहारी है ऐसे लोकहितैषी और निरभिमानी भक्त कवियों की, जिन्हों ने भगवद्भक्ति और ईश्वर-प्रेम से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर अपने काव्य-द्वारा ऐसे महान् और लोक-मङ्गल के लिए परम-उपयोगी आदर्शों और नैतिक सिद्धान्तों का निरूपण किया। भक्ति-काव्य की उपयोगिता का इससे अधिक पुष्ट प्रमाण और क्या दिया जाय ?

ओपाजी के काव्य के सिद्धान्त-पक्ष पर विचार करने से ज्ञात होगा कि उन्होंने अपने काव्य में नियतिवाद (भाग्यवाद) और गीता में प्रतिपादित कर्मयोग का सुंदर सामंजस्य किया है। इस ब्रह्माण्ड में जितने विभिन्न व्यापार होते हैं वे सब ईश्वरीय नियमों और विधि-विधान के माफिक होते हैं। यह किसी मनुष्य की सामर्थ्य नहीं है कि वह ईश्वरीय-विधान को बदलदे। मनुष्य की अल्प बुद्धि के लिए तो इस विशाल ब्रह्माण्ड के अनेक व्यापारों में अन्तर्निहित ईश्वरीय-नियमों का पता लगाना भी कठिन

है। इस हद तक मनुष्य परतंत्र होते हुए भी वह परोपकार, लोक-सेवा, भलाई आदि सत्य कार्य करने में स्वतंत्र है क्योंकि उनसे लोक-कल्याण होता है और लोक-परिचालन के लिए प्रतिपादित सत्य, प्रेम, दया, संतोष, कर्म, वीरत्व आदि ईश्वरीय सिद्धान्तों और नैतिक आदर्शों की पुष्टि होती है।

निम्न लिखित गीतों में ऐसे अकर्मण्य, कुस्वार्थी, आसक्त और अभिमानी मनुष्यों की हँसी उड़ाई गई है, जो सांसारिक वैभव और भोग-विलास की सामग्री की प्राप्ति के लिए तरसते हैं। और बड़ी बड़ी असंभव आशाएँ और अभिलाषाएँ रखते हैं परन्तु ईश्वर उनकी एक भी आशा की पूर्ति नहीं करता। वे चाहते कुछ हैं और होता कुछ विपरीत ही है।

॥ गीत ॥

मन जांणे चढ़ूँ हाथियों माथे,
पुर रगडंतो जनम पुवै।
नर री चीती बात हुए नह,
हर री चीती बात हुए ॥ १ ॥

मन जांणे पै पीऊँ मिसरी,
चाच सुवरणी मिले न छांट।
वळिया सो पाछा कुण वाळे,
उण घर री लेखण रा आंट ॥ २ ॥

थापै मन बैठां धोळाहर,
तापे सूना ढूँढ तठै।
मोटा आपर कवण मेटवे,
कुटी लिखी सो महल कठै ॥ ३ ॥

चित में जांणे हुकम चलाऊँ,
हुकम तणे वस नार न होय।

साचा लेष धरा उण सांई,
काचा करण सके नह कोय ॥ ४ ॥
मन जांणे पहरूं महमूदी,
फाटा धावल पहर फिरै ।
कासू हुए मनष रो कीधो,
करे जको करतार करै ॥ ५ ॥
दिलमें जांणे पाय दबाऊं,
अवरां रा पग दाबै आप ।
कलपै कसूं कसूं नर कांपै,
प्रांणी भजन तणो परताप ॥ ६ ॥
उर जांणे पकवान अरोगूं,
धापर मिलै न लूको धान ।
आतम री गत कांय ओपला,
भोला जो लिखियो भगवान ॥ ७ ॥
भारत जांणे मूल न भागूं,
भागे अवस पडंता भार ।
समहर हुए कसी वद सूरो,
कायर जो कीधो करतार ॥ ८ ॥

मनुष्य चाहे कितनी भी लंबी चौड़ी कल्पना करे तो भी वह कुछ नहीं कर सकता । परमेश्वरने जो कुछ पहिले से ही नियत कर दिया है वही होता है । उसमें रद्दो बदल करने की किसी की शक्ति नहीं है । जी चाहता है कि हाथियों की सवारी करें परन्तु आजीवन पैदल चलकर पैर घिसने पड़ते हैं । कभी यह मनमें आती है कि दूध और मिसरी पीवें लेकिन अच्छे मट्ठे की एक बूंद भी नसीब नहीं होती । मन चाहता है कि विशाल भवनों में आनंद से निवास करें परन्तु पृथ्वी पर आकाश रूपी

छत के नीचे नंगे बदन सूर्य की गरमी में बाहर ही रहना पड़ता है। निवास-स्थान के लिए एक कुटिया तक का प्रबन्ध नहीं हो पाता। दूसरों पर हुक्म चलाने के लिए जी बहुत लालायित रहता है किन्तु ऐसी नौबत आजाती है कि अपनी स्त्री भी हुक्म नहीं मानती। मन में बहुत आती है कि महीन वस्त्र पहिनें परन्तु फटे कपड़े पहिने ही फिरना पड़ता है। हम तो यह चाहते हैं कि हमारी कोई 'पग-चंपी' करे लेकिन हमें दूसरों की 'पग-चंपी' करनी पड़ती है। मिठाई देख कर मुँह में पानी भर आता है और जी चाहता है कि अच्छे स्वादिष्ट व्यंजन खाने को मिलें परन्तु पर्याप्त रूखा सूखा अन्न भी नहीं मिलता। ईश्वरीय लेखनी से जो अटल लेख लिखे जा चुके हैं, उन्हें कोई भी नहीं मिटा सकता। मनुष्य का किया कुछ भी नहीं होता, जो कुछ करता वह ईश्वर ही करता है।

ऊपर लिखे हुए गीतों से मालूम होगा कि ओपाजी ने अपने काव्य में अलंकारों का सुन्दर और स्वाभाविक प्रयोग किया है, जिनसे उनके काव्य में व्यंजित भावों का उत्कर्ष होता है। और अलंकारों को काव्य में प्रयुक्त करने का यही उद्देश्य है। ओपाजी ने अपने गीतों में अधिकतर रूपक, उपमा, उत्पेक्षा और अनुप्रास आदि अलंकारों का सुंदर समावेश किया है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों की दृष्टि से ओपाजी का काव्य उत्कृष्ट है। यदि शान्तरस-प्रधान भक्तिरस से सराबोर उपर्युक्त गीतों में से किसी की भी तुलना हम कबीर, सूर और तुलसी की शान्त तथा भक्तिरस की कविता से करेंगे, तो ओपाजी की कविता खरी उतरेगी। हम आशा करते हैं कि हिन्दी के इतिहासकार और आलोचक

ओपाजी की हिन्दी के सफल भक्त कवियों में गणना कर उनको भक्ति-काव्य के इतिहास में समुचित स्थान प्रदान करेंगे।

राजस्थान।

लेखक-राव बहादुर डाक्टर ओङ्कारसिंह,
प्रेसीडेण्ट, म्यूनीसिपल बोर्ड, जोधपुर।

अहा ! राजस्थान ! तेरा नाम मात्र लेने से ही वीरों के रक्त में वीर-रस का सञ्चार होता है और तेरे अगणित गुणों का गान करना असम्भवसा प्रतीत होता है। तेरे यहां अनेक प्रकार की लाभदायक वनस्पतियां और वनौषधियां अपने आप उत्पन्न होती हैं, तेरे पर्वतों में अनेक प्रकार की धातु और खनिज पदार्थ पैदा होते हैं, तेरे देश के स्थल रूपी शरीर पर अरवली पर्वत-श्रेणी रूपी जनेऊ जैसी शोभा देती है, तेरे देश के पूर्व प्रदेश से प्रकट होकर पश्चिम में प्रवाह करने वाली, सूर्य की रश्मियों के समान, लूनी नदी नाग पहाड़ से प्रवाहित होकर कच्छ के रन में फैल जाती है, तेरे यहां कि दीर्घ-काय, सुडौल और दुधाली गौएँ अपने दूध से दूध की नदियां बहातीहैं, तेरे यहां के पुष्ट, वलिष्ट, द्रढिष्ट और जविष्ट अश्व (घोड़े) सुविख्यात हैं, तेरे ही यहां दीर्घ-काय ऊँट रेतीली जमीन की दूरी को काटने में करोत का काम करते हैं, ऐसे ही ऊँटों पर सवार होकर राजा नल के राज़-कुमार ढोला नरवर (ग्वालियर) से प्रस्थान कर अपनी विवा-हिता प्रिय-पत्नी मारू को लेने के लिये पूङ्गल देश में ढाई दिन्द में ही पहुँचे थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि वह पहले दिन तो चन्देरी (बून्दी) में, दूसरे दिन पुष्कर और तीसरे दिन मध्याह्न के

VICE-PRESIDENT
COMMEMORATION COMMITTEE,

Rao Bahadur Dr. Onkar Singhji Sahib, L. M. S.
Ex-President, Municipal Board,
Government of Jodhpur, Jodhpur.

समय पूङ्गल पहुँच गये थे । तेरे यहां के व्यवसायी, उत्साही, दीर्घ-काय, परिश्रमी वीर पुरुषों ने अपनी कीर्ति से, चन्द्रमा की चांदनी के समान, अपने नाम को उज्वल व धवल बना दिया है।

तेरे उत्तर में राठोड़ों का राज्य बीकानेर और भाटी यादवों का राज्य जैसलमेर विद्यमान हैं, तेरी दक्षिण भुजा की ओर कछवाहों के राज्य जयपुर और अलवर तथा वीर जाटों के राज्य भरतपुर और धौलपुर बसे हुए हैं, तेरी वाम भुजा की ओर रणवङ्का राठौड़ों का राज्य जोधपुर और किशनगढ़ शोभा देते हैं, तेरा हृदय-रूप अङ्गरेजी गवर्नमेन्ट का अजमेर-मेरवाड़ा प्रान्त सजीव दिखाई देता है, तेरे मध्यभाग में देवड़ों (चाहमानों) का राज्य सिरोही, प्रसिद्ध वीर सीसोदिया क्षत्रियों के राज्य मेवाड़ और शाहपुरा. मुसलमानों का राज्य टोंक, हाड़ा वीरों के राज्य बून्दी और कोटा, झाला क्षत्रियों का राज्य झालावाड़ और यादवों का राज्य करौली स्थित हैं और तेरे दक्षिण में देश की रक्षा करने वाले सीसोदियों के राज्य डूङ्गरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा कुशलगढ़, मुस्लिम राज्य पालनपुर और परमार क्षत्रियों का राज्य दांता विद्यमान हैं । ऐसा तू राजस्थान ! वीर राजपूतों की वीर जन्म-भूमि है ।

तेरे ही देश में मेरुदण्ड रूप अरवली पर्वत की श्रेणी, तुझे प्राकृतिक दो विभागों में विभक्त करती हुई, अर्बुद गिरि पर के गौरी-शिखर पर सब से उन्नत होकर, खड़े हुए सन्तरी के समान, तेरा (राजस्थान का) रक्षण व निरीक्षण करती है। इसी पर्वत-श्रेणी पर अति प्राचीन वह अग्नि कुण्ड आज भी विद्यमान है जिस से अग्निवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई थी । वहां ही खड़े जैनियों के कला-पूर्ण दिलवाड़े के मन्दिर तेरी शोभा बढ़ा रहे हैं । उसी पर्वत-श्रेणी से निकल कर पूर्व की ओर बहने वाली

बनास नदी तो वस्त्र (कपास) और पश्चिम की ओर प्रवाहित होने वाली लूनी नदी तेरे निवासियों को अन्न (गेहूं) प्रदान करती हैं।

तेरे यहां के मुख्य खाद्य पदार्थ गेहूं, जवार, मक्की वो बाजरा हैं। यह वही बाजरा है जिसे खाकर तेरे (राजस्थान के) वीरों ने हुमायू का पीछा करते हुए शेरशार सूर के दांत खट्टे कर दिये थे जिस से उस के मुंह से ये शब्द अनायास निकल पड़े कि "मैं ने मुट्ठी भर बाजरे के लिये हिन्दुस्तान की सल्तनत खो दी होती।" इस बाजरे की कहानी इतनी प्राचीन है कि इस का वर्णन उपनिषदों तक में पाया जाता है कि पुराने समय में बाजश्रवा नामक ऋषि ने अकाल के कारण अपने यहां संगृहीत बाज नाम का (बाजरा) सब अन्न गरीबों व अकाल-पीड़ितों को अमूल्य बांट दिया जिस से उस का नाम प्रख्यात होगया।

तेरे ही प्रदेश के हृदय में सब तीर्थों के गुरु-राज पुष्कर-राज विराजमान हैं जहां प्रति वर्ष कार्तिक सुदि ११ से १५ पूर्णि-मा तक हजारों मुमुक्षु यात्री स्नान कर कृतकृत्य होते हैं और इसी तीर्थराज के पीछे ही तेरा प्रदेश पुष्करारण्य कहा जाता है।

इसी प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी ओसियां में परमार क्षत्रियों की कुलदेवी सचियाय माता का विशाल मन्दिर विराजमान है, जिस ओसियां नगरी से ओसवाल नामक वैश्यों का निकास हुआ। इस ओसवाल जाति के पुरुष अब सब राजस्थान में फैल गये हैं और इनही लोगों में से भामाशाह ने महाराणा प्रताप को संकट के समय में अर्थ-सहायता दी थी।

इसी प्रदेश में पयहारी कृष्णदास (जयपुर), अग्रदास, नारा-यणदास, पृथ्वीराज (बीकानेर), नागरीदास (किसनगढ़), वृन्दावन दास (श्रीहित), परमानन्ददास, चन्द्रसखी आदि भक्त हुए हैं,

जिन की शिरोमणि-रूपा मीरां बाई प्रातःस्मरणीया हुई है जिस के भक्ति-रस से सराबोर दो पद नीचे उदाहरण रूप से उद्धृत किये जाते हैंः—

पद १.

म्हारे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुगट म्हारो पति सोई॥
छोड़ दिवी कुल की कान कांई करेला कोई।
सन्तां कनैं बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
आंसूं नीर सींच सींच प्रेम बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई आणँद फल होई॥
भगति देख राजी हुई जगत देख रोई।
दासी मीरां लाल गिरधर तारो अब मोई॥

पद २.

म्हनैं चाकर राखोजी, गिरधारी लला, म्हनैं चाकर राखोजी। टेर।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसण पासूं,
वृन्दावन री कुञ्जगली में, गोविंद लीला गासूं। प्रभुजी, म्हनैं।१।
चाकरी में चाकर रहसूं. सुमरण पाऊँ खरची,
भाव-भक्ति जागीरी पाऊँ, तीनूं बातां सरसी जी।प्रभु० म्हनैं।२।
ऊँचा ऊँचा महल चुनाऊँ, बिच में राखूं बारी,
सांवरिया रा दरसण पाऊँ, पहर कसूमल साड़ी। प्रभुजी म्हनैं।३।
मीरां रा प्रभु गहर गंभीरा, हिरदै धरजो धीरा,
आधी रात प्रभु दरसण दीया, जमनाजी रे तीरा। प्रभुजी म्हनैं।४।
मोर मुगट पीताम्बर सोवै. गलै बैजन्ती माला,
वृन्दावन में धेन चरावै, मोहन मुरली वाला। प्रभुजी म्हनैं। ५।
जोगी आया जोग करंता, तप सारूं संन्यासी,
हरी भजण नैं साधू आया, वृन्दावन रा बासी। प्रभुजी म्हनैं। ६।

जैसे मीरां बाई के पद मारवाड़ी भाषा में भक्ति का अनवरत स्रोत प्रवाह करते हैं वैसे 'नारायण' भक्त ने भी व्रजभाषा में निर्गुण-सगुण भगवान् के भावों का समन्वय निम्न पद में ढंग से किया है:—

पद

देखि चरित मोहि अचरज आवे । टेर ।

विन कर चरन श्रवन नासा दृग, नेति नेति जाको श्रुति गावे ।
ताको महर पकर अंगुरी तैं, आंगन में चलबो सिखरावे ।देख।
ब्रह्म अनादि अलक्ष अगोचर, ज्योति अजन्म अनंत कहावे ।
सो शशि-वदन सदन शोभा को, नंदरानि निज गोद खिलावै ।देख।
जाके डर डोलत नभ धरणी, काल कराल सदा भय पावै ।
सो व्रजराज आज जननी की, भौंह चढ़ी को निरख डरावे ।देख।
जाके सुमिरन तैं जीवन को, भव-बंधन छिन में छुटि जावे ।
सो ही आज बंध्यो ऊखरतैं, निरखन को सगरो व्रज धावै ।देख।
पूरणकाम क्षीर-सागर पती, मांगि मांगि दधि माखन खावै ।
भक्ताधीन सदा 'नारायण', प्रेम की महिमा प्रकट दिखावै ।देख।

इसी प्रदेश में महाराणा सांगा, राठोड़ अमरसिंह, स्वामिभक्त दुर्गादास, हड़बू, पाबू, गोगा, रामदेव आदि अनेक वीर योद्धा हुए हैं जिनके नाम इतिहास में अमिट व अमर हैं।

नव प्रकार के भक्तों में से प्रथम प्रकार श्रवण-भक्त राज़ा परीक्षित् की माता उत्तरा का जन्म इसी प्रदेश के अन्तर्गत विराट नगर में हुआ था, ज़हां पाण्डवों ने एक वर्ष तक अज्ञातवास किया। इसी प्रदेश में पद्मिनी जैसी अनेक वीराङ्गनाओं ने अपनी आत्मबलि (जौहर) द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा कर अननुकरणीय कार्य किया। इसी प्रदेश के अन्तर्गत श्रीमाल (वर्तमान भीनमाल) नगर में माघ जैसे प्रसिद्ध संस्कृत के अद्वि-

तीय कवि हुए जिनके बनाये हुए शिशुपाल-वध नामक महा-काव्य के पढ़ने से बालकों के हृदय में अनेक प्रकार की रस-युक्त कविता के भावों का सञ्चार होता है।

इसी प्रदेश के प्रण-वीरों में जैसे रणथंभोर के प्रसिद्ध राजा हम्मीर का नाम अग्रगण्य है वैसे भ्रातृ-प्रेम में परमार धरणीवराह का नाम उदाहरणीय व आदर्श-रूप है, जिसने अपने भाइयों में मारवाड़ के नौ समान भाग कर बांट दिये थे, जिस विषय का यह छप्पय प्रख्यात है:—

मंडोवर १ सामंत, हुवौ अजमेर २ सिद्धसुव,
गढ़ पूंगल ३ गजमल्ल, हुवौ लोद्रवे ४ भाणभुव।
अल्ह पल्ह अरबद ५, भोजराजा जालंधर ६,
जोगराज धर धाट ७, हुवौ हाम्रू पारकर ८।
नव कोट किराड़ू ९ संजुगत, थिर पंवार हद थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइयां, कोट बांट जू जू किया॥

और तभी से यह मारवाड़ नौकोटी कहलाने लगा है। यह मरुदेश (मारवाड़) अति प्राचीन है जिसके विषय में वाल्मीकि रामायण में यह वर्णन मिलता है कि यह प्रदेश पहले 'द्रुमकुल्य' के नाम से प्रसिद्ध था और यह समुद्र में निमग्न था जिसे भगवान् रामचन्द्रजी ने बाण फैंक कर सुखा दिया तब इसका नाम "मरु-कान्तर" हुआ। उसी समुद्र के अवशिष्ट कुछ भाग सांभर, डीडवाणा, पचपदरा आदि में अब भी विद्यमान हैं जिनके खारे पानी से लाखों मन नमक बनता है। इस समुद्र को सुखा कर भगवान् रामचन्द्रजी ने इस प्रदेश को कई वरदान दिये थे जिस से यहां का प्रदेश नीरोग, फल मूल स्वादिष्ट, गाय भैंस आदि पशु पुष्ट, दूध और घृत सचिक्कण और पुष्टि-कारक और अन्न सुगंधि-युक्त होता है। ऐसी किंवदन्ती है कि यह प्रदेश समुद्र-निमग्न

था, जिस की पुष्टि इस बात से होती है कि विज्ञान-वेत्ता विद्वान् इस प्रदेश की बालू को समुद्र-तल की रेत बताते हैं।

सांभर की शाकम्भरी, गोठ—मांगलोद की दधिमती, बीलाड़े की आईजी, देसणोक की करणीं, करोली व दांता की अम्बाजी, ओसियां की सचियाय माता आदि प्रत्यक्ष चमत्कारिणी देवियों के कारण यह प्रदेश पवित्र और पूजनीय माना जाता है। देवदानी और शर्मिष्ठा नाम के तीर्थ सांभर में, गलता व रणथंभोर जयपुर में, मुचकुन्द धौलपुर में, एकलिंग और नाथद्वारा उदयपुर में, कोलायतजी बीकानेर में और पुष्करराज पुष्कर प्रभृति प्रसिद्ध पवित्र स्थानों के कारण यह प्रदेश आज भी पुण्य—भूमि गिना जाता है। उसी प्रकार मेवाड़ का चित्तौड़गढ़, ढूंढाहड़ का आंबेर, मारवाड़ का जालोर, अजमेर का तारागढ़ (गढ़ बींटली) आदि अनेक गढ़ अपनी ऐतिहासिक घटनाओं के लिये प्रख्यात हैं। यहां के कृत्रिम तालावों में मेवाड़ का जयसमंद, मारवाड़ का जसवंतसमंद, अजमेर का आनासागर प्रसिद्ध हैं जिन के मिष्ट व स्वादिष्ट जल से आज भी लाखों मन अनाज पैदा होता है।

राजस्थान का इतिहास वीर-रस का इतिहास है जिस में सीसोदियों में राणा प्रताप, राठौड़ों में मालदेव, कछवाहों में मानसिंह, भाटियों में भोजदेव, जाटों में सूरजमल, चौहानों में पृथ्वीराज, परमारों में धरणीवराह, यादवों में गोपाल, हाडों में बुधसिंह, मुसलमानों में मीरखां आदि वीरता की प्रतिकृति माने जाते हैं। वैसे ही चांपावतों में वल्लूजी, गौड़ों में बछराज, खंडेले का सुजानसिंह, राठौड़ों में दुर्गादास, गहलोत धनजी और चहुवान भींवजी आदि गण्य लोक—मान्य पुरुष हैं।

राजस्थान एक होते हुए भी उसकी भाषाएं (बोलियां) अनेक हैं, किन्तु कविता की भाषा सदा एक ही रही है जिसे

डिंगल कहते हैं जो पिंगल की बड़ी बहिन है। जैसे भारतवर्ष के पूर्व प्रदेशों में पिंगल का पालन-लालन हुआ वैसे पश्चिम प्रदेश (राजस्थान) में डिंगल का पोषण-प्रीणन उचित आदर के साथ हुआ जिससे इसे बहुत उत्तेजना मिली और जिसे चारण, भाट, जागे आदि ने खूब अपनाया और उसमें अपनी ओजस्विनी और वीरोल्लासिनी कविता कर उसे अमर बना दिया और उसके साथ वीर-रस को मूर्तिमान् खड़ा कर दिखाया, जिस वीर-रस से पूर्ण दो छन्द उदाहरण रूप से नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

चढ्यो मल्हार ले तुखार नौं हजार नच्चते
धपै प्रवीर तान तीर जंग धीर जच्चते ।
वजै निशान श्वान ज्यों दशों दिशान वित्थुरे
चमंकि पाय चिक्करी डिगै रु दिक्करी डरें ॥

(मिश्रण सूर्यमल)

बाढ़ी वीर हाक हर डाक भुव चाक चढ़ी,
ताक ताक रही हूर छाक चहूँ कोद में ।
बोलि के कुबोल हय तोल बहलोल खां पै,
बागो आन कत्ता राण पत्ता को विनोद में ।
टोप कटि टोपी लाल टोपा कटि पीत पट,
सीस कटि अंग मिली उपमा सुमोद में ।
राहू गोद मंगल की मंगल गुरु की गोद,
गुरु गोद चंद की रु चंद रवि गोद में ॥

(स्वामी गणेशपुरी)

राजस्थानी भाषा के अनेक अवान्तर भेद हैं जिन में से मारवाड़ी का प्रचार जोधपुर, जैसलमेर, शेखावाटी, बीकानेर, किसनगढ़, अजमेर में, मेवाड़ी का मेवाड़ में, ढूंढाहड़ी का जयपुर में, बागड़ी का डूंगरपुर, बांसवाड़ा, कुशलगढ़ में, हाड़ोती का बूंदी

और शाहपुरा में, मेवाती का अलवर में, मालवी का झालावाड़, कोटा, प्रतापगढ़ में, गुजराती का पालनपुर व दांता में और व्रजभाषा का अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली में है, किन्तु सब का स्रोत डिंगल भाषा है जिस में लिखी वीर-रस-पूर्ण कविताओं के परितोषिक में चारण, भाट आदिकों को केवल राजा महाराजाओं से ही नहीं अपितु मुगल बादशाहों से भी अनेक लाख-पसाव आदि मिले थे जिन में से चारण जाडा, लक्खा, दुरसा, पीरा, रामा, हापा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन भाषाओं में अनेकता होने पर भी सब राजस्थान-निवासियों का शिरो-वस्त्र (पगड़ी) एक होने के कारण वे सब मारवाड़ी कहलाते हैं और सब एक हैं।

राजस्थान के कवियों के रचे हुए अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं जिन में चंद का पृथ्वीराजरासो, दलपत विजय का खुमाण-रासो, सांईदास का संवतसार, नाल्ह का वीसलदेवरासो, नल्ल का विजयपालरासो, दयालदास का राणारासो, सूजो का जइतसी छन्द, आदि बड़े महत्व के हैं। राजस्थान के भक्त, सन्त, महात्माओं के नाम तथा उनके संक्षिप्त जीवन-चरित नाभादास की भक्तमाल में माला के सुवासित पुष्पों के समान अपनी सौरभ विस्तारित कर भक्त जनों को आनन्द प्रदान करते हैं। नरहरि-दास का अवतार-चरित भगवान् के गुण गान करने में अद्वितीय ग्रन्थ है। किसनजी आढा का रघुवरजस प्रकास, करणीदान का सूरजप्रकास, वीरभाण का राजरूपक, चंडीदान का विरुद प्रकाश, गोपीनाथ का ग्रन्थराज, अन्य कवियों के हम्मीररासो, राज-विलास, सुजान-चरित्र, आदि ग्रन्थ भी पूर्ण लाभ-दायक हैं।

राजस्थानी भाषा के साहित्य-भण्डार को भरने वाले अनेक ग्रन्थों में से महाराज जसवन्तसिंहजी प्रथम (जोधपुर) का भाषा-

भूषण, मंछाराम का रघुनाथरूपक, गोस्वामी कृष्णलाल के कृष्ण-विनोद (नायिका-भेद) और रसभूषण (अलङ्कार), कविराजा मुरारिदानजी का जसवन्त-जसो-भूषण आदि बड़े काम के हैं। स्वरूपदासजी की पाण्डव-यशेन्दु-चन्द्रिका महाभारत के भाषा में संक्षिप्त पद्यमय ग्रन्थ के रूप में अपनी शानी की एक ही है। राजिया, किसनिया, भैरिया, जेठिया, नाथिया, मोतिया आदि के प्रास्ताविक, उपदेश-प्रद, नीति के दोहों का भी राजस्थान में पूरा प्रचार है। एक एक कवि एक एक प्रकार की छन्द-रचना में आदर्श-रूप हुए हैं, यथा विहारी के दोहे, सगरामदास की कुण्डलिया, सूरजमल के छप्पय, सुन्दरदास के सवैया, ओपा के गीत आदि।

सन्त कवियों में दादू-दयाल, रज्जब, रामचरण, दयालदास, दरियाव, चरणदास, दया बाई, सहजो बाई, हरिदास, ईश्वरदास आदि के नाम चिरस्थायी हैं। पद्य लेखकों में प्रसिद्ध विहारी, वृन्द, स्वरूपदास, सूरजमल, बांकीदास, महाराजा मानसिंहजी, (जोधपुर), महाराजा पृथ्वीसिंहजी (बीकानेर), महाराजा प्रतापसिंहजी व्रजनिधि (जयपुर), महाराज चतुरसिंहजी (मेवाड़) आदि हुए हैं। वैसे ही गद्य लेखकों में कविराज श्यामलदास, पं० लज्जाराम महता, ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत, बाबू रामनारायण दुग्गड़, मुंशी देवीप्रसाद, पारीक सूरजकरण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्हों ने प्राचीन साहित्य की रक्षा के साथ साथ नवीन साहित्य की रचना कर राजस्थानी भाषा के साहित्य-भण्डार को परिवर्द्धित किया है।

वर्तमान काल के लेखक, ऐतिहासिक, साहित्यिक पुरुषों में गणना करने के योग्य महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकरजी ओझा, महामहाध्यापक विद्वद्रत्न पं० रामकर्णजी आसोपा, ठाकुर राम-

सिंहजी, एम. ए,, पुरोहित हरिनारायणजी बी. ए., स्वामी नरोत्तमदासजी, दीवान बहादुर हरविलासजी सारड़ा, पं० जनार्द-नरायजी नागर, आदि हैं। इस समय के व्यवसायी और उदार पुरुषों में बिड़ला, बांगड़ आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुष हैं जिन में बिड़ला ने तो लंदन में शिवजी का मन्दिर बनवा कर अपनी कीर्ति चिरस्थापित करली।

इसी गौरवास्पद राजस्थान के भूगर्भ में से संगमर्मर का सुफेद प्रसिद्ध पत्थर निकलता है जिसकी उपयोगिता तथा सुंद-रता की, अलौकिक और दुनिया के सात अद्भुत पदार्थों में गणना किया जाने वाला आगरे का ताज महल और कलकत्ते का Victoria Memorial (विक्टोरिया मेमोरियल) मूक भाषा में, साक्षी देते हैं।

अहो! वीर-वर राजा महाराजाओं की वीरता से परिपूर्ण राजस्थान! तेरी वीरता का वर्णन करते २ किस की कलम नहीं थकती! वीर: राजस्थान की वीर गाथाओं के अथाह प्रेमी राजस्थान के गौरव के पक्षपाती, राजस्थान के क्रमबद्ध इतिहास के प्रथम लेखक व प्रकाशक, स्वनामधन्य कर्नल टाड साहब को भी तेरी प्रशंसा लिखने २ अन्त में अपनी कलम तोड़नी पड़ी। उस राजस्थान के अगणित और आदर्श-स्वरूप वीरों के नाम, चरित्र, यश आदि का कोई क्या वर्णन कर सकेगा? यह राज-स्थान की ही अनेक-वार रुधिर-सिञ्चित वीर मही है जहां वीरता के साथ २ धर्म, ज्ञान, दान, भक्ति, प्रण, सज्जनता, परोपकारिता, भ्रातृ-प्रेम, निर्लोभिता, उदारता, स्वामि-भक्ति, स्वामि-वात्सल्य, साहस, आत्माभिमान, सत्यभाषिता, क्षमा, कवि-रसिकता, पार-स्परिक सहानुभूति, सामयिक संकेत प्रदान, कृतज्ञता, निष्पक्षपा-तता, शरण-पालकता, सतीत्व, पातिव्रत्य, आज्ञा-पालन आदि

अनेक सद्गुणों के आदर्श पुरुष तथा देवियां प्रत्येक ग्राम २ में हुई हैं जिन के आदर्श-जीवन से वर्तमान समय के राजस्थान-निवासी लाभ उठा कर अपनी जन्म-भूमि (राजस्थान) का नाम गौरवान्वित और अमर करते रहेंगे। यद्यपि तेरे सद्गुणों से अनभिज्ञ लोग तुझे inhospitable region (अनिवसनीय प्रान्त) कह कर तेरा आन्तरिक अनादर करते हैं, किन्तु यहां आकर तेरी आदर्श और उदाहरणीय hospitality (अतिथि-सत्कार) का अनुभव कर सभी गुण-ग्राहक पुरुष तेरी प्रशंसा करते २ नहीं अघाते और यह बात वास्तव में यथार्थ और तथ्यभरी है क्योंकि तेरे छोटे से छोटे ग्राम में और उसके समीप एकान्त स्थान में बसी हुई ढाणी (hamlet) में भी अगर कोई अनजान पुरुष जा पहुंचता है तो आज भी उस अतिथि को अपने निज घर के समान भोजन. घी, दूध, दही, वस्त्र, बिछोने, आदि से सुख पहुंचा कर उस का बड़ा आदर सत्कार किया जाता है। हे उच्च कोटि के वीर, धार्मिक, सन्त, भक्त, कवि, लेखक, विद्वान् आदि असाधारण पुरुषों की जननी ! हे पुरातन काल की कला, साहित्य, विज्ञान आदि अति-हितकर विषयों से परिपूर्ण सामग्री की निधि-रूपा मातृ-भूमि ! हे अपने वसुन्धरा नाम को प्रत्यक्ष सार्थक कर बताने वाली देवी ! हे आदर्श पुरुषों की प्रसविनी माते ! हे स्वास्थ्य-प्रदात्री भगवती ! क्या मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी ने समुद्र के अन्तःस्तल में छिपी हुई तेरी भूमि को प्रगट कर इसे वरदान इसी अभिप्राय से दिये थे कि यहां की समग्र वस्तुएं रसीली, स्वादिष्ट, सुगन्ध-युक्त और बलकारक हों जिन के उपभोग से यहां के निवासी हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ट होकर तेरी स्वतन्त्रता के सदा उपासक बने रहें।

॥ श्रीदधिमती जयति ॥

गोविन्द-भक्ति-शतक ।

सङ्कीर्तन हरि–नाम रो, करै पाप सब नाश ।
प्रणति[1] हरै सब दुःख नैं, विनवूं विभु[2] अविनाश[3] ॥१॥
सरधा कांई जीव री, करै राम री टेर ।
मारै करम जु थाप री, मूँडो देवै फेर ॥ २ ॥
पूरब पुण्य उदोत है, भगवत किरपा होय ।
गोविन्द जद हरि नैं भजै, निश्चै जाणो सोय ॥ ३ ॥
जग री चिंता राम नैं, सब री लेवे सूध[4] ।
जलम दियां पैली करै, माता रै थन दूध ॥ ४ ॥
गोविन्द भज रे मानवी, जे चावै कल्याण ।
राम नाम मैमा कही, ध्रुव प्रहलाद बखाण ॥ ५ ॥
गोविन्द रो नित नाम लो, जो चावो निसतार ।
इण असार संसार में, भजन एकलो सार ॥ ६ ॥
गोविन्द नें नित उठ रटो, जो चावो निरवाण[5] ।
मुगती देसी सांवरो, होसी जग कल्याण ॥ ७ ॥
गोविन्द नैं निरभै रटो, अन्तरजामी एक ।
हिरदा रा पट खोलसी, निश्चै राखो हेक ॥ ८ ॥
गोविंद में अरु नाम में, भेद मती नर ! लाय ।
नारायण रा नाम सूं, जलम मरण मिट जाय ॥ ९ ॥
गोविंद रो शुभ नाम है, परमारथ जग सार ।
रटै नाम जो रैण दिन, हुवै जगत रे पार ॥ १० ॥

---

१. नमस्कार, २. सर्व व्यापक, ३. नाश-रहित, ४ सम्भाल-(सुधि), ५ मोक्ष ।

मिनखा-देही पाय कर, भजन करो सब कोय।
गोविंद नैं जो नहिं रटै, पिसतावेला सोय ॥ ११ ॥
माय बाप सुत[१] जाण लो, स्वारथ रो संसार।
गोविंद सूं नर प्रेम कर, तो उतरै भव पार ॥ १२ ॥
दुष्ट चित्त सूं हरि भजै, तदपि हरै अघ[२] नाथ।
गोविंद जाण अजाण छुव, अगन बाळदे हाथ ॥ १३ ॥
जङ्गल ऊभा रूँखड़ा, जो सींचे करतार।
गोविन्द भोजन देवसी, सब रो सिरजणहार ॥ १४ ॥
चिन्ता भोजन बसन[३] री, नर मत कीजो कोय।
गोविन्द सब नैं पालसी, हरिजी गया न सोय ॥ १५ ॥
क्यूँ कलपै तूँ मानवी, दुखी हुवै बे-काम।
गोविन्द धीरे होवसी, जो रचियो है राम ॥ १६ ॥
अन्धकार नैं हरि[४] हरै, उदै होत निधि-धाम[५]।
गोविन्द हरसी पाप नैं, जग-मङ्गल हरि नाम ॥ १७ ॥
सब पापी उद्धार रो, एक उपाय विचार।
गोविंद भज हरि नाम नैं, करले जलम-सुधार ॥१८॥
प्रायचित्त[६] शुध ना करै, मिनख विमुख-भगवान।
गोविंद नदी न शुध करै, मदिरा-घट ज्यूं मान ॥१९॥
नारायण रा नाम री, मैमा बड़ी अखूट।
अजामेल पापी गयो, मृत्युपास सूं छूट ॥२०॥
पाप नाश रै वासते, और न साधन जोय।
गोविंद रट हरि नाम नैं, इणसूं इधक न कोय ॥ २१ ॥
व्रत तप जिग साधन उसो, कर न सकै अघ[७] नाश।
गोविंद कीर्तन राम रो, करै पाप रो नाश ॥ २२ ॥

---

१. बेटा, २. पाप, ३. कपड़ा, ४. सूरज, ५. तेजवान, ६. प्रायश्चित्त ७. पाप।

श्रवण-मात्र हरि नाम सूं, पापी जावै छूट ।
गोविंद नरक न नर पड़ैं, जाय बसै वैकूंट ॥ २३ ॥
पापां सूं डरते हुवे, तो नर कर हरि-जाप ।
गोविंद शुभ हरि-भजन सूं, धुप जासी सब पाप ॥२४॥
गोविंद गोविंद जो भजै, चित मन सूं दिन रात ।
उणरा सब पातक[1] नसैं, ज्यूं तम[2] हुवां प्रभात ॥२५॥
जिणरो मन हरि में लग्यो, करै जगत ने पार ।
गोविंद बस वैकुंठ में, क्यूं देखे जम-द्वार ॥ २६ ॥
जीभ रटै हरि नैं नहीं, चित चरणां में नांय ।
मस्तक नमैं न कृष्ण नै, वे नर नरकां मांय ॥ २७ ॥
प्रायश्चित्त न हर सकै, पाप-पुंज रख याद ।
गोविंद सब पातक[1] हरै, भगवत-गुण-अनुवाद[3] ॥२८॥
विद्या व्रत जप जोग तप, तीर्थ-स्नान अन-दान ।
गोविंद शुचि[4] मन नहिं करै, जैड़ो हरि रो ध्यान ॥२९॥
सुवा पढ़ाया गोपियां, कृष्ण नाम रटवाय ।
गोविंद शुक-सम[5] वे हुवा, देख नाम हरि गाय ॥३०॥
जितरी सरदा राम में, उतरी सिद्धी होय ।
गोविंद रो नर भाव कर, भाव फलै जग जोय ॥३१॥
अगन तपायां धातु सब, ज्यूं झटपट गळ जाय ।
गोविंद री भक्ती कियां, पाप अनेक विलाय ॥३२॥
भगत न चावै मुगत नैं, जो है चार प्रकार[6] ।
गोविंद तो सेवा चहै, और करै नहिं प्यार ॥३३॥
पाप कियां जो मानवी, निज[7] मन में पिसताय ।
गोविंद भजियां वो मिनख, शुद्ध चित्त हुय जाय ॥३४॥

---

१. पाप, २. अन्धकार, ३. गान, ४. पवित्र, ५. शुकदेव-मुनि के समान ज्ञानी, ६. सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य और सामीप्य, ७. अपने,

विवस होय पण हरि भजै, एक वार नर चाय।
गोविंद भागै भय सभी, ज्यूं मृग सिंह डराय ॥३५॥

कपट सहित पण हरि भजै, जो नर हरि मन लाय।
गोविंद जलम न पावसी, हरि-पद[१] मांय समाय ॥३६॥

कृष्ण नाम पावन परम, राखो मन में जास।
गोविंद मन में वैठ कर, करै अशुभ सब नास ॥३७॥

अशुभ करम जद खीण हो, करै भगत री सेव।
गोविंद देवै भगति जद, अंतरजामी देव ॥ ३८ ॥

तीरथ शुचि[२] जल सूं भरया, मूर्ति मांयला देव।
गोविंद शुध कर घण दिनां, भगत तुरत कर लेव ॥३९॥

मंत्र-देव-गुरु तीन में, निसचल भगती होय।
गोविंद सिद्धी दूर नहिं, कर निश्चय सब कोय ॥४०॥

जाण अजाण जु हरि भज्यां, जावै पाप विलाय।
गोविंद वन रा लाकड़ा, आपहि ज्यूं वल जाय ॥४१॥

गोविंद गोविंद सब रटो, जो चावो निरवान।
सुगति सहित भगती मिलै, कर गोविंद-गुण-गान ॥४२॥

विवस होय पण मानवी, हरि हरि नाम जपाय।
गोविंद मेटे अघ[३] तुरत, सूरज धुंध मिटाय ॥४३॥

कपट राख पण नाम लै, हरि रो नर चित लाय।
गोविंद गरभ न आवसी, वो नर हरिपद[१] पाय ॥४४॥

मरण समय हरि नैं भजो, त्याग स्नेह दुखमूल।
गोविंद हरिपद[१] पावसी, राम मती नर ! भूल ॥४५॥

नारायण रो नाम है, जीभ्या है बस मांय।
गोविंद नर नरकां पड़ै, ओ अचरज मन मांय ॥४६॥

---

१. वैकुण्ठ, २. पवित्र, ३. पाप,

बोलो 'नारायण नमो', मंत्र इष्ट फल देय ।
गोविंद भज भगवान नै, लावा हरि भज लेय ।। ४७ ।।
तन मन सूं हरि नैं भजै, एक वार नर चाय ।
गोविंद वो जग सूं तिरै, परम मोक्ष-पद पाय ।। ४८ ।।
मीठा–भाती जीभड़ी, रस री जाणणहार ।
गोविंद शुचि हरि नाम री, इमरत घूंट उतार ।। ४९ ।।
नर मूरख जाणै नहीं, जलम अकारथ जाय ।
गोविंद नर हरि नहिं रटै, पल पल राम रटाय ।। ५० ।।
सास सास में हरि रटो, एक सास मत खोय ।
गोविंद कह इण सास रो, आणो फेर न होय ।। ५१ ।।
एक घड़ी आधी घड़ी, रटो विष्णु नैं ध्याय ।
गोविंद व्रत तप जिज्ञ सूं, एक नाम बड़ जाप ।। ५२ ।।
मनछा वाचा करमणा, रटै जु हरि नैं ध्याय ।
गोविंद सब तीरथ गया, गंगा सूं इधकाय ।। ५३ ।।
सरब सास्त्र रो मथन कर, वार वार सुविचार ।
गोविन्द रो सिद्धान्त है, रटो राम दुख–हार ।। ५४ ।।
दस छिदरां[1] री देह में, भरिया रोग अनेक ।
गोविन्द ओषध गङ्ग–जल, वैद रामजी हेक ।। ५५ ।।
चिन्ता मत कर मानवी, नाम हरी रो लेय ।
गोविन्द प्रभु निज भगत री, चिन्ता सब हर लेय ।।५६।।
मुखड़ा में नहिं दांत हा, दूध दियो जिण पेय[2] ।
गोविन्द अब जद दांत है, क्यूँ नहिं भोजन देय ।।५७।।
साच साच आ बात है, कह दूँ भुजा उठाय ।
गोविन्द आगम[3] वेद शुचि[4], त्यूँ हरि देवां मांय ।।५८।।
कलियुग में हरि नाम है, हरि सूँ भी इधकाय ।

---

१. इन्द्रियां, २. पीने को, ३. शास्त्र में, ४. पवित्र ।

गोविन्द साध्यां योग बिन, मानव मुगती पाय ॥५९॥
मंगल हरि रा नाम नैं, रटै मिनख मन लाय।
गोविंद काटै दुःख नैं, सुख नैं दे उपजाय ॥ ६० ॥
कृष्ण-चरण रे पींजरे, रे मन! रत समाय।
गोविंद कंठां कफ रुक्यां, अंत समै हरि नांय ॥ ६१ ॥
राम नाम है कलपतरु, चिन्तामणि हरि नाम।
विष्णु नाम सुरधेनु है, गोविन्द रट लै राम ॥ ६२ ॥
लाख दान गऊ हेमरा, कोट जिग्य तप स्नान।
गोविन्द सब तीरथ नहीं, गोविन्द नाम समान ॥ ६३ ॥
सदा लाभ हो जय सदा, नहीं पराजय[1] होय।
गोविन्द जिणरे हिय बसै, मन में समझो सोय ॥ ६४ ॥
हे नाथ! सुण वीनती, जाऊं जुण हजार।
गोविंद मन हरि में रहै, अरजी वार हजार ॥ ६५ ॥
ज्यूं मूरख चावै विषय, गान रूप रस गंद।
गोविंद चावै भगति नैं, उचरै नाम मुकंद ॥ ६६ ॥
नरकां नर दुख पावता, देख कही जमराज।
गोविंद नाम न तूं रट्यो, क्लेश-हरण सुरराज ॥६७॥
जप तप ध्यान समाधि जिग, सहस जलम नर खोत।
गोविंद जद अघ[2] खीण हो, जद हरि भगति उदोत ।६८।
तूं माता तूं जनक[3] है, सखा बंधु धन जाण।
गोविंद तूं स्वामी हरे!, और न मन में आण ॥६९॥
दैत्य मर्‌या हरि हाथ सूं, मुगति गया हिय मान।
गोविंद रो नर! क्रोध पण, है वरदान समान ॥७०॥
दुखी होय हरि नैं भजै, रटै राम चित लाय।
गोविंद उणरी झट सुणै, हरै दुःख पळ मांय ॥७१॥

---

१. हार, २. पाप, ३. बाप,

वासुदेव हरि छोड़ कर, भजै देव जो आन ।
गोविन्द गंगा त्याग कर, कूप खिणै ज्यूं मान ॥७२॥
नमस्कार इक वार हरि, करै मिनख चित लाय ।
गोविन्द सौ असमेध सूं, हुवै पुण्य इधकाय ॥७३॥
रात दिवस हरि नै रटै, हरि में चित्त लगाय ।
गोविंद हवि[१] अगनी पड़ै, वें हरि मांय समाय ॥७४॥
नारायण रो नाम है, जग में चोर प्रसिद्ध ।
गोविंद नर रा पाप नैं, हरै हरी ओ सिद्ध ॥ ७५ ॥
नारायण रा नाम नैं, भजै सदा मन लाय ।
गोविंद पाप नसाय कर, दूध पिवै नहिं माय ॥७६॥
राम लूट है मच रही, लूट सकै सो लूट ।
गोविंद खरची खूट है, तन जावेला छूट ॥७७॥
कृष्ण-कथा नैं जो सुणै, हृदय विराजै आय ।
गोविंद भक्तां रा सकल, देवै अशुभ मिटाय ॥७८॥
भगतां री सेवा कियां, अशुभ करम मिट जाय ।
गोविंद उत्तमश्लोक[२] में, नैष्ठिक[३] भगती पाय ॥७९॥
कृष्ण-चरण में मन रम्यो, प्रेम सहित गुण गाय ।
गोविंद कीरतन पाप रो, नाश करै उरुगाय[२] ॥८०॥
सम-दरसी सज्जन जबै, शरण ग्रहण कर लेय ।
गोविंद रक्षा हरि करै, पावन[४] प्रभु कर देय ॥८१॥
ज्यूं ओषध दै आपरा, गुण रो लाभ दिखाय ।
गोविंद त्यूं ही हरि भजन, देवै लाभ बताय ॥८२॥
कीर्तन-श्रवण-समरपण,-वंदन-स्मरणा रु दास्य ।
गोविन्द पूजन अघ[५] हरै, राम भजै चह हास्य ॥८३॥

---

१. तिल, घी आदि शाकल्य, २. भगवान्, ३ अविचल, ४. पवित्र, ५. पाप,

एक वार पण राम रो, शरणागत नर होय।
गोविंद उण नैं अभय दै, पण[1] रघुवर रो जोय ॥८४॥
भूत-भविस-विदमान सब, पाप सभी जा भाग।
गोविन्द कीर्तन अघ[2] हरै, काठ जळावै आग ॥८५॥
श्रवण-कीरतन-नामजप, चरण-समर्पण मान।
पूजन-वंदन-दास्य-मित[3], नवधा भगति जान ॥८६॥
नृपति परीक्षित श्रवण में, कीर्तन में शुकदेव।
हो प्रहलाद जु स्मरण में, लक्ष्मी चरणां-सेव ॥८७॥
पूजन में पृथुराज हो, वंदन में अक्रूर।
दास्य भगति में मारुती[4], अरजुन मित भरपूर ॥८८॥
आत्म-निवेदन में हुवो बलि राजा विख्यात।
गोविन्द ऐ नव भक्ति रा, उदाहरण दरसात ॥८९॥
मैला कपड़ा जगत में, साफ करै जल खार।
गोविन्द अन्तःकरण नैं, शुद्ध करै अघहार[5] ॥९०॥
अगन तपायां ज्यूं हुवै, सोना रो मळ दूर।
गोविन्द री भगती कियां, होवै मन शुचि पूर ॥९१॥
सार-रहित संसार नै, जो दुखमय नर जाण।
गोविन्द भजलै राम नैं, जो चावै कल्याण ॥ ९२ ॥
पत्र पुष्प फल जल मिलै जग में जद अनमोल।
गोविन्द हरि राजी हुवै, दे सह-प्रेम अतोल ॥९३॥
जो पवित्र हुय नर जपै, अथवा हो अपवित्र।
गोविन्द पावै मुक्ति नैं, जपियां राम-चरित्र ॥ ९४ ॥
सभी देव हरि-रूप है, हरि रा नाम अनेक।
गोविन्द भज शिव राम नैं, हैं दोनूं ही एक ॥९५॥
माता म्हारी दधिमती, पिता विष्णु मन मान।

---

१. प्रतिज्ञा, २. पाप, ३. मित्रता, ४. हनुमानजी, ५. पापहारी भगवान्

गोविन्द भजलै चाव सूं, जननी[१] जनक[२] समान ॥९६॥
सतजुग हरि तप में वसै, जिग में त्रेता मांय ।
गोविंद द्वापर अर्हणा[३], कलि में कीर्तन मांय ॥९७॥
जो फल सतजुग ध्यान सूं, जिग सूं त्रेता मान ।
गोविन्द द्वापर अर्चना[४], कलजुग कीर्तन जान ॥९८॥
अनत कोटि ब्रह्माण्ड में, शिव-हरि-ब्रह्म अनेक ।
गोविन्द जो सब में वसै, वो प्रभु सब में एक ॥९९॥
छोटा बच्चा माय नैं, भूखा बछड़ा गाय ।
गोविन्द ज्यूं मन में रटै, ज्यूं भज हरि मन लाय ॥१००॥
दो प्रकार री भक्ति है, पैली 'गोणी' जाण ।
गोविन्द है दूजी 'परा', मन में मिनख पिछाण ॥१०१॥
बढ़ती बढ़ती गोणि पण, परा भक्ति हो जाय ।
गोविन्द बधियोड़ी परा, शरणागति कहवाय ॥१०२॥
भगती रो लक्षण परम, परमेश्वर सूं प्रेम ।
गोविन्द सब नैं छोड़ कर, राखै हरि रो नेम ॥१०३॥
जो रक्षा वन में करै, मात-गरभ में जोय ।
गोविन्द निश्चै जाणजे, हरिजी रया न सोय ॥ १०४ ॥
दुःख आपदा रोग में, घबरावो मत कोय ।
गोविन्द हरि विश्वास कर, रक्षा करसी सोय ॥१०५॥
ना मैं जाणूं धरम नैं, आतम-ज्ञानी नांय ।
गोविन्द नितही राखजे, चित हरि-चरणां माय ॥१०६॥
गोविन्द हरि-शरणै पड्यो, नित उठ करै पुकार ।
शरण-रहित मैं दीन जन, चाहे मार उबार ॥१०७॥
मैं पापी तूं पाप-हर, विरद मती प्रभु जोय ।
गोविन्द तूं अशरण-शरण, शरण राखजे मोय ॥१०८॥
हरि नैं हिरदै धार कर, देख शरण नाहिं कोय ।
भक्ति-शतक गोविन्द कह्यो, गोविन्द अर्पण होय ॥१०९॥

शम । गोविन्द ।

---

१. माता, २. पिता, ३. पूजा, ४. सेवा,

॥ श्रीराम: सर्वमङ्गलम् ॥

पंडितजी रो मारवाड़ी-प्रेम ।

❀ छप्पै ❀

(१)

हियो आपरो खुल्यो, कँवल् री खिल गी कलियाँ,
मानूं बाल्कपण री मन री काढ़ो रलियाँ ।
इण भासा में घणी पोथियाँ लिखणी माँडी,
पार लगाई, नहीं रही वै खाँडी-बाँडो ॥
श्रीभगवत-गीता री लिखी टीका ऐड़ी फूटरी ।
बस, वा तो मानूं बानगी इमरत-रस री घूँट री ॥

(२)

मिल्यो मारवाड़ी--बाड़ी नै माल्ी ऐड़ो,
पिण पाणी नहिं मिल्यो, चईजे मिलणो जैड़ो ।
अरे ! जरां ही अंकूड़ा ऐ छोटा-छोटा—
दीस रह्या है, किणी तरै सूं हुवा न मोटा ॥
पिण उमेद रा बखत में पाणी री कांई कसर ? ।
अब दूजी बाड़ी सींचताँ नहीं रह्यो इण रो असर ॥

पं० नित्यानन्द शास्त्री,
आशुकवि-कविराज,
जोधपुर ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

गीता रो सार ।

देवीं दधिमर्तां नत्वा सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
भगवद्गीतसारोऽयं गोविन्देन विरच्यते ॥

पैलो अध्याय ।

श्रीमद्भगवद्गीता–शब्द रो ओ अर्थ है के श्रीभगवान् री गायोड़ी गीता। भगवान् तो श्रीकृष्ण भगवान् है जो पूरण पुरुषोत्तम लीला अवतार धारण कर वसुदेवजी और देवकीजी ने कंस राजा री भागसी मांय सूं छुडावण वास्ते परगट हुवा। पछे भगवान् मथुरा सूं गोकुल पधार नंदराजा और जसोदाजी रे घरे रया और उठा सूं वृन्दावन पधार गया जठे गायां चरावता हा। थोड़ा मोटा हुवा जद कंस रा कैणा सूं अक्रूरजी भगवान् ने लेवण ने आया। जद भगवान् वृन्दावन सूं मथुरा पधार कंस रो विध्वंस कर वसुदेवजी पिता और देवकीजी माता ने कैद सूं छुडाय उग्रसेनजी ने मथुरा रो राज दियो। पछै आपरी भूवा कुन्ती रा बेटा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव इणां पांचूं पाण्डवां री संभाल करण वास्ते हस्तिनापुर पधारिया। उठे पाण्डवां रे धृतराष्ट्र रा पुत्र दुर्योधन आदि कौरवां सूं कुरुक्षेत्र में महाभारत रो जुद्ध हुवो जद श्रीकृष्ण भगवान् आपरा बालगोठिया अर्जुन रा रथ रा हांकण वाला सारथी वण कर रथ में अर्जुन ने बैठाय जुद्ध रा मैदान में पधारिया। उठे अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् ने कयो के "हे भगवन् ! आप म्हारा रथ ने पाण्डवां और कौरवां दोनां री सेना रे बिच में ऊभो राखो सो मैं देखूं के इण जुद्ध में लडण वास्ते कुण कुण आया है ?" अर्जुन रा कैणा पर श्रीकृष्ण भगवान् रथ ने दोनूं फौजां रे बिच में खड़ो कर

फरमायो के–"हे अर्जुन ! तूं अठे भेला हुवोड़ा जोद्धां ने देख ।"

भगवान् रा कैणा पर अर्जुन दोनूं सेनां में देखियो तो आपरा बाप, दादा, गुरु, मामा, भाई. बेटा, पोता, साथी, सुसरा, मित्र, आदि शस्त्र लियां ऊभा दीसिया । जद अर्जुन रा मन में मोह आ गयो के इणां भाई बान्धवां नैं मारण सूं तो पाप लागेला जिण सूं मन में बेखातर हूयर श्रीकृष्ण भगवान् ने यूं कयो के–"हे श्रीकृष्ण ! ए तो लडणवाला सगळा म्हारा स्वजन है, इणां ने हूं किण तरह मारूं ? जिणां रे वास्ते राज, भोग और सुख चावां हां, वे तो ए सगळा धन और जीवण री आसा छोड़ अठे युद्ध में आय ऊभा है । इणां रे मरियां सूं धन, भोग और जीवणां रो कांई करणो है ? हूं तो इणां ने तीनूं लोकां रा राज रे वास्ते पण नहीं मारूं तो फेर इण पृथिवी रा राज री तो बात ही कांई ?" यूं कह अर्जुन आपरा शस्त्र नीचे नाख दिया और कयो के "मैं तो जुद्ध नहीं करूं । "

दूजो अध्याय ।

इण तरह दुःख पावता अर्जुन ने देख श्रीकृष्ण भगवान् मुळकता हुआ आ फरमाई के–"हे अर्जुन ! तू बातां तो समझदारी री करे है परंत ओ कायरपणो इण जुद्ध री वगत में थनैं कठा सूं आयो ? क्षत्रिय रो तो ओ धर्म है के शत्रु ने सामें आयां सूं निधडक मारणो । तूं सोच करण रे लायक नहीं है उणां रो विरथा सोच करे है । ज्ञानी पुरुष न तो मऱ्योडां रो सोच करे है और न जीवतां रो सोच करे है । क्यूं के जीव (आत्मा) तो सत् वा नित्य है, वो कदेई मरे नहीं । ओ शरीर (अनात्मा) असत् वा अनित्य है, ओ शरीर मरे तो भी जीव तो मरे नहीं । असत् चीज (शरीर) री सत्ता नहीं और सत् चीज़ (जीव) रो अभाव नहीं । असत् शरीर नाश वालो है और सत् आत्मा वा

जीव रो कदेई नाश नहीं हुवे । ज्यूं शरीर में बाळपणो, जवानी, बुढापो आवे ज्यूं मौत भी आवे । मिनख ज्यूं फाटोड़ा कपड़ा ने उतार नाख देवे और नवा कपड़ा पैर लेवे, ज्यूं ओ जीव पुराणा शरीर ने छोड नवो शरीर धारण करे है । इण अमर जीव ने जो मरियोडो जाणे वो कीं नहीं जाणे, कारण न तो जीव मरे है और न कोई इण ने मारे है । इण जीव ने न तो वास्ते बाळ सके. न पाणी गाळ सके, न बायरो सुखाय सके और न कोई शस्त्र इणने काट सके । ओ तो अमर है । ओ जीव कठासूं आयो जिणरी ठा पड़े नहीं, जलमे जरां जरूर दीसे । मरियां पछे भी ठा पड़े नहीं के ओ कठे गयो । इण वास्ते इण जीव रो सोच करणो विरथा है । जे तूं यूं जाणे के जलमे जिको मरे और मरे जिको फेर जलमे, तो पण थनै सोच करणो नहीं चहीजे क्यूं के जलमणो और मरणो तो सासतो हूतो ही रवे है । सब देह–धारियां री देह हीज मरे और जलमे है, जीव न तो जलमे है और न मरे है । कोई पण इण अमर जीव ने मार नहीं सके , इण वास्ते तूं किणी जीव रो सोच मत कर । जे तूं धर्म री आर लोकीक री कांनी देख फिकर करे तो भी थनैं घबरावणो नहीं चहीजे, क्यूं के क्षत्रिय रो धर्म है के धर्म--जुद्ध अवस करणो, जिण सूं कल्याण हुवे । थारे तो दोनूं हाथां में लाडू है के जे तू जुद्ध में मारियो गयो तो तूं सीधो स्वर्ग में जावेला और जे तूं जीत गयो तो थनैं इण धरती रो राज मिल जावेला । किणी बड़भागी ने ही एडो धर्म--जुद्ध करण रो मोको मिले है । तूं यूं समझ के स्वर्ग रो ओ खुलो दरवाजो थारा भाग्यरा उदय सूं मिल गयो है । जे तूं जुद्ध नहीं करेला तो थारो धर्म और जस नाश हुजावेला और पाप सिवाय में लागेला । संसार में थारी अपकीर्ति हुवेला । प्रतिष्ठा वाला (इज्जतदार) पुरुष री जीवतां अपकीर्ति हूणी मौत सूं भी

खराब हुवे। इण वास्ते तूं शुद्ध करण रो निश्चय कर खडो हूजा। जे तूं यूं देखे के बान्धवां ने मारण सूं तो पाप लागेला तो तूं सुख दुःख, हार जीत, हानि (नुक्साण) लाभ (फायदा) नें बराबर समझ शुद्ध कर सो थनें पाप नहीं लागेला।"

भगवान् ऊपर सांख्य-योग अथवा ज्ञान-योग री बात कही अब आगे कर्म-योग री बात फरमाई के-" कर्म दो प्रकार रा है, एक तो किणी कामना अथवा इच्छा सूँ करें और दूजा बिना इच्छा करे। पैला ने सकाम-कर्म कवै और दूजाने निष्काम-कर्म कवै है। इणां में सकाम-कर्म करण सूं तो जीव रो बन्धन हुवे और निष्काम-कर्म करणां सूं बन्धन नहीं हुवे। वेद में सांख्य-योग, सकाम-कर्म, निष्काम-कर्म, यज्ञ, याग आदि सगळा लिखिया है। जो पुरुष जिणरो अधिकारी हुवे वो उणी तरह रा कर्म करे है। ब्रह्मज्ञानी तो सांख्य अथवा ज्ञान ने ग्रहण करे जिण सूं परमानन्द हुवे। इण वास्ते तूं तो केवल कर्म करण रो अधिकारी रह, फल री इच्छा मत राख। कर्म करे वो सिद्ध हुजावे तो अथवा सिद्ध नहीं हुवे तो पण, तू दोनां में समभाव राख। इण सम-भाव राखण ने " समत्व-योग " कवे है। ओ समदर्शी पणां रो योग थनैं उण वगत रा प्राप्त हुवेला के जद थारी बुद्धि निश्चल हो जावेला। बुद्धि निश्चल हुवां सूं मन समाधि में स्थिर हो जावेला।"

अर्जुन पूछियो के "समाधि में स्थिर-बुद्धि वाला योगी री कांई दशा हुवे है? उण रा कांई लक्षण है? वो बोले कांई है? वो किण तरह बैठे है अर्थात् उणरी रैणगत कांई है? और उण रो बरताव कांई है?" ए पांच बातां पूछी। इणां रो उत्तर देवता थका।

भगवान् फरमायो के—"जद योगी आपरा मन री सब

कामना ने छोड़ आपरा स्वरूप में ही प्रसन्न रवे, जद उण ने 'स्थितप्रज्ञ' अथवा स्थिर-बुद्धि-वालो कवे है। जो योगी दुःख में तो घबरावे नहीं, सुख री लालसा करे नहीं, जिण रा राग (प्रीति) और द्वेष (वैरभाव), भय (डर) और क्रोध (गुस्सो), मिट जावे उण ने "स्थित-बुद्धि" कवे।' ओ पैला प्रश्न रो उत्तर हुवो। अब दूसरा प्रश्न रो उत्तर देवे है के—"जो मुनि सुख आवे तो उण ने सरावे नहीं, दुःख आय जावे तो उणने विसरावे नहीं, जिण रो सब चीजां सूं स्नेह (प्रेम) मिट जावे, उण री बुद्धि स्थिर हुवोडी जाणणी।" अब तीसरा प्रश्न रो उत्तर देवे है के—"ज्यूं काछवो काम नहीं करे जद आपरा हाथां पगां ने समेट कर भेळा कर लेवे है, उणी तरह जद मुनि आपरी इन्द्रियां (आंखियां, जीभ, नाक, कान, चामडी ए पांच ज्ञान करावण वाळी इन्द्रियां) नैं इन्द्रियां रा विषयां (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श) सूं खैंच लेवे ने भेळो हूयर बैठ जावे जद जाणगो के इण मुनि री बुद्धि स्थिर हो गई। भोजन नहीं करणां सूं देखणो, सुणणो, सूंघणो, पैरणो ए विषय तो आपसूं आप आगा हुजावे परंत रस, अथवा भूख तिस, मिटे नहीं। ए तो केवल परमात्मा रा दर्शण हुवां पछै ही मिटे। स्थिर-बुद्धि हुवण रा दो साधन है। एक तो इन्द्रियां ने जीतणी, ने दूजो मन ने जीतणो। सो जतन करतां २ ही ज्ञानी पुरुष रा मन ने इन्द्रियां जबरदस्ती (माडांणी) हर (उडा) कर ले जावे। इणां इन्द्रियां ने योग-साधन में लाग भगवान् रे परायण रेवण सूं वश में करणी चहीजे। जिण री इन्द्रियां बस में हुवे उणरी बुद्धि स्थिर हूजावे। दूजो मन ने बस में करणो. सो इन्द्रियां तो फेर भी दोरी सोरी बस में हो जावे परंत मनरो बस में करणो अत्यन्त कठिन है। मन ने छूट दीवी के वो तुरत विषयां कांनी चलियो जाय। जो मनुष्य मन सूं

विषयां रो ध्यान करतो रवे तो उण री विषयां में आसक्ति (प्रेम) हू जावे, आसक्ति सूं उणां विषयां में कामना वा इच्छा हुवे और कामना सूं क्रोध हुवे। विषयां री कामना हुई और वा पूरी हो गई जद तो ठीक और जे कामना पूरी नहीं हुई तो क्रोध आ जावे। क्रोध सूं मोह हुवे, मोह सूं कर्तव्य अकर्तव्य रो विचार जातो रवे अर्थात् आपरी आत्मा रो ज्ञान वा स्मृति जाती रवे। आत्मारी स्मृति जाणां सूं बुद्धि नष्ट हो जावे, बुद्धि रा नष्ट होणां सूं वो खुद नष्ट हो जावे"। अब चौथा प्रश्न रो उत्तर कवे है के- "जो पुरुष मन ने तो आत्मा रे वस में करे और इन्द्रियां ने मन रे वस में करे, फेर राग द्वेष राखियां विना इन्द्रियां सूं भोग भोगतो रवे तो उणरो चित्त स्थिर हुजावे। चित्त स्थिर हुवां सुं प्रसन्नता आवे, चित्त प्रसन्न रहणां सूं सारा दुःख मिट जावे और दुःख मिटणां सूं चित्त स्थिर रवण लाग जावे। चित्त स्थिर हुवां सूं वो पुरुष ब्रह्मनिष्ठ हो जावे अर्थात् आत्मा वा परमात्मा रो उण ने साक्षात् दर्शन हू जावे। सगळां सूं पैली चित्त रो एकाग्र (एक ठौड़ में ठहरणो) होणो जरूरी है, चित्त रे एकाग्र हुवां सूं बुद्धि आत्मा वा परमात्मा में लाग जावे। आत्मा में बुद्धि हूणां सूं परमात्मा री भावना अर्थात् ध्यान हुवे। भगवान् रा ध्यान सूं शान्ति होवे, शान्ति सूं सुख होवे। जे परम-सुख अर्थात् आनन्द प्राप्त करणो हुवे तो शान्ति राखणी। जिण पुरुष री इन्द्रियां इन्द्रियां रा विषयां में नहीं जावे और रुकयोडी रवे उण री बुद्धि स्थित वा स्थिर कहीजे।" अब पांचवां प्रश्न रा उत्तर में भगवान् सिद्ध पुरुष री दशा बतावे है के—"सिद्ध पुरुष सारा प्राणियां री रात में जागतो रवे अर्थात् जिण री इन्द्रियां वश में है वो उणां ने वश में राखण में सावचेत रवे और जिण विषयां री वासना में सारा प्राणी जागे है उण में वो सोवे है। अर्थात् उणरो ध्यान विषयां कानी जावे ही नहीं, जिण सूं वो

सतो हुवो रवे, शान्ति ने तो वो ही पुरुष प्राप्त कर सके है जो सब कामना ने छोड़ अहंता ममता ने त्याग देवे और निस्पृह (बेपरवा वा बेगरज) होय ने रवे। इण ने हीज "ब्राह्मी-स्थिति" कवे है। ब्रह्म में स्थिति होणां सूं मनुष्य ने मोह नहीं हुवे और वो मोक्ष ने प्राप्त हो जावे।

तीजो अध्याय।

लारला अध्याय में भगवान् दोय वातां कही के सांख्य वा ज्ञान सूं मनुष्य समदृष्टि ने प्राप्त हो कर कर्मां सूं नहीं बंधे ने फेर कयो के इन्द्रियां नैं वश में राख, सब कामना छोड़, अहंता ममता त्याग कर्म कर, जिण सूं घबराय नैं अर्जुन भगवान् ने पूछियो के "हे भगवन्! जद आप कर्म सूं बुद्धि वा ज्ञान ने भत्तो मानो हो तो फेर म्हनैं युद्ध करण रूप घोर कर्म में क्यूं प्रवृत्त करो (लगावो) हो ?" जद भगवान् फरमायो के-"हे अर्जुन! मैं पैली इण लोक में सांख्य-योग (ज्ञान-योग) और कर्म-योग रूप दो प्रकार री स्थिति कही ही जिण में आ बात कही ही के ज्ञानी पुरुष तो ज्ञान सूं और कर्म रा अधिकारी पुरुष कर्म करणां सूं कल्याण ने प्राप्त होवे। परंत जठा तांई ज्ञान नहीं हुवे जिंत्ते मनुष्य नैं कर्म करणा ही चहीजे। क्यूं के कर्म कियां विना अन्तःकरण वा मन शुद्ध नहीं हुवे और मन शुद्ध हुवां विना ज्ञान उपजे नहीं। कर्म करणा सो भगवान् री आराधना वा उपासना (पूजा) रे वास्ते ही करणा चाहीजे के जिणसूं निष्कामपणो आ जावे। निष्काम कर्म कियां विना कर्मां रा बन्धन कटे नहीं। केवल संन्यास अर्थात् कर्मां नैं नहीं करणां सूं और कर्मां नें छोड देणा सूं सिद्धि या मोक्ष हुवे नहीं। क्यूं के कोई पण मनुष्य कर्मां नैं बिलकुल तो छोड़ सके नहीं, और कोई पण पुरुष एक क्षण भर पण विना कर्म कियां रह सके नहीं, वो कुछ न कुछ कर्म करतो ही रवे। प्रकृति

रा तीन गुण सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण रे पराधीन रयो थको पुरुप कर्म करतो ही रवे। ज्ञान री प्राप्ति नहीं हुवे उठा तक कर्म तो करणा ही चहीजे। लोग दिखाऊ कर्मेन्द्रियां ने ऊपर (बारे) सूं रोक मन में घाट-घड़ करण वाला मिथ्या ज्ञानी करतां तो कर्म करण वालो गृहस्थी सदा भत्तो है। मन सूं इन्द्रियां ने रोक, विपयां मांय सूं आसक्ति छोड़ कर्मेन्द्रियां सूं कर्म करण वालो मनुष्य घणो आछो। इण वास्ते हे अर्जुन! तूं तो नियम-पूर्वक कर्म कर, कर्म नहीं करणां सूं कर्म करणो घणो भत्तो है। क्यूं के कर्म कियां विना शरीर रो निर्वाह पण नहीं हो सके। मनुष्य रे बन्धन हुवे है वे सब सकाम वा काम्य कर्म करणां सूं हीज हुवे है। भगवान् री आराधना रे वास्ते यज्ञ, दान, तप, आदि कर्तव्य कर्म करणां सूं बन्धन नहीं हुवे। आसक्ति छोड़, फल री इच्छा नहीं राख, भगवान् रे निमित्त कर्म कर, जिण सूं थारे बन्धन नहीं हुवेला। इण सृष्टि रा आरम्भ सूं ही कर्म करण री भगवान् आज्ञा दीवी है। कर्म करणां सूं ही लोक में जनक राजा वगैरा मोक्ष नें प्राप्त हुवा।" भगवान् फेर फरमायो के-"देख म्हारे कुछ भी प्राप्त करणो नहीं है तो पण में कर्म करूं हूं। जे में कर्म नहीं करूं तो दूजा लोग पण म्हारे देखा-देखी कर्म करणां छोड़ देवे तो लोकां रो नाश हो जावे। ज्यूं उत्तम पुरुष करे उणां री देखा-देखी दूजा लोग करे। इण लोक-व्यवहार रे वास्ते पण कर्म करणां चहीजे। अज्ञानी लोग जो कर्म कर रया है उणां ने भी बहकावणां नहीं। ज्ञानी पुरुप ने चहीजे के आप खुद सावधान हुय, आसक्ति छोड, आपरा कर्म करणा और अज्ञानियां ने प्रीति रे साथ कर्म में लगावणा। ज्ञानी तो यूं समझे है के गुण गुणां में बरते है अर्थात् इन्द्रियां आप आपरा विपयां में बरते है और आप आगो रो आगो रवे है। इण वास्ते कर्म करे

तो उणां ने म्हारे अर्थात् भगवान् रे अर्पण करदे। परमात्मा में चित्त लगाय, कामना और ममता रो त्याग कर, तूं निःशंक युद्ध कर। जीवात्मा रा शत्रु रूप राग और द्वेष रे वश नहीं हो कर आप आपरा धर्म (स्वधर्म) करणा, दूसरा धर्म (परधर्म) नहीं करणा। क्यूं के स्वधर्म में मरणो आछो परंत परधर्म में जावणो ठीक नहीं।"

इण पर अर्जुन ने शङ्का हुई के राग–द्वेष रे वश में नहीं हुवणो सो मनुष्य किणरी प्रेरणा सूं इणां रे वशीभूत हुय अनर्थ करे है, जद उण पूछियो के–"हे भगवन्! इच्छा नहीं होणा पर भी मनुष्य किणरी प्रेरणा सूं राग--द्वेष रे वस में हूयर पाप करे है?" इणरो उत्तर देवता भगवान् फरमायो के–"ओ मनुष्य कामना रे वश में हूयर पाप करे है. क्यूं के आ कामना रजोगुण सूं तो ऊठे (पैदा हुवे) है, महा अघोरी है, कदई धापे नहीं और महापापिणी है। इण कामना रा आधार वा रवण री जगां इन्द्रियां, मन और बुद्धि है। इणां नें मोहित कर कामना पाप करावे है। इण देह सूं इन्द्रियां परे (आगे) है, इन्द्रियां सूं मन आगे है, मन सूं बुद्धि आगे है और बुद्धि सूं आगे कामना है। इण वास्ते थनें चाहिजे के पैली इन्द्रियां नें जीते, इन्द्रियां ने जीतण सूं मन जितिजे, मन ने जीतणां सूं बुद्धि जितीजे और बुद्धि ने जीतियां सूं कामना जितीजे। तूं इण कामना रूपिणीं वैरण ने मार, जिण सूं थारो कल्याण हुवे।"

चौथो अध्याय।

श्रीभगवान् फरमायो के–" हे अर्जुन! ओ कर्मयोग मैं पैली सूरजजी ने कयो। सूरजजी आप रा बेटा श्राद्धदेव मनु ने कयो ने श्राद्धदेव आप रा बेटा इक्ष्वाकु राजा ने कयो। इण परम्परा सूं लोग इण योग ने जाणता हा। अब घणा बरस बीतण रा कारण सूं लोग इणने भूल गया है।" जद अर्जुन ने शङ्का उपजी और

कयो के-" हे भगवन् ! आप रो जन्म तो अवार हुवो है और सूरजजी रो जन्म अनेक जुगां पैली हुवो। पछै आप उणां ने उपदेश किण तरह कियो ? " जद

श्रीभगवान् फरमायो के-" हे अर्जुन ! मैं अजन्मा, अव्यय (नाश-रहित) और सब प्राणियां रो ईश्वर हूँ तो भी मैं अवतार धारण करूं हूं। इण तरह रा म्हारा केई अवतार पैली हो चुका है। अवतार धारण रो कारण ओ है के जद जद इण पृथिवी माथै अधर्म वध जाय, धर्म घट जाय, जद जद मैं अवतार लेयर दुष्टां ने तो दण्ड देऊं, सत्पुरुषां री रक्षा करूं और धर्म री पाछी थापना करूं हूं। जो लोग म्हारा अवतार धारण करण रा इण कारण नैं समझे है वे म्हांसूं प्रीति करे, प्रीति सूं भक्ति हुवे, भक्ति सूं म्हारे शरण में आवे और म्हारा शरण मैं आया सूं म्हनैं प्राप्त होवे। जो मनुष्य म्हनैं जिण भाव सूं भजै उण मनुष्य नैं मैं पाछो उणी भाव सूं भजूं हूँ अर्थात् सकाम-कर्म करणवालां री कामना पूरी करूं हूं और निष्काम-कर्म करण वालां ने मोक्ष देऊं हूं। सकाम-कर्म करण वाला तो देवतां ने भजे और निष्काम कर्म करण वाला म्हनैं भजे है। देवतां ने भजण सूं पण फल तो मैं ही देऊं हूं। इण संसार ने चलावण वास्ते मैं ही तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ए च्यार वर्ण बणाया है और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ए च्यार आश्रम पण मैं ही बणाया है और इणां वर्ण और आश्रमां रा धर्म पण मैं बणाया है। म्हारे कर्मां री फल री इच्छा नहीं है जिण सूं कर्मां रो म्हारे लेप नहीं लागे। मैं संसार रो रचणवालो हुवण सूं इण रो कर्ता हूं तो पण मैं अकर्ता हूं, क्यूं के म्हारे कर्मां सूं बन्धन नहीं हुवे। मैं आसक्ति रहित और असङ्ग हूँ। ज्यूं आकाश असङ्ग है ज्यूं मैं पण असङ्ग हूँ। इण प्रकार आगला लोग कर्म करता आया है, उणी तरह तूं

पण भी कर्म कर। कर्म नैं समझणो कठिण है इण वास्ते मैं थनैं बताऊँ के कर्म कांई है, अकर्म कांई है और विकर्म कांई है ? शास्त्र में लिखिया मुजब करणो तो "कर्म" है। कुछ भी कर्म नहीं करणो ओ "अकर्म" है और शास्त्र में लिखिया मुजब कर्म नहीं करणो और आपरी मरजी मुजब कर्म करणो "विकर्म" है। जो कर्म ने तो अकर्म समझे और अकर्म ने कर्म समझे वो ही मनुष्यां में बुद्धिमान् है अर्थात् ईश्वर री आराधना रा संध्या, वैश्वदेव आदि कर्मां ने तो अकर्म अर्थात् बन्धन रा कारण नहीं समझे और अकर्म अर्थात् संध्या, वैश्वदेव आदि शास्त्र में लिखिया हुवा कर्मां नैं नहीं करण में पाप लागणा सूं कर्म अर्थात् बन्धन रा कारण समझे वो ही बुद्धिमान् है। इण रो सार ओ है के भगवान् री आराधनारूप निष्काम कर्म करण में तो बन्धन नहीं है और उणां रा नहीं करणा में बन्धन है। निष्काम कर्म रो ओ लक्षण है के कामना रा संकल्प अर्थात् विचार विना, और फळ री इच्छा राखियां विना, जो कर्म भगवान् री प्रीति रे वास्ते किया जावे वे निष्काम कर्म है। भगवान् ने प्रसन्न करण रे वास्ते जो कर्म किया जावे वे निष्काम कर्म है। इसा निष्काम कर्म ज्ञानरूपी बास्ते सूं भस्म हो जावे है, इण वास्ते ज्ञानी ने ही लोग पण्डित कवे है। उण ज्ञानी रा ए लक्षण है के सब परिग्रह (चीज बस्त) रो त्याग कर, आशा छोड़, मन नैं वश में कर, केवल शरीर रा निर्वाह रे वास्ते थोड़ा सा कर्म करे। आप सूं आप जो चीज मिल जाय उण में ही संतोप कर लेवे, सुख दुःख ने ज्यूं आवे ज्यूं सह लेवे, किणी सूं ईरखा राखे नहीं, कार्य री सिद्धि हो जाय तो वा भला और बिगड़ जाय तो वा भला, इण तरह समदर्शी होकर जो कर्म करे वो कर्मां सूं कदे ही नहीं बन्धे। वो तो यूं समझे के सब ब्रह्म रूप है, यज्ञ में होमण री चीज हवि (शाकल्य घी) वगैरा ब्रह्म रूप है,

होमणो ओ कर्म ब्रह्म रूप है, अग्नि ब्रह्म रूप है, होम करणवाळो यजमान ब्रह्म रूप है, सब ब्रह्म-रूप है तो उण रे बन्धन नहीं हुवे और वो ब्रह्म में ही लीन हो जावे । ऐ यज्ञ केई तरह रा है. परंत सब यज्ञां करतां ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है । ज्ञान रे समान कोई पवित्र करण वाळो नहीं है । श्रद्धावाळा पुरुष नैं ज्ञान री प्राप्ति हुवे है । जो गुरु रा बतायोड़ा साधनां नैं बराबर करतो रवे और इन्द्रियां ने वश में राखे उण ने ज्ञान हो जावे और ज्ञान हुवां सूं चित्त में शान्ति आ जावे । शान्ति सूं सुख हुवे । परंत जो पुरुष खुद तो जाणे नहीं, गुरु रा बतायोड़ा साधन पर विश्वास राखे नहीं, साधन करे नहीं और श्रद्धा नहीं हुणां सूं सन्देह में डांवाडोल रवे, उण ने ज्ञान री प्राप्ति नहीं हुवे । सन्देह वाळा पुरुष ने न तो इण लोक में और न परलोक में सुख हुवे । इण वास्ते तूं अज्ञान रा सबब सूं उत्पन्न (पैदा) हुवोडा संदेह ने ज्ञानरूपी खड्ग सूं काट ने योग-साधन में लाग जा और थारा स्वधर्म रो पालन कर अर्थात् युद्ध कर । ”

पाँचवों अध्याय ।

इण पर अर्जुन ने फेर शंका हुई के भगवान् कर्मां रो त्याग करणो बतायो और कर्म करणां भी बताया जरां पूछियो के-“हे भगवन् ! आप कर्मां रो त्याग रूप संन्यास बतायो और कर्म करणा ओ भी कयो, सो इणां दोनां मांय सूं कल्याण करण वाळो किसो है ? सो म्हनैं बतावो ।” जद

श्री भगवान् फरमायो के-“कर्मां रा फळ रो त्याग रूप संन्यास और निष्काम कर्म करण रूप कर्म-योग, दोनूं ही कल्याण रा करण वाळा है । इणां दोनां में कर्म रा फळ रो त्याग रूप कर्म-योग सोरो है जिण सूं ओ बत्तो है । संन्यासी उणने कवे है के जो राग द्वेष ने छोड़ भगवान् री प्रसन्नता रे वास्ते

कर्म करे। सुख दुःख, सरदी गरमी, मान अपमान, हानि लाभ, जीत हार, वगैरा द्वन्द्वां सूं जो छूट जाय वो ही संन्यासी है। ज्ञान (सांख्य) और कर्म दोनूं एक ही बात है, न्यारा न्यारा नहीं है। जो फळ (मोक्ष) ज्ञान सूं मिले वो ही कर्म--योग सूं मिले। संन्यासी ने फळ मोडो मिले और कर्म--योगी ने फळ बेगो मिले। क्यूं के भगवान् री प्रसन्नता रे वास्ते कियोड़ा कर्मां सूं अन्तःकरण शुद्ध हो जावे, चित्त शुद्ध हुवां सूं भगवान् री भक्ति अथवा ज्ञान हो जावे और भक्ति अथवा ज्ञान सूं पुरुष परमपद नैं प्राप्त हो जावे। चालतो, सोवतो, बैठतो, ऊठतो, खावतो, हंगतो, मूततो, आंख टिमकारतो, मींचतो जो कुछ काम करतो हुवो योगी फळ री आसक्ति छोड़ देवे न सब कर्म भगवान् रे अर्पण कर देवे उण मनुष्य रे बन्धन हुवे नहीं और पाप लागे नहीं। योगी लोग आत्मा अर्थात् अन्तःकरण री शुद्धि वा पवित्रतारे वास्ते फळ री आसक्ति छोड देह सूं, मन सूं, बुद्धि सूं और केवल इन्द्रियां सूं कर्म किया करे है। कर्मां रा फळ री आसक्ति छोडणां सूं उणां कर्मां ने परमेश्वर रे अर्पण कर देणां सूं, उणां कर्मां रो फळ भोगणो पड़े नहीं। भगवान् रे अर्पण करण रा विचार सूं जो कर्म करे वो पुरुष मुक्ति ने प्राप्त हुजावे। फळ में आसक्ति राखण सूं तो मनुष्य बंध जावे और आसक्ति छोडणां सूं मुक्त हो (छूट) जावे। मुक्ति री प्राप्ति रे वास्ते मनुष्य ने समदर्शी होवणो चहीजे। ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्तो, चाण्डाळ ने समदृष्टि सूं देखणां के ऐ सब भगवान् रा स्वरूप है। ज्ञानी सब ने ब्रह्म रूप समझे और ब्रह्म में कोई दोष है नहीं। जो ब्राह्मण ने तो ब्राह्मण समझे और चाण्डाल ने चाण्डाल समझे वो तो ज्ञानी नहीं है। जिणने ब्राह्मणपणां रो और चाण्डालपणां रो भान ही नहीं है और केवल ब्रह्म-पणां रो हीज भाव है, वो ज्ञानी है।

इसो हुवणो बड़ो कठिण है। केवणो सोरो है परंत इण तरह रेवणो दोरो है। जिण रा राग द्वेप मिट जावे वो हीज सब ने ब्रह्म जाण सके। ज्यूं २ राग द्वेप मिटता जावे ज्यूं २ ब्रह्मज्ञान हूतो जावे। सुख आयां राजी नहीं हुवे और दुःख आयां वेराजी हुय कळपावे नहीं, वो ब्रह्मज्ञानी है। विपयां रा जित्ता भोग है वे सब दुःख रा हीज कारण है। काम, क्रोध वगैरा नें जो रोक सके वो ही योगी है और वो ही सुखी है। योग–साधन वास्ते प्राणायाम कर, प्राण और अपान वायु ने वश में करणा जिण सूं मन, बुद्धि और इन्द्रियां वश में हो जावे। जिण योगी री इच्छा, भय, क्रोध आदि मिट गया है वो सदा मुक्त हीज है। सगळा यज्ञ, तप, दान रो भोगणवालो, सब लोगां रो स्वामी वा ईश्वर, सगळा प्राणियां रो मित्र म्हनैं अर्थात् परमातमा नैं जाण लेणां सूं म्हारा भक्त मुक्ति वा परम शान्ति ने प्राप्त हो जावे है।"

छठो अध्याय।

श्री भगवान् फरमायो के–" हे अर्जुन ! जो पुरुप कर्मां रा फळ रो त्याग करे अर्थात् ओ मैं जप, तप, वलि, वैश्वदेव, आदि पुण्य–कर्म कियो जिण सूं म्हारे सुख होवे और दुःख मिटे इण तरह रो विचार ही मन में नहीं लावे और सदा कर्तव्य कर्म संध्या, वैश्वदेव, गायत्री-जप आदि करतो रवे तो वो ही तो संन्यासी है और वो ही योगी है। अग्निहोत्र छोड़ भगवां कपड़ा पैर लेवण सूं संन्यासी नहीं हुवे और आपरा वर्णाश्रम–धर्म–कर्म करणा छोड़ देवणा सूं योगी नहीं हुवे। जिण मनुष्य रा मन रा संकल्प विकल्प नहीं मिटे वो न तो योगी है और न संन्यासी है। संन्यासी और योगी तो एक ही चीज है, क्यूं के जो कर्मां रा फळ रो त्याग करे वो ही संन्यासी है और वो ही योगी है। जिण योगी ने ज्ञान प्राप्त करण री इच्छा है उणने साधन दशा में तो निष्काम कर्म करणा चहीजे,

जिण सूं मन शुद्ध हो जावे और चित्त शुद्ध हुयां सूं ज्ञान प्राप्ति री योग्यता होवे । ज्ञान हुवां सूं कर्म-योग आप ही छूट जाय और शान्ति आ जाय । परंत ज्ञान-प्राप्ति हुवां बिना कर्म छोड़णा नहीं । ज्ञानरी प्राप्ति रे वास्ते आत्मा सूं आत्मा रो उद्धार करणो अर्थात् विवेक-युक्त मन सूं संसार में डूबता जीव ने विषयां सूं छुडावणो । आत्मा ही आत्मा रो बन्धु है और आत्मा ही आत्मा रो शत्रु है । अर्थात् वो ही मन विषयां में आसक्त नहीं हुवे जद तो जीव री मुक्ति रो कारण होवणा सूं जीव रो बन्धु वा भलो करण वाळो है और वो ही मन विषयां में आसक्त हुवे जद जीव ने संसार में पटकण रो कारण होवणां सूं जीव रो शत्रु है । वश में कियोडो मन तो जीव रो बन्धु है और वश में नहीं कियोडो मन जीव रो वैरी है । जिण पुरुष रो मन सरदी गरमी, सुख दुःख, मान अपमान, आदि द्वन्द्वां में जीतियोडो हुवे उण शान्त पुरुष रा हिरदा में परमात्मा विराजमान रवे । जिण रो मन शास्त्र-ज्ञान और अनुभव-ज्ञान एं दोनां सूं संतोष वाळो है, जिण इन्द्रियां और मन ने जीत लिया है, जिणरा मन में कोई विकार नहीं हुवे जिण रे सोनो और कूडा कचरो बराबर है, वो ही योगी है अर्थात् सम-बुद्धिवाळो योगी सब सूं बत्तो है । योगाभ्यास रो ओ रस्तो है के योग-साधन करण वाळा नैं एकान्त में रहणो चहीजे । आप रा चित्त और शरीर ने जीतणो चहीजे, किणी पुरुष री आशा नहीं राखणी चहीजे, कोई बिरथा (बिना जरूरत री) चीज कनै नहीं राखणी, पवित्र जगां स्थिर आसण जमावणो जो नहीं तो घणो ऊंचो हुवे और न घणो नीचो हुवे । सगळां रे नीचे डाब (कुश) रो आसण बिछावणो, उणरे ऊपर मृग-छाला बिछावणी और उणरे ऊपर रेशमी वा सूती आसण बिछावणो । इसा आसण माथे पूर्व कांनी या उत्तर कांनी मूंडो कर बैठणो । पछै मन ने

एकाग्र कर इन्द्रियां री और चित्त री वृत्तियां वा व्यापार ने रोक अन्तःकरण री शुद्धि वा पवित्रतारे वास्ते योग साजणो अर्थात् मन ने परमेश्वर में लगावणो । शरीर री कमर, गरदन, माथा ने पादरा राखणा. आप रा नाक री अणी कांनी देखतो रैवणो, आंखियां ने आधी खुली और आधी मींचयोडी राखणी, अणी सिवाय दूजी कांनी देखणो नहीं । इण तरह सूं अभ्यास करतां करतां मन स्थिर होजावे । भगवान् में मन लागणां सूं चित्त ने शान्ति मिल जावे और परमात्मा रा स्वरूप नें प्राप्त हो जावे । योगी नें न तो घणो खावणो और न थोडो खावणो चहीजे. प्रमाण सूं भोजन करणो चहीजे, प्रमाण सूं फिरणो गिरणो, प्रमाण सूं हिलणो, प्रमाण सूं नींद लेवणो और प्रमाण सूं जागणो । यूं करतां २ जद चित्त मांय सूं सगळी कामना निकल जाय, वेगरज वो निश्चल हो कर मन परमात्मा में लाग जाय, जद जाणणो के योग सध गयो । दुःख रा संयोग ने मिटावण रो नाम ही "योग" है । जीवात्मा रो परमात्मा रे साथ संयोग हो जावणो हीज "योग" कहीजे । इण योग-साधन सूं वड़ कर कोई लाभ नहीं है । योग-साधन करतां जे मन अठी उठी चलियो जाय तो इण ने पाछो लावणो ओर भगवान् में लगावणो । सब प्राणियां ने परमात्मा में देखणा और परमात्मा ने सब प्राणियां में देखणा और सब जीवां रा सुख दुःख ने आप रा सुख दुःख रे समान समझणा ।'

इण पर अर्जुन कयो के-"महाराज ! आप समता राखण रूप जो योग-साधन बतायो सो स्थिर-भाव सूं सधणो कठिन दीसे है कारण ओ मन अत्यन्त चंचल है । मन ने वश में करणो तो पवन ने वश में करण ज्यूं बड़ो कठिण है ।"

जिण पर भगवान् फरमायो के-"हां. अर्जुन ! थारो कैणो साचो

है, मन ने वश करणो बड़ो कठिन है, क्यूं के ओ अत्यन्त चंचल है। परंत वैराग्य धारण करणां सूं और अभ्यास करणां सूं मन जितीज सके है। मन ने जीतण रा ए दोय हीज उपाय है। ज्यूं ज्यूं मन जावे ज्यूं ज्यूं इण ने खैंच पाछो लावणो। जो पुरुष वैराग्य और अभ्यास सूं यत्न करतो रवे वो ही योग साध सके और जो मन ने नहीं जीत सके उण रे योग नहीं सध सके। अभ्यास करणां सूं हरेक बात आय सके तो फेर योग क्यूं नहीं आवे ?"

इण पर अर्जुन फेर शंका कर पूछियो के—"योग साधतां साधतां ही बिच में अभ्यास छूट जावे तो उण योगी री कांई दशा हुवे ?" जिण पर भगवान् फरमायो के—"योग–साधन करण वाळा रो नाश तो कठे पण हुवे नहीं। क्यूं के कल्याण कर्म करण वाळा री दुर्गति हुवे नहीं। बिच में योग सूं भ्रष्ट हुवोडो पुरुष उण योग रा पुण्य रा प्रताप सूं केई बरसां तांई स्वर्ग में भोग भोग, फेर अठे पृथिवी माथे भाग्यवानां रे घर में जलम लेवे, अथवा योगियां रे घरे जलम ले लारला जलम रा संस्कारां सूं पाछो योग-साधन में हीं लाग जावे। इण तरह अनेक जलमां में योग-साधन करतो २ वो योगी भगवान् ने प्राप्त हो जावे। इसो योगी सारा तपस्वी, ज्ञानी, कर्मकाण्डी, पुरुषां सूं भत्तो है। इण वास्ते हे अर्जुन ! तूं योगी होजा। योगियां में पण जो आपरा अन्तःकरण (चित्त) नैं भगवान् में लगाय देवे और श्रद्धा रे साथे परमात्मारी उपासना करे वो भत्तो है। म्हारी (भगवान् री) उपासना करण वाळो योगी संपूर्ण प्रकार रा योगियां सूं श्रेष्ठ है।"

सातवों अध्याय ।

भगवान् फेर फरमायो के—" म्हारो आश्रय वा शरणो ले जो योगी म्हां में मन लगाय देवे वो म्हनैं जिण तरह सूं जाणे सो मैं थनैं

कहूं हूं सो सुण। इण ज्ञान ने प्राप्त कियां सूं फेर कुछ भी जाणण लायक बात बाकी नहीं रवे। वा बात आ है के-परमात्मा री प्रकृति दो प्रकार री है, जिण में एक तो जड़ और दूजी चेतन है। जड़ प्रकृति में पांच महाभूत (पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, और आकाश) और मन, बुद्धि, अहङ्कार ए तीन (और इणां रा कारण-भूत अहङ्कार, महत्तत्व और अविद्या ए तीन) कुल आठ पदार्थ है। ऐ सब आठ ही पदार्थ भगवान् री मायाशक्ति है। इणां आठां ने ही "अपरा प्रकृति वा क्षेत्र" कवे है। दूजो चेतन नामवाळो जीव है जिण ने "परा प्रकृति वा क्षेत्रज्ञ" कवे है और जो इण सम्पूर्ण जगत् ने धारण करे है। सब जगत् री उत्पत्ति इणां दोनां जड़ और चेतन प्रकृतियां सूं हुवे है और मैं (भगवान्) इण जगत् री उत्पत्ति, स्थिति और संहार करूँ हूं। म्हारे सिवाय इण जगत् में कुछ नहीं है। जड़ है तो म्हारो स्वरूप है और चेतन है तो म्हारो स्वरूप है। ज्यूं डोरी में मिणियां पोयोड़ा रवे ज्यूँ सब जगत् म्हा में पोयोडो है। जळ में रस मैं हूं, सूरज और चन्द्रमा रो प्रकाश मैं हूं, वेदां में ओंकार मैं हूं, आकास में शब्द मैं हूं, मनुष्यां में पुरुषार्थ (उद्यम) मैं हूं, पृथिवी में गन्ध मैं हूं, अग्नि में तेज मैं हूं, प्राणियां में जीवणो मैं हूं, तपस्वियां में तपस्या मैं हूं। सब चर अचर प्राणिमात्र रो बीज मैं हूं। बुद्धिवानां में बुद्धि मैं हूं, तेजवाळां में तेज मैं हूं। बळवानां में बळ मैं हूं, पुत्र उत्पन्न करण वाळो कामदेव मैं हूं। जो जो सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण संबन्धी भाव मनुष्यां में पैदा हुवे है वे सब म्हां सूं पैदा हुवे है। वे सब म्हां सूं हुवे है परन्त मैं उणां रे आधीन नहीं हूं। गुण म्हारे आधीन रयोड़ा काम करे है। इणां तीन गुणां सूं ओ सब जगत् मोहित हो रयो है और मोहित होणां सूं ही म्हनैं नहीं पहचाणे है। आ म्हारी माया बड़ी अद्भुत है। सतोगुण आदि

गुणां री विकार-रूप है और दोरी जितीजे है। जो म्हारो शरणो लेवे वो ही इण माया ने जीत सके। म्हारो शरणो लेवणवाळा म्हारा च्यार प्रकार रा भक्त हुवे है जिणां में एक तो आर्त अर्थात् दुःखी ज्यूं गजराज, द्रौपदी, गोप (मूसळधार वर्षा होवणा सूं शरण में आया)। दूजो जिज्ञासु अर्थात् ब्रह्मज्ञान री इच्छावाळो ज्यूं जनक, मुचुकुन्द, श्राद्धदेव। तीजो अर्थार्थी अर्थात् धन वा कामना री इच्छा वाळो, ज्यूं सुग्रीव, विभीषण। और चौथो ज्ञानी अर्थात् निष्काम आराधना करण वाळो, ज्यूं सनकादिक, नारद, शुकदेव। इणां च्यारूं प्रकार रा भक्तां में म्हारो ज्ञानी-भक्त सर्व-श्रेष्ठ है। ज्ञानी भक्त और भगवान् तो एक रूप है। जो समस्त प्राणीमात्र ने ही वासुदेव भगवान् वा ब्रह्मरूप समझे, इसो ज्ञानी दुर्लभ है। जो पुरुष म्हनैं जिण भाव सूं भजे है मैं उणने उणी मुजब फळ देऊं हूं। चावे वो फळ दूजा देवतां री मारफत मिले। असल फळ देवण वाळो तो मैं हूं। देवतां री पूजा करण वाळा देवतां नें प्राप्त हुवे, म्हारी भक्ति करण वाळा म्हनैं प्राप्त हुवे। मैं अबार म्हारी माया सूं मनुष्य रूप धारण कर राखियो है तो भी लोग म्हारी माया रे वश में आयोडा म्हारा असली स्वरूप नैं नहीं जाणे है। मैं भूत, भविष्य और वर्तमान सगळी बातां नैं जाणूं हूं, परन्त म्हनैं कोई नहीं जाणे है। केवळ द्वन्द्वां सूं छूटोडा म्हारो भजन करण वाळा ही म्हनैं जाण सके है। जो भक्त म्हारो भजन करे है वो ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ सहित म्हारा स्वरूप नैं जाण जाय है और मरण समय में म्हामें मन लगावे है और म्हनैं नहीं भूले है।"

आठवों अध्याय।

लारला अध्याय में भगवान् ब्रह्म, अध्यात्म आदि शब्द कया जिणां रो अर्थ पूछण वास्ते अर्जुन बोलियो के–"हे भगवन्! ब्रह्म

कांई है ? १ अध्यात्म कांई है ? २, कर्म कांई है ? ३, अधिभूत किण ने कवे है ४, अधिदैव कुण है ५, अधियज्ञ कुण है ६, अन्त समा में आपने किण तरह जाणणा चहीजे ? ७।" ए सात प्रश्न किया। जद

श्रीभगवान् फरमायो के–"अक्षर अथवा जिण रो नाश नहीं हुवे उणने तूं "ब्रह्म" जाण। ओ पैला प्रश्न रो उत्तर हुवो ।१। उण ब्रह्म रो स्व-भाव अर्थात् निज स्वरूप प्रत्यक् चैतन्य आत्मा रूप जीव "अध्यात्म" है। ओ दूजा प्रश्न रो उत्तर हुवो ।२। भूत अर्थात् स्थावर जंगम प्राणीं मात्र नैं पैदा करण वाळो और उणां नैं वन्धावण वाळो जो विसर्ग अर्थात् त्याग नाम शास्त्रां में लिखियोडा यज्ञ, दान, तप आदि करणा ओ "कर्म" है। ओ तीजा प्रश्न रो उत्तर हुवो ।३। जो कोई भी क्षर अर्थात् नाश हुवण वाळी चीज है सो "अधिभूत" है अथवा पैदा हुवण वाळी और नाश हुवण वाळी वस्तु मात्र "अधिभूत" है। ओ चौथा प्रश्न रो उत्तर हुवो ।४। सूरजजी रा मण्डल में विराजमान हिरण्यगर्भ, अथवा आदि कर्ता ब्रह्माजी, जो सब प्राणियां री इन्द्रियां पर कृपा किया करे है "अधिदैवत" है। ओ पांचवां प्रश्न रो उत्तर हुवो ।५। समस्त यज्ञां रो अधिष्ठाता, अर्थात् फळ देवण वाळो, मैं विष्णु भगवान् हूं सो इण देह में "अधियज्ञ" हूं। यज्ञ सूं वृष्टि (मेह) द्वारा देह रो निर्वाह हुवे जिण सूं देह रो सम्बन्ध बतायो है। ओ छठा प्रश्न रो उत्तर हुवो।६। मनुष्य रो अन्तसमो आजावे जद केवळ म्हारो ही स्मरण करतो हुवो जो पुरुष देह रो त्याग करे वो म्हारा स्वरूप नैं प्राप्त हुवे। ओ सातवां प्रश्न रो उत्तर हुवो ।७। अन्त-समा में जिण पुरुष रे जो भाव हुवे उण मुजब ही उण री गति हुवे। लोकीक में पण कवे है "अन्त मता सो पार गता।" इण वास्ते पुरुष ने चहीजे के म्हारो सासतो

स्मरण करतो रवे। उण स्मरण रा संस्कार सूं उणने अन्त–समा में भगवान् ही याद आवे। इणी वास्ते नित्यान रा नित्य नियम करणा बताया है। हे अर्जुन! तू म्हारो ही स्मरण करतो रह और जुद्ध कर। जद थारो मन और बुद्धि दोनूं म्हां में लाग जावेला तो तूं निश्चय ही म्हनैं प्राप्त हो जावेला। इण में कोई सन्देह नहीं है। सूरजजी रा मण्डल में विराजमान परम पुरुष रो जो सदाई चिन्तन करतो रवे तो वो परब्रह्म ने प्राप्त हुवे। सूरजजी तो प्रत्यक्ष देव है। जो योगी गुरु रा बतायोडा योग रा मार्ग सूं कवि अर्थात् सर्वज्ञ, पुराण अर्थात् अनादि, सब जगत् रो नियन्ता अर्थात् चलावण वाळो, अत्यन्त सूक्ष्म नाम छोटो वा बारीक, सब नैं कर्मां रो फळ देवण वाळो, चिन्तन (समझ) में नहीं आवणवाळो, सूरजजी रे समान संपूर्ण जगत् रो प्रकाश करण वाळो, मोह रूपी अज्ञान–अन्धकार सूं परे अर्थात् अज्ञान रूप अन्धकार रो नाश करणवाळो जो मैं हूं उण भगवान् रा स्वरूप रो चिन्तन करतो रवे वो दिव्य परम पुरुष वा परब्रह्म ने प्राप्त हुवे। जो "ओंकार" इण अक्षर ने वेद रा जाणण वाळा जाणे है के ओ परम ब्रह्म रो स्वरूप है, राग द्वेष रहित संन्यासी जिण में प्रवेश करे है और जिणरी इच्छा कर ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत री पाळना करे है वो 'ओं' इसो अक्षर अब मैं थनैं कहूं हूं। सब इन्द्रियां रा छेदां ने रोक, मन नैं हृदय में स्थिर कर और प्राण वायु ने दोनूं भँवारां रे बिच में ठहराय जो मनुष्य 'ओंकार' रूप एक अक्षर रो वाणी सूं जप करतो हुवो और भगवान् रो स्मरण करतो हुओ देह रो परित्याग करे है (अर्थात् मरे है) तो वो परमगति अर्थात् मोक्ष ने प्राप्त हुवे। जो दूजी किणी चीज कांनी आपरा चित नैं नहीं लगाय नित्य प्रति केवल म्हारो ही स्मरण करतो रवे तो मैं उण एकाग्र मन वाळा योगी नै सोरो मिलूं। और जो म्हनैं प्राप्त हो

जाय है उणां रो जलम मरण मिट जाय है और सब दुःखां सूं छूट जाय है अर्थात् परम मुक्ति नैं प्राप्त हो जाय है। दूजा जित्ता प्राणी मरे है वे सब ब्रह्माजी रा सत्य लोक तक रा सब लोकां में गयोड़ा पाछा पृथिवी पर जलम लेवे है, किन्तु म्हनैं प्राप्त हो जावण वाळा पाछा जलम-मरण में नहीं आवे है। इण वास्ते तूं तो म्हनैं प्राप्त करण री कोशिश कर। कल्प रा आदि में तो जीवां री उत्पत्ति हुवे है और कल्प रा अन्त में जीवां रो लय हुवे है। इण तरह ओ जलम-मरण रो चक्कर सासतो चालतो रवे है। ब्रह्माजी री आयु दिव्य सौ वरसां री है, जिण में दो हजार वार चार युगां री चौकड़ी हुवे और जिणां रा देवतां रा तो बारह लाख वरस और मनुष्यां रा आठ खडब चौसठ अडब वरस हुवे। इत्ती आयु वाळा ब्रह्माजी रो भी लय (नाश) हो जावे है तो दूजा लोगां री तो वात ही कांई करणी? मनुष्यां रे मरियां पछै उणां री दोय प्रकार री गति होवे है। एक तो पितृ-मार्ग री और दूजी देव-मार्ग री। पितृमार्ग सूं गयोडा जीव तो पाछा आवे है और देवमार्ग सूं गयोडा जीव पाछा नहीं आवे है। पितृमार्ग रो रस्तो ओ है के-मरियोड़ा जीव ने बाळे जद जो धूँवों हुवे जिण सूं वो धूँवां रा अभिमानी देवता, रात रा अभिमानी देवता, अन्धारा पखवाडा रा अभिमानी देवता, छः महीना रा दक्षिणायन (जद सूरजजी दक्षिण दिशा में रया करे है) रा अभिमानी देवता कनैं जाय कर पितृलोक में जावे और उठां सूं आगे चन्द्रमा रा लोक में जावे। उठे आपरा पुण्य रो फळ भोग पाछो पृथिवी पर आवे है। अब देवमार्ग बतावे है के-मरियोडो जीव अग्नि री जोत (आर्चि) रा अभिमानी देवता, दिन रा अभिमानी देवता, चांदणा पखवाडा रा अभिमानी देवता, छः महीना रा उत्तरायण (जद सूरजजी उत्तर दिशा में रया करे है) रा अभिमानी देवता रा लोकां में हूवतो

देवतां रा लोकां में जावे। उठां सूं आगो चन्द्रमा, बीजळी, वरुण, इन्द्र लोकां में होतो हुवो ब्रह्म-लोक में चलियो जावे जठा सूं पाछो नहीं आवे। इण वास्ते हे अर्जुन ! तूं सदाई योग में चित्त लगायोड़ो रह, एकाग्र मन सूं इणां दोनां मार्गां रो विचार करतो रह। संपूर्ण वेद री पारायण (पाठ) करण सूं, वेद में लिखिया अग्निष्टोम आदि यज्ञ करण सूं, शरीर ने सुकावण वाला कृच्छ्र, चांद्रायण, आदि व्रत करण सूं, तुलादान करण सूं जो फळ बतायो है वो फळ ऊपर बताया सात प्रश्नां रा उत्तर जाणण सूं कमती है। इण वास्ते इणां बातां नैं आछी तरह जाण लेवण सूं मनुष्य सब रा कारण-रूप परमात्मा नैं प्राप्त हुवे।"

नवमो अध्याय।

फेर भगवान् फरमायो के-"हे अर्जुन ! अबै मैं थनैं सगळां सूं गुप्त ज्ञान देऊं हूं और उणरे साथ विज्ञान (अनुभव-ज्ञान) पण बताऊं हूं के जिण सूं परमात्मा रो साक्षात् अनुभव हुवे। आ विद्या सब विद्यावां री राजा है और परमगोप्य (छिपावण रे योग्य) है क्यूं के इण नैं जाण लेवण सूं सगळी अविद्या रो नाश हो जावे। वा उत्तम विद्या अर्थात् ज्ञान ओ है के-मैं परमात्मा अव्यक्त रूप (अर्थात् आंखियां आदि इन्द्रियां, मन और बुद्धि) सूं नहीं दीसतो, इण संपूर्ण जगत् में व्याप रयो हूं। ऐ सब प्राणी म्हामें रया है, परंत मैं इणां में नहीं हू, क्यूं के मैं आकाश री ज्यूं असंग (संग-रहित) हूं। सगळा जीव म्हांमें है और मैं उणा में नहीं हूं"-आ परतक आपस में विरोध वाळी (उलटी) बात है इण वास्ते भगवान् फरमायो के-"म्हारी ईश्वरपणां री चतुराई ने देख, अर्थात् म्हारी माया समझ में आवे नहीं। भगवान् में विरुद्ध और नहीं विरुद्ध सब खटे। ज्यूं आकाश

में वायु (पवन) रवे परंत पवन रो संग आकाश रे लागे नहीं, ज्यूं सब जीव म्हां में रवे परंत म्हारे जीवां रो संग लागे नहीं, क्यूं के मैं संग-रहित (असंग) हूं। कल्परा आदि में सगळा जीवां ने मैं ही रचूं हूं और कल्प रा अन्त में सगळा जीव पाछा म्हामें ही समाय (वड़) जावे है। ए सब जीव प्रकृतिरे वश में पडिया हुवा है जिणां ने मैं म्हारी माया सूं उणां रा कर्मां रे अनुसार रचूं हूं। मैं जीवां रा कर्मां में उदासीन रहूं हूं जिण सूं म्हारे कर्मां रो बन्धन लागे नहीं। "मैं कर्ता हूं" इसो म्हारे अभिमान नहीं, जिण सूं कर्मां रो बन्धन नहीं हुवे। साच पूछे तो मैं तो कीं नहीं करूं हूं। आ म्हारी माया अथवा प्रकृति सब चर और अचर जीवां नें ही रचे है और आ ही संहार करे है। आ प्रकृति म्हारे आधीन रवे है जिण सूं लोग जाणे है के मैं (भगवान्) ही सब कुछ करूं हूं। लोक म्हनें मनुष्य-स्वरूप धारण कियोडा ने पहचाणे नहीं है के मैं साक्षात् ईश्वर, कर्मां रा फळ रो देवण वाळो हूं। परंत म्हारी माया सूं मोहित हुवोड़ा जीव म्हनैं नहीं जाण सके है, क्यूं के मैं म्हारो आपो (ईश्वर पणो) छिपाय राखियो है। दैवी प्रकृति वाळा जीव म्हनैं जरूर जाणे है और वे एकाग्र मन सूं म्हारो भजन करे है। भजन करण वास्ते वे म्हारो जप (मन्त्र-जप), वेद-पाठ, कीर्तन, नमस्कार, भक्ति, भेदभाव छोड़ एक परब्रह्म रूपरी म्हारी उपासना (पूजा) करे है, केई विश्वरूप री म्हारी आराधना करे है। मैं ही तो यज्ञ (स्मृतियां में कयोड़ा वैश्वदेव आदि) हूं, मैं ही क्रतु (वेद में कयोड़ा अग्निष्टोम आदि) हूं, मैं ही स्वधा (पित्रीश्वरां ने जो अन्न दियो जावे सो) हूं, मैं ही औषध (अर्थात् गहूं आदि भक्ष्य) हूं, मैं ही मन्त्र हूं, मैं ही घृत, शाकल्य, हूं, मैं ही अग्नि हूं और मैं ही होम री क्रिया हूं। सब मैं ही मैं हूं। इण जगत्

रो पिता, माता, पालण वाळो, धारण करण वाळो (अर्थात् कर्मां रो फळ देवण वाळो), दादो, जाणण रे योग्य, पवित्रता रो कारण गंगाजी, गायत्री-जप आदि रूप, ओंकार, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद हूं। सगळा जीवां री गति अर्थात् कर्मां रो फळ, भर्त्ता (पोषण करण वाळो), प्रभु (सब रो स्वामी), साक्षी (सब जीवां रा शुभ अशुभ पाप पुण्य रो देखण वाळो), निवास (रेवण रो स्थान), शरण (शरणागतां रे शरणो लेवण रो आसरो अर्थात् उणां रा दुःखां रो मिटावण वाळो). सुहृद् (विना उपकार कियां सब रो भलो करण वाळो), प्रभव (सगळां री उत्पत्ति करण वाळो), प्रलय (सगळां रो संहार करण वाळो), स्थान (रेवण री जगां वा आधार), निधान (आगे भोग भोगणां पड़ेला उणां रो आधार), बीज (सब रो कारण) और अव्यय (नाश रहित जिणरी न तो आदि है और न अन्त है) हूं। मैं ही सूरजरूप सूं गरमी में तपूं हूं, चौमासा में मेह बरसाऊं हूं, रस खैंचूं हूं और पाछो छोडूं हूं, मैं अमृत-रूप हूं, मृत्यु-रूप हूं, मैं ही सत् (नित्य) और असत् (अनित्य) रूप हूं। जो लोग निष्काम-भाव सूं भगवान् ने भजे है उणां रा अन्तःकरण शुद्ध हो जावे है. अन्तःकरण री पवित्रता सूं उणां ने ज्ञान री प्राप्ति हुवे। ज्ञान री प्राप्ति सूं मोक्ष हुवे। सकाम कर्म करण वाळा वेद में लिखियोड़ा यज्ञ करे, सोमलता रो रस पीवे, पवित्र होवे और स्वर्ग री कामना सूं म्हारो प्रार्थना करे, वे यज्ञ रा पुण्य रा प्रताप सूं इन्द्र रा लोक (स्वर्ग) में जावे है और देवतां रा दिव्य भोग भोगे है। पुण्य क्षीण होणा पर वे पाछा इण पृथिवी पर आवे है। इण प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इण त्रयी-विद्या (तीन वेदां) में कयोड़ा धर्म-कर्म करणां सूं भोगरी कामना रे कारण सूं वारंवार जलम मरण नैं प्राप्त हुवे है।

परंत जो एकाग्र मन हूय, दूजा किणी रो चिन्तन नहीं करता केवळ म्हारी हीज उपासना करे है, उणां रा भरण पोपण री चिन्ता मैं करूं हूं । दूजा देवतां री उपासना करण वाळा पण म्हारी हीज उपासना करे है, परंत उणरी उपासना विधि-पूर्वक नहीं हुवण सूं उणां ने फळ मिले वो नाशवान् होवे है । क्यूँ के सब यज्ञ, दान, तप, आदि कर्मां रो फळ देवण वाळो तो मैं ही हूं । जो जिण देवता री उपासना करे वो उण देवतां नैं प्राप्त हुवे । जो म्हारी उपासना करे वो म्हनैं प्राप्त हुवे । जो पुरुष भक्ति रे साथ म्हारे पत्तो, पुष्प, फळ और केवळ जळ ही अर्पण करे तो मैं भक्ति सूं लायोड़ो थोड़ो और छोटो (तुच्छ) पदार्थ भी अङ्गीकार करूं हूं । इण वास्ते तूँ जो करे, खावे, होम करे, दान देवे, तपस्या करे वो सब म्हारे अपर्ण करदे । सगळा कर्म म्हारे अर्पण कर देवण सूँ तूं शुभ (आछा) और अशुभ (भूँडा) फळ देवण वाळा कर्मां सूं छूट जावेला । सगळा कर्म भगवान् रे अर्पण करण रूप योग सूं जद थारी आत्मा शुद्ध हु जावेला, जद कर्म-बन्धन कट जावेला और तूं म्हनैं प्राप्त हु जावेला । मैं सगळा पुरुषां पर समभाव सूं वरतूँ हूँ, न तो म्हारे कोई प्यारो है और न कोई वैरी है । जो म्हनैं भजे है वे म्हांमें रवे है और मैं उणां में रहूं हूं । दुराचारी हो कर पण जो म्हारो भजन करे है तो वो पण पवित्र होजावे है । पापी जीव, स्त्रियां. वैश्य, शूद्र आदि पण म्हारो भजन कर परम गति अर्थात् मुक्ति ने प्राप्त कर सके तो फेर पुण्य कर्म करण वाळा ब्राह्मण और भगवान् रा भक्त राजर्षि लोग मोक्ष नैं प्राप्त हुवे जिण में आश्चर्य कांई है । ओ मनुष्य-लोक सदा रेवण वाळो नहीं है, अर्थात् नाश हुवण वाळो है, और दुःखां सूं भरियोड़ो है सो ऐडा लोक में आयर केवळ म्हारो भजन कर । हे अर्जुन ! तूं सदाई म्हारा में मन लगा, म्हारी भक्ति कर,

म्हारी ही पूजा कर, म्हनैं ही नमस्कार कर। इण तरह म्हारे ही परायण होवण सूं और म्हां में मन लगावण सूं तूं म्हनैं ही प्राप्त होवेला।"

दसवों अध्याय।

श्रीभगवान् फरमायो के-" मैं थारा भला रे वास्ते फेर एक उत्तम बात बताऊँ हूं के म्हारा प्रभाव और म्हारी उत्पत्ति नैं न तो देवता जाणे है और न ऋषि लोग जाणे है, क्यूं के देवता और ऋषियां रो आदि-कारण मैं हूं। जो मनुष्य इण तरह सूं जाणे के मैं अजन्मा, अनादि, सगळा लोगां रो ईश्वर हूँ, तो वो मोह सूं तथा सगळा पापां सूं छूट जाय। मनुष्यां रै बुद्धि, ज्ञान, मोह नहीं होवणो, क्षमा, सत्य, दम अर्थात् बारली इन्द्रियां ने जीतणी, शम नाम शान्ति अथवा मनने जीतणो, सुख, दुःख, भव (कोई बात रो होवणो अथवा सत्ता), अभव (कोईबात रो नहीं होवणो अथवा असत्ता), भय नाम डर और अभय नाम डर रो न होणो, अहिंसा, सम-दृष्टि पणो. संतोष, तप, दान, जस, कुजस, ऐ सब बातां न्यारा २ जीवांने म्हां सूं हीज हुवे है। भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ऐ सात महर्षि और सनक, सनन्दन सनातन और सनत्कुमार ए च्यार उणां सूं पण पैला जलमियोड़ा ऋषि. स्वायम्भुव आदि चवदे मनु, ऐ सारा जणां म्हारा मन सूं जलमियोड़ा है, ऐमें म्हारी ऐश्वर्य-शक्ति वा विभूति है और इणां सूं ही सारी प्रजा परगट हुई है। इण तरह सूं जो मनुष्य म्हारी इण विभूति ने जाणे है और म्हारा योग अर्थात् ऐश्वर्य नें पिछाणे है वो योग ने प्राप्त हुवे अर्थात् उणरी समाधि लागण लाग जाय इण में संदेह नहीं। मैं ही सब पदार्थ और प्राणियां रो उत्पन्न करण वाळो अर्थात् मैं ही जगत् रो कारण हूं, म्हां सूं ही सब कुछ चाले है--इण तरह जाणण वाळा ज्ञानी लोग म्हारी

उपासना करे है । उणां भक्तां रा चित्त म्हांमें ही लागियोड़ा रवे, उणां रा प्राण म्हामें रवे, आपस में बात करे तो पण वे म्हारी हीज बात करे, ज्ञान देवे तो पण म्हारो हीज देवे, म्हारी हीज कथा करे, उण में ही सदा राजी रवे और मगन रवे । इण सूं प्रसन्न हूयर उणां रा अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप सूं बैठो हुओ मैं उणां ने ज्ञान देऊं हूं जिण सूं उणां रा अज्ञान रो नाश हो जावे और एड़ी बुद्धि देऊं के जिण सूं वे म्हनैं प्राप्त हो जावे ।"

इण पर अर्जुन ने भगवान् रा ऐश्वर्य अर्थात् विभूतियां सुणण री उत्कण्ठा हुई और भगवान् ने हाथ जोड़ कयो के—"हे भगवन् ! आप परम ब्रह्म हो, परम धाम हो और आप परम पवित्र हो सो कृपा कर आप री सारी विभूतियां म्हनें फरमावो के जिणां सूं आप इण जगत् में व्याप रया हो और ओ जगत् आपरी विभूति है सो मैं आपरा किण स्वरूप रो चिन्तन करूं ?" यूं अर्जुन पूछियो जद

श्रीभगवान् फरमायो के—"हे अर्जुन ! म्हारी विभूतियां अनन्त है इण वास्ते उणां रो छेड़ो आवे नहीं । इणां मांय सूं मैं म्हारी मुख्य मुख्य विभूतियां थनै बताऊं हूं । सगळां सूं पैली भगवान् री विभूति तो आ हीज है के समस्त प्राणी मात्र रा अन्तःकरण में रेवण वाळो अन्तर्यामी और जीव मैं हूं, उण वासुदेव रूप म्हारा स्वरूप रो चिन्तन करणो । इण जगत् रो आदि अर्थात् रचण वाळो, मध्य अर्थात् पालण वाळो और अंत अर्थात् संहार करण वाळो मैं हूं । बारे आदित्यां (सूरज) में विष्णु नामक सूरज म्हारो स्वरूप है । प्रकाश करण वाळां में विश्वव्यापी प्रकाशवाळो सूरज म्हारो स्वरूप है । गुणपचास मरुत् देवतां में मरीचि नामक मरुत् देवता म्हारो स्वरूप है । नक्षत्रां में चन्द्रमा, वेदां में सामवेद, देवतां में इन्द्र, इन्द्रियां में मन, प्राणियां में चेतना,

रुद्रां में शङ्कर भगवान्, यक्ष और राक्षसां में कुबेर, वसु देवतां में पावक, सिखर वाळां में सुमेरु पर्वत, पुरोहितां में बृहस्पति, सेनापतियां में स्वामिकार्तिक, सरोवरां में समुद्र, महर्षियां में भृगु, वाणी में ओंकार, यज्ञां में जप, स्थावरां में हिमालय, वृक्षां में पींपळ, देवर्षियां में नारद, गन्धर्वां में चित्ररथ, सिद्धां में कपिलदेवजी, घोड़ां में उच्चैःश्रवा (इन्द्र रो घोडो), हाथियां में ऐरावत, मनुष्यां में राजा, शस्त्रां में वज्र, गायां में कामधेनु, पुत्र उत्पन्न करण वाळो कामदेव, सर्पां में वासुकि, नागां में अनन्त भगवान् (शेपजी), जळचरां में वरुण, पित्रेश्वरां में अर्यमा, दण्ड देवण वाळां में यमराज, दैत्यां में प्रह्लाद, गिणती करण वाळा में काळ, पशुवां में सिंह, पक्षियां में गरुड़, पवित्र करण वाळां में पवन, शस्त्रधारियां में रामचन्द्रजी, मछियां में मगर, नदियां में गंगाजी, सब सृष्टि वा पैदा हुवण वाळां रो आदि, मध्य और अन्त, विद्या में आत्म वा ब्रह्म–विद्या, विवाद करण वाळां में विवाद, अक्षरां में अकार, समासां में द्वन्द्व समास, अविनाशी काळ वा समय, कर्मां रो फळ देवण वाळो धाता, सब रो संहार करण वाळो मृत्यु, होवण वाळा कल्याण में उत्कर्ष (बढती), स्त्रियां में धर्मराज री सात स्त्रियां (कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, श्रेधा, धृति, क्षमा), सामवेद में बृहत् साम, छन्दां में गायत्री, महीनां में मिंगसर, ऋतुवां में वसन्त, छळण वाळां (ठगां) में जूवो, तेजवानां में तेज, जीत, उद्यम, सतोगुण, ताकत वाळां में ताकत, वृष्णियां (यादवां) में वासुदेव (श्री कृष्ण भगवान्), पाण्डवां में अर्जुन (तूं), मुनियां में वेदव्यासजी. कवियां (बारीक चीजां री जांच करण वाळां) में शुक्राचार्यजी, दण्ड देवण वाळां में दण्ड, जीतण री इच्छा वाळा में नीति (Politics), गुह्य (छिपावण योग्य) पदार्थां में मून,

ज्ञान वाळां में ज्ञान, संपूर्ण प्राणीमात्र रो बीज वा कारण मैं हूं। चर और अचर सब पदार्थां में इसो कोई नहीं है जो म्हां विना हुवे। ऐ सब विभूतियां तो म्हारो अंश-मात्र (थोड़ीसीक) है, वाकी तो घणी है। उणां सगळी ने जाणण सूं कांई प्रयोजन है, किणी पुरुष में जो पराक्रम, लक्ष्मी, संपदा, शोभा, कांति है वे सब म्हारी जाण। इण पंपाळ ने छोड और आ वात जाण के इण जगत् में जो कुछ है वो सब म्हांमें है, म्हारा सूं न्यारो कुछ नहीं है। मैं म्हारा चौथाई अंश वा भाग सूं सगळा जगत् में व्याप्त हो रयो हूं।"

ग्यारहवों अध्याय।

अर्जुन बोलियो के-"हे भगवन्! म्हारे माथे कृपा करण वास्ते आप आत्म-ज्ञान संबन्धी जो ए गुह्य वचन कया जिण सूं म्हारो मोह मिट गयो। मैं आप कनैं जीवां री पैदास और नाश सुणिया और आपरी महिमा पण सुणी। मैं आपरा ईश्वर संबन्धी विराट् स्वरूप रा दर्शण कियां चाऊं हूं सो जे आप म्हनैं दिखावणो वाजिव समझता हुवो तो म्हनैं उणरा दर्शण करावो।" जद

श्रीभगवान् फरमायो के-"हे अर्जुन! तूं थारी इणां मनुष्यां री आंखियां सूं तो म्हारो विराट् स्वरूप देख नहीं सकेला, इण वास्ते मैं थनैं दिव्य नेत्र देऊं हूं जिणां सूं तूं म्हारो अलौकिक स्वरूप देख।" यूं कहयर महायोगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् आप रो विराट् स्वरूप अर्जुन ने दिखायो। जिण नैं देख अर्जुन वड़ा अचरज में डूब गयो और शरीर में रोमाञ्च खडा होगया और भगवान् नें हाथ जोड़ नमस्कार कर यूं कवण लागो।

अर्जुन बोलियो के-"हे देव! मैं आपरा इण विराट् स्वरूप में सगळा देवता, स्थावर जंगम रूप प्राणीमात्र रा नाना प्रकार रा

समुदाय, ब्रह्माजी, महादेवजी, ऋषिलोग, वासुकि आदि सापां नै देख रयो हूँ। आप रे अनेक वा अनन्त हाथ, पेट, पग, मूँडा, आंखियां है। आपरा स्वरूप रो न तो छेड़ो दीसे है, न मध्य दीसे है और न आदि दीसे है। आप किरीट अर्थात् जड़ाऊ मुकट, गदा, चक्र, धारण कर रया हो। आप रो प्रकाश च्यारां कांनी लगती वास्ते और हजार सूरजजी रा तेज रे बराबर है जिण सूं म्हारी आंखियां मींची जाय है। आप प्रकाश रा पुंज, अक्षर-ब्रह्म, विश्वरा भण्डार, अविनाशी, नित्य—स्वरूप, अनादि धर्म री रक्षा करण वाळा, पुण्य-पुरुप, परमात्मा हो। आप रो आदि, मध्य, अन्त कुछ नहीं है, आपरा प्रभाव रो पार नहीं है. सूरज चन्द्रमा आप रा दोनूं नेत्र है, अग्नि मूंडो है, आप सगळा जगत् नैं तपाय रया हो। स्वर्ग और पृथिवी रे बिचला सगळा आकाश में आप व्याप रया हो। सगळी दिशावां में पण आप व्याप्त हो रया हो। आप रा इण भयंकर स्वरूप ने देख सारी त्रिलोकी कांप ऊठी है। देवतां रा अवतार लियोड़ा मनुष्य, दैत्यां रा अवतार रूप दुर्योधन आदि मनुष्य सब आपमें प्रवेश कर रया है। केई तो घबरायर भाग गया है, केई हाथ जोड़ियां ऊभा आपरी स्तुति कर रया है। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, गुणपचास मरुत् देवता, साध्य देवता, विश्वेदेवा देवता, दो अश्विनीकुमार, ऊष्मपा पित्रीश्वर, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध आदि सगळा आश्चर्य में डूबा हुवा आपरा दर्शण कर रया है। आपरो ओ स्वरूप अत्यन्त ही बड़ो है, मूंडा और नेत्रां रो पार ही नहीं है, हाथ, साथळां, पग, पेट, डाडां, अनेक है जिण सूं आप विकराळ रूप दीख रया हो जिण ने देख कर सब घबराय गया है और मैं पण घबराय गयो हूं सो कृपा कर आप आपरो च्यारभुजा वाळो मनुष्य-रूप दिखावो जिण सूं म्हनै धीरज आवे और शान्ति हुवे।

म्हारो दिशावां रो ज्ञान जातो रयो है। ए धृतराष्ट्र रा सगळा वेटा सौ ही जणां, भीष्मजी, द्रोणाचार्यजी, कर्ण, आदि सब जोद्धार आपरा भयानक मूंडां में वड़ रया है। जिणां रा माथां रो चूरो हो रयो है, ज्यूं दीया माथे पतंगिया पडे है और मरे है ज्यूं ए सगळा जोद्धार मरण वास्ते आपरा मूँडां में वड रया है। आप सगळां नें गिटता हुआ च्यारां कानी आप आपरा गलफाडा चाट रया हो। इण भयंकर रूप वाळा आप कुण हो सो कृपा कर म्हनैं वताओ। मैं आपनें नमस्कार करूं हूं, म्हारे माथे प्रसन्न हुवो और फरमावो। " जद

श्रीभगवान् फरमायो के-"हे अर्जुन! मैं अवार लोकां रो संहार करण वास्ते काळ रो रूप धारण कर लियो है सो इण जुद्ध में थारे सिवाय कोई नहीं वचेला और सब मारिया जावेला। देख थारा शत्रुवां ने मैं पैली ही मार राखिया है। तूं इणां ने मारनैं पड़ियो जस ले। तूं तो केवळ निमित्त मात्र होजा। इण पृथिवी रा सारा राज नैं भोग। तूं थारा शत्रुवां ने मारेला, इण में संदेह नहीं है।"

जद भगवान् ने नमस्कार कर, हाथ जोड़, कांपतो और डरतो, नम्रता सूं अर्जुन पाछो वोलियो के-"हे प्रभु! आपरा दर्सण कर सगळा लोग राजी हुवे सो वाजव है और राक्षस डरे और भागे सो भी ठीक है। सगळा सिद्ध लोक आप ने नमस्कार कर रया है, क्यूं के आप सब सूं वडा हो, ब्रह्माजी रा भी आप आदिकर्ता हो, आप जगत् सूं परे जो अविनाशी ब्रह्म है वो आप हो। आप आदिदेव, पुराण-पुरुष, जगत् रा परम निधान (भण्डार), ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता रूप, परम-धाम, अनन्त स्वरूप हो। पवन, जमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति, हिरण्यगर्भ, सगळां रा परदादा हो। आपने हजार वार नमस्कार है। आपरे आगे, पाछे

च्यारां कानी सूं आप ने नमस्कार है। आप रा पराक्रम रो पार नहीं है, आप सब में व्याप रया हो, आप सब-रूप हो, आप सिवाय जगत् में कीं नहीं है। मैं आप ने साक्षात् भगवान् नहीं जाणतो हो जिण सूं मैं आपनैं "हे कृष्ण, हे यादव!" आदि संबोधन कर बतलावतो और भोजन करतां, हंसी में, खेलतां, सोवतां, बैठतां, अकेला तथा साथियां रे बिच में, मैं आपरो कोई ज़ाण तथा अज़ाण अपराध कियो है, जिणरी माफी मांगूं हूं सो आप कृपा कर ज्यूं पिता पुत्र रा, मित्र मित्र रा, सुहृद् सुहृद् रा अपराधां ने क्षमा करे है, ज्यूं आप म्हारा अपराधां ने क्षमा करो। मैं आपरो इसो स्वरूप आज तांई नहीं देखियो हो। इण नैं देख कर मैं परम हर्ष-युक्त हुवो हूं। परंत म्हारो शरीर व्याकुल हो रयो है सो कृपा कर आपरो चतुर्भुज स्वरूप दिखावो।"

जद श्रीकृष्ण भगवान् फरमायो के-"मैं थारे माथे प्रसन्न हूयर ओ दुर्लभ रूप थनैं दिखायो है जो देवता लोग भी नहीं देख सके है और जो वेदपाठ, यज्ञ, दान, तप करणां सूं नहीं दीस सके है। ओ स्वरूप तो केवळ म्हारी भक्ति करण सूं ही दीखीज सके है। अब तूं घबरा मत और म्हारो मनुष्य अवतार रो स्वरूप पाछो देख।" यूं कह कर भगवान् अर्जुन ने आपरो मनुष्य देह दिखायो जिणने देख अर्जुन रो घबराट मिटियो और चित ठिकाणे आयो। जद

भगवान् फेर फरमायो के-" हे अर्जुन! तूं जो ओ म्हारो विराट् स्वरूप देखियो है सो बड़ो दुर्लभ है। ओ स्वरूप म्हारी अनन्य-भक्ति सूं हीज दर्शण करण में आ सके है। सो तूं म्हारी भक्ति कियां चावे तो थारा सगळा कर्म म्हारे वास्ते ही कर, म्हारे ही परायण रह, समस्त सङ्ग वा आसक्ति ने छोड़ दे और किणी प्राणी-मात्र सूं वैरभाव मत राख। इण तरह करणां सूं तूं

म्हनैं प्राप्त हो जावेला।"

बारवों अध्याय।

लारला अध्याय में भगवान् अर्जुन ने फरमायो के-"तूँ म्हारे वास्ते कर्म कर, म्हारे परायण हो और म्हारी भक्ति कर" और पैली ओ फरमायो के-"सारा दुःखां नैं तूं ज्ञान रूपी नाव सूं ही पार हो जावेला" सो इणां भक्ति-योग और ज्ञान-योग रा दो मार्गां मांय सूं किसो मार्ग भत्तो है, इण बात नैं जाणण वास्ते अर्जुन भगवान् ने पूछियो के-"जो पुरुष भक्ति-योग सूं सगुण वो साकर भगवान् री उपासना करे है और जो ज्ञान-योग सूं अव्यक्त (अपरगट) अविनाशी निर्गुण निराकार ब्रह्म री उपासना करे है, इणां दोनां मांय सूं किसो भत्तो, सो आप म्हनैं फरमावो।" जद

श्रीभगवान् फरमायो के-"हे अर्जुन! म्हां में आपरो मन लगाय, परम श्रद्धा रे साथ, नित्य म्हां में लागियोडो सगुण साकार भगवान् रो भक्त भत्तो है। निर्गुण निराकार ब्रह्म री उपासना करण वाळो ज्ञानी भी म्हनैं ही प्राप्त हुवे है। परंत निर्गुण निराकर भगवान् री उपासना दोरी है, उण में क्लेश (तकलीफ) ज्यादा है, क्यूं के देह-धारी जीवां-ने म्हारी निर्गुण निराकार री गति दोरी जाणण में आवे। सगुण साकार भगवान् री उपासना करण वाळां रो उद्धार मैं करूं हूं, इण वास्ते तूं तो म्हां में ही थारो मन लगा, म्हां में ही बुद्धि लगाय दे, सो इण देह रा अंत में म्हनैं ही प्राप्त हो जावेला, इण में संदेह नहीं।" भगवान् ने प्राप्त करण रो ओ एक मार्ग है। १। "जे तूं थारो चित म्हां में नहीं लगाय सके तो थारो चित्त जठीनै जावे उठी कांनी सूं खैंच म्हामें लगावण रो अभ्यास कर।" ओ दूजो मार्ग है।२। "जे तूं अभ्यास नहीं कर सके तो जो कर्म करें वें म्हारे अर्पण करदे।"

ओ तीजो मार्ग है ।३। "जो कर्म पण म्हारे अर्पण नहीं कर सके तो जो कर्म करे उणां रा फळ रो त्याग करदे," ओ चौथो मार्ग है ।४। "कर्मां रा फळ रो त्याग सब सूं भत्तो है क्यूं के अभ्यास सूं ज्ञान, ज्ञान सूं ध्यान, ध्यान सूं कर्मां रा फळ रो त्याग भत्तो है और त्याग सूं शान्ति हुवे, शान्ति सूं सुख हुवे ।" अबे भगवान् आपरा भक्त रा लक्षण बतावे है के-"म्हारो (भगवान् रो) भक्त किणी सूं द्वेष राखे नहीं, सगळां सूं मित्रता राखे, सब पर दया राखे, ममता करे नहीं, अहंकार करे नहीं, सुख और दुःख में बराबर रवे, क्षमा राखे, जो मिल जाय उण सूं सदा प्रसन्न रवे, आत्मा (मन) नैं वश में राखे, भगवान् में दृढ (पक्को) विश्वास राखे, मन और बुद्धि म्हां में लगावे, इसो भक्त म्हनैं प्यारो है । जिण सूं लोगां ने भय हुवे नहीं और आप लोगां सूं भय खावे नहीं, आपरो भलो हुवे तो खुशी नहीं माने, दूजां रो भलो हुवे तो बळे नहीं, जिणरे डर और व्याकुल-पणो अर्थात् घबराहट नहीं हुवे, इसो भक्त म्हनैं वल्लभ है । म्हारे सिवाय किणी री गरज वा परवा करे नहीं, सदा मन और शरीर सूं पवित्र रवे, आपरा काम में (भक्ति करण में) सावधान रवे, सगळां सूं उदासीन (न मित्र, न शत्रु) रवे, किणी बात री चिंता करे नहीं वा पीडा रहित रवे अर्थात् लारला जन्म रा कर्मां सूं रोग, शोक आजावे तो घबरावे नहीं किन्तु आपरो भोग्य समझ खुशी सूं भोग लेवे, किणी काम रो आरम्भ करे नहीं, इसो भक्त म्हनैं प्रिय है । जो न तो चोखी चीज देख राजी हुवे और न भूंडी देख बेराजी हुवे, कोई चीज चली जाय तो उण रो सोच नहीं करे और नहीं आवे तो उणरी इच्छा नहीं करे, आछा और भूंडा सब कर्मां रा फळ रो त्याग कर देवे, इसो भक्त म्हनैं प्यारो है । जो मित्र और शत्रु, मान और अपमान, सरदी और गरमी, सुख

और दुःख, इणां द्वन्द्वां में बराबर रवे, किणी सूं संग करे नहीं, कोई तारीफ करे तो वा बात और निन्दा करे तो पण वा बात, मून राखे, जो कुछ मिल जाय उण सूं संतोप राखे। कोई आईठाण (रेवण रो मकान) वणावे नहीं, बुद्धि नैं स्थिर राखे, इसो भक्त म्हनै वल्लभ है। इण तरह सूं म्हारा बतायोड़ा मोक्ष रा धर्मां रो साधन करे, म्हारी पूरी श्रद्धा राखे, म्हारे हीज परायण रवे, इसा भक्त म्हनैं सगळां सूं प्रिय है।"

तेरवों अध्याय।

भगवान् फेर फरमायो के—"हे अर्जुन! इण जड़ देह ने 'क्षेत्र' कवे है और इण चेतन जीव ने 'क्षेत्रज्ञ' कवे है। सब शरीरां में चेतन जीव रूप क्षेत्रज्ञ मैं हूं। इण क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रो जो ज्ञान है सो म्हारे परममान्य है। क्षेत्र कांई है? कैडो है? इण रो कांई विकार है? किण सूँ परकट हुवो है? क्षेत्रज्ञ कांई है? इण रो कांई प्रभाव है? ए सब बातां मैं थनैं अबे बताऊँ हूं सो सुण। इण क्षेत्र शरीर रो विस्तार सूँ वर्णन वशिष्ठ ऋषि रा योग-वाशिष्ठ में कियोडो है। वेद में इण रो वर्णन है, वेदव्यासजी ब्रह्म-सूत्र में कारण बताय बताय लिखियो है।" अब भगवान् क्षेत्र रो स्वरूप बतावे है के—"चोईस तत्त्वां सूं ओ शरीर बणे है जिणां में पृथिवी १, जळ २, अग्नि ३, पवन ४ और आकाश ५, ए पांच तो महाभूत है। इणां पांचां रो कारण तमोगुण प्रधान अहङ्कार ६, अहंकार रो कारण सतोगुण प्रधान महत्तत्व ७, महत्तत्व रो कारण त्रिगुणात्मक प्रकृति अर्थात् माया ८, आ आठ प्रकार री जड़ प्रकृति है। इणां में १६ विकार मिलाणां सूँ २४ तत्त्व हुवे। वे १६ विकार बतावे है। दस इन्द्रियां जिणां में कान १, चामड़ी २, नाक ३, आंख ४ और रसना (जीभ) ५ ए पांच तो ज्ञान री इन्द्रियां और वाणी ६, हाथ ७, पग ८, लिंग ९ और गुदा १० ए पांच

कर्म करण री इन्द्रियां, एक संकल्प विकल्प करण वाळो मन ११, शब्द १२, स्पर्श १३, रूप १४, रस १५ और गन्ध १६ ऐ पांच इन्द्रियां रा विषय, यूं मिल सोलह विकार है। ८ प्रकार री प्रकृति और १६ प्रकार रा विकार मिल २४ तत्व है। इणां तत्वां रे सिवाय अन्तःकरण रा धर्म इच्छा (अर्थात् काम अथवा राग), द्वेष, सुख, दुःख, संघात (पांच महाभूतां रो समुदाय रूप–इन्द्रियां रे साथ ओ शरीर), चेतना नाम ज्ञान और धृति अर्थात् थाका रीणा शरीर और इन्द्रियां ने मदद देवण वाळो अन्तःकरण रो धर्म-ए सब मिल कर 'क्षेत्र' कहीजे है।" पांच महाभूतां सूं ले धृति तांई क्षेत्र रो स्वरूप कयो। अबे क्षेत्रज्ञ (जीव) रा स्वरूप नैं जाणण रा साधन भूत 'ज्ञान' रो स्वरूप बतावे है के जिण सूं क्षेत्रज्ञ समझ में आय सके। "मान वा आपरा मूंडां सूं आप री तारीफ करणी, दम्भ (ढूंग) नहीं बतावणो, हिंसा नहीं करणी, क्षमा राखणी, सरलता राखणी, आचार्य वा गुरु री सेवा करणी, शरीर और मन सूं दो प्रकार री पवित्रता राखणी, मन में स्थिरता राखणी अर्थात् मोक्ष–साधन में विघ्न आजाय तो भी साधन नैं छोड़णो नहीं, आत्मा (अर्थात् आपरा स्वभाव) नैं जीत चोखा मार्ग में लगावणो, इन्द्रियां रा विषय (देखणो, सुणणो, सूंघणो, चाखणो और स्पर्श करणो इणां) में वैराग राखणो, अहंकार नहीं करणो के मैं मत्तो हूं, जलम, मरण, बुढापो, रोग, आदि संसार रा दुःख और दोषां नैं देखतो रैणो, पुत्र, स्त्री, घर, धन, आदि में आसक्ति नहीं राखणी और इणां में अभिष्वंग अर्थात् अत्यन्त प्रीति नहीं करणी, चायोडी और नहीं चायोडी चीज अर्थात् खुशी और दुःख में मन में समभाव राखणो, म्हां (भगवान्) में अखंड भक्ति करणी, एकान्त में रेवणो, हतायां (भीड़-भाड़) में नहीं बैठणो, आत्म–ज्ञान वा ब्रह्म–ज्ञान में तत्पर रैणो

और तत्व-ज्ञान रो फळ जो मोक्ष है उणरो सदा विचार करतो रैणो,-ओ "ज्ञान" रो लक्षण है । इत्ती बातां जिण में हुवे वो ज्ञानी बाजे । इण सूं उलटो अज्ञान है । " अब "ज्ञेय" अर्थात् जाणण लायक क्षेत्रज्ञ रूप जीवात्मा रो स्वरूप बतावे है के "क्षेत्रज्ञ अनादि है, सब सूं परे है, परब्रह्म रो स्वरूप हूणा सूं वो ब्रह्म है, वो न तो सत् अर्थात् विधि रूप प्रमाण सूं जाणियो जा सके के "जीव इण नें कवे" और न असत् अर्थात् निषेध रूप प्रमाण सूं जाणियो जा सके के "जीव इणने नहीं कवे ।" इणरे च्यारां कांनी हाथ, पग, आंखियां, मूंडा, माथा और कान है, ओ लोक में सब ठौड़ व्याप रयो है, इण रे कोई इन्द्रियां नहीं है तो पण इन्द्रियां रा गुणां नैं प्रकाशित करे है । समस्त संसार ने धारण करे है तो पण संग-रहित है । इणरे सतोगुण, जोगुण, तमोगुण नहीं है तो पण ओ इण गुणां नैं भोगे है, अर्थात् सुख दुःख, आदि रो अनुभव करे है । ओ सब प्राणी मात्र रे मांय और बारे रवे है, इण वास्ते चर और अचर सब कुछ ओ हीज है । ओ अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् बारीक है, जिण सूं दीसे नहीं । ओ दूर पण है और नैड़ो पण है । चैतन्य आकार सूं ओ एक रूप है तो पण देवता, मनुष्य, आदि स्वरूप सूं जुदो हुवे ज्यूं दीसे है । ओ स्थिति समय में जगत् री पालणा करे, प्रलय में संहार करे और रचना काळ में पैदा करे है । ओ ज्योति यानी तेजवाळा सूरज, चांद, अग्नि और मांयली बुद्धि आदि रो प्रकाश करण वाळो है, तम अर्थात् प्रकृति सूं परे है, ओ हीज ज्ञान है, ज्ञेय अर्थात् क्षेत्रज्ञ है और ज्ञान रो फळ है । ओ साधारण प्रकार सूं सब जगां शरीर में रवै है तो पण हृदय में विशेष रूप सूं "जीव" और "अन्तर्यामी" स्वरूप सूं रवै है । इण तरह मैं क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय (क्षेत्रज्ञ) रो स्वरूप संक्षेप सूं थनैं कयो है । इण स्वरूप ने जाण कर म्हारो भक्त

म्हारा स्वरूप नैं प्राप्त हुवे है।" ऊपर भगवान् क्षेत्र कांई है ? और किसोक है ? ए बातां तो कह दीवी, अब क्षेत्र रो विकार, कारण और उण रो प्रभाव बतावे है। "प्रकृति और पुरुष ए दोनूं अनादि है। इणां में जड़ प्रकृति अर्थात् माया वा प्रधान तो भगवान् री क्षेत्र–लक्षणा शक्ति है और पुरुष अर्थात् चेतन जीव क्षेत्रज्ञ–लक्षणा शक्ति है। सोळे विकार (यानी दस इन्द्रियां, मन और पांच महाभूत) और सुख, दुःख, मोह आदि गुण ए सब प्रकृति सूं पैदा हुवे है। कार्य तो शरीर और कारण इन्द्रियां, इणां दोनां रा कर्त्तापणां में तो कारण प्रकृति है अर्थात् प्रकृति सूं शरीर और इन्द्रियां बणे है, जो क्षेत्र है। सुख, दुःख रा भोक्तापणा में कारण पुरुष है अर्थात् पुरुष सुख, दुःख आदि भोगें है, जो क्षेत्रज्ञ है। इण पुरुष रे जो ओ संसार है सो प्रकृति रा सङ्ग सूं है। जीव यूं माने है के ओ देह, इन्द्रियां आदि में हीज हूं। इण प्रकृति नैं अङ्गीकार करणां सूं जीव प्रकृति रा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इणां तीनां गुणां नें भोगे है। देवतां में जलम ले सतोगुण रा फळ भोगे, मनुष्यां में जलम ले रजोगुण रा फळ भोगे और पशु पक्षी आदि में जलम ले तमोगुण रा फळ भोगे। जीव रे सत्, असत् और मिश्रित योनियां में जलम लेवण रो कारण प्रकृति रो संसर्ग हीज है। सत् योनि देवतां री, असत् योनि पशु पक्षियां री और मिश्रित योनि मनुष्यां री है। जे ओ जीव प्रकृति रा गुणां (शब्द, स्पर्श. रूप. रस, गन्ध इणां गुणां) सूं सङ्ग नहीं करे तो इण रे संसार रो बन्धन नहीं हुवे। इण शरीर में रयो हुवो पण जीव संसारी नहीं है अर्थात् इण रा जलम मरण आदि नहीं हुवे है। ओ शरीर सूं पर अर्थात् न्यारो है। ओ देह में रहतो हुवो पण देह रो साक्षीरूप है, अनुमोदन करण वाळो है, भरण पोषण करण वाळो है, पालण वाळो है, महेश्वर है और इण नैं ही "परमात्मा"

कवे है। अर्थात् अन्तर्यामी रूप परमात्मा क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (जीव) इणां दोनां सूं पर यानी जुदो है। इण तरह जो मनुष्य प्रकृति पुरुष और प्रकृति रा गुणां ने जाणे है वो फेर जलम मरण में नहीं आवे है।" आत्मस्वरूप बताय ने अब भगवान् आत्मदर्शन रा च्यार प्रकार रा अधिकारियां रे वास्ते जुदा २ साधन बतावे है। "च्यार अधिकारी उत्तम १, मध्यम २, मन्द ३ और मन्दतर ४ कहीजे। इणां मांय सूं पैला उत्तम योगी तो ध्यान सूँ परमात्मा ने देखे है, दूजा मध्यम योगी सांख्य-योग अर्थात् प्रकृति और पुरुष रा ज्ञान सूं आत्मा ने पिछाणे है, तीजा मन्द योगी कर्म-योग अर्थात् वर्णाश्रमां रा कर्म करणां सूं भगवान् री उपासना करे है और चौथा मन्दतर जो खुद तो भगवान् री उपासना रो मारग जाणे नहीं है परंत दूजा जाणण वाळा बतावे उण तरह उपासना करे है, वे पण संसार ने तीर जावे है। परंत जो उपाय करे हीज नहीं वे संसार में गोता खावता रवे। जो खुद विचार रे साथ भगवान् री उपासना करे वे तिरे इण में तो सन्देह ही कांई ?" भगवान् ऊपर तीजा, चौथा और पांचवां अध्याय में कर्म-योग कयो और छठा अध्याय में ध्यान-योग कयो, अब सांख्य-योग वा ज्ञान-योग रो उपदेश करे है के-" इण जगत् में स्थावर और जङ्गम रूप जो कुछ पदार्थ है सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रा संयोग सूं हुवे है इसो जाण। वो चैतन्य स्वरूप परमात्मा ब्रह्माजी सूं लेकर सम्पूर्ण प्राणीमात्र में समभाव सूं बरत रयो है, सगळां रो नाश होणा पर पण उण परमात्मा रो नाश नहीं हुवे। उण परमात्मा ने जो पुरुष देखे है, वो ही देखे है, अर्थात पण्डित है। इण जगत् में जो ए विचित्र तरह तरह रा कर्म हो रया है सो सब प्रकृति कराय रही है। परमात्मा तो बिल-कुल निर्लेप है। इण तरह परमात्मा ने जो अकर्ता जाणे है वो ही

जाणे है अर्थात् वो ही ज्ञानी है। जो पुरुष चर और अचर सब प्राणियां में समभाव सूं विराजमान परमात्मा नैं देखे है, अर्थात् अन्तर्यामी और जीव रूप सूं विराजमान परमेश्वर नैं सगळां में देखे है, और आपरो आप नाश नहीं करे है, वो परमगति नैं प्राप्त हुवे है। जद मनुष्य ने ओ ज्ञान हो जावे के सब चर अचर प्रकृति सूं ही पैदा हुवे है और प्रकृति में ही लीन होवे है, जद वो ब्रह्म स्वरूप नें प्राप्त हुजावे। ओ परमात्मा अनादि है, गुणां सूं रहित अर्थात् निर्गुण है और अविनाशी है। इण वास्ते ओ शरीर में रेवतो पण न तो कुछ करे है और न कर्मां सूं लिपायमान हुवे है। ज्यूं आकाश सब जगां व्यापक है तो पण सूक्ष्म पणां सूं असङ्ग है जिण सूं लिपायमान नहीं हुवे है, उणी तरह ओ आत्मा देह में सब जगां व्याप रयो है तो पण लिपायमान नहीं हुवे है। ज्यूं सूरज भगवान् इण सम्पूर्ण जगत् ने प्रकाशमान करे है, उणी तरह ओ आत्मा (जीव) इण सम्पूर्ण क्षेत्र अर्थात् देह ने प्रकाशमान करे है। इण क्षेत्र नाम जड़ देह और क्षेत्रज्ञ नाम चेतन जीव रा भेद नैं और मान-रहित आदि लक्षणां वाळा, बन्धन सूं छुडावण वाळा, उपायां ने जो पुरुष ज्ञान-दृष्टि सूं जाणे है वो परमपद नैं प्राप्त हुवे है। शरीर और जीव रो ओ हीज भेद है के क्षेत्र तो जड़, विकारी, क्षणिक और नाशवान् है और क्षेत्रज्ञ नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी है।"

चवदवों अध्याय।

श्रीभगवान् फेर फरमायो के-"हे अर्जुन! फेर मैं थनैं सब ज्ञानां करतां उत्तम ज्ञान कहूँ हूँ के जिण नैं जाण कर सब मुनि लोग इण संसार सूं सिद्धि अर्थात् मोक्ष ने प्राप्त हो गया। इण ज्ञान ने जाणणा पर पुरुष न तो जलमे और न लय नैं प्राप्त होवे है। वो उत्तम ज्ञान ओ है के-प्रकृति बहुत बड़ी है, जिण सूं इण नैं 'महत्' कवे है। महत्तत्व ही प्रकृति है। आ सब कामां ने

बधावण वाळी है इण वास्ते इण नैं 'ब्रह्म' कवे है। प्रकृति ब्रह्म हीज है। आ प्रकृति म्हारी (परमेश्वर री) योनि अर्थात् गर्भ धारण करण री जगां है और उण प्रकृति रूप योनि में मैं गर्भ धारण करूं हूं अर्थात् प्रकृति तो माता रूप गर्भ धारण करण वाळी है और मैं परमात्मा पिता रूप गर्भ धारण करावण वास्ते वीर्य सींचण वाळो हूं। मैं जड़ प्रकृति में चेतन जीव ने घाल देऊँ हूं के जिण सूं आ जड प्रकृति चेतन ज्यूं क्रिया करण ने लाग जाय है, अर्थात् जड़ प्रकृति सूं चेतन जीव ने जोड़ देऊ हूं के जिण सूं हिरण्यगर्भ वा ब्रह्माजी सूं ले सम्पूर्ण प्राणी पैदा हुवे है। देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सगळी योनियां (जूणां) में न्यारा २ स्वरूप वा आकार वाळा शरीर पैदा हुवे है उणां सगळां री योनि (महत् ब्रह्म) माता स्थानक और बीज बोवण वाळो पिता-स्थानक दोनूं मैं हूं। शरीर और जीव अर्थात् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रो संयोग ईश्वर रे आधीन है, दूजा रे किणी रे नहीं है। इण प्रकृति रा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण नाम रा तीन गुण है। ऐ गुण हीज इण अखण्ड अविनाशी आत्मा नैं देह में बांधे है अर्थात् इणां गुणां सूं पुरुषां री उत्पत्ति हुवे है। सतोगुण निर्मळ, प्रकाश करण वाळो, दुःखां सूं रहित है इण वास्ते ओ सुख और ज्ञान रा सङ्ग सूं जीवां नैं बांधे है, अर्थात् सतोगुणी पुरुष "हूं सुखी हूं, हूं ज्ञानी हूं" इण तरह सूं बन्धे है। रजोगुण राग वा कामना रूप है और तृष्णा अर्थात् लोभ और आसक्ति सूं पैदा हुवे है सो ओ कर्मां में आसक्ति कराय जीव नैं बान्धे है। अर्थात् "मैं करूं हूं, मैं भोगूं हूं" इण तरह जाण जीव रजोगुण सूं बन्धे है। तमोगुण अज्ञान रूप है और सगळां नैं मोहित करण वाळो है इण वास्ते ओ प्रमाद अर्थात् गफलत, आळस और नींद सूं बांधे है, अर्थात् "मैं अबार कांई फेरूं करूंला, आळस आवे, नींद लेऊं" इण तरह तमोगुण

सूं जीव बन्धे है। इणां रो खुलासो ओ है के सतोगुण सुख सूं, रजोगुण काम सूं और तमोगुण प्रमाद सूं जीव ने कर्म करण में लगावे है। ए गुण सदा एक सा नहीं रवे है। कदेई सतोगुण अधिक हू जाय जद रजोगुण और तमोगुण ने दबाय लेवे ने आप रो काम कराय लेवे। इणी तरह सूं जद रजोगुण भत्तो हू जावे जद वो सतोगुण और तमोगुण ने दबाय ने आप रो काम कराय लेवे, ने इणी भांत जद तमोगुण बद जावे जद वो सतोगुण और रजोगुण ने दबाय आपरो काम कराय लेवे। इणां गुणां री वधण री ओळखान वा सैलाण आ हीज है के–जद इण शरीर में सगळी इन्द्रियां में प्रकाश दीखे और ज्ञान हुवे जद सतोगुण नैं वधियोडो समझणो, जद मन में लोभ, कर्म करण में इच्छा, कर्म अथवा उद्यम करण रो आरंभ करणो सूझे, मन नैं शान्ति नहीं रवे, दूजां री चीज देख उणने लेवण रो मन चाले जद रजोगुण वधियोड़ो जाणणो और जद प्रकाश रो अभाव अर्थात् कोई बात आपनें खुद नैं तो सूझे नहीं दूजो समझावे तो पण समझ में आवे नहीं, काम करण री मन में तो आवे परंत करे नहीं, काम में सुसती तथा मोह वा अज्ञान अर्थात् चेतो नहीं रैवणो आ जाय जद समझणो के तमोगुण वधियोडो है। सतोगुण री वृद्धि रा समय में मर कर पुरुष उत्तम पुण्य लोक स्वर्ग आदि में जावे, रजोगुण री वृद्धि रा समय में मरण वाळो कर्म करण वाळा मनुष्य लोक में जलमे और तमोगुण री वृद्धि रा समय में मरण वाळो पशु, पक्षी आदि री जूण पावे। सतोगुण रो फळ निर्मळ सुख है, रजोगुण रो फळ दुःख है और तमोगुण रो फळ अज्ञान है। सतोगुण सूं ज्ञान हुवे, रजोगुण सूं लोभ हुवे और तमोगुण सूं प्रमाद (सुसती), मोह और अज्ञान हुवे। सतोगुणी जीव स्वर्ग में जावे, रजोगुणी मनुष्य लोक में आवे और तमोगुणी नरक में

जावे।" क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रो संयोग ईश्वर रे आधीन है और किसा २ गुण जीव नैं किण तरह वांधे है, ऐ दोय वातां वता यर अवे भगवान् इणां गुणां सूं मोक्ष किण तरह होवे और मोक्ष रो लक्षण कांई है ! आ वात बतावे है के-"जद विचार वाळो पुरुप इण वात नैं जाण जाय के ऐ गुणहीज कार्य अर्थात् शरीर, कारण अर्थात् इन्द्रियां, विपय अर्थात् शब्द स्पर्श आदि, रूप में वदले है, ए तीनूं गुण हीज सब कर्म करे है और करावे है अर्थात् गुण हीज सब कर्मां रा कर्ता है, जीव कर्ता नहीं है और इण जीव ने गुणां सूं विलकुल न्यारो अर्थात् असंग समझण लाग जाय, वो पुरुप परमात्मा रा स्वरूप ने प्राप्त हो जावे। जो पुरुप देह सूं पैदा हुवोडा इणां तीनां गुणां ने उल्लंघ जाय है वो जलम, मरण, बुढापो, आध्यात्मिक आदि दुःखां सूं छूट कर मोक्ष नैं प्राप्त हो जावे है।"

इण पर अर्जुन तीन वांतां पूछै है के-" इणां तीन गुणां ने उल्लङ्घण वाळा पुरुप रो लक्षण कांई है ? १, उण रो वरताव कैडो हुवे २ और उपाय कांई हे ? ३ " जद

श्रीभगवान् फरमायो के-"गुणां ने उल्लङ्घण वाळो "गुणातीत" कहीजे है। गुणातीत रा ऐ लक्षण है के जो पुरुप सतोगुण रा कार्य प्रकाश, रजोगुण रा कार्य काम (उद्यम) करण री इच्छा और तमोगुण रा कार्य मोह इणां मांय सूं कोई पण आवे तो उण ने दुःखदाई समझ उण सूं द्वेप नहीं करे और सुखदाई समझ उण री इच्छा नहीं करे, जिण रो इण तरह राग और द्वेष मिट जाय उण ने " गुणातीत " कवे। गुणातीत और समदृष्टि वाळो योगी एक हीज है। ओ पैला प्रश्न रो उत्तर हुवो।१। जो पुरुप दोय जणां वाद विवाद करता हुवे तो उणां दोनां मांय सूं किणी रो पक्ष नहीं करे और निरपेक्षी रवै, गुणां रा विकार राग और

द्वेष, सरदी और गरमी आदि द्वन्द्वां सूं चलायमान नहीं हुवे, मन में यूँ समझे के गुण ही गुणां में वरत रया है, आत्मा या जीव तो बिलकुल निर्लेप है, यूँ समझ कुछ पण चेष्टा नहीं करे तो वो "गुणातीत" कहीजे। जिण रे सुख दुःख, माटी रो ढगळो, भाटो और सोनो, मान अपमान, प्रिय अप्रिय (अथवा मित्र, शत्रु) निन्दा स्तुति बराबर है, इसी धीरज वाळो और आपरी आत्मा में प्रसन्न रेवण वाळो और सब कर्म करणां छोड़ण वाळो "गुणातीत" कहीजे। ओ दूजा प्रश्न रो उत्तर हुवो।२। जो पुरुष फळ री इच्छा छोड़, अखण्ड भक्ति रे साथ म्हारी (भगवान् री) उपासना करे वो गुणां नें उल्लङ्घ कर ब्रह्म–पद अर्थात् मोक्ष नैं प्राप्त हुवे। मैं ही ब्रह्म वा सच्चिदानन्द स्वरूप री परमकाष्ठा वा छेली बात हूं, अर्थात् ज्यूं सगळी कांनी सूं भेळो हुयोडो प्रकाश सूरजमण्डल है उणी तरह सत्, चित् (ज्ञान) और आनन्द सगळी कांनी सूं भेळो हुवोडो परब्रह्म रो स्वरूप मैं हूं, सनातन वा अनादि धर्म री भी पराकाष्ठा मैं हूं और एकान्त सुख अर्थात् मोक्ष री भी मैं पराकाष्ठा हूं।"

पनरवों अध्याय।

श्रीभगवान् फरमायो के–"इण संसार रा सगळा रूंखां री जड़ां तो जमीं में नीचे हुवा करे और उणां री साखां, डालां, पान, फल, आदि ऊपर हुवा करे, परंत ओ संसार रूपी पींपल रो रूंख उंदी तरह रो इसो है के इण री जड़ां तो ऊंची है अर्थात् इण रो कारण ब्रह्म ऊपर है और इणरी शाखावां नीचे कांनी है अर्थात् जीव जन्तु सब नीचे संसार में फैलिया हुवा है, ओ अविनाशी वा अनादि है और इण ने "अश्वत्थ" इण वास्ते कवै है के ओ "काले नहीं रवेला" अर्थात् क्षण क्षण में इण रो नाश होतो रवै है, इण रा वेद तों पत्ता है, इण तरह जो पुरुष इण

संसार नैं जाणे है वो जाणे है अर्थात् वो ज्ञानी है। इणरी शाखा-वां अठी उठी च्यारां कांनी फैलियोड़ी है, जो गुण रूपी जळ रा सींचणा सूं वधै है, शब्द-स्पर्श आदि विषय इण री कूंपळां है और कर्मां री वासना रूपी जड़ां ऊंडी गयोड़ी है। संसारी मनुष्यां नैं इण संसार रो न तो स्वरूप (आकार) दीसे है, न इण रो आदि, मध्य और अन्त लादे है। इण संसार रूप रूंख ने असंग रूप शस्त्र सूं काटणो चहीजे अर्थात् इण संसार में वैराग राखणो, इण सूं राग वा प्रेम नहीं करणो और पछै परमात्मा रा धाम नैं सोधणो जिण जगां गयां पछै मनुष्य पाछो नहीं आवे है। पर-मात्मा नैं सोधण रो ओ हीज रस्तो है के उण रे शरणे जावणो और केवणो के-"मैं उण परमात्मा परम पुरुष रो शरणो लेऊं हूं जिण सूं ओ अनादि संसार रूप रूंख पैदा हुओ है"। इण परम पद ने पावण वाळा अधिकारी वे हैं जिणां रे मान और मोह नहीं है, जिणां संग रूपी दोष नैं जीत लियो है, जो सदा आत्मा रा विचार में मगन है, जिणां रे कामना है ही नहीं, जिणां रा सुख दुःख आदि द्वन्द्व मिट गया है और जो ज्ञानी हू गया है। उण परम पद ने न तो सूरज, न चन्द्रमा, न अग्नि प्रकाश कर सके है और जठे गयोड़ा मनुष्य पाछा जलम मरण में नहीं आवे है, वो म्हारो परम धाम है। इण जीव-लोक में "जीव" रूप चेतन, अमर वो नित्य वा सनातन पदार्थ है, वो म्हारो हीज अंश है। इण जीव रे संसार रो बंधन इण वास्ते हुवे है के ओ मन नैं और पांच ज्ञान री इन्द्रियां (आंख, नाक कान, जीभ, चामड़ी) नैं आप रे साथ भोग रे वास्ते खैंचे है। ओ जीव इन्द्रियां और मन ने आपरा देह रा अन्त-समय में एक देह नैं छोड दूजी देह में जावे है जद इणां छःही पदार्थां ने आपरे साथे ले जावे है और जलमे है जद ही इणां छःनैं साथे

लेयने आवे है। ज्यूं पवन पुष्पां री सुगन्धनैं लेयर जावे और उणरी ठा नहीं पडै ज्यूं ओ जीव इणां छ नैं लेयर जावे जिणरी नींगे नहीं पड़े। ओ जीव आंख, कान, नाक, चामड़ी, जीभ और मन इणां छ रो आसरो लेयर भोग भोगे है। इण जीव नैं शरीर में रेवतां, शरीर सूं निकलतां, विषयां रां भोग करतां, सुख दुःख आदि गुणां रा फळ भोगतां अज्ञानी पुरुष नहीं देख सके है, कारण ओ अत्यन्त सूक्ष्म वा बारीक है अर्थात् ऊभा केस रा सौ वां हिस्सा जिसो बारीक है। परंत ज्ञानी पुरुष इणनैं देखे है। योग साधन करण वाळो ध्यान सूं इण नैं शरीर में बैठाने देखे है, परंत अशुद्ध अन्तःकरण वाळा अज्ञानी कोसिस करणां पर पण इण नैं नहीं देख सके है। भगवान् आपरी विभूति बतावे है के जगत् ने प्रकाश करण वाळो जो तेज सूरज में है वो म्हारो तेज है, चन्द्रमा में और अग्नि में तेज है वो पण म्हारो हीज तेज है। देवता रूप सूं पृथिवी में प्रवेश कर हूं म्हारा पराक्रम सूं सारा प्राणियां नैं धारण करूं हूं। हूं ही चन्द्रमा रो रूप धारण कर रस रूप सूं सब धान, रूंख आदि नैं पुष्ट करूं हूं। प्राणी मात्र-रा देह में अग्नि रो रूप धारण कर मैं ही प्राण और अपान वायु री सहायता सूं खायोड़ा च्यार प्रकार रा भोजन नैं पचाऊं हूं। मैं ही सगळा प्राणियां रा हृदय में विराजमान हूं, याद आवणो और ज्ञान हूवणो तथा इणां रो नाश ए सब म्हां सूं हीज हुवे है. सब वेदां सूं जाणण योग्य पण मैं ही हूं, वेदान्त रो बणावण वाळो मैं हूं और वेद रो जाणण वाळो पण मैं हीज हूं। इण जगत् में दो प्रकार रा पुरुष है, एक तो क्षर और दूजो अक्षर। "क्षर" तो सगळा प्राणी मात्र है के जिणां रो नाश हुवे है और "अक्षर" कूटस्थ (सगळां सूं ऊंचो) है के जिण रो नाश नहीं हुवे है, वो निर्विकार आत्मा रूप 'जीव' है। क्षर तो 'शरीर' रूप

क्षेत्र है और अक्षर जीव रूप क्षेत्रज्ञ है। इणां दोनां क्षर और अक्षर सूं परे और उत्तम, तीसरो परमात्मा न्यारो है जो सब रो ईश्वर वा नियंता है, विकार-रहित है और अविनाशी है और पाताल, पृथिवी, स्वर्ग इणां तीनां लोकां में प्रवेश कर सब नैं धारण करे है। हूं क्षर सूं भत्तो हूं, अक्षर सूं पण भत्तो हूं इण वास्ते लोग म्हनैं "पुरुत्तपोम" कवै है, कांई तो सब लोकां में और कांई वेदां में मैं "पुरुपोत्तम" कहीजूं हूं क्यूं के जो सगळा पुरुपां में उत्तम वा श्रेष्ठ हुवे वो पुरुपोत्तम हुवे। जो ज्ञानी म्हारा इण पुरुपोत्तम स्वरूप नैं जाणे है वो सब जाणे है और वो हीज म्हनै सब प्रकार सूं भजै है। हे अर्जुन! ओ परम गुह्य शास्त्र मैं थनैं कयो है, इण नैं जो पुरुप जाण लेवे वो कृतार्थ हो जावे है।"

सोळवों अध्याय।

श्रीभगवान् नवमां अध्याय में दैवी, आसुरी और राक्षसी नामरी तीन प्रकार री जीवां री प्रकृतियां कही, जिण मांय सूं दैवी प्रकृति वाळा जीवरा ऐ लक्षण हुवे है के–"किणी रो डर नहीं राखणो अर्थात् शास्त्र में बतायोडा धर्म निडर पणां सूं करणा, अधर्म करतां जरूर डरणो, अन्तःकरण ने शुद्ध वा पवित्र राखणो, आत्म–ज्ञान प्राप्त करण रा उपायां में लागियो रेवणो, आपरी सरदा मुजब सत्पात्र नैं दान देवणो, दम अर्थात् बारली इन्द्रियां नें वश में राखणी, यज्ञ अर्थात् वेद में कयोडा अग्निहोत्र आदि और स्मृति में कयोडा वैश्वदेव आदि करणा, स्वाध्याय अर्थात् वेद वा धर्मशास्त्र वा पुराण आदि धर्म–ग्रन्थां रो पाठ करणो, तपस्या करणी, सरळता राखणी, हिंसा नहीं करणी, साच बोलणो, क्रोध नहीं करणो, त्याग अर्थात् जरूरत सूं ज्यादा चीजां भेळी नहीं करणी, शान्ति अर्थात् मन नैं वश में राखणो, किणी री

चुगली नहीं करणी, सगळां पर दया राखणी, लोभ नहीं करणो, नरमाई राखणी, खोटा काम करण सूं सरमावणो, चपळता नहीं राखणी, प्रभावशाली होवणो के कोई आपरो अपमान नहीं कर सके, क्षमा राखणी, धीरज राखणी, बारै और मांय पवित्रता राखणी, किणी सूं द्रोह वा वैरभाव नहीं राखणो, अत्यन्त अभिमान वा घमंड नहीं राखणो के "मैं सगळां सूं भत्तो हूं," ऐ सोळह लक्षण वाळो पुरुष दैवी संपदा में जलम लियोड़ो हुवे है।" अब आसुरी संपदा वाळा पुरुष रा लक्षण बतावे है के-"दम्भ अर्थात् ढूंग वा बुगला भगति, दर्प नाम धन और परवार रो घमंड, अभिमान अर्थात् आपनैं सगळां रो पूज्य और सगळां सूं भत्तो समझणो, क्रोध करणो, कठोरता अर्थात् करडाई राखणी और दूजा नै कड़वा वचन बोलणा. अज्ञान अर्थात् आत्मा रा स्वरूप नैं नहीं जाणणो। इणां दोनूं प्रकार री संपदावां में दैवी संपदा तो जीव रा मोक्ष रे वास्ते है और आसुरी संपदा जीव रा बंधन रे वास्ते है। हे अर्जुन! तूं तो सोच मत करजे. क्यूं के तूं तो दैवी संपदा में जलम लियो है। इण जगत् में दो प्रकार री सृष्टि हुवा करे है, एक तो दैवी और दूजी आसुरी। मैं दैवी संपदा तो थनै विस्तार पूर्वक कहीं, अब आसुरी संपदा कहूं सो सुण। आसुरी संपदा वाळो जीव न तो प्रवृत्तिमार्ग नैं जाणे और न निवृत्तिमार्ग नैं जाणे। धर्म-शास्त्र में लिखिया मुजब चालणो ओ तो प्रवृत्ति-मार्ग है और धर्म-शास्त्र में बरजियोडा काम नहीं करणा निवृत्ति-मार्ग है। उणां रे पवित्रता नहीं हुवे। न आचार विचार हुवे. न वे सत्य नैं पिछाणे। वे जगत् ने असत्य अर्थात् झूठो माने. वेद, पुराण नैं प्रमाण नहीं मानें, धर्म अधर्म नैं नहीं माने और ईश्वर नैं भी नहीं माने। जगत् रो कर्त्ता ईश्वर है और कर्मां रा फळ रो देवण वाळो है, यूं वे नहीं माने। वे जगत

री उत्पत्ति कामदेव रे वशीभूत हुवा स्त्री पुरुष रा संयोग सूं ही माने है। वे जगत् रा नाश रा कारण होयर हिंसा करे। उणां री कामना कदेही पूरी हुवे नहीं। वे प्रलय तांई चिंता करता रवे। वे आठ पहर खावणो, पीवणो, भोगणो इण ने ही परम पुरुषार्थ समझे। वे न तो स्वर्ग नैं माने न नरक नैं, न पुण्य नैं माने न पाप नैं। आज ओ काम कियो, ओ भोग भोगियो, इण शत्रु ने मारियो, ओ धन कमायो, काले फेर ओ करूंला। मैं ईश्वर (धनवान् वा स्वामी) हूं, सिद्ध हूं, बळवान् हूं, सुखी हूं, म्हारे बराबर दूजो कुण है! यज्ञ करूंला, दान देऊंला, आनन्द करूंला, इण तरह रा अज्ञान सूं मोहित हुवोडा रवे। कामना रा भोग में उणांरो मन आसक्त हूणा सूं वे नरक में पड़े। वे यज्ञ करे तो दिखावटी करे, परमात्मा नैं प्रसन्न करण वास्ते नहीं करे। घमंड में करडा लकड़, धन सूं छकियोडा, मान मठोठ में डूबियोडा, धरम री ध्वजा फरकावण वास्ते वे यज्ञ, दान, तप आदि करे। वे अहंकार, बळ, काम, क्रोध रे वशीभूत होयर उणां खुद में तथा सगळा प्राणियों में अन्तर्यामी रूप सूं विराजमान म्हनैं (परमात्मानैं) नहीं माने, उळटो म्हां सूं द्वेष राखे। उणां नैं मैं बारंबार नीची जूणां या नरकां में पटकूं। वे म्हनैं प्राप्त नहीं हो सके। मनुष्य रे नरक में जावण रा मुख्य तीन दरवाजा है जिणां ने काम, क्रोध ओर लोभ कवे है। इणां तीनां ने छोड कर जो मनुष्य आपरा कल्याण रो साधन करे वो परम गति नैं प्राप्त हुवे। इण वास्ते जो कर्म करणो वो शास्त्र में लिखियोड़ी विधि या रीत मुजब करणो, आपरी मन उपंग नहीं करणो। शास्त्र री मरजाद नैं छोड कर जो कर्म करे उणरे न तो इण लोक में सुख हुवे, और न परलोक में स्वर्ग वा मोक्ष रूप परम गति हुवे। इण वास्ते जो कुछ करणो अथवा नहीं करणो वो शास्त्र में लिखिया मुजब करणो, आपरे मन मत्ते नहीं करणो।"

सतरवों अध्याय ।

लारला अध्याय में भगवान् फरमायो के कर्म करणां वे शास्त्र री विधि सूं करणां, बिना विधि करण वाळा रै न तो सुख हुवे, न सिद्धि हुवे और न उण नैं परमगति मिले । इण वास्ते अर्जुन रा मन में शंका हुई जद उण पूछिंयो के–"हे भगवन्! जो पुरुष शास्त्र री विधि नैं छोड़ श्रद्धा सूं यज्ञ करे तो उण री किसा गुण में निष्ठा वा लगन जाणणी ?" जिण पर

श्रीभगवान् फरमायो के–"हे अर्जुन! हरेक मनुष्य री श्रद्धा तीन तरह री हुवा करे है, जिण में पैली सतोगुण वाळी, दूजी रजोगुण वाळी और तीजी तमोगुण वाळी। आ श्रद्धा मनुष्यां रा अन्तःकरण रे मुजब हुवे । अर्थात् जिण पुरुष रो अन्तः-करण सात्विकी है तो उणरी श्रद्धा पण सात्विकी हुवे. इणी तरह सूं राजसी अन्तःकरण वाळी राजसी श्रद्धा और तमोगुण वाळा री तामसी श्रद्धा हुवें । ओ पुरुष श्रद्धा–रूप हीज हुवे है। जिणरी जैडी श्रद्धा हुवे वो उसो ही पुरुष हुवे । सात्विकी श्रद्धा वाळा पुरुष तो देवतां री पूजा करे, राजसी यक्ष और राक्षसां री, तामसी प्रेत, भूत, पिशाच आदि री पूजा करे । शास्त्र री विधि विना ढूंग, अहंकार, कामना, राग, बळ, रे वसीभूत होयर जो घोर तपस्या करे, शरीर नैं सुकावे और शरीर में अन्तर्यामी रूप सूं विराजमान म्हनैं कष्ट देवे, वे जीव निश्चय आसुरी है, इसो जाण । आहार (अथवा यज्ञ, दान और तप) पण इणां गुणां रा संसर्ग सूं तीन प्रकार रा हुवे है । जो भोजन आयु, उत्साह, बळ, तनदुरुस्ती, सुख और प्रीति रा बधावण वाळा, रसीला, चीकणा अर्थात् घी खांड सूं तर, जिणां रो रस इण शरीर में घणी वार ठहरे उसा, जिणां ने देखता ही चित प्रसन्न हो जावे

और भोजन में रुचि हुवे इसा भोजन सात्विकी जीवां ने प्यारा हुवे । जिण भोजन सूं जीव ने दुःख और सोच हुवे, जिण रा खाणा सूं शरीर में रोग हुवे, कड़वा, खाटा, खारा, घणा ऊना, चरका, लूखा और अन्न ने बाळण वाळा राई, कैर, वगैरा आहार राजसी जीवां ने आछा लागे । ठंडो, गतरस हुवोडो, बासी, पैले दिन कियोडो, ऐंठो और अपवित्र भोजन तामसी जीवां ने चोखा लागे । अबे यज्ञ रा तीन प्रकार बतावे है । वेद में यज्ञ दोय प्रकार रा कया है, एक तो किणी कामना सूं करे वो तो "काम्य" और दूजो जो रोजीना करे वो "नित्य" । इणां में जो यज्ञ फळ री इच्छा राख पूर्ण सामग्री गी तैयारी कर करे वो "काम्य" यज्ञ है, ज्यूं पुत्रेष्टि आदि । और जो फळ री इच्छा विना जथा जुगत सामग्री सूं केवल पाप नहीं लागण रा विचार सूं यज्ञ करे वो "नित्य" यज्ञ है, ज्यूं देव-यज्ञ, वैश्वदेव आदि । जो पुरुष यज्ञ नैं नित्यकर्म समझ कर, म्हनैं यज्ञ करणो चहीजे, इण तरह समझ वेद में कया मुजब, फळरी इच्छा नहीं कर, यज्ञ करे वो तो सात्विक यज्ञ है । जो फळ री कामना सूं ढूंग दिखावण वास्ते यज्ञ करे वो राजसी यज्ञ है । शास्त्र री विधि विना, अन्नदान विना, मंत्र और दक्षिणा विना और श्रद्धा विना जो यज्ञ करे वो तामसी है । अब तप रा भेद बतावे है । देवता, ब्राह्मण, गुरु, पण्डितां री पूजा करणी, पवित्रता, सरळता राखणी, ब्रह्मचर्य पालणो और हिंसा नहीं करणी, ओ शरीर संबन्धी तप है अर्थात् आ तपस्या शरीर सूं बण आवे । जिण वचन सूं किणी नै डर और दुःख नहीं हुवे इसी बात कैवणी, साच बोलणो, मीठी बोली बोलणी, दूजा रो भलो हुवे इसी बात कैवणी, वेद रो पाठ करणो, आ वाणी री तपस्या है । मन नैं प्रसन्न राखणो, शीतळता राखणी, मून राखणी, मन नैं वश में राखणो, शुद्ध भाव वा विचार

राखणो, ओ मानसी तप है। इणां तीन ही प्रकार रा तप नैं फळ री इच्छा विना, एकाग्र मन सूं, पूरी श्रद्धा रे साथ कियो जावे, वो सात्विक तप है। जो तप आदर सत्कार, पूजा प्रतिष्ठा, ढूंग कपट सूं कियो जावे वो राजसी तप है। जो तप मूरखता सूं, दुराग्रह सूं, आपरी आत्मा ने रोसण वास्ते, दूजा नैं मारण वास्ते वा पीडा देवण वास्ते कीयो जावे वो तामसी तप है। अब दान रा भेद कवै है। दान देणो चहीजे इण तरह विचार, पवित्र देश, पवित्र समय, सत्पात्र पुरुप नैं, पाछो उपकार नहीं करण वाळा पुरुप ने जो दान दियो जावे वो सात्विक दान है। जो दान पाछा उपकार रे वास्ते, फळ री इच्छा रे साथ और मन में दुःख पाय कणतावतो देवे वो राजस दान है। जो दान अपवित्र देश, अपवित्र समय, कुपात्र ने तिरस्कार रे साथे और घृणा (नफरत) सूं दियो जावे वो तामस दान है। अब मैं थनैं एक ऐड़ी रीत बताऊं के उण रीत सूं कियोड़ा तप और यज्ञ, दियोडो दान, सात्विक हुजावे, सो सुण। ब्रह्म वा परमात्मा रा तीन नाम है "ओं, तत् और सत्"। इणां सूं ही विधाता आदि में ब्राह्मण, वेद, यज्ञां, नैं बणाया। वेद में लिखियोडा सारा कर्म करण सूं पैली "ओं" बोल कर यज्ञ, दान, तप किया जावे है। मोक्ष री इच्छा वाळा पुरुप फळ री कामना नैं छोड "तत्" बोल कर यज्ञ, तप, दान किया करै है। 'सत्' शब्द रो अर्थ सत्ता अर्थात् होणो, साधु वा भळो और मंगळीक कर्म है। इण वास्ते 'सत्' शब्द इणां कामां में बोलियो जावे है। यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति वा लगन है वा 'सत्' कहीजे। इणां तीनां रै वास्ते जो कर्म किया जावे वे पण 'सत्' बाजे। विना श्रद्धा जो यज्ञ, दान, तप किया जावे वे "असत्' है जिण सूं उणरो फळ न तो इण लोक में और न परलोक में मिले है। इण वास्ते जो यज्ञ, दान,

तप आदि कर्म करणा वे श्रद्धा रे साथे करणा। विना श्रद्धा नहीं करणा।"

अठारवों अध्याय।

ओ अध्याय गीता रो सार-रूप है। अर्जुन रा मन में आ पूरी तरह सूं समझ में नहीं आई के कर्म करणो भत्तो या संन्यास लेवणो भत्तो। भगवान् ओ फरमायो के कर्मां रा फल रो त्याग करणो और कर्म करणा, ऐ दोनूं वातां आपस में दीसती ऊंदी वा उलटी है, सो भगवान् ने पूछ कर इणरो खुलासो करलूं, यूं मन में विचार अर्जुन पूछियो के–" हे भगवन्! मैं संन्यास रो तत्व जाणियां चाहूं हूं और त्याग (अर्थात् कर्मां रा फळ रा त्याग) रो पण तत्व जाणियां चाहूं हूं सो कृपा कर म्हनैं समझावो।" जद

श्रीभगवान् फरमायो के–" कर्म तीन प्रकार रा है, एक काम्य, दूजा नित्य, तीजा नैमित्तिक। पुत्र आदि री कामना वा इच्छा सूं जो पुत्रेष्टि आदि यज्ञ कियो जावे वो तो "काम्य" कर्म है। सन्ध्या, वैश्वदेव, आदि जो रोजीना कर्म किया जावे और जिणां रा नहीं करण में पाप लागे वे " नित्य-कर्म " है और जो कर्म ग्रहण, पुत्र-जन्म, आदि निमित्त सूं किया जावे वे " नैमित्तिक " कर्म है। इणां तीनां प्रकार रा कर्मां मांय सूं पैला " काम्य कर्मां " रो नहीं करणो ओ तो " संन्यास " है और सब कर्म मात्र रा फळ रो त्याग कर देवणो ओ " त्याग " है। इणां दोनां रो मतलब एक हीज है। केई लोग यूं कवै है के ज्यूं पुरुष सब दोषां ने छोड़ देवे है ज्यूं सब कर्मां नैं छोड़ देवणा। केई लोग यूं कवै है के यज्ञ, दान, तप ऐ कर्म तो करणा हीज, छोड़णा नहीं। इणां दोनां मतां में म्हारो निर्णय (निश्चय) तो ओ है के यज्ञ, दान और तप ए तीनूं तो करणां ही चहीजे, इणां नैं छोड़णा नहीं चाहीजे। क्यूं के ए तीनूं अन्तःकरण नैं पवित्र करण वाळा

है। इणां तीनूं कर्मां ने फळ री इच्छा छोड कर करणा, ओ म्हारो निश्चय है। नित्य करण रा कर्म कियां विना अन्तःकरण री शुद्धि नहीं हुवे और अन्तःकरण शुद्ध हुवां विना ज्ञान नहीं हुवे और ज्ञान विना मुक्ति नहीं। दूसरो अवश्य करण रा नित्य कर्म छूट भी तो नहीं सके है, क्यूं के विना कर्म कियां मनुष्य एक क्षण भर पण नहीं रह सके है। अबे तीन प्रकार रा त्याग बतावे है के जे कोई अज्ञान पणा सूं अथवा कर्मां ने पंपाळ समझण सूं नित्य कर्म करणां छोड देवे तो वो उणरो त्याग तामसी है। जो कर्मां ने दुःख रूप समझ कर शरीर रा क्लेश रा डर सूं नित्य कर्म छोड देवे तो वो उण रो त्याग राजसी है। इण राजसी त्याग सूं संन्यास रो फळ (मोक्ष) नहीं हुवे। जो आपरा नित्य कर्मां ने अवश्य करण ज्यूं समझ रोजीना करतो रवे और उणां में आसक्ति नहीं राखे और फळ री इच्छा नहीं करे, वो सात्विकी त्याग है। अब सात्विकी त्याग करण वाळा पुरुष रा लक्षण बतावे के—जो पुरुष कोई दूजो पुरुष भूंडो काम करतो हुवे उण सूं तो द्वेष नहीं करे और कोई आछो काम करतो हुवे तो उण में आसक्ति नहीं करे, सदा सतोगुण में लागियोडो रवे, स्थिर-बुद्धि हुवे और जिण रा सारा संदेह मिट गया है वो सात्विकी त्यागी हुवे। कोई मनुष्य कर्मां ने पूरी तोर सूं छोड सके नहीं, इण वास्ते कर्मां रा फळ रो त्याग करण वाळो पुरुष ही त्यागी है। इणां कर्मां रा तीन तरह रा फळ हुवा करे है, अनिष्ट (नहीं चायोडो), इष्ट (चायोडो) और मिश्रित। कर्मां रा फळ रो त्याग नहीं करण वाळा ने ऐ तीनूं ही फळ मिले, जिणां में पाप सूं अनिष्ट नारकी जूण मिले, पुण्य सूं इष्ट देव-योनि मिले और पाप पुण्य दोनां रा मिश्रित फळ सूं मनुष्य योनि मिले। परंत कर्मां रा फळ रो त्याग करण वाळा संन्यासी ने इणां मांय सूं एक

प्रकार रो पण फळ नहीं मिले, क्यूं के उण कर्मां रा फळ छोड़ दिया, जिण सूं उण रे कर्मां रो बन्धन नहीं हुवे। इण जगत् में जो ऐ सगळी तरह रा कर्म हो रया है उणां रा होवण में पांच कारण है। एक तो मनुष्य रो शरीर १, दूजो कर्ता जीवात्मा २, तीजी इन्द्रियां ३, चौथी न्यारी न्यारी तरह री चेष्टा ४ और पांचवों दैव वा भाग्य अथवा इन्द्रियां रा अधिष्ठाता देवता ५। इणां पांचां रे भेळा हुवां बिना कोई कर्म हुवे नहीं। एकला जीवात्मा ने कर्ता मानणो सरासर अज्ञान है। ऐ पांचूं मिल कर कारण है, एकलो जीव कारण नहीं है। जिण पुरुष रे कर्तापणा रो अहङ्कार नहीं है, जिणरी बुद्धि लिपायमान नहीं है, वो चाहे इणां सारा लोकां ने मार नाखे तो पण वो कर्मां सूं नहीं बन्धे है। परंत अहङ्कार छूटणो कठण घणो है, इण वास्ते लोग कर्मां सूं बन्धे है। हरेक काम करण में प्रवृत्ति रा कारण तीन है, एक ज्ञान, दूजो ज्ञेय और तीजो ज्ञाता। वांच्छित वस्तु (मनचायोड़ी चीज) नैं प्राप्त करण रा साधन नैं जाणणो तो "ज्ञान" है, वांछित वस्तुरा साधन रूप कर्म "ज्ञेय" वा जाणण योग्य वात है और जाणण वाळो 'ज्ञाता' है। ऐ तीनूं भेळा हुवे जद काम रो आरंभ हुवे। इणी तरह कर्म रा संग्रह में पण तीन कारण है, एक करण (इन्द्रियां), दूजो कर्म और तीजो कर्ता। इणां में 'करण' नाम कर्म करण री साधन-रूप इन्द्रियां आंख, नाक, आदि, 'कर्म' जो काम कियो जावे वो और 'कर्ता' काम रो करण वाळो है। इण में 'ज्ञान' सूं तो काम नैं पैली जाणे। पछै कर्म करे। जिण सूं 'ज्ञेय' और 'कर्म' एक हीज है। उणी तरह 'ज्ञाता' और 'कर्ता' पण एक हीज है"। अब ज्ञान, कर्म और कर्मा रा सतोगुण आदि तीन गुणां रा सम्बन्ध सूं न्यारा २ तीन २ भेद बतावे है। "जिण ज्ञान सूं पुरुष न्यारा न्यारा पुरुषां में अन्तर्यामी रूप सूं एक-रूप और नित्य

स्वरूप एक परमात्मा ने देखे है वो सात्विक ज्ञान है। सगळा प्राणियां में ईश्वर ने न्यारो न्यारो देखे है वो ज्ञान राजस है और इण शरीर नैं ही आत्मा समझे, प्रतिमा या मूर्ति ने परमात्मा समझे और असली तत्व ने कीं नहीं समझे और जो थोडो हुवे उणनें तामस ज्ञान कवे। ऐ तीन प्रकार रा 'ज्ञान' हुवा। राग द्वेष छोड, आसक्ति विना, फळरी इच्छा विना जो नित्य कर्म कियो जावे वो सात्विक कर्म है। कर्म रा फळ री इच्छा राख, अत्यन्त परिश्रम रे तथा अहंकार रे साथ जो कर्म किया जावे वो राजस और लारा सूं दुःख देवण वाळो, धनरो खर्च करावण वाळो, हिंसारे साथ और आपरी शक्ति रे वारे, मोह रे साथ जो कर्म कियो जावे वो तामस है। ऐ तीन प्रकार रा कर्म कया। आसक्ति छोड़, अहंकार विना, धीरज और उत्साह रे साथ, काम री सिद्धि और असिद्धि में समदृष्टि राख, जो पुरुष काम करे वो सात्विक कर्ता है। जो मनुष्य राग रे वस हूय, कर्मां रा फळ री इच्छा राख, हर्ष और सोच रे साथ, पराया धन री इच्छा सूं और पराया नैं पीडा देवण वाळो, हिंसा वाळो, पवित्रता विना काम करे वो राजस कर्ता और मन नैं एकाग्र कियां विना, गिवार, करडो लठ, ठगोरो, पराया री आजीवका में भंग पटकण वाळो, आळसी, सोच करण वाळो, मन मुरझायोड़ो और काम नैं तुर्त फुर्त नहीं करण वाळो कर्ता तामस है। ऐ तीन प्रकार रा कर्ता बताया। अब बुद्धि और धीरज रा तीन प्रकार रा भेद बतावे है। जो बुद्धि प्रवृत्ति अर्थात् कर्म-मार्ग और निवृत्ति अर्थात् मोक्ष-मार्ग, शास्त्र में कयोडा कर्म और बरजियोड़ा कर्म, भय और अभय, बंध और मोक्ष नैं जाणे वा सतोगुणी बुद्धि है। जिण बुद्धि सूं धर्म अधर्म, करण लायक और नहीं करण लायक काम, नैं ठीक तरह सूं नहीं जाणे और संदेह बणियो रो बणियो रवे, वा बुद्धि

रजोगुण वाळी है। अज्ञान रा सवब सूं धर्म न तो अधर्म समझे और अधर्म ने धर्म समझे और सारी बातां ने ऊँधी हीं समझे वा बुद्धि तमोगुणी हुवे । आ तीन प्रकार री बुद्धि हुई। जिण सूं मन, प्राण री चेष्टा, इन्द्रियां योग-साधन सूं बस में की जा सके उण स्थिर धारणा ने सात्विकी धीरज कवे । जो मन, प्राण और इन्द्रियां री चेष्टा, धर्म, अर्थ, काम इणां तीन पुरुषार्थां रे वास्ते धारण की जावे और मोको देख फळरी इच्छा करे वा राजसी धीरज है। दुर्बुद्धि पुरुष जिण सूं सुपनो, डर, सोच, मुरझावणो, विषय-भोग रूप मद या नशा नैं नहीं छोड़े वा तामसी धीरज है । आ तीन प्रकार री धीरज हुई। अब सुख रा तीन प्रकार रां भेद बतावे है। जो आदि यानी सरू में तो जैर हुवे ज्यूं खारो लागे और अन्त या अखीर में अमृत रे समान लागे, वो सात्विक सुख है, जो आपरी बुद्धि री निर्मळता सूं हुवे है। इन्द्रियां रा भोगां सूं हुवण वाळो सुख जो आद में अमृत ज्यूं और अन्त में ज़ैर ज्यूं लागे वो राजस सुख है, जो इन्द्रियां और विषयां रा संयोग सूं हुवे। जो सुख आद में और अन्त में आत्मा ने मोहित करण वाळो होवे वो तामस है, जो नींद, आळस और गाफळपणां सूं हुवे । ऐ तीन प्रकार रा सुख हुवा । इण जगत् में इसो कोई जीव नहीं है जिण रे इणां तीन गुण सत-रज-तम रो बंधन नहीं हुवे । कांई पृथिवी पर मनुष्य और कांई स्वर्ग में देवता, सब इणां गुणां सूं बंधियोडा है। इणा गुणां रे मुजब ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इणां च्यारूं वर्णां रा कर्म मुकर्रर है। ब्राह्मण रा स्वाभाविक कर्म है के शम नाम मन नैं वश में राखणो, दम नाम बारली इन्द्रियां ने वश में राखणी, तपस्या करणी, शरीर सूं बारली और मन सूं मांयली पवित्रता राखणी, क्षमा राखणी, सरळता राखणी, शास्त्र ज्ञान और विज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान, आस्तिक-पणो अर्थात् ईश्वर नैं मानणो, वेद आदि साचा

है, वेद में कयोड़ा कर्म करणां सूं स्वर्ग मिले, इसी बुद्धि राखणी। क्षत्रिय रा ऐ स्वाभाविक कर्म है के-शूरवीरता, तेज, धीरज, चतुराई, (हुँशियारगी), युद्ध में पूठ नहीं दिखावणी, दान देणो, ईश्वर-पणो वा हकूमत राखणी। वैश्य रा स्वाभाविक कर्म ऐ है के-खेती करणी, गाय आदि पशुवां नैं पाळणा और व्यौपार करणो। शूद्र रो ओ स्वाभाविक कर्म है के तीनूं वर्णां री सेवा चाकरी करणी। आप आप रा कर्म करणां सूं मनुष्य सिद्धि अर्थात् मोक्ष नैं प्राप्त हू जावे। और मोक्ष पावण रो ओ मारग है के इण सारा जगत् नैं पैदा करण वाळा, इण जगत् में सब में व्यापक, अन्तर्यामी रूप ईश्वर री आप आप रा कर्म करण रूप सेवा वा पूजा करणी। इण सूं मोक्ष मिले। दूजा वर्ण रा धर्म सूं आप रा वर्ण रो धर्म भत्तो है क्यूं के आपरा स्वाभाविक कर्म करणां सूं मनुष्य ने पाप नहीं लागे। आपरा स्वाभाविक कर्मां में दोष दीसे तो पण उणां नैं छोडणा नहीं, क्यूं के ज्यूं अग्नि में धुंवो हुवे ज्यूं कर्मां में दोष हुवा ही करे है। इण वास्ते आप आपरा आछा और भूंडा कर्म है उणां नैं कीयां ही जावणा। किणी बात में आसक्ति नहीं राखणी, आपरा मन नैं जीत लेणो, किणी चीज री मन में लालसा नहीं करणी और कर्मां रो फल नहीं चावणो। इन भांत जो कर्म करे वो मोक्ष नैं प्राप्त हुवे।" अब भगवान् ब्रह्म-भाव री प्राप्ति रो मारग बतावे है, क्यूं के ज्ञान रो फल ब्रह्म री प्राप्ति है। ब्रह्म री प्राप्ति हुवां पछै कुछ नहीं करणो बाकी रवै। जिणां बातां सूं ज्ञान हुवे वे अब गिणावे है के-"बुद्धि ने शुद्ध वा पवित्र राखणी, धीरज राख मन नैं बस में करणो, शब्द-स्पर्श आदि इन्द्रियां रा विषयां ने छोडणा, राग द्वेष रो त्याग करणो, एकान्त जगां में रैवणो, थोडो भोजन करणो, वाणी-शरीर-मन नैं बसमें राखणा।" अबे इणां ने बसमें करण रा साधन बतावे

है के-"मून धारण करणा सूं वाणी वस में रवे, शरीर ने निश्चळ राखणो, अठी ऊठी फिरणो नहीं इण सूं शरीर वस में हुवे, मनमें वैराग राखणो इण सूं मन वस हुवे। अहंकार, बळ (अणूतो आग्रह), घमण्ड, कामना, क्रोध, वस्तुरो संचय ऐ सब छोड देणा, अहंता ममता नहीं राखणी, शान्त रैणो, इण तरह जो मनुष्य रवै वो ब्रह्म--भाव नैं प्राप्त हुजावे। उणरो मन प्रसन्न रवे, वो किणी रो पण सोच नहीं करे, किणी वात री इच्छा नहीं करे, सव प्राणियां नै समदृष्टि सूं देखे, सब प्राणिमात्र नैं ब्रह्मरूप समझे, जद म्हारी भक्ति नैं प्राप्त हुवे। उण भक्ति सूं वो म्हन ओळख लेवे, उण नैं म्हारा स्वरूप रो ज्ञान हुजावे, पछै प्रारब्ध कर्मां रा भोग भोग कर इण देह नैं छोड वो म्हनैं प्राप्त हुजावे। जो भक्त म्हारो शरणो ले लेवे है वो चाहे जिसो हरेक काम हरेक वगत करतो रवै तो पण उणनैं म्हारी कृपा सूं अविनाशी परमपद मिले। भगवान् रो भक्त खोटा काम तो करे नहीं, क्यूं के खोटा काम करण वाळो भक्त नहीं होय सके। वो तो भगवान् नैं प्रसन्न करण रा ही सगळा काम करे, दूजा काम करै ही नहीं। इण वास्ते हे अर्जुन! तूं जो कुछ कर्म करे सो म्हारे अर्पण कर, म्हारे ही परायण रै, म्हारो शरणो ले, निश्चय वाळी बुद्धि सूं योग साधन कर, म्हामें थारो चित्त लगा और म्हां में ही लवलीन होजा। तूं म्हां में चित्त लगाय देला जद म्हारी कृपा सूं सारा विघनां नै उल्लंघ जावेला। और जे तूं "मैं बुद्धिमान् हूं" इण समझ से घमंड वा अहंकार लाय म्हारो कयो नहीं मानेला तो थारो सब भांत नाश हुजावेला। अहंकार लायर "मैं युद्ध नहीं करूंला" इण तरह रो जो थारो निश्चय है वो साव खोटो है, क्यूं के थारो जो क्षत्रियपणा रो स्वभाव है वो थनैं युद्ध में आपही लगाय देवेला। तूं थारा स्वभाव रा कर्मां सूं बंधियोड़ो है, तूं

युद्ध करण सूं नटे है आ थारी भूल है, क्यूं के तूं मोह रा (अज्ञान रा) सबब सूं जिण काम नैं करियां नहीं चावे है उण काम नैं तूं थारा क्षत्रियपणा रा स्वभाव सूं मांडाणी करेला, थारा स्वभाव रे पराधीन हुवोडो तूं युद्ध रूप काम करेला। सगळो संसार स्वभाव रा वस में है, आदमी रे हाथे कुछ नहीं है। ज्यूं होणो है ज्यूं हीज हुवेला। ओ अन्तर्यामी ईश्वर सगळा प्राणिमात्र रा हिरदा में विराजमान हू रयो है, वो आपरी माया सूं सगळां ने इण तरह चलाय रयो है ज्यूं बाजीगर कठ पुतली ने डोरा में घाल नचाया करै है। इण वास्ते हे अर्जुन ! तूं उणी परमेश्वर रो सब तरह सूं शरणो ले। जे तूं उण अन्तर्यामी परमात्मा रो शरणो लेवेला तो तूं उणरी कृपा सूं परम शान्ति और परम पद नैं प्राप्त हुवेला।"

फेर भगवान् सारी गीता रो सार फरमावण वास्ते अर्जुन नैं कयो के—"मैं सगळी छानी बातां वा गुपत ज्ञान थनैं कयो है सो तूं आछी तरह विचार ले। पछै थारै तुले ज्यूं करजे। अब मैं थनैं सगळा गुप्त ज्ञानां करतां पण अत्यन्त गुप्त बात कहूं हूं क्यूं के तूं म्हारो वल्लभ है और बुद्धिमान् है इण वास्ते थारी भलाई रे वास्ते कहूं हूं के—तू थारो मन म्हां में लगा, म्हारी भक्ति कर, म्हारी पूजा कर, म्हनैं नमस्कार कर, इण तरह जे तूं करेला तो तूं निश्चै ही म्हनैं प्राप्त हुवेला। आ बात मैं थनैं साची प्रतिज्ञा कर कही है। तू सगळा धरमां रो आसरो तो छोडदे, और अकेला म्हारो शरणो ले ले। मैं थनैं सगळा पापां सूं छुडाय दूंला, तूं सोच मत कर।" भगवान् रो सब धर्मां ने छोडण सूं मतलब आसक्ति, फळ री इच्छा और धर्म रो आसरो छुडावण सूं हैं। धर्म करणां छुडावण सूं मतलब नहीं है। शरणो म्हारो ले। धर्मां रो शरणो मत ले। पछै भगवान् गीता रा ज्ञान रो माहात्म्य वा

महिमा कही के "इण गीता नैं जो भक्ति रे साथ पढ़ेला तो मैं उण सूं राजी होऊंला।" फेर अर्जुन नैं पूछियो के-"कांई तूं ओ ज्ञान एकाग्र चित्त सूं सुण लियो ? और थारो मोह मिट गयो ?"

जद अर्जुन कयो के-"हे भगवन् ! आपरी कृपा सूं म्हारो मोह मिट गयो, स्मृति आ गई, आप जो आज्ञा करोला सो मैं करूंला।"

जठी कांनी योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण, धनुर्द्धारी अर्जुन है, उठी कांनी लक्ष्मी, जीत, ऐश्वर्य और न्याय स्थिर है, इण में सन्देह नहीं है। इति शम्। श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

नारायणोत्तरपद-गोविन्देन सुधीमता ।
भगवद्गीतसारोऽयं रचितः स्यात् सतां मुदे ॥ १ ॥

गोविन्द.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ईश्वर की हस्ती ।

ईश्वर की क़ुदरत (गति) बड़ी अनोखी वो अजीब है कि अपने आप साबित होने वाले परमेश्वर के होने के सबूत लिखने के लिये कलम हाथ में लेनी पड़ती है। जिस ईश्वर ने इस सब दुनिया को बनाया, जिस में क्या तो जानदार और क्या बेजान सभी चीजें शामिल हैं, जो इन की हर वक्त निगहबानी रखता है, परवरिश करता है, ख़तरों से बचाता है, गुनाह पर गुनाह करने पर भी खाने को रोटी, पीने को पानी, पहनने को कपड़े, रहने को मकान देता है, उस परवरदिगार को न मानना कितनी भारी भूल है। सच पूछिये तो जिस ईश्वर के बिना यह सब कुछ कुछ नहीं है, उस को साबित करने के लिये कलम उठाना पड़ता है, यह एक अजीब बात है। मगर किया क्या जाय, जब कि इस नाज़ुक ज़माने में ईश्वर को न मानना एक हौवा सा हो चला है। ईश्वर के न मानने वाले काफ़िर लोग इतने आगे बढ़ गये हैं कि वे ईश्वर को खुला चैलेंज (Chalange) दे रहे हैं कि अगर ईश्वर है तो वह हमारे सामने चौड़े क्यों नहीं आता और हमारे तानों व मलामतों का जबाब क्यों नहीं देता! बड़े अचरज की बात है कि इस तरह के ख़यालात हर रोज बढ़ते चले जाते हैं। उनको रोकने के लिये यह कोशिश उसी ईश्वर की मनूशा और उसके सुझाने से की जाती है। उम्मेद है कि उस की मिहरबानी से दुनिया के ख़यालात पलट जायंगे, नहीं तो कम से कम, आगे बढ़ने से तो ज़रूर ही रुकेंगे।

ईश्वर किसे कहते हैं ?

सब से पहले यह बतलाना निहायत ज़रूरी है कि ईश्वर किसे कहते हैं ? जो सब का मालिक हो और सब पर हुकूमत करे और जिस पर किसी दूसरे की हुकूमत न हो, वह ईश्वर कहलाता है। सब को अपने २ काम में लगाने वाला और उन पर निगरानी रखने वाला ईश्वर है।

ईश्वर के दो ज़ात व सफात (भेद)।

ईश्वर की दो शक्लें मानी जाती हैं, एक तो सिफ़ती (सगुण) और जिस्मानी (साकार) और दूसरी बेसिफ़ती (निर्गुण) और रूहानी (निराकार)। इन में से जिस्मानी तो वह तब होता है जब वह तजस्सुम (अवतार) लेता है और रूहानी वह हमेशा रहता ही है। जिस्मानी को तो आदमी तब देख सकता है जब वह खुद ब खुद किसी ग़रज़ से मुजस्सिमी होकर (अवतार लेकर) आता है या कोई तपसी या भगत बन कर उसकी इबादत करता है और वह मिहरबान होकर उसे दिखाई देता है। और रूहानी दिखाई दे ही नहीं सकता, क्योंकि वह बेजिस्मी है।

ईश्वर की शरह वो सिफात (लक्षण)।

ईश्वर की कई शरह व सिफात हैं जिन में से एक यहां लिखी जाती है। ईश्वर वह है जो हर चीज़ को बनाने, बनी हुई को मिटाने और चाहे जिस तरह या और तरह से बनाने की कुव्वत (शक्ति) रखता है। मसलन्, ईश्वर (कादिरे मुतलक) इन चश्मों से दिखाई देने वाली दुनिया को बनाता है जिस में सूरज, चांद, तारे, आग, बिजली, हवा, पानी, ज़मीन, आसमान, फ़रिश्ता, देव, आदमी, परिंद, चौपाये, पहाड़, समुंदर, नदियां, झीलें, पठार, मिट्टी, कंकड़, दरख्त, पौधे, बेल, फल, फूल, बीज, धान, फ़सलें, मौसिम, इल्म, हुनर, हिकमत, नजूम, हैयत, क़वायद,

वेद, पुरान, कुरान, हदीस, बाइबल, इन्जील, वग़ैरः शामिल हैं। यह उस की हर चीज़ को बनाने की कुदरत हुई। वह इन सब चीज़ों को नेस्तनाबूद कर देता है, यह उसकी बनी हुई चीज़ को मिटाने की ताक़त हुई। वह इन सब चीज़ों को जिस तरह बनाना चाहे उसी तरह बना सकता है और इन को ऐसी अजीब तरह से भी बना सकता है जो हमें या किसी को भी आगे या पीछे न तो मालूम हो सकती है और न समझ में आ सकती है। इसी लिये वह क़ादिरे मुतलक़ (सर्वशक्तिमान्), हाज़िर नाज़िर (सर्व-व्यापक) और हमादां (सर्वज्ञ) कहलाता है।

यह ईश्वर की शरह जिस्मानी और रूहानी दोनों में बराबर बैठती (मौज़ूं होती) है।

ईश्वर की इनायतें।

हर मख़लूक़ पर ईश्वर की कई इनायतें हैं जिन का पार कोई नहीं पा सकता। उन में से चंद इनायतें नीचे लिखी जाती हैं।

अव्वल तो हर मख़लूक़ को सांस लेने के लिये हवा की ज़रूरत है कि जिसके बग़ैर वह पांच मिनट भी जी नहीं सकता, इसी लिये परवरदिगार ने हवा को मुफ़त दे रखी है। उसने हवा को सब जगह, सब वक्त और चारों ओर से बहने वाली बनाया है कि जिस से सांस लेने के लिये हवा को लाने, लेजाने, ढूंढ़ने, कोशिश करने की कुछ भी ज़रूरत नहीं है। वह हर लहमे में हरदम जहां बैठे हो वहीं पास ही रहती है। इस हवा की सब से ज्यादा ज़रूरत है इस लिये उसने रहम फ़रमाकर इस की कुछ कीमत नहीं लगाई है।

दूसरा, हवा से कम ज़रूरत पानी की है। आदमी बग़ैर रोटी खाये साठ दिन तक ज़िन्दा रह सकता है मगर बग़ैर पानी के दो घंटा भी नहीं रह सकता। इस लिये परमेश्वर ने पानी

भी बिना मोल के मिलने वाला बनाया है। जो अज़ खुद घड़ा भर कर ले आवे तो उस को कुछ भी दाम देने नहीं पड़ते। और अगर किसी दूसरे के ज़रिये मंगवावे तो फ़ी घड़ा पैसा या दो पैसा लगता है, जो बहुत थोड़ी रक़म है। उसने पानी को भी करीब करीब बिना क़ीमत का ही बनाया है।

तीसरा, पानी से कम ज़रूरत अनाज की है जो एक रुपया का आठ सेर से ले कर बीस सेर तक का मिलता है।

इस से साफ़ साबित होता है कि जिस चीज़ की ज़्यादा से ज्यादा ज़रूरत है उस को परमात्मा ने बिना मोल की बनाई है। जिस चीज़ की कम ज़रूरत है उस का थोड़ा मोल लगाया है। जिस चीज़ की कम से कम ज़रूरत है उस का मोल ज्यादा से ज्यादा लगाया है, मसलन् फल, बादाम, ज़ाफ़रां, मुश्क, वग़ैरः।

चौथा, धान से कम ज़रूरत कपड़े की है जिस के दाम भी ज्यादा नहीं लगते। ज़रूरत मुवाफ़िक़ कपड़े कराये जावे तो अमूमन फ़ी इन्सान रु० २) माहवार का ख़र्चा काफ़ी होगा।

पांचवां, परमात्मा ने आदमी को दस किस्म के बाहिर की कुव्वत-इ-हवास (इन्द्रियां) दी हैं जिन से उसको बाहिर की दुनियावी चीज़ों का इल्म होता है। इन दस में से पांच तो हवास-इ-ख़मसा (इल्म या ज्ञान की इन्द्रियां) हैं और पांच खिलक़ी या ज़ाती हरकत (काम करने की इन्द्रियां) हैं।

हवास-इ-खमसा ये हैं:-

(अ) आंख-इस से चीज़ का रंग व शक्ल देखी जाती है।

(आ) नाक-इस से खुशबू व बदबू का तजरुबा होता है।

(इ) कान-इस से आवाज़ सुनी जाती है।

(ई) जीभ-इस से मीठा, खट्टा, खारा वगैरा ज़ायक़ा जाना जाता है।

(उ) चमड़ी–इस से गर्म, ठंडा, नर्म, करड़ा, वग़ैरह का इल्म होता है।

हरकत की इन्द्रियां ये हैं:–

(क) हाथ–इन से चीज़ उठाई जाती है।

(ख) पैर–इन से एक जगह से दूसरी जगह चलना होता है।

(ग) जीभ–इसे से बोला जाता है।

(घ) इन्द्री–इस से पेशाब किया जाता है और हमबिस्तर होता है।

(ङ) मिकद (गुदा) इस से टट्टी बाहिर निकलती है।

इन में से हरेक परमेश्वर की इनायत है। अगर ये नहीं होतीं तो आदमी कुछ भी नहीं कर सकता, न इल्म हासिल कर सकता, न दुनिया का तजरुबा कर सकता और न किसी का भला कर सकता, न किसी को इल्म दे सकता, वग़ैरः।

छठा, ऊपर लिखे हुए हवासे ज़ाहिरी तो बाहिर के हैं और अन्दर की चार हवासें बातनी और हैं जिन को मन, अक़्ल, दिल और दिमाग़ कहते हैं। इन में से

(अ) मन–तो उधेड़ बुन करता है कि यह करूँ या वह करूँ।

(आ) अक़्ल–सोचती है कि क्या करना चाहिये या न करना चाहिये और फ़िर अख़ीर फ़ैसला करती है कि यह करना चाहिये।

(इ) दिल–फ़ैसले को याद रखता है और सब तजरुबों को अपने में उसे जमा रखता है।

(ई) दिमाग़ यह मैं, यह मेरा, यह तू, यह तेरा, ऐसा सोचता रहता है।

अगर ये हवासे बातनी (अन्दर की इन्द्रियां) नहीं होतीं तो याद रखना, उपजना, सूझना, याद आना, नेक काम करना, बुरा काम न करना, यह मेरा है, यह दूसरे का है, वग़ैरः बातें

नहीं हो सकती थीं। इन से ही आदमी ईश्वर को याद कर सकता है, उस की इनायतों को समझ सकता है, उन से फ़ायदा उठा सकता है, ईश्वर को देख सकता है, बुला सकता है। इस से ये परमेश्वर की अनमोल इनायतें हैं, यह साफ़ साबित होता है। अगर इन में से एक भी न हो तो उस कमी को किसी तरह भी और कितना ही ज़र खर्च करने पर भी पूरा नहीं किया जा सकता।

ईश्वर की कुदरत।

ईश्वर की क़ुदरत न तो आज तक किसी के समझ में आई, न आती है और न आवेगी, किसी ने सच कहा है कि

पड़े भटकते हैं लाखों दाना
करोड़ों पण्डित हजारों स्याने।
जो खूब देखा तो यार आखिर
खुदा की बातें खुदा ही जाने॥

इस दुनियां की कई चीज़ों में से किसी एक चीज़ पर ग़ौर कर देखने से भी कुछ पता नहीं लगता कि यह कैसे पैदा हुई, कैसे बढ़ी, कैसे ज़िन्दा रहती है, कैसी २ हरकतें अपने आप होती रहती हैं, कैसे इस का कारोबार होता है, कैसे बाहिर निकलने वाली चीज़ें अपने आप बाहिर निकल जाती हैं, अन्दर रहनेवाली चीज़ें अन्दर रहती हैं, कैसे मौत आती है, कब आती है, वग़ैरः वग़ैरः। कितनी ही अचरज से भरी बातें हैं। मसलन् इन्सान को ही लीजिये कि यह कैसे बाप की पुश्त से मा के रहम में नुतफ़ा क़रार पाता है, फिर वो मा के शिकम में कैसे नश्व नुमा पाता है (बढ़ता है), वहां आज़ाय तनासुल हाथ, पैर, नाक, कान, आंख, जीभ, सिर, छाती वग़ैरः अन्दर के अन्दर ही कैसे बन जाते हैं, नौ महीने होने पर अपने आप ही बाहर क्यों आ गिरता है,

बच्चा पैदा होने से पहले मा के थनों में दूध कैसे पैदा हो जाता है, बचपन, जवानी, बुढ़ापा, मौत वगैरः कैसे अपने २ वक्त में आते हैं, वगैरः ऐसी कई बातें हैं जिन का जवाब आज तक न तो पूरे तौर से समझ में आया और न आ सकता है। अगर इन में से कोई चीज़ न हो तो उस कमी को कोई पूरी नहीं कर सकता। नई चीज़ का बनाना तो किसी के कभी न तो आज तक हाथ रहा है और न रहेगा। मसलन् छोटे से छोटा घास का एक तिनका भी कोई कभी नया नहीं बना सकता। जब मेह बरसता है और बरसात की मौसिम आती है तभी घास अपने आप उग आता है। बिना मौसिम के कोई चीज़ होती ही नहीं। आम का बीज बोने से आम का पेड़ निकल आता है। नीम की निंबोरी लगाने से नीम उग जाता है। पानी अपने आप नीचे की ओर ही बहता है। अनार के अन्दर दाने अपने आप ऐसे बन जाते हैं गोया मानक जड़े हों। अगर कोई शख्स उन को बाहिर निकाल कर पीछा बिठाना चाहे तो किस की मजाल है कि वह उन को उसी तरह पीछा बिठा सके। सूरज, चांद, सितारे वगैरः हमेशा पूरब में ही उगते हैं और पच्छम में छिपते हैं। पानी से भाप बन कर बादल बनते हैं। बिना बादलों के कभी पानी नहीं बरसता। पेट में खाया हुवा धान कैसे पचता है। उस का फुजला (मल) अपने आप कैसे बाहिर निकलता है। उस का मांस कैसे बनता है। मांस से मन कैसे बनता है। वह बाहिर क्यों नहीं निकलता। पीया हुआ पानी का पेशाब कैसे हो जाता है, वह अपने आप कैसे बाहिर आजाता है, पानी से सांस कैसे बन जाते हैं। घी, तेल, वगैरः खाने पर उनकी हड्डी कैसे बनती है। हड्डी से बोली कैसे बन जाती है। आंख में नूर और दिल में सरूर कौन पैदा करता है जिस से चीजें दिखाई देती हैं। नाक से खुश्बू बदबू कैसे जानी

जाती है। कान में से आवाज़ कैसे सुनाई देती है। जीभ से मीठा, खट्टा कैसे जाना जाता है। जीभ से कैसे बोला जाता है। चमड़ी से सर्दी, गर्मी का इल्म कैसे होता है। मछली को पानी में तैरना कौन सिखाता है। दूध को शुरु में सुफेद किसने बनाया। सब चीज़ों के नाम पहले पहल किसने दिये। नया पैदा हुआ बच्चा दूध पीना कैसे सीखता है और कौन सिखाता है। काठ में आग किस ने डाली, सोतों में से पानी कैसे उबकता है। मेंहदी में रङ्ग किसने डाला। तिलों में तेल कैसे छुपा रहता है। दूध में घी किसने डाला! चक़मक़ में आग किसने रखी। शहद में मिठास किसने दिया। ईख को मीठा वो नीम को खारा किसने बनाया। कभी हम जो चाहते हैं वही बात होती है, कभी हम चाहते हैं वह बात नहीं होती, कभी हम नहीं चाहते हैं, वह बात हो जाती है, ऐसा क्यों होता है और कौन करता है। तरह तरह के जानवर किसने बनाये। रङ्ग बेरङ्ग के परिन्द किसने बनाये। भूचाल कैसे और क्यों होता है। आदमी बीमार क्यों होजाता है। बीमारी को रफ़ा करने वाली दवाएँ किसने पैदा कीं। समुन्दर का पानी खारा क्यों बनाया। नदियां वो तालाबों का पानी मीठा किसने बनाया। बीज बोने से वह अपने आप कैसे उग आता है, पानी सींचने से वह कैसे बढ़ता है। नाज खाने से ज़िन्दगी कैसे क़ायम रहती है, बिना खाये मौत क्यों आजाती है। मौत क्या चीज़ है और वह क्यों बनाई गई। अपने रिश्तेदार, बाल बच्चे, जोरू वग़ैरः से प्यार क्यों किया जाता है। दुश्मन से वैर व खार अपने आप क्यों आता है। घर का आदमी मरने से क्यों रोना आता है। घर में बच्चा पैदा होने से खुशी क्यों होती है। अपने मालिक की खैरख्वाही क्यों की जाती है। उस की वफ़ादारी करने पर भी बुरा नतीजा क्यों मिलता है। किये हुए भले वो बुरे कामों

का फल कौन देता है। सवाब का फल सुख और अजाब का फल दुःख क्यों होता है। भली वो बुरी अक्ल कौन देता है। भले आदमी से मिलने पर खुशी क्यों होती है और बुरे आदमी से नफरत क्यों आती है। मन के विचार हमेशां यकसां क्यों नहीं रहते। वे हरदम क्यों बदलते रहते हैं। कोई चीज़ हमेशां क्यों नहीं रहती। उसका कभी न कभी नाश क्यों होता है। हंस की चोंच में दूध और पानी को जुदा करने की सिफ़त किसने दी? अंगुली के छूने से लजवंती क्यों कुम्हला जाती है और दूसरी बेल क्यों नहीं कुम्हलाती, सूरजमुखी फूल सूरज की तर्फ मुंह किये क्यों रहता है? फूलों को कौन खिलाता है? झरनों से कौन गीत गवाता है, नदियों को मस्त चाल में कौन चलाता है? कमल का फूल पानी में क्यों नहीं डूबता। तूंबा पानी में कैसे तैरता है वग़ैरः वग़ैरः। अचम्भा और हैरानी तो इस बात की है कि उसकी बनाई हुई किसी चीज़ के ज़र्रे की भी हूबहू नकल करना किसी के मक़दूर में नहीं है और चीज़ों के बेशुमार होते हुए भी एक दूसरी से हूबहू कभी नहीं मिलती।

ईश्वर की सूरत (स्वरूप)।

अगरचे ईश्वर की कोई सूरत वा शक्ल नहीं है तो भी परमेश्वर के प्यारे शख्सों ने उस की तीन सूरतें बयान की हैं जिनमें से

१. पहली-तो उसकी हस्ती (सरूप वा सत्ता) है, यानी वह सब जगह मौजूद रहता है, ऐसी कोई चीज़ नहीं, जगह नहीं, वक्त नहीं, ज़हां, जिस जगह और जिस वक्त वह न रहता हो।
२. दूसरी–उसकी वाक़फ़ियत वा इल्म (चित्स्वरूप वा ज्ञान) है, यानी वह सब के मन की बात को हर लहमे में जानता रहता है। ऐसी कोई बात नहीं जिस को वह न जानता हो

वा न जान सके। क्या तो गुज़िश्ता, क्या मौजूदा वो क्या आयंदा वह सब बातों को जानता है।

३. तीसरी-उसकी फरहत वा बेहद खुशी (आनन्द स्वरूप) है। दुनियां में जितनी खुशियां वा मौज मज़ा वग़ैरः हैं वे सब उस से आते हैं। उस खुशी के आगे ये सब खुशियां कुछ भी वक़त नहीं रखतीं।

इसके सिवाय ईश्वर में सब इख़तिलाफ़ (विरोध) की बातें पाई जाती हैं, जैसे वह जिस्मानी भी है और रूहानी भी है, वह सिफ़त (गुण) वाला भी है और बे-सिफ़त (निर्गुण) भी है, वह सबसे छोटे से छोटा और सब से बड़े से बड़ा है, उस में अचरज भरी सब बातें रहती हैं। वह हर जगह मौजूद रहता है और दिखाई नहीं देता। उसके आंखें न होने पर भी वह सब कुछ देख सकता है, कान न होने पर भी सब सुन सकता है, नाक न होने पर भी सब सूंघ सकता है, जीभ न होने पर भी सब चख सकता है और बोल सकता है, हाथ न होने पर भी चीज़ें उठा सकता है, पैर न होने पर भी एक जगह से दूसरी जगह जा सकता है, न उसकी शुरुआत है और न उसका अख़ीर है, वह सब को पैदा करता है मगर उसको पैदा करने वाला कोई नहीं, यानी वह अपने आप ही पैदा हुआ, पैदा होता है और पैदा हो सकता है और पैदा होगा, उस के कोई बदन नहीं है तो भी वह सब रूहों में रहता है, उस के कोई नाड़ियां, रगें, नसें, वग़ैरः नहीं हैं, वह खुद पाक है और पाक चीज़ों को पाक बनाने वाला है, उसके न तो कोई नेकी है और न कोई बदी है, उसके सामने न सवाब न (पुन) है और न अजाब (पाप) है, वह सब को देखने वाला, सब को जानने वाला, सब से बढ़िया, सब से ऊंचा, सब का पैदा करने वाला, सब की परव-

रिश करने वाला, सब को मारने वाला, सब को चलाने वाला, सब पर हुकूमत करने वाला, अपने वलियों (भगतों) पर खुश होने वाला, सब का भला चाहने वाला और करने वाला, न किसी का दोस्त और न किसी का दुश्मन, सब को एक नज़र से देखने वाला, किसी की तरफ़दारी नहीं करने वाला, भला करने वालों का भला करने वाला और बुरा करने वालों का बुरा करने वाला, गुनाहगारों को सजा देने वाला और सवाब करने वालों को इनाम देने वाला, सब तरह की हवासों से परे, मन के परे, अक्ल से परे, दिमाग़ से परे, वेदों को बनाने वाला, इल्म को बनाने वाला, अपनी रोशनी से रोशन होने वाला, सब के हिरदे में बैठा हुआ, सब में छुपा हुआ, सब की रूह होकर रहने वाला, फैलों के नतीज़ों को पहुंचाने वाला, कामों के फल को देने वाला, जिसमें सब रूहें रहती हैं और जो खुद सब रूहों में रहता है. सब का गवाह रूप से देखने वा रहने वाला, सब चेतनों का चेतन, हमेशा रहने वाला, बहुतों में एक हो कर रहने वाला, सब की पैदायश का सबब, उसको न तो सूरज, न चांद, न तारे, न आग, न बिजली रोशन कर सकती हैं, बल्कि ये सब उस की रोशनी से रोशन होते हैं, जो आग में, जल में, मिट्टी में, आस्मान में, हवा में, सब दुनिया में, दरख्तों में, पेड़ों में, फूलों में, फलों में, पत्तों में, मौजूद है। वही दुनिया है और दुनिया वह है, जिस में सब समाये हुए हैं और जो सब में समाया हुआ है और फिर सब से अलग है, वह सब चीज़ों को उठाये रखने वाला, सब को मिटाने वाला और सब को फिर पैदा करने वाला है। सूरज, चांद, तारे, अपना २ काम उसी के हुक्म से करते हैं, समुन्दर अपनी मरजाद उस के डर से नहीं छोड़ता है. नदियां उसके हुक्म से सदा बहती चली जाती हैं। वही झरनों से गीत

ग़वाता है और फूलों में हँसी का राज ओं नाज़ लाता है वग़ैरः।

ईश्वर कहां रहता है ?

ऐसी कोई जगह नहीं, चीज़ नहीं, रूह नहीं, जहां वह न रहता हो। वह सब जगह, सब वक्त, हर दम मौजूद रहता है। उस से ख़ाली कुछ भी नहीं है। वह सब में समाया हुआ है। उसकी बूद व नाबूद (माया) से चकराया हुआ इन्सान उसको नहीं देख सकता। जब उसकी मिहरबानी से माया हट जाती है तब वह अपने आप दिखाई देने लग जाता है।

ईश्वर को पाने के ज़रिये।

ईश्वर को ढूंढ़ने के लिये कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है। वह तो सब जगह मौजूद है, यहां तक कि वह हरेक इन्सान व शह में रूह हो कर बैठा हुआ है। सब इन्सानों में बैठा हुआ होने पर भी वह दिखाई नहीं देता। यह रूह ईश्वर का ही ज़र्रा है। यह भी इतना छोटा वो बारीक है कि यह न तो आता हुआ यानी जन्मता हुआ और न जाता हुआ यानी मरता हुआ देखा जा सकता है। तो फिर ईश्वर जो रूह से भी पाकतर है, कैसे देखा जा सकता है? उस को तो वे ही वली देख सकते हैं जो उस की सच्चे मन व तह दिल से इबादत करते हैं। इबादत से खुश होकर वह अपने आप अपनी जलवा (सूरत) दिखा देता है। ईश्वर की माया से छूटे विना ईश्वर देखा नहीं जा सकता। इस माया से छूटने का ज़रिया सिर्फ एक ही है और वह है उसकी इबादत कर उसकी पनाह मंजूर करना। ईश्वर की पनाह में जाने के बाद किसी को कुछ भी करना कराना बाक़ी नहीं रहता। वह परवरदिगार अपने आप सब कुछ करता कराता है। पनाह पाने के दूसरे भी ज़रिये हैं, जैसे नतीज़े (फल) की चाह न रख कर

काम करना, जो काम करना ईश्वर के लिये करना और अपने लिये कुछ न करना, जो काम करना उनका फल, ईश्वर को सौंप देना। ईश्वर को सब तरह जान लेना, उसका नाम रटना, उस की इबादत करना, उस को हर दम याद करना, उस को कभी न भूलना, उस का अदब करना, वग़ैरः।

ईश्वर के पाने का नतीजा।

अब यह सवाल बाक़ी रह जाता है कि ईश्वर को पा लेने से क्या नतीजा निकलता है ? इस का यही जवाब है कि इन्सान ईश्वर को भूला हुआ है और अपने मतलब में डूबा हुआ है। वह फ़िज़ूल चंद–रोज़ा यानी फ़ानी (अनित्य) चीज़ों के पीछे २ भटकता रहता है। अगर वह अपना मन इन आरिज़ी चीज़ों से हटा कर अब्दुल आबाद (हमेशा रहने वाले) की तर्फ़ लगा दे तो उसको हमेशा क़ायम रहने वाली जगह मिल जाय। इन्सान ईश्वर को न मानने वो उस पर भरोसा न करने के सबब ही और अपनी कु[illegible] का झूठा घमंड करने से ही हैयात और ममात (जनमने और मरने) के चक्कर में फँसा रहता है और हमेशा भटकता रहता है। दुनिया दुःखों से भरी पड़ी है। या यों कहिये कि दुनिया में दुःख ही दुःख हैं। उन सब दुःखों में भी जनमने और मरने का दुःख सब से ज्यादा है। जनमने और मरने के हमेशा के दुःखों से छुटकारा पाने का एक जरिया ईश्वर की पनाह में आना ही है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। "ईश्वर है" इस बात का भरोसा न रख कर ही इन्सान गुनाह वा पाप किया करता है। अगर इन्सान ईश्वर को हाज़िर नाज़िर समझने लग जाय तो वह कभी पाप नहीं कर सकेगा। मसलन्, जब कभी कोई इन्सान गुनाह करने लगता है तो वह पहले चारों

तर्फ नज़र फैला कर देखता है कि यहां कोई है तो नहीं और जब उसे कोई दिखाई नहीं देता है तब वह अपने मन में यह समझता है कि मुझे कोई नहीं देखता। अगर किसी के कोई गुनाह करते वक्त कोई दूसरा इन्सान आ जाय तो वह फ़ौरन उस गुनाह को करते रुक जायगा। अगर इन्सान की जगह पुलिस का सिपाही (कांस्टेबल) आ जाय तो वह ज़ियादा ख़ौफ खावेगा। अगर पुलिस का अफसर इन्स्पेक्टर, सुपरिंटेंडेंट, वा आई. जी पी. आ जाय तो उससे भी ज़ियादा घबरा जावेगा। और अगर खुद दरबार साहब आ निकलें तो वह डर के मारे थर थर कांपने लग जायगा। मगर ईश्वर जो राजाओं का भी राजा और शाहों का भी शाह है उसके हाज़िर नाज़िर रहते अगर कोई इन्सान गुनाह करे तो ज़रूर बिल ज़रूर कहना होगा वो मानना पड़ेगा कि वह इन्सान ईश्वर को सिर्फ कहने में ही मानता है, और दर असल ईश्वर को हाज़िर नाज़िर नहीं समझता। अगर वह ईश्वर को मानता तो वह कभी कोई गुनाह किसी जगह वा किसी वक्त नहीं करता, क्यों कि ईश्वर तो हमेशा उस के साथ सब जगह और सब वक्त में रहता है। गुनाह करते वक्त अन्दर से जो जमीर (उस वक्त का दिल Conscience) कम्पायमान होता है, वही शक्ति है जो गुनाह से बाज़ रखने का इशारा करती है। मगर ग़ाफ़िल इन्सान उस पर ध्यान नहीं देता है और गुनाह कर बैठता है। ईश्वर को नहीं मानने वाला ही पाप, गुनाह, जुर्म, जुल्म, वग़ैरः किया करता और ईश्वर को मानने वाला कभी कोई जुर्म या जुल्म नहीं करता। जो इन्सान ईश्वर को मानता है उस के दिल में किसी न किसी तरह से ईश्वर हरदम बसा हुआ रहता है और उससे किसी तरह का गुनाह या पाप नहीं होता। क्योंकि जब उस का मन

कभी पाप करने की ओर मुख़ातिब होगा तो फौरन ईश्वर उसके दिल की आंखों के आगे आ खड़ा होगा और वह ख़ौफ़ खाकर गुनाह करने से रुक जायगा। इस वास्ते अगर सब ही इन्सान ईश्वर को मानने वाले हो जायं तो फिर कोई किसी को किसी तरह की तकलीफ़ कभी न देगा। तकलीफ़ न रहने से सब जगह अमन चैन हो जावेगा। ईश्वर का नाम रटने वो उसकी इबादत करने से सब तरह की तकलीफ़ों से छुटकारा होता है। ईश्वर को पाक दिल से लगातार हर दम याद करने, इबादत करने, गाना गाने, ईश्वर की तारीफ़ की नज्म वा शेरें ज़ोर २ से पढ़ने, उसकी पाक जगहों की ज़ियारत करने, उससे दुआ करने वग़ैरः से इन्सान के सब पाप धुल जाते हैं। इनसे बढ़ कर कोई तरकीब ईश्वर को पाने की नहीं है। ईश्वर को पा लेने से हैयात वो ममात (जनमने मरने) की तकलीफ़ से छुटकारा हो जाता है और रिहाई वा निजात (Salvation वा मोक्ष) मिल जाती है जिस से बढ़ कर इन्सान के फ़ायदे की कोई चीज़ इस दुनिया में नहीं है।

ऊपर ईश्वर की हस्ती, सूरत, जगह, पाने के ज़रिये और उन का नतीजा लिख कर अब आगे ईश्वर के होने के कुछ सबूत दिये जाते हैं। सबूत अमूमन दो किस्म के होते हैं, एक तो वह जो वहास-ए-ख़मसा के ज़रिये जाने जाते हैं जिन को चश्मदीद सबूत कहते हैं और दूसरा अन्दाज़ह वा क़ाबिल-इ-इ-स्तदलाल होता है। पहले किस्म के सबूतों में जिस चीज़ की शक्ल वा सूरत होती है वह तो आंखों के ज़रिये जानी जा सकती है, जिस में किसी किस्म की बू हो वह नाक के ज़रिये जानी जा सकती है, जिस में किसी किस्म की आवाज़ हो वह कान के ज़रिये जानी जा सकती है, जिसमें कुछ जायक़ा हो वह

जीभ के ज़रिये जानी जा सकती है और जिस में सर्दी गर्मी, नरमी कड़ापन वगैरः हो वह चमड़ी के ज़रिये छूने से जानी जा सकती है। मगर ईश्वर इन में से किसी से भी जाना नहीं जा सकता, क्योंकि उसकी न तो कोई सूरत है, न उसमें बू है, न आवाज़ है, न जायका है, न नरमी गरमी ही है। वह तो सिर्फ़ दिल की आंखों से देखा जा सकता है और अक्ल के ज़रिये समझ में आ सकता है। जैसे कि किसी शायर ने कहा है:-

(शेर)-दिल के आईने में है तसवीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई, देखली॥
फ़ासिला कूच-ए-महबूब का, क्या पूछते हो।
जैसा मुश्तहाक़ हो, नज़दीक भी है, दूर भी है॥

नीचे दिल व दिमाग़ के ज़रिये समझ में आने वाले ५ पांच सबूत लिखे जाते हैं:—

दिमाग़ के सबूत।

१. पहला सबूत-इस दुनिया में हरेक इन्सान यह जानता है और कहता है कि "यह मैं हूं", यह 'मेरा' बदन है, यह 'मेरा' मन है, यह 'मेरा' दिमाग़ है, यह 'मेरा' इल्म है, यह 'मेरी' रूह है। इन में "मैं" है, वही ईश्वर है।

२. दूसरा सबूत-हरेक इन्सान के बदन के पांच हवास अन्दरूनी माने जाते हैं जिन के नाम धान, सांस, मन, अक्ल और मज़ा हैं। धान के खाने से यह बदन ज़िन्दा रहता है, सांस लेने से ख़राब हवा बाहिर निकलती है और ताज़ा हवा अन्दर जाती है, मन मनसूबे किया करता है, अक्ल से सोच विचार किया जाता है और मज़े से खुशी हासिल होती है। इन पांचों बातों के बाबत हरेक इन्सान कहता है, कि-यह 'मेरा' बदन

है, यह 'मेरा' सांस है, यह मेरा 'मन' है, यह 'मेरी' अक्ल वा इल्म है, यह 'मेरा' मज़ा वा खुशी है। यह तजरुबा ही ईश्वर है।

३ तीसरा सबूत–सब लोग देखते हैं कि यह दुनियां है, यह आसमान है, यह सूरज है, यह चांद है, ये तारे हैं, यह आग है, यह हवा है, यह पानी है, यह ज़मीन है, वग़ैरः। इन सब में जो "है वा हस्ती" है, वही ईश्वर है। यह ईश्वर की "हस्ती" का पूरा सबूत है। इस हस्ती (सत् Being) का इल्म जिस के ज़रिये से होता है, वही ईश्वर है।

४ चौथा सबूत–हरेक आदमी जानता है कि आंख से सूरत जानी जाती है, जीभ से जायक़ा जाना जाता है, नाक से बू जानी जाती है, कान से आवाज़ जानी जाती है, चमड़ी से नर्म गर्म जाना जाता है। यह देखने वाला, छूने वाला, सुनने वाला, सूँघने वाला, चखने वाला, मनसूबे करने वाला, सोचने वाला जो इल्मदार जानदार चीज़ है, वही ईश्वर है। यह जानना (चित् Knowledge) जिस के ज़रिये से होता है, वही ईश्वर है। सब चीज़ों का तजरुबा करने वाला भी ईश्वर ही है।

५ पांचवां सबूत–इस दुनिया में इन्सान को सब से ज़ियादा प्यारी अपनी रूह है। अपनी रूह वा जान अपने लड़के से प्यारी है, अपनी जोरू (औरत) से प्यारी है, अपने ज़र (धन) से प्यारी है, अपने नौकर चाकरों से प्यारी, अपने परिवार से प्यारी है, अपनी ज़मीन से प्यारी है, यानी सब से प्यारी है। ये सब लड़के, जोरू, ज़र, ज़मीन वग़ैरः इस लिये प्यारे हैं कि इनसे रूह को खुशी वा सुख होता है। यह खुशी वा सुख ही ईश्वर है। यह सुख (आनन्द Bliss) जिस के ज़रिये से होता है, वही ईश्वर है। इस इन्तिहा सुख से ही इन्सान पैदा होते हैं, बढ़ते हैं और उसी में आख़िर मिल जाते हैं। यह इन्तिहा सुख ही ईश्वर

का सच्चा सबूत है। जब कभी कोई शख्स कोई निराली, खटकने वाली अक्ल की बात कहता है तो सुनने वाले को उस से खुशी होती है। यह खुशी जिसको होती है, वही ईश्वर है।

अन्दाजह के सबूत।

दूसरा सबूत अन्दाज़ह वा दिमाग़ में बैठने वाली दलील का होता है। मसलन् किसी ने अपने बाप को तो देखा मगर अपने दादा परदादा को नहीं देखा। तो भी उस को उन्हें न देखने पर भी दादा और परदादा को मानना पड़ता है। यह अन्दाज़ह का सबूत कहलाता है। कोई शख्स किसी पर्दे के पीछे वा मकान के अन्दर बैठ कर आवाज़ देता है, उस को कोई दूसरा शख्स आंख से तो नहीं देख सकता मगर उसकी आवाज़ सुनाई देती है जिस से उस दूसरे शख्स को मानना पड़ता है कि पर्दे के पीछे और मकान के अन्दर कोई आदमी है। कोई चीज़ विना किसी सबब के पैदा नहीं होती, मसलन् ज़मीन में बीज बोने से ही दरख्त उगता है, विना बीज बोये दरख्त अपने आप नहीं उगता वग़ैरः। इस किस्म के सबूत तजवीज़ की रू से मानने के लायक़ सबूत होते हैं। अब इस किस्म के दस सबूत नीचे दिये जाते हैं।

१ पहला सबूत–सबब (कारण या cause) के विना कोई मुसब्बब (कार्य या effect) नहीं होता, यानी इल्लत विना मालूल नहीं होता। वैसे ही किसी चीज़ का सबब ज़रूर होता है। मसलन्, मिट्टी का घड़ा नाम की चीज़ को बनाने के लिये मिट्टी का होना ज़रूरी है, क्योंकि बिना मिट्टी के घड़ा बन नहीं सकता। इस का बनाने वाला कुम्हार होता है। घड़े को देख कर हरेक आदमी जान लेता है कि इसका बनाने वाला कोई न कोई कुम्हार ज़रूर है। कपड़े को देख कर इन्सान अन्दाज़ह लगा लेता है कि इसका

बुनने वाला जुलाहा है। सोने चांदी के ज़ेवर को देख कर आदमी अन्दाज़ह कर लेता है कि इसका घड़ने वाला सोनार है। उसी तरह इस दुनिया को देख कर अक़्लमन्द लोग जान जाते हैं कि इसका बनाने वाला ईश्वर ज़रूर है जो जानदारों का भी जानदार, सब तरह की ताक़त वाला, सब जगह मौजूद रहने वाला और सब बातों को जानने वाला है।

२ दूसरा सबूत–कोई भी काम किसी किस्म की हरकत बिना नहीं होता। और यह हरकत बिना जानदार के हो नहीं सकती। मसलन् घड़े को बनाने के लिये कुम्हार हरकत करता है, कपड़ा बुनने के वास्ते जुलाहा हरकत करता है, ज़ेवर घड़ने के लिये सोनार हरकत करता है, वैसे इस दुनिया को बनाने के लिये जो जानदार सब कुव्वत वाला हरकत करता है, वह ईश्वर है। बग़ैर किसी जानदार कारीगर की हरकत के यह अनोखी व अजीब दुनिया बन नहीं सकती, इस लिये जिस जानदार कारीगर ने इस दुनिया के बनाने के लिये शुरु में हरकत कर इसे पैदा किया, करता है और करेगा, वह ईश्वर है।

३ तीसरा सबूत–कोई चीज़ बग़ैर किसी सहारे वा टेकन के ठहर नहीं सकती। अगर कोई परिंद अपनी चोंच में एक लकड़ी का टुकड़ा पकड़ कर आस्मान में उड़ता है और जब तक वह उसे पकड़े रहता है तब तक वह टुकड़ा नीचे नहीं गिरता। और जब वह परिंद उस टुकड़े को छोड़ देता है तो वह नीचे आ पड़ता है। यह पकड़ने वा थामे रहने का काम बग़ैर किसी ताक़तवर जानदार के हो नहीं सकता। जिस जानदार अजीब ताक़त वाले ने इस इतनी बड़ी दुनिया को गिरने व बिखरने से थाम रखा है, वही ईश्वर है। यह दुनिया किसी न किसी टिकाव पर ठहरी हुई है, क्योंकि बिना टिकाव के कोई चीज़

ठहर नहीं सकती। इस से अन्दाज़ह किया जाता है जिस टिकाव पर यह ठहरी हुई है, वह सर्वाधार सब ताक़त वाला ईश्वर है।

४ चौथा सबूत—कोई काम बिना क़वायद के चल नहीं सकता, इन क़ायदों का बनाने वाला जानदार वो अक़्लमन्द शख्स ही हो सकता है। मसलन्, किसी राजा का अपने राज का इन्तिज़ाम करना हो तो उस राजा को उस के लिये क़ानून बनाना पड़ता है। उन क़ानूनों की पाबन्दी रखवाना भी उसी राजा का काम है। अगर कोई क़ानूनों की पाबन्दी न रखे तो वह राजा क़ानून तोड़ने वाले को सज़ा देता है और क़ानून के मुताबिक़ चलने वाले को इनाम देता है। ऐसे राज का इन्तज़ाम देख कर कोई शख्स अन्दाज़ह कर सकता है कि इस राज का राजा होशियार वो अक़्लमन्द है। उसी तरह इस दुनिया के क़ायदों को देख कर अक़्लमन्द इन्सान अन्दाज़ह करते हैं कि इन क़ानूनों का बनाने वाला और सबको उनके मुताबिक़ चलाने वाला जानदार, जानकर, क़ुव्वतवर, ईश्वर है। मसलन्, सूरज हर रोज पूरब में निकलता है, पच्छम में छिपता है, मुक़र्रिर वक्त पर मौसिमें बद-लती हैं, पानी हमेशा ढाल की तर्फ़ ही बहता है, आम की गुठली बोने से आम उगता है, नीम की निमोली लगाने से नीम लगता है, वग़ैरः कितने ही क़ायदे बराबर चलते नज़र आते हैं, जिन को देख कर इन का बनाने वाला तथा इनको चलाने वाला ईश्वर ज़रूर बिल ज़रूर साबित होता है।

५ पांचवां सबूत—किसी भी चीज़ को देख कर इन्सान अन्दाज़ह करता है कि इस चीज़ का कोई न कोई मालिक ज़रूर है। मसलन्, किसी ने एक घर को देखा तो वह उस घर को देख कर जान जायगा कि इस घर का कोई न कोई मालिक ज़रूर है। घर और घर का मालिक एक नहीं हो सकते। घर

जुदी बेजान चीज़ है और घर का मालिक जुदा जानदार इन्सान है। वैसे इस बेजान दुनियां का मालिक जानदार ईश्वर ज़रूर है जो सब जानदारों को भी जान का बख़्शने वाला है। वही परमेश्वर है।

६ छठा सबूत–किसी फ़ोटो, तस्वीर या ख़त के देखने से यह अपने आप साबित होता है कि इस फ़ोटो का बनाने वाला फ़ोटोग्राफ़र ज़रूर है, इस तस्वीर का बनाने वाला मसव्वर ज़रूर है, इस ख़त का लिखने वाला क़ातिब ज़रूर है, उसी तरह इस दुनिया को देखने से अपने आप साबित होता है कि इसका बनाने वाला भी ईश्वर ज़रूर बिल ज़रूर है।

७ सातवां सबूत–किसी पर्दे के अन्दर या घर में बैठा हुआ अगर कोई शख्स गाना गा रहा हो तो उसकी सुरीली मीठी आवाज़ सुन कर बाहिर बैठा हुआ दूसरा आदमी ज़रूर जान जायगा कि पर्दे के अन्दर या घर में का आदमी गाना गा रहा है, चाहे वह उस गाने वाले को अपनी आंखों से न भी देख सकता है। इसी तरह चाहे हम ईश्वर को अपनी आंखों से नहीं देख सकते मगर इस गाने के इल्म का सब से पहले बनाने वाला और अपने अन्दर छिपे हुए अनहद गान का बनाने वाला और उस गाने के सुनने के लिये हमको अजीब कान की मशीन का देने वाला ईश्वर है, इस बात का अन्दाज़ह ज़रूर कर सकते हैं।

८ आठवां सबूत–अगर किसी पानी की गिलास में ओला या शक्कर डाल दी जावे तो वो थोड़ी देर में गल कर पानी की सूरत में मिल जायगी और फिर वह दिखाई नहीं देगी। उसी तरह ईश्वर सब दुनियां में समाया हुआ है, मगर हम उसको नहीं देख सकते, क्योंकि वह पानी में शक्कर की तरह समाया हुआ

है। उसको सबमें समाया हुआ समझने के लिये मन का देने वाला वही ईश्वर है मगर अगर हम उस पानी को चक्खेंगे तो हमको वह मीठा मालूम होगा। उस मिठास का बनाने वाला और उस मिठास का जायक़ा लेने के लिये हमारी जीभ को बनाने वाला ईश्वर ज़रूर है।

९ नवां सबूत–जब कभी कोई इन्सान बाज़ार में चलता हो और उस के पास होकर एक गन्धी निकले जिस के पास इत्र की पेटी हो तो उस आदमी को इत्र की लपट अपने आप आवेगी जिसे वह अपनी आंखों से तो नहीं देख सकेगा मगर अपने नाक के ज़रिये खुश्बू का तजरुबा ज़रूर करेगा और उस से वह ज़रूर जान जायगा कि गन्धी के पास इत्र, तेल, फुलेल वग़ैरः हैं और उन सब में खुश्बू फूलों से लाई गई है। उसी तरह अगरचे इन्सान ईश्वर को अपनी आंखों से नहीं देख सकता, मगर वह उन फूलों में खुश्बू पैदा करने वाले और उस खुश्बू को सूंघने के लिये हमारे नाक को बनाने वाले ईश्वर को ज़रूर जान जाता है।

१० दसवां सबूत–जब कभी कोई शक्स किसी नर्म या सख्त, वो गर्म या सर्द, चीज़ को देखता है तो वह सिर्फ देखने से मुलामियत सख्ती या गर्मी सर्दी को नहीं जान सकता। मगर जब वह उस चीज को अपनी चमड़ी वा हाथ से छूएगा तो फ़ौरन उस को उस चीज़ की मुलामियत सख्ती, या गर्मी सर्दी, का तजरुबा हो जायगा। उसी तरह अगर इन्सान ईश्वर को अपनी आंखों से नहीं देख सकता मगर चीज़ में मुलामियत सख्ती और गर्मी सर्दी का देने वाला ईश्वर है और उस को जानने के लिये चमड़ी का बनाने वाला और उस में वह सिफ्त देने वाला भी ईश्वर है, इस बात को ज़रूर जान जाता है।

ऊपर लिखे पन्द्रह सबूतों से साबित होता है कि ईश्वर ज़रूर है। मगर उसका तजरुबा वा इल्म तो उसकी इबादत, सिज़दा, पूजा, नाम रटना, हरदम याद करना, योग साधना, तपस्या करना वग़ैरः से ही हो सकता है। वह अपने आप मिह-नत करने से ही जाना जा सकता है। कोई दूसरे को बता नहीं सकता। ईश्वर हर मख़लूक़ के हिरदे में छिपा हुआ बैठा है। जो उसको सच्चे व पाक दिल से खोजते हैं उन्हीं को वह दिखाई देता है। नापाक–दिल इन्सान उसको कभी नहीं पा सकता। ईश्वर की मिहरबानी या उस के ज़ाहिद (भगत) की मिहर-बानी से भी वह मिल सकता वा दिखाया जा सकता है।

अगर ईश्वर को पाना हो तो सब से पहले अपने मन को साफ़ और पाक करो। दिल पाक हुए बिना ईश्वर कभी दिखाई नहीं दे सकता। पाक दिल वाले के पीछे २ ईश्वर खुद फिरता रहता है, उसकी सब तरह से निगहबानी रखता है, उसकी तक-लीफ़ात को रफ़ा करता है, उसे ख़तरों से बचाता है और हर घड़ी सम्हाल रखता है, हिफ़ाज़त करता है और पनाह देता है। और इसी लिये वली लोग खुदाई ऐतक़ाद के मुती हैं।

गोविन्द।

॥ श्रीः ॥

वक्त की क़दर

(या समय का सदुपयोग)

(लेखक—हकीम सैय्यद महमद असद अलि जाफरी हमदानी,
एम. आर. ए. एस , एफ. टी. एस., आनरेरी मजिस्ट्रेट, जोधपुर।)

वक्त की क़दर करो। वक्त को काम में लाना बड़ी क़ीमती चीज़ है जो हर फर्दे बशर (१) को निहायत कम मिक़दाद में मिली है। एक हिन्दी शायर का माक़ूला है

॥ दोहा ॥

समै न चूको सुघड़ नर, कवी कहत है कूक।
चतुरन के खटकत हिये, समै चूक की हूक॥

ग्वालियर के मेम्बर कौनसिल हज़रत गुलाम अहमद खां साहब एहमदी फरमाते हैं

शेर

जो वक्त गुजरा फिर आयगा क्या, इस उम्र से घट न जायगा क्या?
गुमगश्ता (२) को कोई पायगा क्या, रफ्ता का पता लगायगा क्या?
फिर किस लिये वक्त टालते हो, काम आज का कल पै डालते हो

अफसोस! हम समय को काम में लाना नहीं जानते, बल्के अपने बेशक़ीमत वक्त को बहुत बड़ी मिकदाद में मुफ्त ज़ाया कर देते हैं।

शेर

आदमी होकर अगर हो जाय हैवां आदमी,
खाकका पुतला फक़त है ऐसा नादां आदमी।
आदमी गरचे हजारों आदमी कहलाते हैं,
आदमियत जिसमें हो है वो इन्सां आदमी॥

जब हम इस बात पर गौर करते हैं कि हर जानदार के लिये

---

(१) आदमी (२) गुजरा हुआ (३) बीत चुका।

वक्त का थोड़ा सा हिस्सा मख्सूस (१) मिला है तो हम को यह मालूम करके तआजुब आता है फिर इन्सान क्यों इसे बिल्कुल ला परवा होकर फ़िजूल गुमा देता है । हम रुपये पैसे के इसराफ (२) में कम खर्च करने का तो लिहाज़ रखते हैं लेकिन वक्त ऐसे फ़िजूल तौर पर बरबाद करते हैं जैसे एक फ़िजूल खरच जिसे के अपने बापदादा का धन बेकमाया हाथ आ गया हो और वो बरबाद कर देता है ।

रुबाई ।

आक़िल से नसीहत ले जहां तक ली जाय
पी जाय मये इश्क़ तो मरकर पी जाय ।
नेकी का एवज़ जहां में नेकी है फ़र्ज़
इख़लाक यह है कि बदों से नेकी की जाय ।

हर इन्सान को होश लाजिम है हमने सुना है कि ज़िन्दगी मिस्ले हबाब (३) ज़िन्दगी मानिन्द ख्वाब है । ज़िन्दगी धूप की मिसाल है । ज़िन्दगी मिसाले सुराब (४) है । ज़िन्दगी उस कोहरे (५) की मिसाल है जो सुबुह के वक्त थोड़े अर्से के लिये दरख्तों पर नज़र आता है । बाद अज़ां अचानक काफ़ूर हो जाता है । गुरु नानक फरमाते हैं

साधु रचना राम रचाई (टेर)
एक बिनसे एक अस्तर (६) माने अचरज लख्यों न जाई ।
काम क्रोध मोह बस प्रानी हरि मूरख बिसराई ।
झूठा तन साचो कर मान्यो ज्यों सपना रैनाई ।
जो दीसे सो सकल विनासै ज्यूं बादर की छांई ।
जन 'नानक' जग जानो मिथ्या रहो राम शरणाई ।

यह सब जानते हुए हज़रते इन्सान इस तरह के बेफ़िकर

---

(१) खास तौर से (२) खर्च (३) बुलबुला (४) मृगतृष्णा (५) धुँहर (६) अस्थिर ।

हो रहे हैं कि गोया वो हमेशा के लिये ऐसे ही ज़िन्दा और पायन्दा बने रहेंगे और इन को कभी नास न होना पड़ेगा ।

शेर

क्या ही सामा है इस उम्र दो रोज़ा के लिये,
कुछ मरे जाते हैं जीने पै ज़माने वाले ।

—यह नहीं जानते

रुबाई

न हम हैं और न येह अपना मकां है
मकां अपना मकाने लाम कां (१) है ।
मकां सब उस के हैं वही मकीं (२) है
फ़क़त हसरत (३) है और कुछ भी नहीं है ।

अब यह बात पायए तहक़ीक़ को पहुंची या नहीं कि इन्सान के लिये वक्त कैसी गिरामाया शै (४) है जो किसी क़ीमत पर भी गुजरा हुआ वक्त वापिस नहीं मिल सकता ।

दोहा

सांस दाम दरबार का, जम्मा थैली मांह ।
गिन घाल्या गिन लेवसी, घट बद लेवे नांह ॥

क्या इस तज़िय औक़ात (५) की वजह यह है कि हम में गौर और फ़िक्र की कमी है ताके हम अपनी जिम्मेदारी को महसूस (६) नहीं करते । हमें यह अमर बसहूलियत याद नहीं आ सकता कि वक्त ज़ाया करने वालों के दिलों में ख़यालात लापरवाही और मायूसी (७) जागज़ीं (८) हैं । वो मजमूनाना ज़ोश में इस क़द्र क़ीमती खजाने को जो उन्हें कुदरत से मिला

(१) बिना मकान (२) रहने वाला (३) ममता (४) बेशक़ीमती चीज़ (५) समय बरबाद करना (६) मालूम (७) नाउम्मेदी (८) जगह पकड़ गई ।

है, बेपशोपेश (१) बेदरेग (२) खरच करते हैं। उनका हाल यह है

शेर

दिल गुनाओं से सिया है, बाल पीरी (३) से सुफेद,
घर के अन्दर है अंधेरा, घर के बाहिर चांदनी ।

इस अमर में कोई एतराज़ नहीं किया जा सकता कि उन की हिमाकत की वजह ये है कि उनके तन में ग़ौर फ़िकर करने की क़ाबलियत ही नहीं है या येक बलंद इगराज (४) व आलामक़ासिद (५) के औसाफ (६) उनमें मफ़क़ूद (७) हैं ।

दोहा ।

छोटों से बड़ होत हैं, समझ राख धर धीर ।
समै पाय शतरंज में, प्यादी होत वज़ीर ॥

अक्सर सूरतें ऐसी होती हैं कि वक्त और उसका जगह की जगह काम में लाना उन को सिखाया ही नहीं जाता । जाय अफ़सोस है के हमारे बच्चों को यह कभी मालूम होगा के वक्त जो उनका क़ीमती खजाना है उसको किस तरह से इस्तेमाल करें । हम लहमों की क़दर का सिक्का उन के दिलों पर नहीं बिठाते, मसल मशहूर है के "लहमों की खबरगीरी करो, दिन खुद अपनी ख़बरगीरी कर लेंगे" ।

तनज्जुल पजीर (८) क़ौम के लोग जब अपने मकान पर इत्मीनान से बैठते हैं तो अपने बाप दादों के क़िस्से, वक्त और ज़माने की शिकायतों के दफ्तर खोल देते हैं और उनका दावा होता है के ज़माना तनज्जुल पर है । मगर असल पूछो तो उनका तनज्जुल सिर्फ़ वक्त की क़दर न करना ही है जिस का

---

(१) आगा पीछा सोचे बिना (२) बेपरवाही से (३) बुढ़ापा (४) ऊंचे दरजे के काम (५) आला दरजे के मतलब (६) गुण (७) गायब, अभाव (८) नीचे गिरने वाला ।

नतीज़ा आख़िर में उनको भोगना पड़ता है ।

किसी शायर ने पाबंदीये वक्त में खूब कहा है—

शेर १.

कहां वो लोग हैं जो मीठी नींद सोते हैं,
अज़ीज़े वक्त को बेहूदगी में खोते हैं ।
जो दोपहर को कभी होशियार होते हैं,
तो आधी रात को उठ कर मुंह हाथ धोते हैं ।
नहीं ख़याल, के गफ़लत में उम्र कटती है,
न आंख खुलती है उनकी न नींद उचटती है ॥

२

हंसी मज़ाक की बातों में दिन गँवाते हैं,
तुआमे शब (१) वो कहीं वक्ते सुबह खाते हैं ।
गुलाल चेहरे पर बरसात में लगाते हैं,
है रुत बसंत की मगर मल्हार गाते हैं ।
दुशाला ओढ़ के चलते हैं फस्ले गरमां में,
है शरबती का अंगरखा बदन पै सरमावें ॥

३

जो मिले किसी से तो घंटों फज़ूलगोई की
उसे खराब किया उसकी ऐबजोई की ।
ज़बां पर आने न दी गुफ्तगू निकोई (२) की
कभी पसंदे खलायक न बात कोई की ।
ज़रा न उट्ठे जो मिस्ले दिले हज़ीं (३) बैठे
वहीं के हो रहे गोया जहां कहीं बैठे ।

४

जो दिल में आगई बस सैर करते फिरते हैं
हिमाक़तें सिफ्ते तैर (४) करते फिरते हैं ।

---

(१) शाम का खाना (२) नेकी (३) गमगीन (४) परिन्दों की तरह ।

नज़्ज़ारए सनमो दैर (१) करते फिरते हैं
हया(२) का खातमा (३) बिल ख़ैर करते फिरते हैं
खराब चार पहर जब हुए चले आये
मकां से सुबह को निकले थे दिन ढले आये ॥

५

संभाला होश (४) मगर नाम को हवास (५) नहीं
ख़याले आलिमे तिफ़ली (६) में दिल उदास नहीं ।
ज़रा भी वक्त की बेवक़-अति (७) से यास (८) नहीं,
दिन और रात का शामो सहर (९) का पास नहीं
वही ख़याल वही रंग है बुढ़ापे में
न दिन को होश में आये न शबको आपे में ॥

६

सुलाएं कब्र में गफ़लत को नींद उचटने दें
न होशियारी का पासा ज़रा पलटने दें ।
अज़ीज़े वक्त न लहवो लाअब (१०) में कटने दें
न खेल कूद में उम्रे हयात (११) घटने दें ।
कद्र उनकी करने में रूह न ग़ाफ़िल हो
अज़ीज़ वक्त रहे जेब की घड़ी दिल हो ॥

बाज़ कहते हैं कि हम ज़ाया शुदा वक्त की तलाफी (१२) कल ज़रूर कर लेंगे । हम जुरत (१३) के साथ कहते हैं के हमारी ज़बान में 'कल' ही एक ऐसा लफ्ज है जिस की वजह से बहुत सी वादाखिलाफियां होती हैं । सैकड़ों उम्मेदें ख़ाक में मिलती हैं । हजारहा फ़र्ज़ तर्क किये जाते हैं, क्यों के ग़जब तो यह है कि वो 'कल' हरगिज़ नहीं आती । वो हमेशा 'आज'

(१) पत्थरों को सर नमाने वाले (२) शर्म (३) अन्त (४) जवानी (५) ज्ञान (६) बचपन (७) वेळा (८) ना उम्मेदी (९) सांझ प्रभात (१०) खेल तमाशे (११) ज़िन्दगी (१२) बदला (१३) बहादुरी ।

की 'कल' बन जाती है। इस 'कल' की तो हमें धुन ही फ़िज़ूल है, क्यों के वो अब वापिस नहीं आ सकती और न उसका कोई इलाज लग सकता है। जब एक दफ़े गुजर गई सो गुजर गई। अब सिवाय इस के कुछ बन नहीं पड़ता के अपने हाथ मल कर 'कल' की गोद पर आंसू बहाएं और 'आज' की क़द्र करें। बाज़ शक्स अपना बहुतसा वक्त ज़ाया शुदा वक्त पर तआस्सुफ (१) करने में खर्च कर देते हैं। यह आज को भी 'कल' के ग़म में खो बैठते हैं।

हमारी यह आरज़ु (२) है के हर शक्स लहमों की बेश-बहा (३) क़द्र को हमेशा अपने गोशए ख़ातिर (४) में जगह दे और उस से फ़ैज़ हासिल करे। मुफ्त ज़ाया न करे। अक्सर देखा गया है कि दुनिया में वक्त के बराबर काम में लाने से लोग बड़े २ मरतबों (५) पर पहुंच गये हैं, जैसे नेपोलियन बोनापार्ट, बेंजमिन फ्रेंकलिन, और इसी अमल की बदौलत लोग बड़ी २ तसनीफ़ों (६) के मुसन्निफ (७) हुए हैं, जैसे दाराशिकोह, अबुल फ़ज़ल, फ़ैज़ी, शेख सादी, शिराज़ी, हज़रत हाफ़िज़ शिराज़ी, हज़रत शम्स तबरेज़, हज़रत मौलाना रूम वग़ैरा और संस्कृत में वाल्मीकि, स्वामी रामानुज आचार्य, शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध और हिन्दी में महात्मा तुलसीदासजी, सूरदासजी, स्वामी दयानन्दजी, स्वामी रामतीर्थ-जी वग़ैरा २ जिन के नाम रहती दुनिया तक मिटाये से भी नहीं मिट सकेंगे। इसी टाइम की क़दरदानी की बदौलत मिस्टर वाट ने सन् १७६५ ई० में भाफ की कुव्वत दर्याफ्त की, मिस्टर स्टीफनसन ने सन् १८२४ ई. में इञ्जिन निकाला, मि. एडीसन ने

(१) अफसोस (२) प्रार्थना (३) बहुत कीमती (४) दिल (५) दर्जों (६) किताबों (७) लेखक।

सन् १८७७ ई में फोनोग्राफ की मशीन ईज़ाद की, मि. टाम्स स्वीजवुड ने सन् १८०२ में फोटोग्राफ निकाला, मि. अभे ने विलायत में बेतार के तारबर्की की आजमायश को पूरा किया। इसी टाइम की क़द्र करने से मि. मार्कोनी ने सन् १९०१ में रेडियो निकाला और अपना सब से पहला पैगाम मलाबार भेजा। इसी तरह हमारे जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ, पुरातत्त्ववेत्ता, महामहाध्यापक विद्वद्रत्न पं० रामकरणजी आसोपा, भूतपूर्व लेक्चरार, कलकत्ता युनिवर्सिटी, ने भी क़माल कर दिखाया कि अपनी उम्र को दुनिया के लिये कार आमद बनाया जो ८२ साल के तजुर्बात का नमूना हमारे सामने आज मौजूद है। अपने बेश-क़ीमत वक्त का एक लहमा भी होश संभालने के बाद कभी रायगां (१) न गुमाया।

आपने अपनी इल्मी खिदमात की फ़िहरिस्त के मुवाफ़िक़ राठोड़ वंश की हिस्टरी के २० हजार श्लोक पहले पहल संस्कृत तसनीफ कर डाले (२) और नंबर ग्यारह तक किताबें मुतफ़र्रिक सब्जेक्टस की तस्नीफ की। और इन्स्क्रिप्शनस वो कोपर-प्लेट्स लातादाद बहम पहुँचाये। और ६० हजार वर्डस (लफ्ज़ों) की मारवाड़ी डिक्सनेरी बना कर सामने धर दी।

साहिबान्, यह कोई मामूली काम न था। एक श्लोक या एक मज़मून भी बनना मुश्किल होता है। इस क़द्र काम करने पर भी जिस्म, दिमाग़ और दिल आप की जवानों की मुवाफिक़ इस वक्त भी काम दे रहे हैं। Sir J, H. Marshall, Director General of Archaealogy in India ने आप के इल्मी तवारीखी कामों की जांच करने के बाद यह remark पास किया है—

Pandit Ramkaran—His knowledge of epi-

---

(१) फिज़ूल (२) बना डाले।

graphy ranks himself amongst half dozen Indian experts."

अपनी ज़रूरियात दुनिया को पूरा करते हुए अपनी duties को अंजाम देते हुए इस क़दर इल्मी दरियाओं में तैरते हुए अपनी उम्र से ज़ियादा लेख लिखे और बड़ी २ किताबें तस्नीफ़ करके दिखादी, यह तमाम काम टाइम के पाबंद रहने और क़दर करने से ही आप अंजाम दे सके। वरना हरेक से ऐसे अहम (१) काम कब पूरे हो सकते हैं ? उस कादरे मुतलक (२) ने यह हिस्सा आप को दिया और आपने पूरा किया। बग़ैर उसकी मिहर्बानी के ऐसे कामों की तर्फ ध्यान ही नहीं आ सकता। दुनिया में बहुत से माया जाल फैले हुए हैं।

दोहा

काई सरदा जीव की, जो राम नाम लेवे।
करम देवे थाप की, मूंडा फेर देवे॥

उर्दू के शमसुल उल्मा (३) मोलाना हाली फरमाते हैं:-

शेर

हुवा कुछ वही जिसने यहां कुछ किया है।
लिया जिसने फल बीज बो कर लिया है॥
करो कुछ के करना ही कुछ कीमिया है।
मसल है के करते की सब विद्या है॥
यों ही वक्त सो सो के हैं जो गमाते।
वह खरगोश कछुओं से हैं ज़क (४) उठाते॥

वक्त को अपनी जायदाद समझो और उसके ज़ाया होने का इतना रंज करो, जितना दौलत छिनजाने का। गुमशुदा दौलत मिलजाती है, भूला हुवा इल्म सीखा जासकता है, जायलशुदा तन्दुरुस्ती हासिल होजाती है, लेकिन जायलशुदा वक्त कभी हाथ नहीं आ सकता, जिसका उम्र भर पछतावा रहता है।

शेर

गया वक्त फिर हाथ आता नहीं। सदा दौर दौरा दिखाता नहीं॥

---

(१) बहुत मुश्किल (२) सर्वशक्तिमान् (३) इल्म के सूरज (४) हार।

॥ श्रीदधिमती जयति ॥

श्रीकृष्ण भगवान् ।

हिन्दुओं ने उनको अवतार क्यों माना ?

असबाब अक़ीदत का मुताला[१]

महर्षि व्यासजी की निस्बत रवायत[२] है कि जब महाभारत गणेशजी के हाथों लिखवा चुके तो बजाय इसके के ऐसी मारकातुल आरा तसनीफ़[३] पर, जो नफ्स[४] मज़मून वो तर्ज़ कलाम[५] के ऐतबार[६] से दुनियां में लासानी[७] है, फ़क्र वो नाज़ करते[८] या खुश होते अजबस[९] मगमूम[१०] और उदास बैठे हुए थे। इतने में नारदजी का उधर से गुज़र[११] हुआ। तबियत का हाल अहवाल पूछा। व्यासजी ने कहा "मुनिनाथ! मैं ने कौरव–पाण्डव की जङ्ग अज़ीम[१२] का हाल लिखा दिया, बीसियों देवताओं, सैकड़ों राजाओं और हज़ारों जवांमर्दों के कारनामे नज्म[१३] की लड़ियों में पिरो दिये। एक लाख श्लोक लिख डाले। मगर दिल का अरमान नहीं निकला। ऐसा मालूम होता है कि कुछ नहीं कहा। हसरत[१४] कहो या कुलफ़त[१५] कुछ कमीसी महसूस[१६] करता हूं। मगर पता नहीं लगता कि क्या बात है? इसका कोई इलाज[१७] बताइये?"

२. नारद मुनि तीनों लोक के घूमने वाले हर कस वो नाकस[१८] से मिलने वाले राजा प्रजा, ऋषि मुनि, औरत मर्द,

---

१ मानने की शिक्षा वो कारण। २ कहावत (बयान) ३ ज़ोरदार भाव वाली पुस्तक। ४ विषय का तत्त्व। ५ वर्णन की शैली। ६ लिहाज़ह। ७ अद्वितीय। ८ गर्व करते। ९ अत्यन्त। १० अत्यन्त उदास। ११ आना, आगमन। १२ महायुद्ध। १३ कविता। १४ अरमान। १५ तकलीफ़। १६ मालूम। १७ उपाय। १८ छोटे वो बड़े।

जवान बूढ़े सब से बातचीत करके पूरे बाख़बर रहने वाले आरिफ़ कामिल[१] थे। अयाफ़े[२] से ताड़ गये कि ऋषि के दिल में भक्ति-भाव की तरङ्ग उठ रही है जो रोके से रुक नहीं सकती। बोले—"व्यासजी, तुमने बड़ा काम किया है, राजपूत, छत्री, सूरमा और वीर तलवार तीर से दुश्मनों को मारते और अपना खून बहाकर दुनियां को फ़िसको फ़िजूर[३] से पाक साफ़[४] करते हैं। तुमने क़लम[५] के ज़ोर से मरे हुए बहादुरों को जिला दिया, गोया हिन्दुस्थान को ज़िन्दाए जावीद[६] कर दिया और ज़बान[७] के जादू ने सिसकते हुए धर्म में जान डाल दी। मगर यह सब कुछ श्रीकृष्ण भगवान् की हमदोसना[८] के आगे हेच[९] है। जङ्ग महा-भारत उनके बांये हाथ का खेल था जिस की तुमने इतनी तफ़-सील[१०] लिखी, उनका जीवन-चरित्र बीसियों महाभारतों से ज़ियादा दिलचस्प[११] और सबक़ आमोज़[१२] है। इनकी ज़िंदगी[१३] तुर्फ़ातरीन[१४] दिल आवेज़ियों[१५] से भरपूर है। जिन को करिश्मा हाये रब्बानी[१६] और नग़माहाये रहमानी[१७] कहिये। अब श्रीकृष्ण भगवान् की सवानेह उपरी[१८] से अपनी नज्म[१९] को मनव्वर[२०] और उन की कश्म करामात[२१] से अपने क़लाम[२२] को मुकम्मिल[२३] करो। तुम्हारी हसरत दूर[२४] और कुलफ़त काफ़ूर[२५] हो जायगी।"

३. व्यासजी की समझ में आगया। जो पर्दा सामने आगया

---

१ पूर्ण ज्ञाता, परम ज्ञानी। २ अनुमान, चहरे को देखने से दिल का हाल जानने की विद्या। ३ गुनाह, पापों और कुकर्मों। ४ पवित्र ५ लेखनी। ६ सदा के लिये अमर। ७ वाणी। ८ प्रशंसा। ९ तुच्छ १० वृत्तान्त। ११ आकर्षणीय। १२ सबक सिखलाने वाला (शिक्षा-प्रद)। १३ जीवनी। १४ विचित्र। १५ चित्ताकर्षक। १६ दैवी चमत्कार-पूर्ण। १७ ईश्वरीय गायन। १८ जीवन-चरित्र। १९ कविता। २० प्रकाशित। २१ आन्तरिक चमत्कारों। २२ कविता। २३ पूरा, सम्पूर्ण। २४ आशा पूरी हो जायगी। २५ तकलीफ़ दूर।

था वह हट गया। और तब उस तसनीफ में मुस्तगरिक[१] हो गये जिस का नतीज़ा श्रीमद्भागवत था। कहते हैं कि इस किताब की तसनीफ[२] के बाद व्यासजी को राहत हक़ीक़ी[३] औ तस्कीन कल्बी[४] हासिल[५] हो गई। और क्यूँ न होती ?

४. अगर वाल्मीकजी ने रामायण लिख कर श्रीरामचन्द्रजी की मूर्ति घर घर में बिठा दी तो व्यासजी ने भागवत के ज़रिये श्रीकृष्णजी की मुहर[६] हरेक सफ़ए[७] दिल पर सबत कर दी[८]। सच तो यह है कि हिन्दुओं के सीने औ दिल ऐसे वाक़े हुए[९] हैं या बन गये हैं कि उन पर अगर दोनों की नहीं तो दोनों में से एक की तस्वीर[१०] तो ज़रूर[११] नक्श[१२] होती है। कौन हिन्दू है जिस की आंखों के सामने श्रीरामचन्द्रजी का नाम सुनते ही उन तमाम औसाफ़ ए हमीदा[१३] की तस्वीर नहीं खिल जाती जो उनकी बेलोत[१४] जिन्दगी[१५] से वाबस्ता[१६] हैं या जो श्रीकृष्ण की बचपन की मोहब्बत जवानी की शुजाअत[१७] और बाद के जवानी के रुहानियत[१८] का शैदाई[१९] न हो ?

५. पञ्जाब तो अर्से[२०] तक मगरबी[२१] हमला आवरों[२२] की जोलानगाह[२३] रहने के बाइस[२४] इन असरात[२५] से कमतर[२६] मुतअस्सिर[२७] रहा और सिख-मत या खालसा-पन्थ का हामी[२८] हो गया। मगर कहा जा सकता है के शुमाली[२९] हिन्द में अवध

१ पुस्तक लिखने में मग्न हो गये। २ रचना के बाद। ३ सच्चा आनन्द ४ चित्त की शान्ति। ५ प्राप्त। ६ छाप, मुहर। ७ मन रूप पत्र। ८ लगादी। ९ प्रदान हुए। १० चित्र। ११ अवश्य। १२ खुदा होता। १३ प्रशंसनीय गुणों। १४ निष्पक्ष न मे कर्माणि लिम्पन्ति ऐसा जो हो। १५ जीवनी। १६ जुड़ी हुई। १७ वीरता। १८ ईश्वरीय ज्ञान। १९ बावला lover, great admirer। २० चिरकाल तक। २१ पश्चमीय। २२ आक्रमण करने वालों की। २३ लड़ाई झगड़ों की जगह। २४ कारण। २५ प्रभावों। २६ बहुत कम। २७ प्रभावित हुआ। २८ सहायक। २९ उत्तरीय।

और विहार ज़ियादेतर राम उपासक और बङ्गाल वो इलाक़ा व्रज कृष्ण-सेवक रहे हैं इस बयान की तस्दीक़ चाहते हैं तो इन जातरियों की तादाद[1] और जाय सकूनत[2] पूछ लीजिये। जो आये साल रामनवमी और दशहरे के दिन या दिवाली की रात को अजुध्या, चित्रकोट, या रामेश्वर में जब्बासाई[3] किया करते हैं। या जन्म अष्टमी, होली या बरसात की तीजों के अय्याम[4] में मथुरा, बिंद्राविन, गोकुल और द्वारका का तवाफ़[5] करते हैं। अगर इस से भी यकीन न हो तो देखिये बालमीकि और तुलसी रामायण और भागवत, प्रेमसागर, सूरसागर की कितनी जिल्दें[6] शाया[7] और फरोख़्त[8] होती रहती हैं। कोई गांव है जिस में रामायण या महाभारत या भागवत की कथा नहीं होती? रामलीला औ कृष्ण-लीला रास कहां कहां रायद[9] हैं और उन में कितने लोग रास ए फ़ुल एतक़ारी[10] से शामिल होते हैं। रामचन्द्रजी और कृष्णजी की मूर्तियां कितने मन्दिरों में विराजमान हैं और उन में कितने मर्द-ओ-जन[11] सुबह और शाम नक़दे दिल[12] चढ़ाते हैं। यह सिलसिला[13] वहां पै खतम नहीं होता। आप हिन्दी लिटरेचर[14] के मर्किज[15] ढूंढेंगे तो इन ही दो नामों को पायेंगे। सोलहवीं सदी[16] में रामानन्द स्वामी और गुसांई तुलसीदासजी ने राम-अवतार को और वल्लभाचार्य वो सूरदासजी ने कृष्ण-अवतार को लेकर उन पर वो ज़ोर जबानों कलम[17] का दिखाया है कि सैकड़ों शायरों[18] को इस मैदान में खैंच लाये, जिन्होंने हिन्दी जबान[19] में भक्ति की रूह[20] फूंक दी जिसका यह परिणाम हुआ कि राम कहानी,

---

१ संख्या। २ निवास-स्थान। ३ नमस्कार, प्रणाम। ४ दिनों। ५ परिक्रमा। ६ किताबें। ७ छापना। ८ बिकना। ९ प्रचलित। १० सच्चे भक्ति-भाव से। ११ स्त्री-पुरुष। १२ मन अर्पण करते हैं। १३ तार या लड़ी। १४ साहित्य। १५ केन्द्र। १६ शताब्दी। १७ वाणी

कृष्णलीला–जुज महावरे रोजमर्रा[१] हो गये हैं । हिन्दू नामों को ले लीजिये रामचन्द्र, सीताराम, कृष्णलाल, राधाकृष्ण, रामाबाई, किसनावती, कैसे आम पसन्द[२] नाम हैं ? कितने नाम राम वो कृष्ण से शुरु होते और उन पर खतम होते हैं ? गरजे कि जब शायर[३] ने कहा–

शेर

दर किश्वरे हिन्द चुन दीदम चकोरास्त,
अज रामोकृष्णं हरतरफ सोतो सदास्त । ४

तो इसने वाके की बुनियाद[५] पर कहा था ।

६. आजकल तो जमाने की हवा बदली हुई है बुजुर्गान सलफ[६] की तारीफ करना भी मायुब[७] समझा जाता है । सुस्तुल-ऐतकारी[८] लामजहबी[९] और दहरियापन[१०] का दौर दौरा है । ताहम[११] यह कहना मुबलग़ा[१२] न होगा कि बावजूद नामुवाफिक[१३] हालात[१४] के कम–अज–कम हिन्दू कौम[१५] के दिल[१६] दिमाग[१७] से श्रीरामचन्द्रजी वो श्रीकृष्णजी का नक्श[१८] हनोज[१९] नहीं मिटा ! तहवार राम नवमी और जन्म अष्टमी अभी तक हिन्दुस्थान के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक मनाया जाता है । गरजे[२०] कि श्रीरामचन्द्रजी और श्रीकृष्णजी दोनों को हिन्दू-तसव्वर[२१] ने विष्णु का अवतार बना दिया है और यह अजमत वो शान[२२] सिवाय बुद्ध भगवान् के किसी और इनसान को जिस

१ दिन रात की बोल चाल और कहावत । २ सर्व साधारण को पसन्द आने वाले । ३ फारसी कवि । ४ हिन्द के मुल्क में दांयें वो बांयें मैंने कुछ नहीं देखा (सिवाय इनके) के राम औ कृष्ण की हर तरफ आवाज वो ध्वनि सुनाई दी है । ५ यथार्थ । ६ पुरखाओं की तारीफ करना । ७ बुरा । ८ श्रद्धाहीनता । ९ अधर्मी । १० नास्तिकता । ११ फिर भी । १२ अत्युक्ति । १३ विपरीत adverse १४ अवस्था । १५ जाति । १६ हृदय । १७ मस्तिष्क । १८ चित्र । १९ अभी तक । २० थोड़े में, (टुक में) २१ ध्यान । २२ बड़ाई वो उच्चपद

ने हिन्दुस्थान में जन्म लिया, नसीब[१] नहीं हुई।

७. इस के असबाब वो[२] वजूहात क्या हैं? जिस मुल्क[३] में विक्रमाजीत वो अशोक जैसे चक्रवर्ती राजे महाराजे, वशिष्ट व्यास वो विश्वामित्र से ऋषि मुनि और शङ्कराचार्य वल्लभाचार्य जैसे स्वामीराज पाठ कर चुके हैं जिन के आगे हज़ारों वो लाखों आदमी सर निवाजखम[४] करते थे और जो आज तक खिराजे अक़ीदत[५] वसूल करते हैं इनको छोड़ कर इन छत्री राजपूतों को यह मर्तबा बलन्द[६] और दर्जा इमतियाज[७] क्योंकर हासिल[८] हो गया? क्या इनकी जाते खास[९] में कोई खूबियां[१०] थीं, या हिन्दू कौम में खसूसियत[११] थी जिस ने इन खुशकिस्मत अफ़राद[१२] को यह इमतियाज बख्श दिया[१३] या कोई और वजह है। श्री कृष्णजी की मिसाल[१४] लेकर हम इन सवालात[१५] के जवाब[१६] देने की कोशिश करेंगे।

८. हिन्दू कौम[१७] का बच्चा बच्चा श्रीकृष्णजी के हालात व जिन्दगी[१८] से कम-औ-बेश आश्ना[१९] है। उन्होंने भादों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी की आधी रात को कैदखाने में जन्म लिया। जहां ज़ालिम मामू ने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को कैद कर रखा था। कंस के खौफ से जो उन के बच्चों को मार डाला करता था वसुदेवजी ने उनको छाज में रख कर जमना पार ले जाकर जसोदाजी के हवाले कर दिया। यहां गोकुल में नन्दजी के यहां परवरिश पाई। बचपन में १२ साल की उम्र तक ग्वालबाल और गोपियों के साथ खूब रङ्गरलियां मनाते रहे। फिर पापी

---

१ प्राप्त। २ कारण और। ३ देश। ४ सर झुकाकर प्रणाम। ५ भक्ति-भाव। ६ ऊँचा पद। ७ हज़ारों में से छांट लेना। ८ प्राप्त। ९ अपने आप। १०। अच्छाइयां। ११ विशेषता। १२ भाग्यवान् पुरुषों को। १३ पद प्रदान किया। १४ वजह। १५ प्रश्नों। १६ उत्तर। १७ जाति १८ जीवन-चरित्र। १९ को थोड़ा बहुत जानता है।

कंस की तर्फ मुतवज्जह[१] हुए। इस को सामिये अहमाल की पादाश[२] दी। बाद[३] अजां, रुक्मिनी, सत्यभामा, वगैरा से शादी की, जरासंध को शिकस्त दी। दुर्योधन और कर्ण को हरचंद समझाया, युधिष्ठिर को कद्रे कलीत[४] राज का हिस्सा देदें, मगर जब कौरवों ने हठधर्मी पर कमर बांध ली तो पाण्डवों की मदद पर कायम[५] हो गये। अर्जुन को निष्काम-कर्म करने का उपदेश दे कर आमादा कारज़ार[६] किया और दुर्योधन को कुरुक्षेत्र के मैदान पर जंगे अज़ीम में[७] शिकस्त फ़ास[८] दी, युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बिठाया, अश्वमेध यज्ञ कराया, इसी तरह और कई फतुहाल[९] हासिल करके अपना सिक्का हर तर्फ जमा कर तारेकुद-दुनिया[१०] हो गये।

९. मज़कूरे बाला वाकेआत अगरचे अपने अहमीयत व अज़मत[११] के लिहाज़ से काबिले वकत[१२] व लायकेयादगार हैं। मगर मानना पड़ता है कि ऐसे नहीं हैं कि जिन की बिना[१३] पर एक बनीनौए इन्सान[१४] को एकमुल्क ओ कोम[१५] अपना मरकीज़े अकीदत[१६] बना कर वो रुतबा बलन्द देवे कि उस की मूर्ति हिन्दुस्तान भर के मन्दरों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश देवताओं के बराबर जगह पावे, बल्के खुद विष्णु की मूर्ति मानी जावे। तो फिर क्या यह राज़ सरबस्ता[१७] है जो खुल नहीं सकता? और इस के लिये "के कस न कशूद न कुशायद बहिकमत ईं मोइम्मारा"[१८] कह कर खामोशी[१९] इख्तियार कर लेनी चाहिये।

---

१ ध्यान। २ बुरे कर्मों का दण्ड दिया। ३ फिर। ४ थोड़ासा। ५ स्थित या आरूढ। ६ युद्ध के वास्ते तैयार। ७ महा भारत। ८ बड़ी हार। ९ जीतें (जय)। १० दुनियां छोड़ दी। ११ सचाई वो बड़ाई १२ कदर। १३ आधार। १४ मनुष्य जाति। १५ जाति। १६ इष्ट देव। १७ गुप्त भेद। १८ के किसी से न खुला और न कोई खोल सका अपनी हिकमत से इस गुप्त-भेद को अर्थात् यह गुप्त-भेद बुद्धिमानी से न तो किसी से खुला न खोल सका। १९ चुप साधना

या पमिस्दाक़[1] " वत्तो इज़्ज़े मन तशा—वतो जिल्ले मन-तशा "[2] हम को इस पर इक़्तेफ़ा[3] करना चाहिये। के कज़ाए इलाही[4] का यही फ़ैसला था। सिलसिले इल्लत माल्लूल[5] की आखिरी जनज़ीर[6] इस मरहते[7] पर टूट जाए तो टूट जाय। वरना आलिये असबाब[8] में अगर हम अकल की मशहल[9] से काम लें और गौर औ खौज़[10] की लाठी को हाथ से न छोड़ें तो मालूम होगा के एक नतीजे के बिल अमूम[11] कई असबाब[12] होते हैं। और इस असबाब के सिलसिले को हम काफ़ी दूर तक दर्याफ्त कर सकते हैं और इन से फ़ायदा उठा सकते हैं।

१०. ज़बाने खल्क को नक्कार-ए-खुदा[13] कहते हैं। अगर किसी एक शक्स को न सिर्फ उस के हम असर बल्के बाद की नस्लें भी इज़्ज़त औ अहतराम[14] से याद करें तो ज़रूर है उस शक्स की ज़ात[15] में औसाफ[16] वाजिबुल ताज़ीम[17] का मा-बउल-इमतियाज़[18] ऐसा मजमुआ[19] हो जो इस कौम व मुल्क की मेराज[20] से मुतावकत[21] या मुनासिबत रखता हो यह मयार-आम[22] है। दुनिया के हर हिस्से में काम दे सकता है। इसके ज़रिये आप बुध भगवान्, जरतुश्त, कन्फ्यूसियस, हज़रत, ईसामसीह, हजरत महम्मद साहब, हर एक की अज़मत[23] का

---

१ इस उदाहरण के अनुसार। २ तू ही जिस को चाहे इज्ज़त देता है, तू ही जिस को चाहे ज़िल्लत (नाश) देता है। ३ पूर्ण शान्ति। ४ ईश्वर की इच्छा यही थी। ५ कारण वो कार्य की। ६ सांकल। ७ जबर्दस्त काम। ८ इस दुनिया में जिस में कारण के बिना कोई काम नहीं होता। ९ चिराग (दीपक)। १० ध्यान में मग्न होने। ११ आम तौर पर। १२ सामान। १३ जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है। १४ आदर सन्मान। १५ स्वयं, खुद। १६ खूबियां। १७ आदर के योग्य। १८ उस की खास बात। १९ (उस मनुष्य में) इकट्ठी हों। २० बड़प्पन। २१ अनुसार (मुवाफिक)। २२ आम तरीका (गुर)। २३ बड़प्पन, बुजुर्गी।

अंदाज़ा लगा सकते हैं। इस बिना[१] पर हम यह कहने की जुरत करते हैं कि श्रीकृष्णजी के औतार को औतार तसव्वुर[२] करने की कई वजुहात[३] हैं जिनको हमारे नज़दीक दो बड़े हिसास[४] में मुतकसिम[५] कर सकते हैं।

अव्वल-श्रीकृष्णजी की ज़ात वा बरकात[६] में इम्तियाजी सिफ़ातए इन्सानी का इजतमा[७] यानी जिस्मानी[८], दिमाग़ी[९], इख्लाकी[१०], बेरूहानी[११], फजीलत[१२] व कमाल[१३]।

दोयम-हिन्दू कौम के दिल औ दिमाग़ की खसूसियत जिस ने इन औसात इन्सानी[१४] को नस्बुल ऐत[१५] बनाना मंजूर[१६] किया।

११. यूँ तो हर फरदेबशर[१७] अपने बाप का बेटा वो अपने ज़माने का पुतला होता है उसके आज़ा वो कवा[१८] बिल अमूम[१९] आबा व अजदाद[२०] से विरसे[२१] में मिलते हैं और बमिसदाक़ अद्देहर अफसहुल मौदेबीन[२२] ज़माना या तजर्बा उसको सिखाता रहता है। मगर उस में नुक़ता[२३] यह है कि इन्सान महज[२४] गोश्त पोश्त[२५] का ही खिलौना नहीं है जो अपनी वालदैन[२६] के सांचे में ढल कर बना हो। यह बहुत दर्ज़े तक उन तमाम

---

१ आधार। २ खयाल। ३ कारण। ४ भागों। ५ बांट सकते। ६ खूबियों से भरे हुए, विशेषता-सम्पन्न, आदरणीय व्यक्तित्व में। ७ मनुष्यों के समूह में सब से ऊँची तारीफ वाला। ८ शारीरिक। ९ मानसिक। १० मेल जोल वाले। ११ आत्मिक बलवाले। १२ बड़प्पन। १३ पूर्णता। १४ आदमी के गुणों को। १५ सब से बड़ा सिद्धान्त मानकर नज़र में रखना। १६ स्वीकार किया। १७ मनुष्य १८ शरीर की जोड़ वो शक्ति। १९ आम तौर से। २० बाप और दादा के खान्दानी तौर से। २१ परम्परा में। २२ मिसाल के तौर पर ज़माना अदब सिखाने वालों का उस्ताद है। २३ खूबी की बात २४ सिर्फ। २५ मांस और त्वचा। २६ माता।
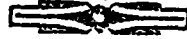
महसूसात[1]-ख़यालात-ख्वाहिशात[2], जजबात[3] और तस्सवुरात[4] का पुतला होता है जो इस के आबा व अजदाद के दिल औ दिमाग़ में मौअज्जन[5] रहे थे। बाद अज़ां इस पर इन तमाम वाकेआत तख़ैय्युलात[6] लगती रहती है जो इसके और उसके अबनाय जिन्स[7] पर असर पजीर[8] होते हैं।

१२. वासुदेव को रोशन दिमाग़[9] अपने वालिद वसुदेवजी से मिला था और देवकी नन्दन में चाहिये था मगर न सिर्फ हुस्नो जमाल[10] बल्के कवाये दिली[11] का कमाल[12] मौजूद हुआ और ऐसा बेटा इस काबिल[13] होना चाहिये था कि अपने वालदेन को उमर कैद से रिहाई दिलाता और ज़ालिम[14] औ जबरदस्त कंस का नाम हरफ गलत की तरह मिटा देता। इस मुहम[15] के लिये ग़ैर मामूली जिस्मानी व इखलाक़ी कवा[16] दरकार[17] थे जिनको वालदेन[18] की शबानह रोज़ दुआएं[19] आलिये वजूद में ले आईं[20]।

१३. जसोदाजी ने वह जोश क़ुरबानी[21] साबित कर दिखाया था जिसकी दुनियां की तारीक में सिर्फ एक और रोशन मिसाल[22] बनती है वो भी राजस्तान में के मा अपने को रखले बच्चे को मौत के मुंह में डाल दे। इस ग़रज़[23] से कि दूसरी औरत के बच्चे की जान बच जाए। ऐसी जसोदा मैय्या का दूध पीकर जो लाल पले वो चाहिये के ईसारनफसी[24] की आसातरी मिसाल[25] हो।

---

१ क्रियाएं (हरकतें)। २ इच्छाएं। ३ जोश। ४ खयालात। ५ लहरों की तरह। ६ खयालात की छाप। ७ हम कौम (हम जात)। ८ असर डालने वाले। ९ मस्तिष्क का प्रकाश। १० खूब सूरती। ११ दिल की ताकत। १२ अखीर नमूना। १३ योग्य। १४ जुल्म करने वाला। १५ चढ़ाई. मुश्किल काम। १६ मेलजोल की ताकत। १७ जरूरत। १८ मां बाप। १९ रात दिन की आशिषें। २० ज़ाहिर कर दिया, प्रकट कर दिया। २१ बलिदान करने की ताकत। २२ ज्वलंत उदाहरण। २३ मतलब, प्रयोजन। २४ नम्रता। २५ उत्कृष्ट उदाहरण।

१४. हिन्दुस्तान को शायरों ने जिन्नत निशान[१] बताया है बहरहाल[२] इसमें दुआब गङ्ग व जमन[३] सब से जियादा ज़रखेज[४] है इसमें भी इलाका बिरज को खास फजीलत[५] हासिल रही है । इसी की जबान बिरज भाषा टकसाली जबान कहलाई । इसी के क़रीब इन्द्रप्रस्त की बुनियाद[६] डाली गई जो हिन्दुस्तान का मर्कज़[७] करार पाया[८] । इस इलाके में जङ्गल वो बन वगैरह बकसरत[९] थे मसलन मोरबन, महाबन, बिंदराबन, माधोबन वगैरा जो बेशुमार[१०] मवेशियों की चरागाह[११] और रमना[१२] थे । नन्दजी की तरह एक एक महरा अहीर बडगूजर के पास सैकड़ों गउएं होती थीं । ये ही उनकी दौलत थी । दूध, दही, मक्खन, घी की बोहतात[१३] का यह हाल था कि पानी के बजाय लोग दूध या छाछ पीते थे । अजनबी मुसाफ़िर[१४] की खातिर भी दूध चावलों से होती थी । होली खेलने को दूध और दही में हल्दी या टेसु का रङ्ग मिला कर उछालते और दूसरे पर डालते थे । चुनाचे यह रश्म उस वक्त की यादगार[१५] है । नन्दजी के घर में जो बालक पले उसको दूध, मलाई, दही, मक्खन की क्या कमी थी ? अगर खुराक का और जाये रहा यश[१६] का असर जिस्म की नशो नुमा[१७] पर होता है तो कोई वजह नहीं कि नन्दलाल के कवाये जिस्मानी[१८] मजबूत न होते ।

१५. गर्जे के श्रीकृष्णजी जनम ही से बमिस्दाक[१९] "होनहार बिरवां के चिकने चिकने पात" गैर मामूली तौर पै तन्दुरुस्त,

---

१ स्वर्ग का नमूना । २ सब तरह से । ३ गङ्गा और जमना नाम की दो नदियों के बीच की जमीन । ४ उपजाऊ । ५ बड़ाई । ६ नींव । ७ मध्य-बिन्दु । ८ माना गया । ९ बहुतायत से । १० अगणित ११ जानवर (पशु) चरने की जगह । १२ खेल की जगह, मैदान । १३ अधिकता । १४ सफर करने वाले, यात्री । १५ स्मारक । १६ रहने की जगह । १७ बढोतरी । १८ शारीरिक बल । १९ मिसाल की तौर पर ।

मजबूत, मनचले, चञ्चल, हँसमुख, ना सिर्फ जसोदा मैया के लाल बन्के सारे गोकल की गोपियों के गोपीचन्द और उनकी आंखों के तारे बने हुऐ थे। सूरदासजी ने भी अपने शायराना बलागत[1] का कमाल श्रीकृष्णजी की बचपन की दिलखुश्कुन हरकात[2] के बयान में दिखलाया है। कहीं चांद को देख कर मूंह में डालने को मचल[3] रहे हैं, । और जब कटोरे भर पानी में अक्स[4] देख हाथ मारते हैं तो मुतहर्रिक मांहपारों[5] को देख कर धिजक जाते हैं। कभी छुप छुपा कर मिट्टी खा आते हैं और जसोदा मैया की धमकी से अपना नन्हासा मुंह खोल देते हैं। जरा बड़ हो कर मक्खन की धुन लगती है जो मक्खन जसोदा मैया कह कह कर देवे-उसमें वह लुत्फ[6] कहां जो छीन झपट कर लिया जावे। वो बचपन ही नहीं जिस में चुलबुला-पन[7] नहीं, जब तक नटखट मोहन खटपट न कर लें गोकल की गोपियों जसोदा की सहेलियों से लूट मार कर मक्खन न उड़ालें, तब तक माखन-चोर को चैन कहां ? जब कहीं पकड़े जाते तो किसी न किसी बहाने से किसी को हँसा, किसी को डरा, किसी को बेवकूफ बना कर साफ निकल आते थे। गर्जे के बकोल नजीर

"क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन।"

अगर बनीनौए[8] इन्सान के लिये बाहरहाल हिन्दुस्तान के लिये तो यह आलिमे तफूलियत[9] की मुकम्मिलै[10] तस्वीर है।

१६. यही हाल उन के उनफुवान शबाब[11] का पाया जाता है। सर व कद, फन्दा पेशानी,[12] फराख सीना,[13] आहू-चश्म,[14] नशे मोहब्बत[15] में सरशार[16] थे।

---

१ गूढ कविता। २ दिल को खुश करने वाली क्रीडा। ३ जिद्द कर रहे हैं। ४ प्रतिबिम्ब। ५ हिलते हुए चांद के टुकड़ों को। ६ मजा, आनन्द। ७ ऊधम, चञ्चलता। ८ आदमके बेटे, समस्त मानव समाज। ९ लडकपनका जमाना। १० पूरी। ११ जवानी। १२ हंसमुख चेहरा। १३ चौड़ी छाती। १४ मृग-नयन। १५ प्रेम का नशा। १६ मस्त।

" वालाए सरश जे होशमन्दी,
यीं ताफ्त सितारए बलन्दी।[१] "

सांवले रङ्ग पर पीताम्बर खूब खिलता है। घुंघर वाले वालों पर मोर मुकुट सजा छैल छबीले, रङ्ग रङ्गीले, कृष्ण कन्हैया, मुरली के बजैया, जब कभी अपनी बन्सी की कूक या रसीली आवाज की पुकार लगाते तो जंगल बन गूंज उठते, जमनाजी लहराने लगती, गौएं गरदन उठा कान धर एक लम्हे का रुख पहचान अपने गोपाल के पास उछलती, कुदती, दूध देने आ मोजूद होतीं। ग्वाल बाल जो जंगलों में गौएं चराते फिरते थे अपने वृन्दावन-बिहारी मुरारि सर्वतकारी,[२] गिरधारी के पीछे २ हो लेते। और गोकल की गोपियों के दिल बेकरार[३] हो जाते और राधा जो सौ जान से अपने मन-मोहन पर कुर्बान थी जहां की तहां उन्हीं के ध्यान में खड़ी रह जाती। मर्दाना हुस्नो शबाब[४] इश्क़ वो मोहब्बत की तस्वीर भी हिन्दुस्तान के शायरों और मुसव्वरों[५] को कृष्ण कन्हैया से बहतर नहीं मिली।

१७. इसी तरह दिलेरी, बहादुरी, जवांमर्दी, उलुलअजमी,[६] और फनूने सिपाहगिरी[७] में भी श्रीकृष्णचन्द्र यगाने रोज़गार[८] थे। जैसे बचपन में उन को रोना नहीं आता था वैसे ही बड़े हो कर खौफ से वो कतई नाआश्ना[९] थे। बहुतसी खामतें[१०] इन के ग़ैर मामूली[११] निडर मनचले होने की मशहूर हैं। अभी दूध पीते बालक थे कि सियाहकार[१२] पूतना का नाक में दम कर दिया,

---

१ उम्र के सर के ऊपर, उसकी अक्लमन्दी से, सौभाग्य का सितारा चमकता था। २ शान वाले। ३ बेचैन। ४ पुरुष सम्बन्धी लावण्य (खूब सूरती) वाली जवानी Masculine beauty of youth. ५ चित्रकारों। ६ इरादे का पक्का होना। ७ फौजी हुनर ८ अपने ज़माने में अद्वितीय। ९ बिल्कुल नावाकिफ। १० कहानियां ११ असाधारण। १२ पापिनी, कलुषित।

धीठ कव्वे को बेधड़क पकड़ कर चीर डाला, काले सांप को नाथ लिया, अब कंस की बारी आई। कंस को मारना कोई 'खालाजी[1] का घर' न था। उसने अपनी सगी बहन और बहनोई को उमर कैद में डाल कर उनके सात बच्चे यके बाद दीगरे[2] अपने हाथ से कतल कर डाले थे। रियाया का उसके हाथों नाक में दम था। लेकिन वो ऐसा जाबिर[3] था कि किसी की जुरअत[4] नहीं होती थी कि चूँ तक कर सके। बड़े से बड़े जंगजु[5] बहादुर भी उस पर हाथ उठाने का नाम लेते कांपते थे। यह श्रीकृष्णचन्द्रजी ही का काम था कि हाथियों को हटाते, दुश्मन की सफों[6] को चीरते, चश्मजदन[7] में कंस को जा पछाड़ा और उसका सर कलम कर डाला[8]।

१८. इन के आलिमे-बा-अमल[9] रहबरे कामिल[10] होने का सबूत भगवद्गीता से मिलता है। जिस में ऋषि व्यास ने बताया है कि अर्जुन के शकूक[11] को किस लियाकत और खुश अस्लूबी से किस फसाहत[12], बलागत[13] और हयादानी[14] से रफा[15] किया है। इस का तजकिरा[16] बखौफ तवालत[17] छोड़ना पड़ता है। मगर यह मानना पड़ता है कि जो फलसफा[18] (निष्काम कर्म) इस गुफ्तगू के दौरान में श्रीकृष्णजी की तर्फ मनसूर[19] किया जाता[20] है वो दुनियां में अपनी शानी[21] नहीं रखता। इसको हिन्दुस्तान के फिलसफे का इत्र कहिये तो बजा[22] है। इस की शान[23] में जो

---

१. आसान काम नहीं था। २ एक के बाद दूसरा। ३ अत्याचारी। ४ हिम्मत। ५ शूरवीर। ६ क़तार, पंक्ति। ७ निमेश मात्र में। ८ काट डाला। ९ शास्त्र के जानने वाले और उसपर चलने वाले। १० सच्चा रास्ता बताने वाले। ११ सन्देहों। १२ उम्दा तरीक़े से। १३ कहने की खूबी से। १४ समयोचित और प्रभावशाली। १५ पूर्ण, सर्वतोमुख ज्ञान से। १६ दूर। १७ वर्णन। १८ लंबा होने के भय (डर) से। १९ ज्ञान। २० लगाया जाता है। २१ मिसाल। २२ उपयुक्त। २३ इस विषय में।

तारीफ की जाय रवा[१] है। अगर तमाम शास्त्रों को बहैयाते मजमुई[२] गाय से तश्बीह[३] दी जावे तो यह कहना चाहिये कि गोपाल नंदन ने इस को दूह कर गीता का दूध अर्जुन को पिला दिया।

१९. बचपन, जवानी और बुढ़ापे के मुकम्मिल तसावीर[४] का एक ज़िन्दगी में पाया जाना कुछ कम वजनी[५] अमर नहीं है और अगर इसको तस्लीम[६] कर लिया जावे तो यह समझना भी दुश्वार[७] नहीं रहता कि क्यों ऐसे शक्स को मुल्क वो कौम मर्तबा बलन्द[८] न दे। मगर जब हम ज़रा नज़र नुक्तारस[९] से काम लेते हैं तो मालूम होता है कि श्रीकृष्ण जादवराय में अलावा औसाफे जाहिरी[१०] के इख़लाक बातनी[११] भी बदर्जे-ए-अतम[१२] भी मोजूद थे। उन की तबियत में इस्तिग़ना[१३] था, उन की मोहब्बत में वफा केशी[१४], उन की हिम्मत में बेग़र्ज़ी, उनकी जवांमर्दी में खुद जब्ती[१५] थी, और उलुल अज़्मी[१६], अहत-राज[१७], ख़ूँख्वारी[१८], मगर सब से बढ़ कर जो बात थी वो यह है के उनके तमाम हकात वो सकनात[१९] अकवाल वो अफआल[२०] में एक जबर्दस्त रूहानी ताकत पिन्हां वो अयां[२१] थी। जिस को मुख्तलिफ अलफाज से बयान किया गया है। कोई इसकी कश्फोकरामात[२२] कहता है, कोई ऐजाज़[२३] या ख़िरके-आदात[२४]। हम इसको चंद मिसालों से वाजे[२५] करेंगे।

---

१ सही। २ इकट्ठे करके। ३ उपमा। ४ पूरी तसवीरें। ५ स्वीकार। ६ मुश्किल। ७ ऊँचा पद। ८ गवेषणापूर्ण दृष्टि से, बारीकी की निगाह से। ९ प्रगट गुण। १० अन्दरूनी गुण। ११ पूर्णतया। १२ बेपर्वाही, मस्ती। १३ प्रेम को निभाना। १४ स्वार्थ का अभाव। १५ संयम। १६ बहादुरी में। १७ परहेज करना, अत्याचार और व्यर्थ हिंसा से अपने को दूर रखना। १८ अहिंसा। १९ उठने बैठने में। २० कहने करने में २१ छुपी वो जाहिर। २२ चमत्कार। २३ सिद्धियां। २४ हमारी बुद्धि या समझ से परे। २५ जाहिर करेंगे, विस्तार पूर्वक समझावेंगे।

२०. एक स्यमन्तक लाल की कहानी तवील[१] है। यह लाल बेबहा[२] सत्राजित् को कहीं से मिल गया था और बलिहाज़ वज़न. वो आबोताब[३] अपनी सानी नहीं रखता था। इस की तारीफ में शायराना मुबालगे[४] से काम लिया जाता था। ऐतकाद[५] था कि जो इस को ज़ेबएगुल्द करे[६] वो साप बिच्छू की गज़न्द[७] और हर किस्म की बीमारी और आसेब[८] से महफ़ूज[९] रहता है। और इसको ज़मीन में रख कर आठ मन सोना जब चाहते जब निकाल सकता है। बाज़ मौहक्कीन की राय है कि यही मशहूर मारूफ कोहनूर हीरा है जो युधिष्ठिर के ज़माने से हिन्दुस्तान के शहनशाह के ताज को ज़ेब देता है[१०]। श्रीकृष्णजी ने सत्राजित् को कहा था कि यह हीरा उग्रसेन के शायां[११] है, इस को देदो. और सत्राजित् ने नहीं माना था। कुछ अर्से बाद सत्राजित् का भाई प्रसेन इस हीरे को गले में डाले हुए श्रीकृष्णजी के महल की जानिब[१२] से शिकार खेलने को गया और खुद शेर का शिकार हो गया। दुश्मनों और हासेदों ने श्रीकृष्णजी पर इत्तेहाम[१३] लगाया के चाहते आप थे, नाम उग्रसेन का रखते थे, अब मौका हाथ आया। प्रसेन को मार खुद हीरा उड़ा लिया। इस तोहमते नारवा[१४] की तकज़ीब[१५] के लिये और उस लाल को खूँख्वार दरंदों[१६] के मुँह से निकाल लाने या गासियों[१७] के हाथों से बचाने के लिये श्रीकृष्णजी ने जो जो महिम्मात[१८] सरजाम दीं[१९], जिस जिस तरह अपनी जान जोखम में डाली, उन की तस्वीर महाभारत के मूसल-पर्व के तीसरे

१ लम्बी। २ अमूल्य। ३ चमक दमक। ४ कवियों की अतिशयोक्ति। ५ विश्वास। ६ गले में पहने। ७ डंक मारना। ८ भूत प्रेत की पीड़ा। ९ सुरक्षित। १० शोभा बढ़ाता है। ११ योग्य। १२ तर्फ़। १३ कलंक, झूठा आक्षेप। १४ झूठा कलंक। १५ झूठा साबित करने। १६ फाड़ने वाले जानवर। १७ लुटेरों। १८ लड़ाइयां। १९ की, लड़ीं।

अध्याय में दर्ज है। काबिल ग़ौर ये अमर है के इस अल्मासे[१] आलिम ताब[२] की तर्फ से जिस के हुसूल[३] के लिये बड़े बड़े ताजदार[४] हर किस्म के जद्दो जेहद[५] और मक़रो फ़न[६] से काम लेते रहे हैं श्रीकृष्णजी ने इस दर्जे इस्तग़ना[७] जाहिर किया के लोग अश अश[८] कर गये और बावजूद उन के इसरार मुतवातिर[९] के उस के लेने से कतई इन्कार कर दिया।

२१. जंग महाभारत से पहले दुर्योधन को अखीर दम तक यही गुमान रहा कि ज़रो जवाहर, हाथी घोड़े, साज ओ सामान बेशबहा[१०] दे दिला कर श्रीकृष्णजी को पाण्डवों की तर्फदारी से तोड़ लेगा, मगर इस को यह नहीं मालूम था कि यह टेढ़ी खीर है। इन तमाम सामान दुनयवी जाहो हशम[११] को लात मार कर और दुर्योधन की खातिर वो मदारात[१२] पर तुफ़[१३] कर के श्रीकृष्ण जी ने विदुरजी के घर साग खाकर गुजारा किया।

२२. जब श्रीकृष्णजी कंस के पैगाम पर मथुरा में वारिद हुए[१४] तो हरतर्फ उनकी धूम मची हुई थी। लोगों की नज़रें बैतौर खैर मकदम[१५] फ़रशेराह[१६] थी, वासुदेव कृष्णजी आगे आगे और उन के भाई बलदेवजी और हमराही जांनिसार[१७] पीछे पीछे बड़ी आनबान से जा रहे थे के आगे से एक करीही मनज़र[१८] को जपुश्त[१९] औरत सर पर पूजा की सामग्री का थाल लिये राजमहल की तर्फ जाती मिली। उन को देखते ही वो ठहर गई, थाल ज़मीन पर रख कर श्रीकृष्णजी के पांव पकड़ लिये और उन पर अपना सर रख दिया फिर भक्ति-भाव से उन की पूजन

---

१ हीरा। २ दुनिया को रोशन करनेवाला। ३ प्राप्त करने के लिये। ४ बादशाह। ५ कोशिशें। ६ नीति, दग़ाफ़रेब। ७ बे परवाही। ८ आश्चर्य ९ लगातार बाध्य करना या मनुहार करना। १० कीमती। ११ शान शौकत, ठाट बाट। १२ खातिरदारी। १३ थूक कर, ठुकरा कर। १४ आये। १५ स्वागत। १६ बिछी हुई थी। १७ प्राण बलिदान करने वाले साथी। १८ बुरी शकल की। १९ कुबड़ी औरत (कुब्जा)

की, आरती ली और चन्दन का तिलक लगाने को आगे बढ़ी और कहने लगी " हे श्यामसुन्दर ! दीनदयाल ! कृपाल ! दया निध ! मैं पापन अब तक कंस की दासी रही, मेरे धन भाग हैं के आज आपके दर्शन हुए । मेरा जन्म सफल होगया । " अब वही मधूसुदन, कंसनिकंदन, के बमिस्दाक "बस में हैं भगवान् भक्त के" सरे बाज़ार खड़े हैं और चन्दन की खोर माथे पर इन अंगुलियों से लगवा रहे हैं जिन को कोई शक्स पांव छूने की भी इजाजत न दे ।

२३. सुदामाजी की कथा इस से कम दिलचस्प नहीं । सुदामा और कृष्णचन्द्र सान्दीपन के चेले थे । सुदामा गरीब बिरहमन था । फाकों[१] से गुजरती थी । अयालदार[२] भी था । फाके से पड़ा रहता था । मगर किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता था । एक रोज उसकी स्त्री सुशीला ने कहा के दो दिन हो गये, लड़कों के पेट में एक दाना भी नहीं गया, तुम को तो सन्तोष है, मगर बच्चे बिन खाये रह नहीं सकते, कुछ हिम्मत करो । हाथ पैर हिलाओ और कुछ नहीं तो श्रीकृष्णचन्द्र ही के पास जाओ । उन के ठाठ तो राजों महाराजों से भी बढ़े हुए हैं । वे शायद तुम्हारी कुछ मदद करें । सुदामाजी बसद[३] मुश्किल तैयार हुए और एक पोटली चड़वों या सूखे चावलों की ले चले । द्वारका पहुंचे । उनकी हालत नागुफ्ता बेह[४] थी । मैली कुचैली फटी पुरानी एक धोती जैबेतन[५], सर पैर नंगे, किस्मत के मारे[६] की पूरी तस्वीर थी । इधर श्रीकृष्णजी के महलायत की यह कैफियत थी कि आस्मान से बातें करते थे । अलमास याकूत से मुरस्सा दिवारें-नीलम और अक़ीक के दरवाज़े, लाल बेबहा के गुम्बज़, चांदी की कड़ियां, सोने के कलस, सूरज की किरणों से जगमग

१ निराहार । २ बड़े परिवार वाला । ३ सैकड़ों । ४ अकथनीय । ५ पहने ६ दुर्भाग्य ।

कर रहे थे। सुदामा ने डरते डरते इत्तला कराई। श्रीकृष्णजी रुक्मणी के साथ चौसर खेल रहे थे। द्वारपाल से सुदामा का नाम सुनते ही फौरन उठ खड़े हुए। दौड़ कर दरवाजे पर आये और झट सुदामा को छाती से लगा लिया। अपने साथ अन्दर ले आये। सुदामा के इनकार करते करते अपने हाथों से उनके पांव धोये और टांगें दाबी, सुदामा अजीब शशोपंज[१] में थे और हैरान थे कि मैं ख्वाब[२] देख रहा हूं या श्रीकृष्णजी को धोखा हुआ है। इतने में इधर उधर की बातें करके श्रीकृष्णजी ने पूछा के "कहिये भाभीजी तो अच्छी हैं, हमारे लिये तो कुछ सौग़ात[३] ज़रूर भेजी होगी।" सुदामाजी सौग़ात का नाम सुनते ही सिटपिटाये गये। बगल में पोटली जो दबी हुई थी, सँभालने लगे। श्रीकृष्णजी ने झट पोटली बगल से खेंच निकाली और उन सूखे चड़वों का फंका मार लिया और तारीफ़ करने लगे के "वाह वाह कैसे अच्छे हैं"।

खलूस मोहब्बत इस का नाम है। श्रीरामचन्द्रजी ने भी भीलनी के बेर जो उस ने चाख चाख मीठे जान कर रख छोड़े थे और सिद्क़-दिल[४] से पेश किये थे, इसी बेतकल्लुफ़ी से खाये थे और यही ऐसे मर्दाने राय खुदा की सफ़ाई क़ल्ब का सबूत है।

(पद)

भीलनी के बेर सुदामा के तंदुल रुच रुच भोग लगायो।
दुर्योधन के मेवा त्यागी साग विदुर घर खायो॥

२४. श्रीकृष्ण मुरारि वृन्दावनविहारी का सिर्फ़ माहेछत वो उल्फ़त[५] वो वफ़ा[६] वो हमदर्दी को ही पुतला मानना उनकी शाने अजमत[७] से गाफ़िल रहता है। जो उनके दीगर कारहाये

---

१ दुविधा, हैरानी, पशोपेश। २ स्वप्न। ३ भेट (उपहार) ४ सच्चे दिल से। ५ प्रेम। ६ प्रेम की सचाई। ७ बड़ी इज्जत।

नुमाया[1] से साफ़ आया[2] है। वही चित्तचोर कँवर कन्हैया राधाजी से हरे हरे बांस की पोरी[3] वापिस लेने के लिए सौ मिन्नतें[4] करते थे जब अपनी शिद्दत जलाली[5] में कंस, जरासिंध, शिशुपाल, दुर्योधन, कर्ण वगैरा के मुक़ाबले में खड़े हुए तो काल-रूप थे यानी दुश्मनों को खौफ़नाक मौत की मुजस्सिम तस्वीर[6] थे। जब पैग़ाम सुलह[7] लेकर श्रीकृष्ण बहैसियत एलची[8] दुर्योधन के दरबार में आये तो नतायज का नज़ारा[9] उन्होंने अपने बलीग़ अलफ़ाज़[10] दिखाकर सब को दहशत ज़दा[11] कर दिया। उस वक्त कर्ण ने सरगोशी[12] करके दुर्योधन को बर अङ्गेखता[13] करना चाहा के श्रीकृष्ण को गिरफ़तार करले। तब श्रीकृष्ण कड़क कर बोले "खबरदार जो किसी ने हाथ उठाया" और उङ्गली से इशारा करके कहा "देख मैं कौन हूं, और कहां कहां हूं।" इससे सारे कौरवों के दिलों में दहशत[14] समा गई और आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उनको हर तर्फ़ श्रीकृष्ण की भयानक मूर्ति नज़र आने लगी।

२५. जब तक कंस मरा नहीं था कौन कह सकता था कि एक नौ उमर लड़का जो अभी गौवें चराता फिरता था आ कर आन की आन[15] में इस का फ़ैसला कर देगा। इसी तरह कर्ण दुर्योधन की सलाह मश्वरे से जब हर किस्म के मक्रो हीले[16] से पाण्डवों की बेख़ कनी[17] में नाकामयाब[18] रहा जब जुए में हार कर बारह बरस वनवास में और एक बरस बेनामो निशान[19] रह

---

१ प्रसिद्ध कार्य। २ ज़ाहिर है। ३ बांसुरी। ४ खुशामदें। ५ क्रोध की दशा में। ६ साक्षात् मूर्ति। ७ शान्ति का सन्देश। ८ दूत बनकर। ९ परिणाम का चित्र। १० गूढ़ शब्दों में। ११ भयभीत। १२ कानाफूसी। १३ नाराज। १४ भय। १५। क्षणमात्र में। १६ चालबाजी और झूठे बहाने से। १७ जड़ से उखाड़ फेंक देना। १८ असफल। १९ अज्ञात वास।

कर पाण्डव लाखाभवन से भी बच निकले तो सिवाय जङ्ग के और कोई चारा[१] नहीं रहा। यह वक्त इम्तिहान का था। एक तर्फ दुनयावी जर वो हश्मत,[२] साजो सामां[३], जरो ज़वाहर, राज पाट, सब कुछ दूसरी तर्फ बर अक्स[४] इसके न दौलत, न सरवत[५], न राज, न पाट; माना कि युधिष्ठर के भाई अर्जुन तीरंदाजी में एकता[६] वो भीमसेन गदायुद्ध में बेहिमता[७] थे मगर इन के मद्दे मुकाबिले में कर्ण और दुर्योधन भी कुछ कम न थे। बल्के कर्ण अर्जुन को हकीर[८] समझता था। और दुर्योधन भीम को ज़लील[९] बताता था। अगर श्रीकृष्ण पांडवों के हामी[१०] थे तो उन्हीं के भाई जबर्दस्त बलरामजी व मये अपने लाव लश्कर[११] के दुर्योधन के तर्फदार थे। अलावा इस के इन सब के गुरु घंटाल द्रोणाचार्य. कृपाचार्य, बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह सब कौरवों के मददगार थे। दुर्योधन और करन हँसते थे और कहते थे के पांडव इस बेसरो सामानी[१२] के साथ हमारा क्या मुक़ाबला कर सकेंगे? और शायद उस वक्त की दुनियां भी यही समझती होगी। मगर सिर्फ एक श्रीकृष्णजी ही थे कि जिन्हों ने डंके की चोट से कह सुनाया था कि पापी दुर्योधन की हार वो धर्मराज युधिष्ठर की जीत मुझ को साफ नज़र आ रही है। यह कोई तिलिस्म[१३] था या कोई एज़ाद[१४] जो सिर्फ श्रीकृष्णजी के पास था, यह कोई मंत्र था या गुटका, जामे जहांनुमा[१५] था या जादू, जिस की मदद से इन को ग़ैब का इल्म हो गया था और आइन्दा की पेशी गोई[१६] ऐसे दावे[१७] के साथ करते थे।

२६. महाभारत, भागवत और गीता के मुताले[१८] से पता

---

१ रास्ता। २ बल वैभव। ३ ठाठ बाट। ४ विपरीत। ५ इज्जत। ६ अद्वितीय। ७ बेमिसाल। ८ नाचीज। ९ नीचा दिखाना। १० सहायक ११ फौजफटा। १२ अस्त्र शस्त्र की पूरी सामग्री के अभाव में। १३ जादू। १४ चमत्कार। १५ दुनिया का हाल बताने वाला प्याला। १६ भविष्य वाणी। १७ निश्चय पूर्वक। १८ पढ़ने।

लगता है के पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इल्मनफ्स[1] के आलिम और फन्ने तस्खीर[2] के आमिल[3] थे। उन का न सिर्फ अपने बल्के दूसरों के तखै मुलात[4] व जज़बात[5] पर क़ुदरत वो दस्तगाह[6] हासिल थे। उन में बरक़ी कुवत[7] जलाली[8] और मेकनातीं[9] सी ताक़त जमाली[10] का क़ीवामें मोतदिल[11] था और वो खूब जानते थे के मुझ में यह ग़ैर मामूली ताक़त मौजुद है। वो जिसको चाहते डराते, और जिसको चाहते हिम्मत दिलाते थे, किसी को रुलाते, किसी को हंसाते, किसी को दरियाए फिक्र[12] में गोता देते, किसी को सर-चश्मए उलफत[13] से फैजयाब[14] करते थे। वोह एक ज़बर्दस्त उसूल परस्त[15] थे। उनका ऐतकाद[16] कामिल था के धर्म के आगे अधर्म, हक़ के आगे नाहक़, रोशनी के सामने अंधेरा, कभी नहीं ठहर सकता। जहां धर्म है वहां फतह वो नुसरत,[17] खैर मक़दम[18] को खड़ी है, पापी के मारने को पाप महाबली है, पस इस उसूल क़ुदरत की बिना[19] पर उनको इलमुल यक़ीन[20] था कि कंस, दुर्योधन, करन वग़ैरा अपने मुंह की खायंगे और तहतुस सरा[21] को जायंगे और वैसा ही हुआ। यही एतक़ादे आजम[22] था जिसके होसले पर श्रीरामचन्द्रजी ने लङ्कापत रावन, कुम्भकरन, इन्द्रजीत मेघनाद और उसके असुरों की जम्मे गफीर[23] का मुकाबला किया था और फतह कामिल पाई।

२७. यह अतुल यक़ीन[24] जब ऐसे फर्दे बशर[25] में सूरत-पज़ीर[26]

१ आत्म-विद्या। २ मोहनी-विद्या। ३ सिद्ध। ४ विचार। ५ आकर्षण शक्ति। ६ शक्ति। ७ बिजली की मुवाफिक। ८ तपस्या। ९ चुम्बक पत्थर की सी आकर्षण शक्ति। १० व्यक्तित्व। ११ बराबर की चाशनी। १२ शोक सागर। १३ प्रेम। १४ लाभ पहुंचाते। १५ सिद्धान्त पर अटल रहने वाले। १६ पूर्ण विश्वास, दृढ़ धारणा। १७ जीत। १८ स्वागत के लिये। १९ आधार। २० निस्सन्देह विश्वास। २१ रसातल। २२ बहुत बड़ा विश्वास। २३ बड़ी भारी सेना। २४ प्रत्यक्ष ज्ञान। २५ मनुष्य। २६ विद्यमान होना

होता है तो कवाये जिस्मानी[१] और इखलाकी[२] से मुजैय्यन[३] और अनवारे रूहानी[४] से मुकम्मिल[५] हो तब इसको तबकाए इन्सानी[६] से बदर्जेहा बाला[७] वो बरतर[८] बना देता है और उस की कद्रो मनजिलत[९] मलायक[१०] से बेहतर क्योंकि उसके हर कौल औ फेल[११] से दीनों ईमान या सबक[१२] पर रोशनी पड़ती है। और जदीद उसूलों की बुनियाद पड़ती है। इसी नुक़ते निगाह पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवान् को माफो कुल[१३] इन्सान कहिये तो बजा[१४] है। इस मानी में उनका सोलह कला सम्पूर्ण होना समझ में आ सकता है। और यही दावा है जो श्रीकृष्णजी के अल्फाजे ज़ेल[१५] में पाया जाता है:—

शेर

चु बुनियादे दी सुस्त गर्दद बसे
नुमाएम खुदरा बशिकले कसे[१६]

२८. ऊपर जिक्र आ चुका है कि हिन्दुस्तान में श्रीकृष्णजी की अक़ीदत[१७] का दूसरा बड़ा सबब यह था कि उन के अकवाले अफआल[१८] हिन्दुओं के मुसल्लमा उसूलों[१९] के मुवाफिक या मुतनासिब[२०] थे। अगर ऐसा न होता तो कयास[२१] यही चाहता है के या तो जमाना वो वक्त उनको लोगों की याद से भुला देता और अब तक कभी का उनका नाम वो निशान मिट गया होता या अगर उनके उसूले ज़िन्दगी[२२] हिन्दू धर्म के मुनाफिक[२३] वो मुतज़ाद[२४] होते तो उनको वो कबूलियत

---

१ शारीरिक बल। २ प्रेम। ३ अलंकृत, भूपित। ४ आत्मिक प्रकाश। ५ पूर्ण। ६ मनुष्य के दर्जे। ७ बहुत दर्जों से ऊंचा। ८ उन्नत। ९ इज्जत। १० फरिश्ते (देवता)। ११ वचन और कर्म। १२ आनेवाले जमाने। १३ सब मनुष्यों से श्रेष्ठ। १४ उचित। १५ निम्न लिखित शब्दों में। १६ जब धर्म की नींव बहुत सुस्त होजाती है तो हम किसी की शक्ल में अवतार लेते हैं। १७ भाव। १८ वचन और कर्म। १९ माने हुए सिद्धान्त २० मिलते जुलते। २१ अनुमान। २२ जीवन के सिद्धान्त। २३ भिन्न। २४ खिलाफ, विरुद्ध।

आम[1] मयस्सद[2] न होती। जो उनके हमअसरों[3] और वाद के नसलों[4] ने भी अगर तवारीख वो रवायात[5] पर हसर[6] किया जावे तो अमर वाक़ा[7] यह मालूम होता है के श्रीकृष्ण भगवान् उन फरखुन्दा पाल[8] हादियाने राहे[9] हक़ में से थे जिन को उन की जिन्दगी में ही लोगों ने मुरशदए[10] कामिल कबूल[11] किया।

२९. श्रीकृष्णजी के ज़माने में अक़ायद मज़हबी[12] क्या थे ? किन उसूलों का आम चर्चा था ? कौनसा फ़ल्सफ़ा दीनी रायज[13] था ? छः दर्शनों में से कौनसा मक़बूले आम[14] था ? लोगों में कौनसा देवी देवता जियादतर माना जाता था ? इन सवालों के जवाब बिल तहक़ीक़[15] हमको मालूम नहीं हो सकते ? महाभारत और भागवत में तवारीखी वाक़ेआत के साथ किस्से कहानियां ऐसी मखलूत[16] हैं कि पता नहीं लगता कि मुसन्निफ़[17] अपने ज़माने के हालात बता रहा है या अपने मम दुह[18] के वक़्त के। मालूम होता है के वक़्त को हिन्दु दिमाग़ ने इस क़दर कम वक़त[19] दी है के बसावक़ात[20] हज़ारों साल आये[21] माज़ी वो मुस्तक़बिल[22] के वाक़ेआत ज़माने हाल में बयान होते हैं। ताहम तवारीख लिटरेचर (literature) वो फ़ल्सफ़ा हिन्द के आलिमों[23] से मख़्फ़ी[24] नहीं हैं के ज़माने महाभारत से पहले वेदों, उपनिषदों और स्मृतियों के कई शारेहीन[25]

---

१ लोक-प्रियता। २ नहीं मिलती। ३ समकालीन व्यक्ति। ४ भावी सन्तान। ५ कथाएं। ६ विश्वास। ७ वस्तुतः, वास्तव में। ८ सौभाग्यशाली। ९ सच्चा रास्ता बताने वाले। १० सिद्ध गुरु। ११ स्वीकार। १२ धर्म के मन्तव्य। १३ प्रचलित। १४ जन साधारण से स्वीकार किया हुआ सर्वग्राह्य। १५ पूर्ण निश्चय पूर्वक। १६ गुंथीहुई हैं। १७ लेखक (किताब लिखने वाला) १८ चरित्र नायक। १९ कदर। २० बहुधा, अक्सर। २१ बरसों के वाकेआत (चरित्र) २२ भूत और भविष्य। २३ पण्डितों से। २४ छुपे हुए। २५ टीकाकार (भाष्यकार)

हो गुजरे थे[१]। जिन्हों ने मुतद्दिद[२] मसायले अद्क[३] को अपनी रोशन ज़मीरी[४] से मुखतलिफ तरीक़ों पर[५] हल किया था[६]। जीवात्मा (रूहेहैवानी) और परमात्मा (रूहे आलम) की माहियत[७] क्या है? और उनका आपस में क्या रिश्ता वो तालुक[८] है? प्रकृति और माया क्या हैं? अज़ली[९] है? या अवदी[१०] हादिस[११] हैं या कायम[१२] कर्म (अफआल) कौन करता है उन का फल (नतीज़ा) कौन भोगता है और किस तरह? आवागमन (तना सुख) के क्या मायना हैं? वग़ैरा २ इन सवालों पर हजरते इन्सान इब्तिदाए तमहुन[१३] से सोचता विचारता आया है और ग़ालिबन[१४] हमेंशा सोचता रहेगा। मगर जिस कदर महवीयत[१५]इन मसायर[१६] वो रमूज़े-अवदी[१७] हिन्दू ऋषि-मुनियों ने सर्फ[१८] की है वह शायद ही किसी और तवकए-अर्ज[१९] पर की हो। इस का नतीज़ा यह हुआ है के हिन्दू कौम के दिमाग में जीवात्मा, परमात्मा, कर्म और आवागमन के असूल गड़ गये हैं और बतौर असूले हाय मौज़ुआ[२०] तस्लीम[२१] किये जाते रहे हैं।

३०. श्रीकृष्णजी ने इसी बिना[२२] पर अपनी तालीम व तरकीन[२३] की तामीर[२४] खड़ी की थी। गीता के मुताले[२५] से मालूम होता है के अगरचे इब्तिदा में[२६] उन्हों ने जीवात्मा की हस्ती[२७] बिज़ज़ात[२८] तसलीम[२९] की है और बताया है के निष्काम

---

१ हो गए थे। २ कतिपय। ३ जटिल प्रश्न। ४ आन्तरिक प्रकाश। ५ भिन्न भिन्न प्रकार से। ६ सुलझाया था। ७ असलियत। ८ सम्बन्ध। ९ अनादि। १० अनन्त। ११ नश्वर। १२ अविनाशी। १३ दुनिया के कायम होने के वक्त से, सृष्टि के आरम्भ से। १४ शायद, प्रायः। १५ ध्यान की तन्मयता। १६ प्रश्न। १७ चिरंतन रहस्य। १८ खर्च। १९ सांसारिक, भौतिक प्रश्न। २० पुख़्ता तौर पर से माने हुए सिद्धान्त। २१ स्वीकार। २२ आधार। २३ धर्म की शिक्षा। २४ बड़ी इमारत। २५ पढ़ने से, अध्ययन से। २६ शरू में। २७ अस्तित्व या सत्ता। २८ खास अंश। २९ स्वीकार।

कर्म (अफ़आले नेक बिलाख़्वाहिशे जज़ा) से जीवात्मा आवा-गमन के फंदे से छूट कर मोक्ष यानी निजात हासिल करता है लेकिन ग्यारहवें अध्याय में विराट् रूप दिखला कर अर्जुन को उपदेश किया है वहां उन्हों ने वेदान्त के असूल पर अजीबो ग़रीब[1] रंग चढ़ा दिया है गोया किताबी क़ालिब[2] में रूह फूंकदी है[3]। इस मरहले पर आकर अक्सर फ़लसफ़ी ऐतराज़ात[4] के गिरदाब[5] में फंस जाते हैं या हैरत के दरिया में[6] गोते खाते हैं और नहीं सोचते के सुमेधा श्रीकृष्णजी कर्म-योगी थे और अपने मुरीदों[7] को नेकी और बदी की बारीकियों के वस्वेसों[8] और गुशीगाफ़ियों[9] से हटा कर बेख़ौफ़ो ख़तर[10] मैदाने अमल[11] में आ कूदने की तलक़ीन[12] देते थे। वो धर्म की शक्ति को लायानी फ़ल्सफ़े[13] की दलदलों[14] वो शकूक[15] के भँवरों से धकेल कर ऐनुलयक़ीन[16] के मंझधार में ला रहे थे। वो मन्तिक़[17] के रूखे सूखे रेतीले बे-आबान[18] के मुसाफ़िर गुमगश्ताह[19] को इश्क़-हक़ीक़ी[20] के गुलज़ार[21] में खेंच रहे थे। गोया कह रहे थे-

शेर

सितमस्त ग़र हवीसत कशद
के बसैरे सरवो समंदर आ,
तोज़े ग़ुनूचा कम न दमीदई
दरेदिल कुशा व चमन दरा।[22]

---

१ आश्चर्य-जनक। २ पुस्तकरूपी शरीर। ३ प्राण डाल दिया है। ४ धार्मिक शङ्काओं। ५ भँवर में। ६ आश्चर्य के समुद्र। ७ शिष्यों को। ८ शंकाओं। ९ बढ़ बढ़ कर बातें बनाने, शेखी। १० निर्भय और निश्शंक होकर। ११ कार्यक्षेत्र में। १२ शिक्षा। १३ झूठा फलसफा। १४ कीचड़। १५ सन्देह रूप भँवरों से। १६ दृढ़ विश्वास। १७ तर्क-शास्त्र। १८ जङ्गल १९ रास्ता भूले हुए। २० ईश्वरीय प्रेम। २१ बाग। २२ बड़े जुल्म की बात है कि तेरी हविश खींचकर तुझको सैर के लिये सर्व और समन (वृक्षविशेष) के पास लेजावें। क्योंकि तू ख़ुद कली से कम नहीं है। जिसे दिल (की कली) खुलने पर बाग़ में जाना पड़े।

श्रीकृष्ण लकीर के फकीर नहीं थे। वो धर्म को ज़िन्दगी और ज़िन्दगी को धर्म जानते थे जिस तरह ज़िन्दगी में नैरंगी[१] है वैसे ही धर्म में भी कमोवेश[२] इख्तिलाफ[३] लाज़मी[४] है। हर मरहले[५] हर ज़माने[६] का धर्म जुदागाना है। बच्चा, बूढ़ा, औरत, मर्द, बादशाह, फकीर सब एक लाठी नहीं हांके जा सकते। एक बिरेमन जो जङ्गल में रियाज़त[७] कर रहा है जिसको न शौके जिन्दगी[८] है, न खौफ़ेमर्ग[९], जिस को जङ्गल के दरख्त अपने फल फूल और पास के नदी नाले या चश्मे अपना शीरीं[१०] पानी मुहैय्या[११] करके राज़ी बरज़ा[१२] रख सकते हैं. उसका धर्म हरगिज़ वही नहीं हो सकता जो चक्रवर्ती राजों महाराजों का होगा, बकौल शेख शादी माकूला

दह दरवेश दर गिली में वेखुसपन्द
व दो बादशाह दर इकली में न गुंजन्द।[१३]

रुबाई

नीमनाने गर खुरद मर्दे खुदा
बज्ल दरवेशां कुनद नीमे दिगर।
हल्फ़ अकलीम अर बगीरद बादशाह
हमचुना दरबंद अकली मे दिगर ॥[१४]

व्यासजी ने श्रीकृष्णजी की सवानेह उमरी[१५] हिन्दू कौम के आगे रख दी जिससे राहेहक[१६] के हर मरहले वो मन्ज़िल[१७]

---

१ नये नये रङ्ग है। २ थोड़ा बहुत। ३ भेद (फर्क)। ४ ज़रूरी। ५ जाति ६ समय, युग। ७ तपस्या। ८ जीवन की लालसा। ९ मौत का डर। १० मीठा। ११ हाजिर करके। १२ ईश्वर ने जो कुछ दिया उससे सन्तुष्ट १३ दस फकीर एक कम्बल में सो सकते हैं, लेकिन दो बादशाह एक मुल्क में नहीं समा सकते। १४ खुदा की याद करने वाला आधी रोटी खाता है, और दर्वेशों (फकीरों) की मुवाफिक सबर करके दूसरी आधी रोटी फकीरों को दे देता है। लेकीन सात विलायतें अगर बादशाह के कब्जे में हो जायं तो भी वो एक और दूसरी हासिल करने की फिक्र में रहता है। १५ जीवनी। १६ सच्चे रास्ते के। १७ हर मुश्किल वो परिस्थिति में

का मुसाफिर सबक़ हासिल कर सकता है।

३१. इस तालीम में जिद्दत[१] थी जिसने हिन्दू दिमाग़ को रोशन किया और दिल को तक़वीयत[२] दी, जिसने क़ानूने क़ुदरत को एक नये रङ्ग में दिखाया, जिसने आलिमे असबाब[३] का एक नया पहलू पेश किया। हिन्दू कौम ऐसे रहनुमा[४] को क्योंकर भूल सकती है ?

३२. हिन्दूओं ने भी ऐसे बरगुज़ीदा रोजगार[५] की कदर-शनासी का हक़ अदा किया[६] और उसकी यादगार बरकरार[७] रखने में कोई दक़ीक़ा[८] नहीं छोड़ा। श्रीकृष्णजी की मूर्तियां हिन्दुस्तान के हरगोशे[९] में, न सिर्फ हर मन्दिर में बल्के घर घर में, रखी गई। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, बल्के तमाम इलाके बिरज को तीर्थ करार दिया गया। मुसव्वरों,[१०] संगतराशों,[११] कुम्हारों, ठठेरों, बढ़इयों[१२], और नक्काशों[१३] की सनद[१४] वो कारीगरी का एक मौतदिबाह[१५] हिस्सा श्रीकृष्णजी की अस्काय मुख़तलिफा[१६] के बनाने में सर्फ होता है। यह मजमून उन के फन में लतीफा[१७] का जुज्ब,[१८] लाइनफिक, बन गया है। साल में कई तहवारों पर श्रीकृष्णजी की किसी न किसी तरीके से पूजा होती है और उनकी तारीफ में गीत भजन गाये जाते हैं। बहुत लोग जै श्रीकृष्ण, राधाकृष्ण, जै गोविन्द वगैरा ऐसे अलफाज से एक दूसरे को सलाम करते हैं और हिन्दी ड्रामे के लिए श्रीकृष्णजी से बेहतर और कौन सा वजूद[१९] मिल सकता था ? श्रीरामचन्द्रजी के

---

१ नयी बात। २ ताकत। ३ दुनिया। ४ पथ-प्रदर्शक। ५ जमाने के ऐसे चुने हुए व्यक्ति की। ६ कदर पहचानने का हक़ पूरा किया। ७ कायम रखने में। ८ कसर। ९ कोने कोने में। १० चित्रकार। ११ सिलावटों। १२ खातियों। १३ नक़्शे उतारने वालों। १४ दस्तकारी। १५ बहुत बड़ा १६ भांति २ की मूर्तियां। १७ उमदा २ कामों का। १८ अभेद्य भाग। १९ व्यक्ति।

हालाते ज़िन्दगी पर भी कई नाटक लिखे जाते रहे हैं* मगर श्रीकृष्णजी पर तो संस्कृत और हिन्दी ड्रामा मफ्तू[१] ही हो गया और बीसियों नाटक ऐसे मिलते हैं जिन में कृष्णचन्द्रजी की किसी न किसी हेयत[२] का नक्शा उतारा है।†

३३. संस्कृत के अलावा हिन्दुस्थान की मुख्य बेजा ज़बाने मस्लन हिन्दी, बङ्गाली, गुजराती वगैरा में जो लिटरेचर (literature) नज़्मो नसल[३] में इस मज़मून पर लिखे जा चुके हैं, जमा किये जावें तो एक दफ्तर तैयार हो जावे। सिर्फ हिन्दी ज़बान में ही सैकड़ों शायरों‡ ने अपनी शीरीं[४] ज़बानें और सहरुल बयानी के मार्के[५] इस मैदान में मारे हैं। गोकुल के वल्लभाचार्य और उन के बेटे विट्ठलनाथ गुसांई के आठ चेलों ने जो "अष्ट-छाप" के उर्फ से मशहूर हैं यानी कृष्णदास, सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छेतदास, नन्ददास और गोविन्ददस ने अपने कादरुल कलामी[६] के वो करिश्में[७] दिखाये हैं के दुनिया के literature लिटरेचर में अगर आप चिराग़ लेकर ढूंढेंगे तो मुश्किल से पायेंगे। लफ्ज़ों में जीती जागती,

---

१ आशिक (प्रेमासक्त) २ सूरत। ३ गद्य-पद्य-में। ४ मीठी। ५ जादू की सी आश्चर्य-जनक सफलता। ६ जबरदस्त कविता। ७ चमत्कार।

* मस्लन् उत्तर रामचरित्र, वीर चरित्र, हनुमन्नाटक, अनर्घराघव वगैरा

† मस्लन् संस्कृत में कृष्ण कवि का कंस-वध, शङ्कर दीक्षित का प्रद्युम्न-विजय, चन्द्रशेखर का मधुराक्षस-वध वगैरा हिन्दी में विद्यापति ठाकुर का रुक्मिनी-स्वयम्वर, भानुनाथ का प्रभाती-हरन, पर्शनाथ का उषा-हरन, हरिश्चन्द्र का धनञ्जय-विजय, दामोदर शास्त्री का राधा-माधव, बेताब का महाभारत वगैरा।

‡ मस्लन् ठाकुर विद्यापति, जैदेव, उमापति, मीरां बाई, अगरदास, नाभदास, नारायण भट्ट, हरिदास स्वामी, धर्मदास, ध्रुवदास, तानसेन, सैयद इब्राहिम, हितहरिवंश स्वामी, वगैराः २। तफसील के लिये देखो ग्रियर्सन साहब की The modern vernacular literature of Hindustan 1889 edition chapter V pages 19-33

बोलती चालती, हँसती खेलती, तस्वीरें बनादी हैं जो दिलोंदिमाग में खुभी[1] जाती हैं।

३४. इन सब का मजमुई नतीजा[2] यह हुआ के श्रीकृष्ण के तसव्वर[3] ने बजाय एक इन्सान की हैसियत रखने के यज़दान[4] का रङ्ग रूप अख्तियार कर लिया और कसीरुल् तादाद[5] हिन्दू मर्दोंज़न[6] जो माबूद हकीकी[7] को काबिले इन्सानी[8] में थी परस्तिश[9] कर सकते या करना चाहते थे, कृष्ण अवतार के सेवक होगये, वल्लभाचार्य और मीरां बाई ने इलाके ब्रिज में राधामोहन रनछोड़ को, चेतन गौराङ्ग ने बंगाल में लड्डुआ गोपाल नन्दलाल को, इष्टदेव बनाकर इश्क हकीकी[10] का मज़ा[11] दिया।

३५. रवायत[12] है के सूरदास जब अपनी आंखों को श्रीकृष्णजी के नज़र कर चुके और उनकी हम्दोसना[13] की नज्म[14] मजबूरन दूसरों के हाथ से लिखाने लगे तो एक मर्तबा एक अनजान लड़का उनके पास आ गया और दोहे लिखने बैठ गया। पेश्तर इसके के लफ्ज़ शायर के ज़बान से निकलते वो कलमबंद कर चुकता था, गोया ज़बान से नहीं मुसन्निफ के दिमाग़ से अल्फाज़ उड़ा लेता था। ज्योंही सूरदासजी को इस का पता लगा, ताड़ गये कि यह मामूली लड़का नहीं। इन के चितचोर श्रीकृष्ण भगवान् आप विराजमान हैं। झट हाथ पकड़ लिया और चिल्लाने लगे के "पकड़ लिया, पकड़ लिया"। मगर लड़का हाथ छुड़ा कर ग़ायब हो गया। उस वक्त सूरदासजी ने अपने गफूरे-शौक[15] व हिरमां[16] का इज़हाद[17] इन दिल्गुदाज़[18] अलफाज़ में किया—

---

१ चुभती। २ परिणाम। ३ खयाल। ४ परमात्मा, ईश्वरत्व। ५ बड़ी संख्या। ६ स्त्री पुरुष। ७ सृष्टिकर्ता परमेश्वर। ८ मानव रूप में। ९ पूजा १० परमात्मा से प्रेम। ११ आनन्द। १२ कहा जाता है। १३ प्रशंसा। १४ कविता। १५ विशाल प्रेम। १६ वद नसीबी (मन्दभाग्य)। १७ प्रकटीकरण। १८ दिल को पिघलाने वाले।

दोहा

कर ही छुड़ाके जात हो, निबल जान हरि मोय ।
हिरदे से जो जावोगे, तो मर्द बखानूं तोय ॥

हिन्दू कौम के दिलो दिमाग से ऐसा हमागीर तसव्वर[1] आसानी से मेहजूर[2] नहीं हो सकता ।

Rai Bahadur Lala Kanwar Sain,
M. A., Barrister-at-Law.

---

१ सब के हृदय को एकसा प्रभावित करने वाला खयाल । २ दूर ।

DEVOTION TO GOD.

The word "BHAKTI" is derived from root "*bhaj*" meaning "to serve." So the word "*Bhakti*" signifies service, worship, adoration, devotion, devotedness, devoutness etc. to God.

The sage *Sandilya* defines *Bhakti* as follows in his *Bhakti-Darsana*:—

सा परानुरक्तिरीश्वरे । २ ।

i. e. *Bhakti* is the greatest or extreme love or devotion towards God.

The prophet *Narada* defines *Bhakti* as noted below in his *Bhakti-Sutra*:—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा । २ ।

i. e. *Bhakti* is the supreme love, attachment, affection, devotion or devoutness to God.,

Thus it may be observed that both the sages describe devotion or *Bhakti* as "intense love for God." *Narada* goes further and calls it as having the nature of *Amrita* or Nectar or immortality in it, as stated below:—

अमृतस्वरूपा च । ३ ।

i. e. it is, besides, of the nature of *Amrita* or nectar. Really speaking love for God is as sweet as nectar or even sweeter than that, as by tasting even its particle, one becomes immortal, as laid down by *Sandilya* thus:—

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात् । ३ ।

i. e. one who is seated in devotion or one who has become a devotee is said to have become immortal.

In other words one who lives, moves and has his being in God तत्संस्थ (*tat-samstha*) becomes

immortal. The nature of love for God is indescribable, as stated by *Narada*:—

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् । ५१ ।

i. e. the nature of love cannot be described in words, as it is beyond description like the taste of a dumb person:—

मूकास्वादनवत् । ५२ ।

i. e. just as the dumb cannot express by words his experience of taste.

In the नारद-पञ्चरात्र (*Narada-Panchratra*) *Bhakti* is described as follows:—

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता ।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः ॥

i.e. *Bhishma, Prahlada Uddhava* and *Narada* define *Bhakti* as complete surrender with all absorbing love to the All-pervading Lord *Vishnu* with the total exclusion of other thoughts, i. e. realization of God as "mine" alone.

In the *Bhagawata-Purana*, various kinds of *Bhakti* or devotion are mentioned, all of which come under these three तामस, (*Tamasa*), राजस, (*Rajasa*) सात्विक(*Satvika*), main divisions as delineated below.

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥
विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥
कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्विकः॥भा.।३।२।६८-१०।

i e. if a person possesses a motive of malevolence, arrogance or jealousy in showing devotion towards God, his devotion is called *Tamasa* or malignant, as he is actuated by *Tamo-guna* or quality of ignorance or darkness. If a person worship the idols of God with the motive of gaining fame, wealth or

any other object of enjoyment, his devotion is called *Rajas* (energetic), as he is actuated by *Rajo-guna* or quality of passion. If a person is devoted to God for sake of uprooting *Karma* or actions, or pleasing God, performinq sacrifices as duty, his devotion is called *Satvika* (pure), as he is actuated by *Sato-guna* or quality of goodness.

All these three kinds of devotion are inferior or subordinate as these are actuated by some sort of motive or another and these are called गौणी भक्ति (*Gauni-Bhakti* or devotion actuated by three *Gunas* or qualities). The superior kind of devotion is निर्गुण-भक्ति (*Nirguna-Bhakti* or devotion devoid of all qualities), as stated below:—

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ।।भा. ३।२६।१२।।

i. e. the definition of the *Nirguna* sort of devotion is stated to be that it is practised without any sort of motive and without any mediation between the supreme Being and His devotee.

This *Nirguna* devotion is the highest sort of devotion, as it is actuated by none of the three qualities of *Sata* (goodness), *Raja* (passion) and *Tama* (ignorance or delusion).

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ।। भा. १।२।६।।

i. e. that is the supreme sort of religion of man, which engenders devotion to God without any motive and interruption, and which fills soul with joy or bliss.

This kind of *Nirguna Bhakti* is also called *Para Bhakti* or supreme devotion, which is described as follows:—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ भा. ३।२९।११

i. e. just as the waters of the Ganges naturally flow into the ocean, so is the inclination of the mind of a devotee spontaneously and un-interruptedly disposed towards God (who is the inner soul of all beings) even when he merely hears the glory of super-human qualities of God.

One having this sort of supreme devotion to God does not care for anything but service to God alone and does not even accept *Mukti* or salvation if offered to him.

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ भा. ३।२९।१३

i. e. the devotees do not accept even five sorts of *Mukti* or salvation viz. *Salokya* or living in the same region as God, *Sarshti* or possessing same super-natural powers as God, *Samipya* or residing near God, *Sarupya* or having same form as God and *Ekatva* i. e. *Sayujya* or intimate union with God, even offered to them except service to Him. They do not even desire *Kaivalya* or emancipation.

न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ भा. ११।२०।३४

i. e. the pious and calm persons devoted solely to God, do not have a longing even for *Kaivalya* or final emancipation with freedom from birth and death, if offered to them.

They do not want even *Nirvana-Mukti* or final beatitude:—

न पारमेष्ठ्य न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥भा.११।१४।१४

i. e. one who has merged his soul into God, does not want to accept the highest position or supre-

macy, abode of *Indra,* Universal monarchy, sovereignty over lower regions or earth, abstract meditation, superhuman powers or faculties, final beatitude but nothing other than God Himself.

They only crave to sit at the blessed feet of God.

तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना वहिः॥भा.४।२४।५५।

i. e. who having once propitiated God (who is not easily to be appeased) by means of absolute devotion, which is difficult to be acquired even by the virtuous, would not crave for anything but the blessed feet of God.

Such sort of unflinching devotion is the highest sort of devotion and is called *Para Bhakti* or supreme devotion. The saint *Sandilya* calls this *Para Bhakti* as *Aikanta bhava* (ऐकान्त भाव) or absolute devotion towards God.

सैकान्तभावो सर्वेषां तथा ह्याह । ८३ ।

i. e. *Para Bhakti* is called *Aikanta Bhava* or whole-hearted devotion, as delineated in Gita. From beginning to end the Gita preaches this sort of supreme devotion only.

परां कृत्वैव सर्वेषां तथा ह्याह ॥ ८४ ॥

i. e. Gita sermonizes for all like this for practising *Para Bhakti.*

In first six chapters Gita describes *Gauni Bhakti,* in second six chapters it mentions *Para Bhakti* and in the last six chapters it advises all to practise *Purna Para Bhakti,* which is supreme devotion.

The Gita teaches that a devotee undoubtedly enters into God by means of this supreme devotion

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयम् ॥१८।६८॥

i. e. one who will teach this supreme secret to My devotees, shall, by doing supreme devotion to Me, undoubtedly come over to Me alone.

Worship of the image of God and its service are called *Gauni-bhakti,* which is but the foundation stone of the *Para-bhakti,*

भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायै तद्धेतुत्वात् ।५६।शां.।

i. e. by means of devotion and singing the names of God the *Gauni-Bhakti* becomes the cause or root of the *Para-Bhakti.*

As these worship and singing the praise of God are the means for the attainment of the Gauni-bhakti,

रागार्थं प्रकीर्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम् ।५७।शां.।

i. e. other means such as singing praises of God, bowing repeatedly in His feet, repeating His names and qualities, visiting the places of His sports or sacred places, applying sandal-wood to His idol, offering sweets to Him as *Bhoga* (or food to His idol), waving lights before His idol, are all acts of adoring Him and are included in the *Gauni-bhakti,* bringing about attachment to Him. This attachment or *raga* eventually ripens into love or *prema* of God.

The sage Narada also divides *Bhakti* or devotion into two kinds, viz *Gauni* and *Para.* Of these the former is again divided into three sub-divisions according to the predominence of the three qualities of *Satva* (goodness), *Raja* (passion) and *Tamas* (ignorance) in the character of the devotee or these are threefold according as the devotee is *arta* आर्त distressed, *jijnasu* जिज्ञासू (inquisitive) and *artharthi* अर्थार्थी (selfish). .

गौणी त्रिधा गुणभेदार्तादिभेदाद्वा । ५६ ।

i. e. the *Gauni Bhakti* is of three kinds owing to

their *Gunas* or qualities of *Satva* (purity), *Rajas* (energy) and *Tamas* (enertia) predominating in the character of the devotee or according as he is *Arta* (seeking deliverance from distress), *Jijnasu* (seeking the knowledge of God) and *Arthartħi* (seeking objects of enjoyment).

These very three-fold divisons are mentioned in the Gita, to which is added a fourth division of *Jnani* (the wise), as stated below:—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ! ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ! ॥७।१६॥

i. e. four kinds of righteous men adore Me, the distressed, the knowledge-wishers, the seekers of the objects of enjoyment and the wise.

So that there are four classes of devotees who worship God. Of these first are those who seek for deliverence from some sort or other of distress in which they are entangled. Second are those who have an inner wish to know some-thing of God, third are those who seek after objects of enojyment or are pleasure-hunters and the fourth are those who are wise or knowers of God.

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥७।१७॥

i. e. of them the wise ever united and singly devoted to Me, is great. I am very much dear to the wise and he is dear to Me.

Of the four classes of devotees or divine-worshipers, the wise by realizing and being devoted to God alone is the highest or supreme devotee, as he has un-motived love for Him.

The devotion of the distressed, seeker of divine knowledge and pleasure-hunter may be called secondary or inferior, since it has some interior

object in view, and that of the wise may be called primary, as it is un-motived, self-less and of the highest degree. The Saint *Sandilya* calls it as *Mukhya* or primary and so does the sage *Narada* term it as *Para-bhakti.* The wise devotee is internally united with Him, as he has un-divided and whole-hearted devotion (*ekanta-bhakti*) to Him. His love of God is not blind but propelled by his inner will or intention.

For implanting devotion into mind, one should start with the recitation of any of the names of God which-ever may be dear to him, as the sage Narada suggests to Veda- Vyasa in the following sloka:—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ भा०६।३।२२

i. e. this spirit of devotion cultivated by the recitation of His name etc. is the best form of virtue that can be practised in this world.

The incessant recitation of the name of God kindles the spirit of love in the reciter and he soon becomes a staunch devotee by the grace of His name alone. The greatness of the recitation of the divine name is well depicted in the following slokas quoted from the Adi-Purana:—

न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम् ।
न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम् ॥
न नामसदृशस्त्यागो न नामसदृशः शमः ।
न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः ॥
नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः ।
नामैव परमा भक्ति र्नामैव परमा मतिः ॥
नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः ।
नामैव कारणं जन्तोः नामैव प्रभुरेव च ॥
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः ।

i. e. neither knowledge, nor any vow, nor contemplation, nor any fruit is equal to the sublime name of God. Neither renunciation, nor restraint of passions, nor virtue, nor mode of living can be equal to the Divine name. The Divine name bestows greatest peace of mind, highest positon, supreme devotion and best intellect. The Divine name is the best love, best recollection, the root-cause of every *Jiva* or soul and the master of all. The name is the best thing to be worshipped and is the best teacher or preceptor.

नामैव तव गोविन्द ! कलौ त्वत्तः शताधिकम् ।
ददान्युच्चारणान्मुक्तिर्विना अष्टाङ्गयोगतः ॥

i. e. Oh Govind ! Thy name is hundred times greater than Thy ownself, as it bestows salvation even without practising the *Yoga* or concentration in eight ways or subdivisions.

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

i. e. the name of Hari alone is my livelihood or means of existence, as there is no other way of salvation in this iron age of *Kali Yuga*.

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥

i. e. Hari destroys the sins of persons who remember Him even with an evil-mind, just as fire burns one who touches it even unintentionally.

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

i. e. he who has even once uttered the dis-syllable of Hari, girds up his loins to obtain final beatitude.

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते ।
भस्मीभवन्ति तस्याशु महापातककोटयः ॥

i. e. he who recites the auspicious or blessed name

of Krishna, his innumerable sins are forthwith reduced to ashes.

कृष्णानुस्मरणादेव पापसङ्घातपञ्जरः ।
शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥

i. e. by reciting the name of Krishna the cage consisting of the heaps of sins is broken hundred-wise, just as the mountain is broken to pieces when struck with *Vajra* or thunderbolt.

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूढता ।
यन्मुहूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत् ॥

i. e. that is the loss, that is the biggest flaw, that is the blindness, stupidity and ignorance that a man does not think of God *Vasudeva* even for a *Muhurta* or period of 48 minutes (i. e. even for a moment).

मनसा कर्मणा वाचा ये स्मरन्ति जनार्दनम् ।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागो नैमिषं वनम् ॥

i. e. the sacred places of pilgrimage such as *Kurukshetra*, *Prayaga* and *Naimisharanya* are there for those who remember Lord *Janardana* (Vishnu) by mind, action and speech.

अक्षरं हि परं ब्रह्म गोविन्देत्यक्षरत्रयम् ।
तस्मादुच्चरितं येन ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

i. e. the letters are the forms of *Para Brahma* and so he who has uttered the three letters of Govinda becomes fit to be merged into *Brahma*, i. e. attains final emancipation

गोकोटिदानं ग्रहणेषु काशीप्रयागगङ्गायुतकल्पवासः ।
यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं गोविन्दनाम्ना न समं न तुल्यम् ॥

i. e. neither the gift in charity of crores of cows, nor the residence for innumerable Kalpas in Kashi, Prayaga and on the banks of the Ganges during the time of eclipses, nor the performance of innumerable sacrifices, nor distribution of gold as

much as Meru in charity, is equal in value or merit as the name of God Govinda.

निमिषं निमिषार्द्धं वा प्राणिनां विष्णुचिन्तनम् ।
क्रतुकोटिसहस्राणां ध्यानमेकं विशिष्यते ॥

i. e. the thought of Vishnu by persons even for a moment or even for its half only, excels thousands of sacrifices.

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्यैवं पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥

i. e. it has been repeatedly concluded after scrutinizingly examining all scriptures that the Lord Narayana is always to be contemplated upon.

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

i. e. by taking the medicine in the form of uttering the blessed name of Achyuta, Ananta and Govinda all kinds of diseases disappear, I (Dhanvantari sage) verily say so.

हे जिह्वे ! रससारज्ञे ! सर्वदा मधुरप्रिये ! ।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे ! निरन्तरम् ॥

i. e. Oh tongue! Oh knower of the essence of taste ! and Oh always lover of sweetness ! drink constantly the nectar in the shape of the name of Narayana.

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने ।
नमो नारायणेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥

i e. what purpose is served by many *mantras* to him who is devoted to God Janardana, as one *mantra* of "*Namo Narayanaya*" is the accomplisher of all objects.

नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी ।
तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भुतम् ॥

i. e. it is marvellous that people fall into the horrid hell, when there is a saviour *mantra* of *Narayana* and when the tongue is subject to one--self.

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ! ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥

i. e. Oh dear ones ! you may mark or observe the glory of the utterance of the name of Hari, that even a great sinner like *Ajamila* has been rescued from the fetters of death.

The best and the shortest name of God is the monosyllable " OM ", as it is the supreme spirit Himself expressed in word.

ओमिति ब्रह्म ।

i. e. Om is Brahma itself.

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥

i. e. he who thinking on Me and reciting the monosyllable " OM " Brahma, goes out leaving the body, attains the best path, i. e. immortality.

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥

i. e. the persons of noble character, who are appreciators of merits and knowers of the real truth, congratulate (welcome) the Kali or iron age, wherein all desired objects are attained merely by the repeated recital of the Divine names.

The saint *Sandilya* describes ten kinds of *Bhakti* thus:—

सन्मान–बहुमान–प्रीति–विरहेतर–विचिकित्सा–महिमख्याति–तदर्थप्राणस्थान–तदीयता–सर्वतद्भावा–ऽप्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात् । ४४ ।

i. e. 1. *Sammana–bhakti*–is that sort of devotion in which the devotee worships God with love accompanied with veneration. An example of this kind of devotee may be found in Arjuna.

2. *Bahumana-bhakti*–is produced by calling out any person bearing any of the Divine names or by seeing any object or hearing the name of God, e. g. Prahlada was absorbed into love for Krishna by seeing letter Ka (क) in the alphabets.
3. *Priti-bhakti*-or devotion on account of love towards God, e. g. Vidura.
4. *Virahetara-bhakti*-or devotion due to separation from God, i. e. Gopis or female cowherds.
5. *Vichikitsa-bhakti*-or excessive regard for God regardless of all other things, e. g. Chitraketu, Upamanyu etc.
6. *Mahima-khyati-bhakti*-or devotion to sing the glory of God, e. g. Narada, Veda-Vyasa.
7. *Tadartha-pranasthana-bhakti*-or living for sake of God alone, e. g. Hanuman.
8. *Tadiyata-bhakti*-or belonging only to God, e. g. Bali Raja.
9. *Sarva–tad–bhava–bhakti*-or becoming one with God with all sentiments, e. g. Sage Narada.
10. *A–pratikulya bhakti*—or never showing adverseness or opposition to the will of God, e. g. Yudhishthira, Bhishma etc.

These are few, out of many, modes of being devoted to God.

The sage Narada describes eleven classes of devotion as below:—

गुणमाहात्म्यासक्ति–रूपासक्ति–पूजासक्ति–स्मरणासक्ति–दास्यासक्ति—सख्यासक्ति—कान्तासक्ति—वात्सल्यासक्ति—आत्मनिवेदनासक्ति–तन्मयतासक्ति–परमविरहासक्ति–एकधाप्येकादशधा भवति ॥ ८२ ॥

i. e. devotion, though of one sort in main, is of eleven kinds as enumerated below:—

1. *Guna-mahatmyasakti*–or love towards God due to His glory of possessing rare and unique attributes. As instances of this kind of devotion may be quoted the names of Narada, Veda-Vyasa, Parikshit, etc.
2. *Rupasakti*–or attachment to God by seeing the most beautiful and perfect form of God, e. g. Raja-Janaka, people of Mithila, people of Mathura and Dwarka etc.
3. *Pujasakti*–or affection of God for purposes of worshipping or adoring the embodied form of God or divine image, e.g. Lakshmi-ji, Uddhava, Prithu Raja.
4. *Smarnasakti*–love for remembering or reciting the names of God, e. g. Dhruva, Prahlada, Miran Bai etc.
5. *Dasyasakti*–Devotion to God as servant or as an attendant of God, e. g. Hanuman, Uddhava; Akrura etc
6. *Sakhyasakti*–or devotion as a friend or constant companion of God, e. g. Arjuna, Uddhava, Sugriva, Sudama etc.
7. *Kantasakti*–or loving God as husband or lover e. g. Radha, Rukmini, Gopis etc.
8. *Vatsalyasakti*–or affection towards one's offsprings or tenderness towards devotees, e. g. Dasaratha, Vasudeva, Nanda, Sudama, etc.
9. *Nivedanasakti*–or self-surrender to God as every thing of a devotee, e. g. Bali, Vibhishana.
10. *Tanmayatasakti*—whole absorption into Divine Being, e. g. Sukadeva, Sanaka, etc.
11. *Parama-virahasakti*–love towards God owing

to His separation, e. g. Gopis, Pandavas, Uddhava etc.

The Bhagavata-Purana narrates nine kinds of devotion as follows:—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

i. e. 1. *Sravana-bhakti*—or listening to the glory of God as recited in the scriptures or by the devotees, e. g. Parikshit.

2. *Kirtana-bhakti*—or chanting the glory or praise of God in a solitary place either by a single individual or by a band of devotees (in chorus) e. g, Sukadevamuni, Prahlada, Miran Bai.

3. *Smarana--bhakti*-constantly reciting the Divine names or brooding constantly on God e. g. Prahlada.

4. *Pada--sevana--bhakti*--or serving at the feet of Divinity (in image or idol) by dedication of life to Him, e. g. Laksmi, Dhruva, Hanuman.

5. *Archana--bhakti*--or worshipping or adoring the idol of God as God Himself, e. g, Prithuraja, Uddhava.

6. *Vandana--bhakti*--or saluting before the the Divine image or sun, fire, etc. Akrura, Bhishma.

7. *Dasva--bhakti*--or devotion to Divinity as attendant or servant, Lakshmana,Hanuman, Uddhava.

8. *Sakhya-bhakti*—or attachment to God as friend or constant comrade, e. g. Arjuna, Sugriva.

9. *Atma-nivedana-bhakti*—or taking refuge in

God by surrendering everything to Him e. g. Bali Raja, Vibhishana, Gopis (cowherds).

The instances of each of the above kinds of devotion have been beautifully summed up in the following verse:—

विष्णोस्तु श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने,
प्रह्लादः स्मरणे च सेवनविधौ लक्ष्मीः पृथुः पूजने ।
अक्रूरस्त्वभिवादने च हनुमान् दास्ये च सख्येऽर्जुनः,
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कैवल्यमेषां पदम् ॥

All these kinds of devotees are attracted to God in one way or the other and they gradually approach their Lord by securing consummate love for Him. The devotion to God is not a thing to be acquired by practice as *jnana* (ज्ञान) or knowledge can be had by reading Vedanta, hearing its precepts, serving a preceptor, following his advice and acting upto his direction, but the devotion is got by the grace of God or by the grace of his devotees alone, as preached by sage Narada:-

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा । ३८ ।

i. e. success in devotion is attained mainly through the grace of a saint or by even a small particle of Divine grace.

So the success in reciting the name of God will be very great if the practice is followed by the grace of a saint; and if the devotee is favoured by God Himself, his success is sure. In such a case if the devotee does not strive to attain his emancipation, he is said to be killing himself (or committing suicide) as laid down in the Bhagavata:-

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥
११-२०-१७

i. e. first of all this human body is very difficult to be got, which serves so to say as a raft to cross this worldly ocean, then it is more difficult to obtain a skilful steersman or pilot in the form of the teacher and it is still much more difficult to be favoured by the favourable wind in the shape of My Grace. Under such circumstances if a man does not cross over the ocean of worldly life, he certainly commits suicide.

He who constantly ponders over the benign Name gets rid of all sins, as preached in the Bhagavata:—

श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥
यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् ।
एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥
विद्यातपप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥

१२-३-४६-८

i. e. God seated in the mind of His devotees washes off the sins of innumerable births either being heard, sung, contemplated, worshipped or even respected i. e. saluted. Just as fire burns off the alloy metals mixed with gold and makes it pure, so does God remove vices of the devotee and purifies him. The mind is not so purified by the acquisition of knowledge or learning, penances, *pranayama* (restraint of breath), friendship, visiting sacred places, keeping fasts or vows, charities and muttered prayers etc. as it is done by the meditation of the endless God.

The Divine name of Hari possesses so much power to remove sins, as cannot be committed by the sinful people, as stated below:—

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

i. e. the name of Hari possesses so much power in removing the sins of the sinful who are unable to commit so many sins.

Although the iron age of *Kali* is replete with many faults or defects, yet it possesses one supreme virtue of imparting emancipation by singing the praise of Vishnu, as narrated below:—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ १२-३-५१-२

i. e. Oh King ! this iron age of *Kali* is full of faults only but it possesses this good virtue that a man by merely singing the praise of Lord Krishna, having been released from the fetters of *Karma* or actions, attains final beatitude. What can be got in the *Krita* or golden age by meditation of Vishnu, in *Treta* age by performance of sacrifices and in *Dvapara* age by worship of Divine image, can be got in *Kali* or iron age by only singing the praises of Hari.

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशोऽब्रुवन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥
संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ॥
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥
मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥
१२-१२-४६-६

i. e. any person, who, even he be debased, slipped, afflicted, hungry and thirsty or helpless, utters " bow be to Hari, " in a loud tone, gets rid of all

sins. Just as the sun dispels darkness and wind scatters clouds, so does Lord remove all calamities when sung and heard by persons, by entering into their minds. That speech is untrue and that story is false, which does not tell or relate the name of Lord, and that is truth, benedication and meritorious act, wherein the glory of Lord is narrated. That is charming, pleasing, everfresh, festivity of the mind, drying of the sea of distress, that a man should sing the praise of Lord of excellent fame.

God cannot be won over by all other means than by devotion, nay–He runs after His devotee for looking after him and for being purified by the touch of the dust arising from his feet, as stated below:—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ ११-१४-१६ ॥

i. e. I invariably go after My devotee who is indifferent, saint, calm, free from enmity and impartial, for being purified by the dust of his feet and thus I purify the universe residing in My interior.

SUMMARY.

In summing up it may be stated that devotion to God is the only means of emancipation and is superior to all other means for the realization of God. Every body is fond of love. When it is directed towards father, mother, preceptor, elderly persons etc. it is called *Sraddha* or reverence, when it is directed towards wife, friend, etc. it is called ***prema*** or attachment and when it is shown towards son, daughter, younger brother etc. it is called *Sneha* or affection, but when the same

flows towards God, it is called devotion. Devotion is not a thing to be acquired by efforts. It flows spontaneously by the grace of God Himself or His devotees. Just as the sun draws water through his rays, forms the vapours, hides himself in clouds, pours down water back on the earth, dispels darkness and shines as bright as he was before, so does Lord by his superhuman power encircle soul in *maya* or illusion, throws him in many births and deaths and again shows kindness towards him for his salvation and engenders devotion in his mind and eventually frees him from all worldly ties and troubles and bestows final beatitude. Each and every person should therefore incessantly pray Lord for bestowal of devotion and devotion alone, as

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ भा० १२-१३-२३

i. e. I bow to the highest Lord, the repetition of whose name is the cause of the removal of all sins and salutation is the cause of the end of all miseries. Amen.

Govind Bhavan,
JODHPUR.
D/ 10-12-1938.

GOVIND.

MYSTICISM

(By Rakhar Mal Singhee, M. A.,
Teacher, D. H. School, JODHPUR.)

I am for each and all the home,
I am the Om ! the Om ! the Om !
Ram.

Mysticism ! Very few can understand the mystery of it and fewer still can convey its right idea to others.

It's no school subject.

We come across a lot of subjects–arts and sciences–which constitute the curricula of the Universities of the World in the East and in the West. We come across numberless masters in those arts and sciences standing on this earth as colossal figures with everlasting fame. Millions of students there are preparing for various examinations, digesting volumes and volumes. But have we heard of a subject called "Mysticism" in any of the University courses ? Perhaps none. Of how many mystic masters have we heard claiming full knowledge of the mystery and giving its lucid exposition to the world at large ? Perhaps of very few only to be counted on finger ends. And of how many students have we heard preparing for a dip into that perennial stream of joy ? Perhaps of rare ones.

It's time-honoured one.

The reason for the limited scope of the subject is the extreme difficulty and incomprehensible

nature of the subject, not that, as many declare, it is the hysterical state of mad men. Mysticism has been recognized for the last several centuries in India and elsewhere. It was practised in the holy hermitages of the Hindu yogis, in the convents of the nuns and the monasteries of the monks. It received the attention of some in modern times and attempts are being made to interprete it in the light of modern art and science.

What's it ?

Mysticim, as the word suggests, is the knowledge of the extremely mysterious Person or God hidden behind the creative process of the Universe or rather, it is the state of one's absorption in God-consciousness. The universe with its sun, stars, moons and planets, human beings, animals, insects and reptiles; with its trees, mountains and rivers is believed to be one whole with all its component parts inter-dependent, inter-related and inter-connected. There is nothing that is isolated. Even a slight tremour caused by the fall of a trifling little object would pervade the whole universe.

Who is a Mystic ?

People are born in this world with certain worldly appetites and desires. Although their destiny is fixed on account of their great inter-dependence but still some choice is left to them to keep up their individuality. Besides these there are spiritual cravings with all-a Godward urge. But there are holy men, loved and lovable and devoted intensely to the attainment of the highest bliss. They are few and adorn the face of the world irrespective of colour, caste, creed or country. There are temples, mosques and churches

with millions of devotees with their spiritual cravings. But all cannot taste of that supreme, controlling and directing power. All cannot be mystics.

There are some extremely sensitiitve, impressionable, discriminative persons who have harmonized themselves with the unity of the Universe and its general laws of beauty, truthfulness, sympathy and love, and whose hearts are touched with the slightest tremour caused in the frame work of the Universe; just as a pin-prick, somewhere in our body, disturbs the equilibrium of the whole body. Such persons experience this exalted state which gives a new turn to the life. But they keep to themselves the ineffable joy inexpressible in words. There are some, who are bestowed with the expressive power and try to relate their supreme experiences as far as they can for the welfare of humanity. Such persons are called mystics and the state that they reach is the state of mysticism and their experience is mystical experience. The Hindu Yogis, the Muslim Sufis and not a few among the Christians attained this state of supreme joy, pinnacle of glory. Theirs was the peak experience of the race. They lived the life of the Universe on the wings of the soul and not of the body.

Inexpressible state.

The mystics only know the full glory of that perfect state. We are given only a glimpse of it. How can a lover convey the idea of his intense love towards his beloved? That is only felt, enjoyed, kept and preserved in the deep recess of the heart. Utterly inexpressible is, then, that love for the whole universe and so is the joy felt at the time of supreme experience. A mystic lives the

life of the universe and loves the love of it.

In Jain scriptures, a story is given to illustrate the inexpressible nature of the beauty, comforts and the joy of Heaven. A certain king, while on hunting, forgot his way in a dangerous forest infested with most ferocious animals–lions, tigers and wolves. He wandered about for several days but'he came across no guide. To his joy at last a Bheel came on the way and the king was shown the way to his city. The king in gratitude showered numberless favours on his savior–wine, women, dainty dishes and beautiful attire for him to enjoy. After a time love for his wild country overwhelmed him and he returned. His friends surrounded him and there was a long list of questionaire such as one is met with in modern legislative assemblies. They asked him how he fared. Could he convey to them the enjoyment of things never enjoyed, nay not even dreamt of, by them?

Such is the inexpressible state of the God–conscious condition. But reality is far better than recorded examples. Let us quote the authoress of the Golden Fountain. She says, "In the celestial living are happenings which cannot, be communicated, or even indicated, to others, because they reach beyond words, beyond all experience, beyond all particularization, beyond any possible previous imagination." Further again the great Indian mystic Rama Krishna says, "I try to relate what I feel......... But as soon as I think it over, up goes the mind with a bound and there is an end of the matter."

A glimpse of it.

In spite of the inexpressible character of the

mystical state the mystics have tried to explain how they were being filled with some marvellous elexir at the time of God realization. We cannot do here better than call to witness Keshava Chandra's own personal experience. " Such God-consciousness grows in vividness and joy as the mind is concentrated more on it. The massive doors of the Universe are now flung open. All objects, animate and inanimate, open their inner sanctuary. The temple doors are suddenly unlocked and the Diety within shines upon the devout eye of the observer. Hitherto a thick curtain was hung over the face of the universe, veiling the wonderous secrets. Now the curtain rolls up and veiled God is immediately unveiled before the clear vision of the devotee. The observer and the observed, the subject and the object, the soul and the all soul, the son and the father, hitherto stood separated. Now the observer at once removes the obstruction, pulls down the barrier and advances unimpeded towards his God. Divinity previously cognized mediately is now perceived immediately. An absent God is now a present God. The separated two thus stand before each other face to face. The union takes place....... and they approach and flow into each other. At first there is mutual attraction, then communion, then intercommunion, then absorption. "

St. Theresa like-wise gave vent to her Divine experience.

" How sweet was the first embrace of Jesus. It was indeed an embrace of love. I felt that I was loved and I said, " I love thee and I give myself to thee for ever. " And then my joy became so deep

and so intense that it could not be restrained.......
Joy alone, a joy too deep for words overflowed within me "

It's no mad man's cravings.

But it is often argued that the mystic state so called is an outcome of deranged brain. It is a hysterical hallucinationary or delirious condition of the brain. Extremes meet no doubt but results differ. The Divine trance, or call it the intoxicated state, is certainly a quite different thing from the state of insanity. Unlike the state under chloroform, its after-effects are healthy and happy.

Swami Rama in his informal talks on self-realization clears the point by drawing a contrast between the two sorts of unconscious states in question. He says, " In the swoon thought stops through lack of activity, the swoon resembles death but the state of trance or the state of realization is all energy, all power, all knowledge, all bliss. "

And all the renowned mystics agree with Swami Rama in declaring that as soon as one is restored into the sefl-conscious state he finds himself more energetic, active and lively. A new life begins and the effect is permanent and indelible.

Its practical utility.

If this state of God-consciousness is inexpressible and is limited to a few, what can be its practical utility in this practical world ? Tota-puri, the Guru of Rama Krishna, while training Rama Krishna in Nirvikalpa Samadhi, spoke in condemnation of everything of this world which is false and transitory. " Brahma is the only reality, " said he. Another famous Christian mystic, likewise

condemned every activity of the world and said, " Why fret and toil ? Why sweat and anguish for the things of the earth ? When our own God has in His hand such bliss and peace to give to every man. Oh come, and receive it every man his share."

It is indeed no dream or illusion but actual personal experience, increasing our happiness, energy and strength. It is valuable for doing practical work as it refreshes and refines our spirit which counts everywhere in this world. There is patriotic spirit which enables the country patriots to fight for their country. There is sympathetic spirit which vibrates the heart strings of a kind and sensitive person at the sight of the slightest suffering among the fellow beings. There is religious spirit. There is cosmopolitan spirit and a lot of spirits all refined and purified in proportion to the spiritual stimulus. Philosophy and science teach us cold knowledge. There are inventions and inventions–radios, cinemas, wireless, telephone etc. But they are not permeated with feelings as to the inter-dependent and inter-connection amongst the different component parts of the universe. The pangs of the various turmoils and tossings of life are fast allayed by the mystic states. It is with this that a man breasts the waves of the ocean of odds and climbs the mount of misfortune. It is really an infallible pointer, an indicator and an impetus towards the evolutionary progress of the world. The utility of the God conscious state is clearly borne out by the fact that evolution in the human race is taking place in comparison to the nearness it approaches to that Spirit. The true civilization is something more than material progress. It is

spiritualization. All these material things are only instruments for giving leizure and opportunity by lessening time and distance so that the human race may devote the spare hours in spiritual training and not in the training for the destruction of the world.

A few steps to attain it.

Granted, then, that this highly joyful state is of primary importance in giving a new setting to the human race, we would certainly betray ourselves poorly if we do not understand the drive of the world activity. As explorers in the realm of nature, we should first fix our view as to the nature of the world, we will find that the world is not a wheel rolling from immemorial times and would go on so doing for endless time to come. They should feel that it evolves for the good of its beings and drives at a definite direction and with a definite aim. Those persons who agree to this view are entitled to this sort of mystical experience, I mean, the grace of the Almighty. This does not come to those who entertain a pessimistic, sordid and selfish view of the world. The explorers then would cultivate a wide vision of the universe and keen imagination to anticipate the bliss of the Divine vision. There can be no doubt that all such explorers can ever be successful in their quest for the Truth. A rare explorer, notwithstanding the absence of any systematic technical training in this respect, may imbibe the spirit of God consciousness. Such a hero is generally very sensitive and highly emotional. He will set his affection on things above and his heart upon higher and higher perfection. He will school and discipline

himself in the power of attention and intense meditation. He will select the most beautiful and most lovable of things, whether of nature or art, which appeal to him the most for meditation and like the authoress of the Golden Fountain enjoy his "Pastime" till every thing vanishes and he would see nothing whatever.

A demand for the better should be made a passion for the best. An yearning for the best should always remain in his heart. Nothing short of the best should ever satisfy him. He should widen his outlook with the aid of the modern means of communication and transport and control his passions so as to direct them rightly rather than suppress them. Like the "Little Flower" St. Theresa he should start his career with doing little things to the best of his ability and with love.

Attainment of the state-supreme joy & love.

Thus alone can the explorer come to his destination where there is supreme joy, perfect bliss, beyond language and beyond description. This is a state of supreme love–love even for the tiniest of the living being–love for the tiniest of the things of nature and art. Thus alone he attains the state where nature is but the hand–maid of the great mystic, the great samadhist yogi.

DOCTRINE OF KARMA.

[By Kishen Puri, B. A., L. L. B., Jodhpur.]

The word Karma is derived from the Sanskrit root Kri meaning 'to do'; all action is Karma teachnically, the word also means the effect of actions. An action implies a desire which prompted it, and a thought which shaped it as well as the visible movement called the Act. Every cause was once an effect and each effect in turn becomes a cause. Hence Karma is called the law of causation or the law of Cause and Effect.

The religious version of the law of Karma cannot be better put than in the well known lines of the Christian Scripture: " Be not deceived; God is not mocked; whatsoever a man soweth that shall he reap."

According to the Hindu Sastra, Karma is of three kinds–first is Sanchita Karma, second Prarabdha and the third Kriyamana.

Sanchita in Sanskrit means accumulated. Sanchita Karma means Karma which has accumulated from many past lives.

Prarabdha means to commence that which is to be worked out in this life. This is what is ordinarily called Fate, Luck or Destiny. Prarabdha Karma, it is beleived, can be sketched out in a horoscope by a competent astrologer.

Kriyamana Karma is that Karma which is in the course of making, while Prarabdha is being worked out and which when added to Sanchita Karma will become Prarabdha in a future life.

JOINT SECRETARY
COMMEMORATION COMMITTEE.

Mr. Kishen Puri, B. A., LL. B.,
Home Secretary,
Government of Jodhpur, Jodhpur.

Prarabdha Karma has again been divided into 3 sub-classes, first is Dridha (fixed or unavoidable) second is Adribha (not fixed, avoidable) and the third is Dridha-Adridha (fixed and not fixed).

It is explained that while Dridha Prarabdha Karma cannot be avoided, the other two can be altered by the force of the Purushartha or free-will. This may well be illustrated by a concrete expamle. A man pits his force against that of a ball thrown towards him. If it is a cannon-ball that is discharged, he cannot catch it or revert it. That is Dridha Prarabdha. A cricket ball can be caught with great effort or at least the direction of its motion can be altered. That is Dridha-Adridha Prarabdha. A light rubber ball caught with little effort may be compared to Adridha Prarabdha. Very few actions in our life are unavoidably fixed. We come across few cannon-balls but many cricket and rubber balls and should therefore exert the full force of our free-will against evil Karma.

A large proportion of man's suffering is what is called "ready money Karma" not due to the results of actions of past lives as nine-tenth of our suffering is merely the outcome of mistaken action in our present life. Karma in its effect on character is the most tremendous power that man has to deal with. Character is the totality of his mental and moral qualities and it is our thoughts that build our character. We read in the Bible " As a man thinks, so is he. He that hateth his brother is a murderer." The rationale of these facts is that when the mind dwells on a particular thought, a definite vibration in matter is caused. And the oftener this vibration is caused the more does it

tend to repeat itself in the matter of the mental body. All the actions that we see in the world are simply the display of thought, the manifestation of the will of man and this will is caused by character and character is moulded by Karma. The men of mighty will which the world has produced have all been tremendous workers with wills powerful enough to overturn the world. Such a gigantic will as that of a Buddha or a Jesus could not be obtained in one life, for we know who their fathers were. Millions of carpenters like Joseph had gone, millions are still living. Millions of petty Kings like Suddodhana, the father of Buddha, had been in the world. If it had only been a case of hereditary transmission, how are we to account for the unthinkable gulf between the two fathers and the two sons produced by them whom half the world worships as God ? Whence came all that gigantic will and the accumulation of spiritual power in Buddha and Jesus ? It cannot be solved by the theory of heredity. Our Sastras say that even the great Avataras are subject to the Karmic law. The gigantic will which they threw over the world must have been there through ages and ages, continually growing bigger and bigger, until it burst on society in a Buddha or Jesus.

We are what we are because of our past Karma, there being no favouritism in Nature. We reap in this life as we sowed in the past. As we are now sowing so shall we reap in the future. Thus man is the creator of his future, moulder and master of his destiny. In the words of the poet—

Look; the clay dries into iron,
But the potter moulds the clay;

Destiny today is master,
Man was master yesterday.

A belief in pure luck or predestination or fatalism is not correct for though it is a fact that there is luck or destiny which I said is synonymous with Prarabdha, yet man himself, consciously or unconsciously, makes that destiny. Nor is it correct to say that Destiny is the will of God, that at His Command things are bestowed or with-held, that we are like puppets moved by His hand. It would then be difficult to explain why some children are born blind or cripple or idiots. Such a theory would show God as unjust and capricious.

Again some explain away destiny as the result of chance. Nothing could be more illogical or irrational. According to the theory of chance, life would be merely a hotchpotch of circumstances. Human bodies might be born through parents swayed by passion in a hovel or in the home of refined persons, without a law governing births, without any choice on our part or justification of the conditions or environments, everything being the result of chance. Then we can never be certain of results, might toil for years and after all might fail by chance. Why should there be law and order in all things in the universe except in human events and human existence ?

By observing the operation of the eternal law of Karma, we are forced to realise the fact that every pleasure, pain, triumph or disappointment we experience is the precise result of the cause to which it is due. Many great thinkers of the West have definitely rejected the theory of chance. Voltaire said very truly indeed that

" Chance is a word devoid of meaning. " Schiller who made a deep study of Indian Vedanta, although he did not reach the transcendental heights of the knowledge of Karma attained by the great Risihis of India, very nearly hit the mark when he wrote " There is no such thing as chance and what seems to us the merest accident springs from the deepest source of destiny." Alexander Pope saw the same vision when he wrote the famous lines in his Essay on Man

> All nature is but art unknown to thee;
> All chance direction thou canst not see.

The Law of Karma is not a problematical theory or a matter of speculation. It is a truth above the region of controversy. The working of this great law cannot be subjected to any experiments in the laboratory or by any other form of demonstration. Our Scriptures say that the Samanya (ordinary) Karmas always produce their result in the next life but Tibra (violent) Karmas, that is those which are extremely sharp in their intensity, whether good or bad, produce their result even in this life. Ordinarily, in the fine matter of the higher worlds, the reaction is by no means instantaneous, often spreading over long periods but, it returns inevitably and exactly. We are all familiar with the lines:—

> Though the mills of God grind slowly
> Yet they grind exceedingly small;
> Though with patience stands He waiting,
> With exactness grinds He all.

Brief sketch of the Natural History of Marusthal.

[By Chatur Bhuj Gehlot, D. D. R., Retired Superintendent of Forests and Mines and Industries, Goverrnent of Jodhpur, JODHPUR.]

Foreward.

Before my brief notes entitled "A peep into the Natural History of Marusthal," intended to serve as a natural base to Human History, see the light of the day, I take this early opportunity of contributing my this humble complementary quota to the " Pandit Rama Karna Asopa Commemoration Volume," which is being presented to our learned veteran historian Professor Pandit Rama Karnaji Sahib, who rendered signal epoch-making services to the country and crown in the fields of human history of the age and Marwari literature in particular; besides the multifarious exposition of his learned profession and who was my respected teacher of Hindi and Sanskrit in my High School days in the Jodhpur Darbar High School, as a mark of gratefulness and Guru-dakshina.

Nomenclature.

The country has aptly been called " Marwar, Marudhar or Marusthal " (meaning Region of मार = Struggle and चार = Escape), where the mobile elements of nature namely, Wind and Water, as constructive and destructive Agents in their multifarious forms and activities, in relation both to or along with inert Nature and living beings, are constantly warring against each other, and

where the Vegetable and Animal beings, including Man, unitarily, specifically or categorically have to struggle hard and sagaciously and constantly against these warring elements, as well as amongst themselves, under the universal Law of Struggle and Existence.

Nation.

The industrious and hardy agrico-pastoral people and talented businessmen, inhabiting or belonging to this country, even though politically much divided, have, accordingly, been properly known as "Marwaris" all over India, and abroad

Extent.

Marusthal, the country under description, irrespective of its political divisions, may of course, be taken to be the whole of the sub-province lying between Longitude 69°-30′ to 75°-45′ east and Latitude 24°-36′ to 30° north.

Area.

For this purpose, Marwar or Marubhumi may well be taken to cover the whole arid country lying west and northwest of the Aravallis mountains or nearly the western half of Rajputana, i. e. the whole of Marwar or Jodhpur, Jaisalmer and Bikaner States, and portions of Jaipur, Kishengarh and Sirohi States, and a little of British Ajmer-Merwara, aggregating by a rough estimate, to about a lac square miles, with a population of about one third of a crore of souls, average density varying from about 8 to over 75 per S. M. from Jaisalmer to N. E. and S. E. corners—as distinct from the mountainous or better half of Rajputana, with far better conditions of prosperity.

Geography.

The geography or physical features of this area are likewise vastly diverse, chequered, ranging from a wavy sea of sands, called "Thal," in west, to mountainous outskirts, and border highlands, called "Kantha" and "Adabala (Aravallis)" in east and south-east, and, with the semi-desert and alluvium plains, in between them.

Physical configuration.

The physiography of the country, excepting the Aravalli regions, is, generally, a monotonous expanse of sands and alluviums but for the mostly separated and sometimes twin-elevations or upraising of the ancient high but thin chained rocky mountains and the late or recent low but more spreading sand-hills, more or less contiguous in their traverses of the area in a common southwest to north-easterly direction.

Geology.

Likewise, is its geology most diverse, complex and unique in respect of origin, age, formation, compostion and conformity. Lithologically, the ancient Aravallis are archaen, out-standing and metamorphic, composed of primitve granite, quarts, microgranites, gneisses (felsite, epidiorites, green-stone etc.), amphibolites, slates, clinkstone, schists, pegmatites, and in lower altitudes--Dharisarian.

Mountains.

Amongst the higher altitudes the following peaks or chains are worthy of mention.

1. **Aravallis**–proper(central axial 3945feet)-But for these elevations, the country could have well been called "mountainless" at least, so far as its present

surface appearance goes. These with their central and western outliers constitute the only and the principal rocky elevations from the south-west to north-east, throughout, visibly playing an important part not only in its topography but also in its climate, water, soil, Fauna, Flora, as well as its agriculture, horticulture and all other physical cultures and natural and human activities.

2. **Sunda**–Sunda Mata hills forming crateriform high-placed lap, with an old Mata temple in centre, in the grove of a forest-garden, and wherein, is lodged an accumulation of S. W. wind-blown and sky-dropped sand, sponge–like holding large. storage of rain–water which remains trickling through their central basal ravine oozing into a perennial spring whose stream on its high placed narrow exit cut through its westerly edge, falls about 500 feet below the precipitous side, in a series of small beautiful life-giving water-falls and flows-the only lively scenery of its kind, in Marwar, especially on the front of its abruptly changing semi-desert aspect, as they appear here.

3. **Chhapan–pahar**—The third and last lofty eminences, across Jawai river, and spread out upto Luni river, are in the semi-desert of Siwana Pargana, called the Chhapana (meaning Chhipp-ne)–ka-Pahar beset with internal springs and outer sand-dunes combining with or backing high peaks, such as Kundal, Haldu, Sela etc. peaks (rising upto 3199 feet above sea level); amidst well-watered outskirts and covered with alpine flora-viz. Haldu or Adina cordifolia (giving name of Haldeshwar peak to the highest among them), Salar, Karr, and even bamboos (note–worthy here is the fact

that bamboos are naturally found no-where beyond this point, in the north and west, up to Punjab and Sindh plains). They are named "Chhip-ne-ka-Pahar" for their enduring and accomodatious shelter and hospitality they have been extending, not only to people (warriors and Rayyat) in times of peace and war (notably during the more than decade long guerilla war of the brave Rathors under their history-maker hero and commander Durga Dass against the Aurangzebian invasions and molestations), but also, the delicate and valuable species of Fauna and Flora of the country when driven, there to, under hard and adverse climatic conditions.

Rains–Aravallis are the rainiest, in this region, with an average rainfall of 20" increasing to about 30" towards Abu region, while the desert zone, in which, portions, west and north of Jaisalmer are practically rainless, hardly gets 4"-7" capricious average, which increases from 10" to 15" in semi-desert and plains zones, respectively, as nearing the Aravallis, rainest month is August and driest May–June. Winter rains called "Mavta" are rare, but, when they occur, are a sign of increased prosperity. The rainiest year recently recorded, so far, was 1917, with a rainfall of 47"; and, the driest, almost rainless, was 1900 (Chhapna Famine).

The Aravallis are drained southwest-wards by Luni and its tributaries, which are described below:—

Jawai–The Jawai [meaning-जव (barley)+वाई (grower)] originates from the rainiest alpine corner of Bali Pargana (Trijunction of Jodhpur, Sirohi and Mewar (Mirpur–Jura) territories] as a perennial stream, for about 50 miles, upto Jalore,

throughout winter, or barley-ripening season, irrigating and inundating extensive cultivations of barley,–the staple food of these Parganas, in its broad fertile valley. It joins Luni at Bhakarpura, after combining with its south-easterly feeder streams–the Sirohi-Jaswantpura Sukri and Khari rivers, and carries into it, the largest volumes of water for the greatest part of the year.

Luni-main–From this point upwards, is the main upper course of Luni descending into Marwar, by Thanvla pass, from Nag Pahar heights, through long and broad valleys, as a perennial stream ooz ing out of the lower outer gently tapering fringes of vastly spreading and high huge deposits of south–western sands and hill-aspects, thus forming, and then acting like gigantic sponges supersaturated with rain water stored in their substrata, about 10 sq miles in extent. enveloping the ancient

Pushkar Lakes Famous sacred Pushkar and Buddha Pushkar lakes, which, of course, are fed continuously underground, with the same water trickling through their inner bases, aided by underground basal water springs of adjacent hill.

Water phenomenon from sand-accumulations, forming perennial springs and streams.

This sort of phenomenon, created by over accumulation of sands blown by south-westerly winds, into the mouths of valleys, or deposited upon their interior deep laps and flats opening to-wards south-west, accounts for the maintenance of most of the more or less perennial springs and

streams of water, in northern half of Aravallis, and in their western outliers.

Luni becoming dry–Luni, although, thus, an offspring, of a favourable and permanent sweet water-head, soon, after its entry into Marwar, in its encounter with formidable barriers, interminable stretches and overpowering encroachments of sand, loses its perennial stream-like phase and ultimately gets absorbed into sand.

Climate–Generally, the climate is healthy though hard; but that of northwest and northeast portions comprising most of the desert and semi-besert (even during the rains when elsewhere it is malarial) as well as that of the alpine Aravallis regions (especially during hot weather as at Marwar Abu, Jaswantpura–all high hills like Rong, Kanagarh, Gorum hill, Taragarh, Nagpahar etc.) is very healthy and celubrious. The following old saying well depicts its effects in the various seasons:—

सियाले खाटू भली, ऊनाले भली अजमेर।
नागाणो नित ही भलो, सांवण बीकानेर॥

Cattle wealth–Owing to natural conditions viz. healthy dry climate, nutritive fodder and food grains, salts, soft sandy parons, absorptive clean dry beds, well-drained open airy sites for stalls and yards, free movements, lot of exercise, favouring the stock raising industry, this country holds a proud position amongst cum-agricultural countries. Its cattle the cow, buffaloe, sheep and goats are valuable and far-famed. They form its true national wealth, called "Vit-dhan = cattle wealth." Notable breeds are:- Nagori bullocks and bulls, Sanchori, Nagori, Thar Parker, Kabawati, Jalori, Shekhawati, and Ajmer

cows, Hissar buffaloes, Bikaneri sheep, Jaisalmeri and Thali goats. Research into history has revealed the existence of a flourishing trade, upto,300 years back in Shawls, blankets, Banats, Googhee,s Chakmas, felts, camels,horses and bullocks.Even,another domestic science of Animal husbandry well advanced in this country, originating out of sheer necessity of cattle farming and use of leather in water lifts was in vogue.

Orthodoxy relaxed–On account of paucity of water, depth of water table but, at the same time, the prevalence of dry healthy climate and abundance of purifying, dry cleansing, and germless sands, the orthodoxy of untouchability, non-use of leather, use of wool, Choka-Bartan, etc. has been reasonably relaxed even among high class Hindus.

Dry farming–Similarly, are evolved to no small degree, the Dry Farming skill and the hardy drought resisting varieties of agricultural crops, of course, in favourable seasons and favoured localities, e. g. melon cultivation of Bikaner, Kirana (spices) and wheat cultivation of plains and Kantha zones.

Architectural arts–The extensive and high class Industry and Art of massive buildings, stone-carving, sculptoring, architecture, rock-carving, etc. are initiated and encourged by the abundance and superiority of local marbles, sand and limestones, natural cements (like Nagori gypsum, selenite of Barmer, etc.) even in the desert zones, under natural Law of " Compensation in nature" to compensate for naturol dearth of timber.

Transport Balads–Paucity of conditions favouring any great development of vehicular traffic and transport, the Institution of bullock (or Banjaras)

Balàds and camel carvans was, in not long past, a grand and useful economic feature of Trade and Industry of this country.

Wool versus Cotten–Abundant and cheap sheep wool and goat hair and wild vegetable floss and fibres have ever been easy substitutes of cotten, here, playing an important part in the rural economics, art and Industries.

Cottage Industries–For self-reliance and sufficiency's sake Cottage Industries, like, spinning, weaving, pottery, smity, rope–making, leather works, etc. have been finding favour with the villagers. These have been well prosperous in the past, but the present foreign competition has suppressed or killed some of them.

Messengers–Messenger services have ever been well rendered by the swift horse and hardy camel.

Famine Foods–In such a variegated, hard and rather adverse conditioned country, the correlation and interdependence of Natural products, animal beings and human life, would be but partially understood if we omitted this recurring feature in country life.

During famines and scarcities, which unfortunately frequent this country, so often as is the local saying, " कंवळे ऊभो काळ " (Famine peeps into the doors), the poor of the desert and famine stricken villagers, in general, have, in order to supplement the food grain supply, to fall back upon the grass seeds, such as, Kuri, Malicha, Bhurat, Mandwa, Sanwa, Kalia, etc. tree and seeds, leaves, roots barks of Khejra, Kumath, Ber, Babul, Jenja, Tas-tumba, Matira cu-cumbers, etc. pot herbs, namely

Purjan, Lalru, Panwariya etc. and wild fruits like figs, Imli, Nim, Goonda, etc. Even soapstone and fuller's earth enter into the dietary of the famine-stricken to serve as laxatives and stomach soothers.

The people have become so much adduced to some of these natural food stuffs that, even during seasons of scanty or partial plenty, they (especially the poor, destitutes and nomadic or forest tribes) carefully and laboriously gather and store them for use in times of future hard times, or during seasons of unemployment.

While, the famine stricken or starving cattle and wild fauna would blindly fall upon anything green or semi-green and even edible dry rotten stuff, be it leaves, fruits, seeds, barks, twigs, shells, husks, sparing not even the old fencings, thorns and bristles, and even humus layers mixed with earthy matter.

Conclusion-From the foregoing brief narration of the principal or representative facts and features, it is evident that the country is vast and variegated, generally healthy and hospitable, its inhabitants (human, vegetable and animal beings) are hardy, sagacions, skilful, adaptive and adventurous. With God overhead, invoking the bouunties of Nature, prospects of reform, improvement and progress for the rehabilitation are hopeful, under scientific, united, intensive, vigorous, well-organised and, sustained efforts of all concerned.

The End.

सम्पादक-रचित पुस्तकें।

प्रकाशित—

१ ईश्वर-सिद्धि-सार
२ धर्म-मीमांसा
३ वर्णाश्रम-सदाचार
४ गङ्गाष्टक-स्तोत्र, भाषानुवाद
५ आदित्यहृदय ,,
६ नारायणकवच ,,
७ शिवताण्डव ,,
८ चर्पटपञ्जरिका ,,
९ अवधूतगीता ,,
१० अनन्तव्रत-कथा भाषा
११ एकादशी-माहात्म्य भाषा
१२ दधीचि-नाटक
१३ दधिमती-महिम्नः-स्तोत्र, भाषानुवाद
१४ दधिमती-माहात्म्य ,,
१५ दधिमती-नवरत्न ,,
१६ कुण्ड-माहात्म्य ,,
१७ गौड़ दाधीचों का मुकद्दमा
१८ ब्रह्मचारीजी का लेख, भाषानुवाद
१९ माताजी का शिलालेख ,,
२० दधीचि-नाटक-सार
२१ दधीचि-वंश-वर्णन
२२ ईशावास्य-उपनिषद्-विवृत्ति, भाषानुवाद

अप्रकाशित—

१ त्रैभाषिक श्रीमद्भगवद्गीता
२ पाण्डवगीता, भाषानुवाद
३ रामरक्षा ,,
४ महिम्नः स्तोत्र ,,
५ ,, संस्कृत टीका

६ पुरुष-सूक्त, भाषानुवाद
७ श्री-सूक्त ,,
८ पार्थिवेश्वर-पूजा ,,
९ यजुर्वेदीय संध्या, भाषा
१० ,, ,, मूलमात्र
११ सप्तशती-दुर्गा, भाषानुवाद
१२ ईश्वर-सिद्धि
१३ कार्तिक-मास-माहात्म्य, भाषानुवाद
१४ मार्गशीर्ष-मास ,, ,,
१५ चमत्कार-चिन्तामणि ,,
१६ मूल रामायण ,,
१७ द्वादशपञ्जरिका ,,
१८ सनातन-धर्म-प्रदीप
१९ पञ्चदशी-सार
२० गोविन्द-भक्ति-शतसई
२१ प्रश्नोत्तर-प्रबोध
२२ गोपी-गीत, भाषानुवाद
२३ विश्व-धर्म
२४ कुम्भी-व्रत-कथा, भाषानुवाद
२५ सनातन-धर्म का महत्व

॥ श्रीदधिमती जयति ॥

शुद्धि-पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		जीवन-चरित ।	
१५	२३	उन्हो नें	उन्हों ने
१७	१	देता	देखना
		अभिनन्दन ग्रन्थ ।	
७	३	दशोपनिषन्मरा:	दशोपनिषत्सार:
११	२४	तन्मय	तन्मयं
१२	२१	परमात्मन	परमात्मन:
२४	१५	पेट	पेट,
२५	१२	ओंम	ओम
२६	४	अद्वेंत	अद्वैत
२६	१६	जगङ्ग	जङ्गम
३१	२	हिन्दा गद्य	हिन्दी पद्य
३१	१५	शरणांगत	शरणागत
३६	६	'गोन्विद'	'गोविन्द'
३६	२२	लिखा	खिला
३७ से ७१ पृष्ठ तक कालियों		'गद्य'	पद्य
४२	२	अम्बीर	अखीर
४४	२०	वान्	वात
५८	१४	भींतर	भीतर
५५	१६	वाजिंत्र	वाजित्र
७७	१	भनमान्	भगवान्
७८	१९	शाशन	शासन
९०	७	गद् रूप	भगवद् रूप
९६	१५	प्रृथिंवी	पृथिवी
१०६	१७	कामे	कार्ये
१०९	४	विश्रत	वृथुत
११०	६	dearers	bearers

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	
११२	८	पारिक	
११२	१७	आसोपा	रामकर्णजी आसोपा
११२	२०	अभिरुचि	अभिरुचि
११३	१८	स्वादीपसी	स्वादीयसी
१२०	४	व्रजनिथि	व्रजनिधि
१२५	४	रकम	रमक
१३६	१५	सादर	आदर
१४२	३	औग	ओर
१८१	१६	यवत	यवन
१८५	१६	आप	आज
१६२	३	प्रतिनिधी	प्रतिनिधि
२१६	२०	चर्म	चरम .
२३२	७	वली	वलि
२४६	१५	स्थान	राजस्थान
२४८	१२	ध्रव	ध्रुव
२५३	४	रत	तुरत
२५४	२३	स्मरणा	स्मरण
२५५	६	भगति	भगती
२५६ फोलियो		'पद्य'	गद्य
२६०	१६	आर	ओर
२६३	१२	सू	सूं
२६५	१६	करमायो	फरमायो
२६८	१	पण भी	पण (भी)
२७२	१७	कूडा	कूडो
२८५	७	म्हन	म्हनें
२६४	१२	मान	अमान
२६४		^	तारीफ नहीं
२९५			रजोगुण
२९७			तिर
२६८			जगां सूदम रूप सूं
३०८	१३	वाला	वाला री
३१५	१	धर्म न	धर्मनें
३१७	१४	म्हन	म्हनें